हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—२३८

# हरिश्चन्द्र

भारत-भूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन-चरित

लेखक

**बाबू शिवनन्दन सहाय**

[ पटना जजी के अनुवादक तथा आरानागरी प्रचारिणी के सभासद् ]

उ० प्र० शासन

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन,

महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ ( उत्तर प्रदेश )

# प्रकाशक की ओर से

हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन की ओर से हमें प्रस्तुत भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की यह जीवनी प्रकाशित करने में गर्व और गौरव का अनुभव हो रहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी के उन्नायकों में श्रेष्ठ हैं। हिन्दी को समृद्ध और प्रसिद्ध करने के लिए जिन कुछ लोगों ने अपना तन, मन और धन समर्पित किया, उनमें बाबू हरिश्चन्द्र का नाम अग्रगण्य है। ऐसे व्यक्ति के जीवन और कार्यकलाप का अधिकाधिक ज्ञान सुलभ हो और उसके श्रम और निष्ठा का अध्ययन करने के लिए साहित्य उपलब्ध हो—इस दृष्टि से यह ग्रन्थ जो आज से ७० वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ है, पुनर्मुद्रित रूप में पाठकों के सामने है।

बाबू हरिश्चन्द्रजी का यह जीवन-चरित मनोरञ्जक और ज्ञानवर्धक है। इसके लेखक बाबू शिवनन्दन सहायजी हरिश्चन्द्रजी के अनन्य रहे हैं। उन्होंने बड़ी आत्मीयता और श्रम-साधना के बाद इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है, इसमें सन्देह नहीं। भारतेन्दुजी के सम्बन्ध में, उनके परिवार और निकटस्थ मित्रों एवं सहयोगियों के बारे में, उन्होंने जो जानकारी दी है उससे उस समय के वातावरण और समाज का अच्छा परिचय मिलता है। लेखक की शैली सुबोध और रोचक है। बाबू शिवनन्दन सहायजी का यह ग्रन्थ ऐतिहासिक महत्त्व का है और उनकी इस कृति के लिए हिन्दी-जगत् वस्तुतः सदैव कृतज्ञ रहेगा।

यह ग्रन्थ प्रथम बार सन् १९०५ में मुद्रित हुआ। इसका द्वितीय संस्करण सन् १९०९ में हुआ। हम सन् १९०५ में प्रकाशित प्रथम संस्करण को ही आफसेट् पद्धति द्वारा यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे पाठकों को उस समय की भाषा, शैली, व्याकरण के अतिरिक्त पुस्तकों के मुद्रण तथा टाइप आदि का भी कुछ परिचय मिल जाय। पुस्तक ज्यों की त्यों आपके सामने है। हम खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर के वर्त्तमान स्वत्वाधिकारी श्री शार्ङ्गधर सिंहजी के भी विशेष आभारी हैं, जिन्होंने उदारतापूर्वक इसके प्रकाशन में सहयोग किया है। खड्ग-

विलास प्रेस की सेवा, हिन्दी-जगत् विस्मृत नहीं कर सकता। जब प्रेस और प्रकाशन का इतिहास लिखा जायेगा, तब इसकी चर्चा प्रमुख रूप से होगी, इसमें सन्देह नहीं।

यह ग्रन्थ डिमाई साइज में था, किन्तु हम इसे डबल क्राउन सोलह पेजी में मुद्रित कर रहे हैं। इस ग्रन्थ के प्रारंभिक पृष्ठों के अतिरिक्त जीवनी के मूल ३७६ पृष्ठ, ग्रन्थकार के आत्म परिचय के ४ पृष्ठ, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी की जन्मकुण्डली सम्बन्धी म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदी द्वारा रचित २० पृष्ठ एवं पत्राचार सम्बन्धी ५० पृष्ठ हैं। ये ज्यों के त्यों हैं।

हमें विश्वास है, हिन्दी की गतिविधि और प्रगति के सम्बन्ध में अध्ययन करने वाले, जिज्ञासुओं और विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, साधारण हिन्दी प्रेमी पाठकों को भी इस अलभ्य ग्रन्थ को इस रूप में पाकर परम प्रसन्नता होगी। हिन्दी-संसार यथेष्ट स्नेह और सम्मान देगा। यह ग्रन्थ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-जी के १२५ वीं जन्मदिन के अवसर पर हमारी भावाञ्जलि के रूप में समर्पित है।

**हिन्दी भवन**
महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ
ऋषि पंचमी,
१० सितम्बर, १९७५ ई०

**काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'**
सचिव
**हिन्दी समिति,**
**उत्तर प्रदेश शासन**

## उनका स्वर आज भी गूँज रहा है :

मुझे सुख और सन्तोष है, हिन्दी समिति ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की १२५ वीं जयन्ती पर इस प्रकार का यह साहित्यिक आयोजन किया और काशी में अनुष्ठित इस समारोह में उस महान् साहित्यकार को श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने का मुझे अवसर मिला। 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' मन्त्र का उद्घोष करनेवाले और उस विषम परिस्थिति में भी भारती और भारतीयता को उजागर करनेवाले उस व्यक्तित्व के प्रति हम सदैव ऋणी रहेंगे। हिन्दी के नायक और राष्ट्रीयता के गायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्वर आज भी गूँज रहा है। ऐसे मूर्धन्य यशस्वी साहित्यकार के जीवन और कृतित्व के स्मरण और आचरण से हम यदि कुछ प्रेरणा और प्रकाश पा सकें तो यह हमारी महती उपलब्धि होगी।

ऋषि पञ्चमी
१० सितम्बर, १९७५

**हेमवतीनन्दन बहुगुणा**
मुख्यमन्त्री, उत्तर प्रदेश

## वह अनुपम व्यक्तित्व :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसे व्यक्ति यदाकदा ही जन्म लेते हैं। अपने ३४-३५ वर्ष के अल्पकालिक जीवन में उन्होंने हिन्दी भाषा और राष्ट्रीयता के लिए जो महान् कार्य किये और विविध विधाओं में जो कृतियाँ प्रस्तुत कीं, उनके लिए समस्त हिन्दी जगत् उनका चिर ऋणी रहेगा ! वह विलक्षण प्रतिभा और निष्ठा से सम्पन्न थे ! काशी की विभूति थे। सामाजिक जीवन के उदाहरण थे। उदारता और विशालता की अभिव्यक्ति थे। उस युग की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रतीक थे और थे राष्ट्रीयता के स्वर को भास्वर करने वाले ! ऐसे पुण्यकृती और यशोस्नात साहित्यकार की अनन्य सेवा के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित करना, हमारा कर्त्तव्य है। मैं इस साहित्यिक अनुष्ठान की अभिशंसा करता हूँ।

ऋषि-पञ्चमी
१० सितम्बर, १९७५

**कमलापति त्रिपाठी**
**रेलमंत्री, भारत सरकार**

# हरिश्चन्द्र

✤ ✤ ✤

बाबू शिवनन्दन सहाय

**LIFE OF HARISH CHANDRA**

by

BABU SHIO NANDAN SAHAI.

स चि त्र

# हरिश्चन्द्र

अर्थात्

भारतभूषण भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवनचरित.

आख्तियारपुर ज़िला आरा निवासी, पटना जजी के ट्रैन्सलेटर और "आरानागरी प्रचारिणी" आदि के सभासद

**बाबू शिवनन्दन सहाय द्वारा विरचित**

और

"क्षत्रियपत्रिका" तथा "हरिश्चन्द्रकला" सम्पादक " म० कु० बाबू रामदीन सिंहात्मज

**श्री बाबू रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.**

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर.

चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

१९०५

प्रथम बार ] · हरिश्चन्द्र सम्वत २१. [ मूल्य १॥)

# मनोरथ और भावी ।

भारतेन्दु जी के देहान्त को आज प्रायः २० वर्ष व्यतीत हुए । आप-के सदृश व्यक्ति की जीवनी का इतने समय तक अप्रकाशित रहना आश्चर्य और खेद का कारण है । पिता जी इन को सविस्तर जीवनी लिखने के लिये यत्नवान थे। जीवनी के लिये उपकरण एकत्रित करते ही जाते थे कि अकस्मात रोग ने आ घेरा और उन का शरीरान्त हो गया । यदि वे जीवित होते तो इस जीवनी के वर्त्तमान आकार और गौरव कई गुण अधिक होते इस में संदेह नहीं। पर यह मनो-रथ उन के साथ ही गया। काल की अलख गति की परवशता से मनुष्य की मनो-कामना पूरी नहीं हो सकती। पिता जी ने शरीर त्याग करने के कुछ दिन पूर्व कहा था "मोर मनोरथ सफल न कीन्हा"। जब कभी उन्हें इन मनोरथों का स्मरण होता था तो उन का हृदय विदीर्ण हो जाता था।

ईश्वर की कृपा से इस जीवनी के पूर्ण होने से आज पिता जी के एक मनोरथ की पूर्ति हुई।

उन के कई मनोरथों में से एक टाड राजस्थान का प्रकाश करना भी था। टाड राजस्थान का अनुवाद पिता जी के समय ही से होता आता है। वह काम अब भी हो रहा है। पण्डित वर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा उसपर टिप्पणी करते हैं । कुछ फार्म छप चुके हैं शेष छपते जाते हैं। ईश्वरेच्छा और पूज्य पिताजी के मित्रों की कृपा से यदि वह पूर्ण प्रकाशित हो जाय तो उन की आत्मा को सन्तोष हो।

इस जीवनी के प्रकाशित होने में बहुत विलंब हुआ है; आशा है कि पाठकगण इस अपराध को क्षमा करेंगे।

यदि हिन्दी भाषा के प्रेमियों को इस के अध्ययन से कुछ भी आनन्दानुभव होगा और उन की इच्छा की पूर्त्ति होगी तो हम लोग अपने श्रम और व्यय को सफल समझेंगे। शुभम्।

कार्तिक शुक्ला ११ सं० १९६२ } रामरणविजय सिंह,
प्रकाशक ।

# समर्पण ।

प्रभो !

सदा-पर-हित-निरत तुम्हारे एक अनन्य भक्त की यह चरितावली है । विश्वमण्डल के सब चरित्र के कारण और सब के चरित्र के सच्चे समालोचक तुम्हीं हो । अतएव यह पुस्तक तुम्हारे ही पदाम्बुज में अर्पण की जाती है । आशा है कि तुम इसे अवश्य अंगीकार करोगे ।

सब प्रकार से तुम्हारा
ग्रंथकर्त्ता ।

# भूमिका ।

भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के जीवितकाल ही से लोगों को इन को जीवनी लिखने की उत्कंठा थी। एक बार "कवि-वचन-सुधा" समाचार पत्र में इन की जीवनी लिखने के अभिप्राय से एक पण्डित महाशय ने सामग्री एकत्रित करने के लिए एक विज्ञापन प्रकाशित किया था, एवं अंगरेजी समाचारपत्र "रईस और रैयत" के स्वर्गीय सम्पादक सुविख्यात बाबू शम्भुचरण मुकुर्जी ने भी इन की जीवनी लिखने के निमित्त एक पत्र में बाबू साहब से सामग्री मांगी थी। सम्भव है कि उन्हों ने निज समाचार पत्र में या पृथक् ही इन की जीवनी प्रकाशित की हो, परन्तु वह हम को देखने में नहीं आई। किन्तु भारतेन्दु के अस्त होते ही हमारे परम प्रेमी तलुका सरहरी जिला गोरखपुर के वर्त्तमान मैनेजर काशी निवासी पं० रामशंकर व्यास जी ने "चन्द्रास्त" नामक पुस्तक में भारतेन्दु का संक्षिप्त वृत्तान्त प्रकाशित कर के जनसाधारण में उस की बहुत सी प्रतियां वितरण की थीं और बांकीपुर के तत्कालीन अंगरेजी समाचार पत्र "इन्डियन क्रानिकल" एवं "इन्डियन मिरर" आदि पत्रों में इन का संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त छपा था। हिन्दी भाषा के परम रसिक जी० ए० ग्रियर्सन साहिब महोदय ने भी "दी माडर्न लिट्रेरी हिस्टरी आव हिन्दुस्तान" ( The Modern Literary History of Hindustan ) में भारतेन्दु का जीवन सम्बन्धी एक छोटा नोट लिखा है, और सुविख्यात हिन्दूधर्मप्रचारक वक्ता ( Lecturer ) तथा सुकवि हमारे परम स्नेही स्वर्गीय साहित्याचार्य्य पं० अम्बिकादत्त व्यास जी ने भी स्वरचित "बिहारी विहार" में भारतेन्दु का कुछ जीवन चरित्र लिखा है। परन्तु वे सब लेखादि जीवनी की गणना में नहीं आ सकते वरन जीवनी लिखने के लिए केवल नोट कहे जा सकते हैं।

हां! हमारे मित्रवर बाबू राधाकृष्णदास जी ने कई वर्ष पूर्व

"सरस्वती" पत्र में भारतेन्दु का जो जीवनचरित्र प्रकाशित किया था और जिस को अब उन्हों ने कुछ हेरफेर कर के पुस्तकाकार छपवाया है वह जीवन चरित्र कहा जा सकता है, परन्तु वह भी जगद्विख्यात भारतेन्दु सरीखे महापुरुष की जीवनी कहलाने योग्य नहीं है। उस पुस्तक के प्रकाशित होने पर "समालोचक" पत्र में लिखा था कि उन को जीवनी लिखना उचित नहीं था क्योंकि वह भारतेन्दु जी के सगे सम्बन्धी हैं। परन्तु मेरे विचार में यह कथन ठीक नहीं। किसी निज सम्बन्धी का जीवन चरित्र लिखना यह किसी नियम के विरुद्ध नहीं है। प्रसिद्ध विलायती कवि "स्काट" की जीवनी उस के यामाता "लोखार्ट" ने रची है जो प्रामाणिक मानी जाती है और जिस को आधार मान कर अन्य लोगों ने "स्काट" की जीवनी लिखी है। बंगदेशीय प्रसिद्ध उपन्यासलेखक बाबू बङ्किम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने निज ज्येष्ठ भ्राता बाबू संजीवन चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी की रचना की है। ऐसे ही निज के लोगों का लिखा हुआ किसी का जीवन चरित्र, यदि वह निरपेक्ष भाव से लिखा जाय, तो अधिकतर प्रामाणिक होता है। खेद इतना ही है कि बाबू राधाकृष्ण जी ने भी भारतेन्दु की वृहत् जीवनी नहीं लिखी। यह एक प्रसिद्ध लेखक हैं। यह यदि चाहते तो हरिश्चन्द्र के प्रेमियों का बहुत कुछ कौतूहल शान्त हो सकता था।

जब हमारे परम स्नेही गोलोकवासी महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह जी ने हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध की चिट्ठी पत्री बनारस से ला कर हम को दिखलाया, तभी से हमारी यह लालसा थी कि भारतेन्दु की कोई वृहत् जीवनी प्रकाशित हो; और उक्त बाबू साहिब भी चिर काल से सामग्री प्रस्तुत करने एवं एक उत्तम वृहत् जीवनी प्रकाशित करने के यत्न में रहे। बहुत कुछ एकत्र भी किया था परन्तु बड़ा कार्य्य शीघ्र समाप्त नहीं होता। अनेक प्रकार के उलझावे में रहने से भारतेन्दु की जीवनी लिखने और प्रकाश करने का उन्हें सुअवसर नहीं मिला और उन का स्वर्गवास हो गया। "दिल की दिल ही में रही बात न होने पाई"

सन् १८०२ ई० की पूजा की छुट्टी में हम को निज प्रियपुत्र बाबू ब्रजनन्दन सहाय के संग श्री विन्ध्येश्वरी महारानी के दर्शनार्थ विन्ध्याचल जाने का अवसर मिला। वहां से मिरज़ापुर होते काशी में श्री विश्वेश्वरनाथ का दर्शन करते हम डुमरांव पहुंचे। वहां पर हम को आरा ज़िला के भूतपूर्व कलक्टर स्क्राइन साहिब बहादुर रचित पूर्वोक्त शम्भुचरण मुकुर्जी का जीवन-चरित्र देखने में आया। उस के पढ़ने में हमारा चित्त ऐसा लगा कि उस को आद्योपान्त पाठ कर जाने की इच्छा से हम कई दिन वहीं ठहर गए। वहां से आरे आने पर जब हम ने अपने एक युवक मित्र बाबू जानकीनाथ वकील आरा से उस की चर्चा की तो उन्हों ने हम से आग्रहपूर्वक कहा कि "आप बाबू हरिश्चन्द्र की रचना के बड़े प्रशंसक हैं, उन की जीवनी बड़ी ही रोचक होगी, आप उन की जीवनी अवश्य लिखिए।" जानकीनाथ जी का कहना हमारे जी में जम गया। हम को भारतेन्दु की जीवनी लिखने की बड़ी उत्कंठा हुई। इस लिए हम बाबू जानकी नाथ को अनेक धन्यवाद देते हैं। उस के बाद बांकीपुर आने पर हमारे मित्र स्वर्गवासी बाबू रामदीन सिंह जी के प्रियपुत्र चिरंजीव बाबू रामरणविजय सिंह तथा खड्गविलास प्रेस के कार्य्यकर्त्ता बाबू गोकर्ण सिंह ने भी अपनी अभिलाषा प्रगट की और कहा कि बाबू साहिब (बा० रामदीन सिंह) हरिश्चन्द्र की जीवनी प्रकाश करना चाहते थे पर कालगति से उन के जीवनकाल में नहीं हो सका। अब हम लोगों का कर्तव्य है कि उन की इच्छा को पूरी करें; सो आप कृपा कर इस काम को पूरा कर के बाबू साहिब का एक मनोरथ पूर्ण करें। हमारी इच्छा तो थी ही हम ने सहर्ष स्वीकार किया। परन्तु खेद का विषय है कि बाबू रामदीन सिंह जी के स्वर्गधाम सिधार जाने के कारण कागजपत्र सब ऐसे यत्रतत्र हो गए थे कि हम को उन सबों को एकत्र करने में बहुत परिश्रम हुआ और जितनी आशा थी उतना लब्ध भी नहीं हुआ।

दीपमालिका की रात्रि को जिस समय भारतवर्ष चतुर्दिक दीपावली की ज्योति से जगमगा उठता है, हम ने भी हिन्दीसाहित्य देश के अतुल्य ज्योतिप्रकाशक भारतभूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवनचरित्र लिखना

आरम्भ किया। उसी अवसर में हम को स्मरण हुआ कि पं० रामशंकर व्यास जी भारतेन्दु के एक प्रेमपात्र और सदा के सहवर्ती थे, वह इन का कुछ हाल अवश्य बतला सकेंगे। हम ने तत्क्षण ही उन के पास एक पत्र भेजा। परन्तु मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई। उन्हों ने उत्तर दिया कि "चिर काल व्यतीत हो जाने के कारण हम आप के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हैं, आप को बाबू राधा कृष्णदास से सहायता मिलेगी और वह सानन्द सहायता प्रदान करेंगे। बड़े हर्ष की बात है कि आप यह जीवनी लिख कर हमलोगों के परम मित्र बाबू रामदीन सिंह जी का एक परम मनोरथ सफल करना चाहते हैं। बाबू साहिब तथा भारतेन्दु ही की आत्मा आप की पूर्ण सहायता करेंगी"! पण्डित जी का आशीर्वाद ही फलीभूत हुआ। निस्सन्देह उन स्वर्गीय आत्माओं की सहायता विना यह कार्य्य हमारे द्वारा कभी सम्पन्न नहीं होता।

बाबू राधाकृष्ण दास से हमारी दो एक वार की भेंट तो थी परन्तु वह परिचय ऐसा नहीं था कि उन को कष्ट देने का हम को साहस पड़े। इसी सोच विचार में थे कि ईश्वर की कृपा से उन्हीं दिनों वे स्वयं बांकीपुर आ गए और "खड्गविलास" यन्त्रालय में उन से अकस्मात साक्षात हुआ। वह सानन्द सहायता देने पर उद्यत हुए और उन्हों ने कागज पत्र देखने के लिए हम को काशी चलने का परामर्श दिया। हम काशी जाकर जो कुछ सामग्री उन के पास थी वह देख आए और जो कुछ पूछने योग्य अधिक बातें स्मरण होती गई वे सब पत्रद्वारा बराबर पूछते गए और वे भी सब का यथा सम्भव उत्तर देते गए। पुस्तक का ढांचा खड़ा होने पर परसाल (१९०४ ई०) में गोविन्दद्वादशी को हम फिर काशी जा कर उन से मिले और उसे दिखलाया। उन्हों ने देख कर अति प्रसन्न हो, शीघ्र पुस्तक प्रकाशित करने की सम्मति दी। यदि बाबू राधा कृष्ण दास सहायता नहीं करते तो बहुत सी बातें जो इस पुस्तक में लिखी गई हैं हम को कदापि ज्ञात नहीं हो सकतीं। अतएव हम उन के बहुत बाधित हैं।

जब पुस्तक पूरी लिखी जा चुकी तब हम ने इस हस्तलिपि को पं०

रामशंकर व्यास जी के पास भेजना उचित समझा कि उस को देख कर उन्हें अनेक बातें स्मरण हो सकें और वे बता सकें। इस में हमारा मनोरथ सफल हुआ। वह अपने ऊपर कष्ट उठाकर कृपापूर्वक हमारी हस्तलिपि को आद्योपान्त देख गए, जहां तहां नई बातें जोड़ दीं, और कहीं २ यथावश्यक शोध भी दिया। इस परिश्रम के लिए हम पण्डित जी को अवश्य धन्यवाद देते हैं।

इस पुस्तक में हमने परिच्छेदों का नियम रखा है और इस को १८ परिच्छेदों में विभक्त किया है। इस में एक परिच्छेद में भारतेन्दु के पूर्वजों का और एक में इन के वंशजों का भी हाल लिखा गया है।

कई एक में इन के रचे सब प्रकार के ग्रन्थों की समालोचना है जिस में हम ने मिस्ट्रेस मेनिंगस विरचित "एन्शेन्ट और मिडिवियल इण्डिया" ( Ancient and Mdiæval India ) नामक पुस्तक का अनुकरण किया है। इन्हीं परिच्छेदों में से एक को हम ने अपने परम मित्र पं॰ अयोध्या सिंह क़ानूनगोय आज़मगढ़ के पास भेज कर उन से सम्मति पूछी थी। उन्हों ने उस को पसन्द किया और उस के विषय में यथोचित सम्मति भी प्रदान की जिस के लिए वे हमारे धन्यवाद के भागी हैं।

इस में एक परिच्छेद "हिन्दीभाषा" और "हिन्दीवर्णमाला" के विषय में भी लिखा गया है। इस को हम ने निज प्रियपुत्र बाबू व्रजनन्दन सहाय वकील आरा के अनुरोध से लिखा है। निस्सन्देह यह परिच्छेद बहुतेरों के लिए उपयोगी होगा। यह विषय अद्यावधि कदाचित् किसी पुस्तक में सन्निवेशित नहीं हुआ है। इस विषय का लेख कभी २ किसी २ पत्र में देखने में आया है सही। यह विषय इस पुस्तक में इस अभिप्राय से सन्निवेशित किया गया है कि हिन्दी रसिकों को इस विषय में आगे अधिक अनुसन्धान करने का उत्साह होगा। इस में कतिपय अंगरेज़ी पुस्तकों तथा लेखों से सहायता ली गई है।

इस पुस्तक में पाठकों को भारतेन्दु के जीवन चरित्र के अतिरिक्त और भी अनेक प्राचीन तथा वर्तमान विख्यात पुरुषों और कवियों का वृत्तान्त

टिप्पणी से ज्ञात होगा। इस के सिवाय भारतेन्दु के कई एक मित्रों की जीवनी भी एक पृथक परिच्छेद में प्रकाशित कर दी गई है। यहां पर हम को सखेद लिखना पड़ता है कि कई एक महाशयों ने हमारी प्रार्थना पर भी न जाने किस विचार से अपनी जीवनी हमारे पास नहीं भेजी।

इस के सिवाय अनेक ऐतिहासिक बातें भी पाठक वृन्द इस पुस्तक के पाठ से जान सकेंगे।

अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल मित्रों के अनुरोध से हम ने पुस्तक के अन्त में कुछ निज परिचय भी पाठकों को दिया है। आशा है कि लोग इस ढिठाई पर असन्तुष्ट न होंगे।

परिच्छेदों का विभाग हम ने अपने युवक मित्र बाबू अयोध्याप्रसाद एम॰ ए॰ डिपुटी कलक्टर तथा स्वर्गीय बा॰ रेवतीनन्दन बी॰ ए॰ असिस्टेंट हेडमास्टर ट्रेनिंग स्कूल बांकीपुर की अनुमति से की है। इस स्थान में हम को सशोक लिखना पड़ता है कि बा॰ रेवतीनन्दन इस पुस्तक को प्रकाशित नहीं देख सके। उन को इस पर इतना अनुराग था कि रुग्नावस्था में भी जब हम को देखते थे यही पूछते थे कि "हरिश्चन्द्र की जीवनी कितनी छप चुकी है, जो छप चुकी है हम को वही सुनाइए।"

हम इस बात को अवश्य स्वीकार करेंगे कि भारतेन्दु की जीवनी जैसी होनी चाहिये वैसी नहीं हुई। वैसी जीवनी तभी होती जब हमारे मित्र वर बा॰ रामदीन सिंह स्वयं लिखते वा भारतेन्दु जी के किसी अन्तरङ्ग अन्य सुलेखक मित्र की लेखनी से यह प्रसवित हुई होती। हम आशा करते हैं कि कोई सुयोग्य पुरुष इन की उत्तम जीवनी लिख कर इन के प्रेमियों तथा हिन्दीरसिकों का कौतूहल शान्ति करेंगे।

इस पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश्य यह है कि मातृ भाषा हिन्दी को नीरस और सारहीन समझनेवाले अंगरेजी-भाषा-रसिक जनों की हिन्दी पढ़ने में रुचि जन्मे, और वे लोग सब प्रकार की प्रकृति के अनुसार सब प्रकार के रसों से पूर्ण हरिश्चन्द्र के ग्रन्थों को पढ़ कर देखें कि हिन्दी की उन्नति के लिए

केवल एक व्यक्ति ने कितना यत्न तथा परिश्रम किया है एवं उसी निष्काम मातृभाषा की सेवा से वह देश विदेश में कैसा सम्मानित हुआ है और सचेष्ट इस को और अधिक गौरववृद्धि के निमित्त यत्नवान हों। इसी कारण यह जीवनी अंगरेज़ी पुस्तक के ढंग से लिखी गई है, जहां तहां अंगरेज़ी लेखों का उल्लेख भी किया गया है, और अंगरेज़ी तथा अन्य भाषा के कवियों की रचना से भी इन की रचना की तुलना की गई है।

हम यह जानते हैं कि यह पुस्तक सर्वथा दोषमुक्त नहीं है, क्योंकि एक तो हम कोई प्रसिद्ध लेखक नहीं, दूसरे प्रूफसंशोधन में भी असावधानी हुई है। अपने समय पर पूर्ण अधिकार नहीं होने के कारण हम को उस ओर विशेष ध्यान देने की सुविधा भी नहीं मिली। कतिपय मित्रों का विचार था कि पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ कर यदि आवश्यक हो तो शुद्धाशुद्ध-पत्र लगा दिया जाय, परन्तु यह बात भली भांति जानी हुई है कि कोई पाठक शुद्धाशुद्ध-पत्र के अनुसार पुस्तक को शोध कर पाठ नहीं करते। पाठक वृन्द यदि कृपा करेंगे तो यों भी सुधार कर पढ़ लेंगे।

हम को यह भी दृढ़ विश्वास है कि कई कारणों से बहुत से समालोचक इसे तीव्र दृष्टि से देखेंगे, परन्तु मन की बात स्पष्ट खोल कर कह देने में कोई संकोच नहीं। हम को इस की चिन्ता नहीं है क्योंकि यह हमारे सामर्थ्य के बाहर था कि इस की रचना इस ढंग से करते जिस में सब लोग प्रसन्न होते; और छिद्रान्वेषी जन तो बड़े २ महान् सुविज्ञ पुरुषों की रचना में भी दोष निकालते हैं, हम किस गिनती में हैं। इस के सिवाय विलायती कवि "काउपर" का कथन है कि समालोचक के जन्मदाता ग्रंथकर्त्ता ही होते हैं ( Authors beget critics ) तब चिन्ता काहे को? हां! जो सुजन महाशय स्वच्छ हृदय से सच्ची समालोचना कर के यथार्थ गुण अवगुण प्रगट करेंगे हम भी निस्सन्देह उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हुए उन के कहने को सिर पर चढ़ावेंगे।

परन्तु सब से सविनय प्रार्थना है कि यदि भारतेन्दु के नाते से भी, चाहे वह किसी भाव से हो, लोग इस पुस्तक को एक बार आद्योपान्त पाठ करेंगे तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। और अपने मित्रों से तो हम आग्रहपूर्वक कहते हैं कि वे लोग इस को अवश्य स्वयं पाठ करें तथा औरों को भी इस के पढ़ने में रुचि दिला कर हरिश्चन्द्रकृत पुस्तकों के पढ़ने एवं हिन्दी भाषा की वृद्धि के लिए यत्नवान् होने में उन का अनुराग बढ़ावें। इसी से हम अपने को कृतार्थ मानेंगे। और सच पूछिए तो हमारा तो आन्तरिक सन्तोष केवल इसी से है कि हम भारतभूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी लिख कर निज इष्ट मित्र तथा सर्वसाधारण के सामने उपस्थित कर सके। इति शुभम्।

बांकीपुर
१६ मार्च १६०५

हिन्दी रसिकों का अनुचर
शिवनन्दन सहाय
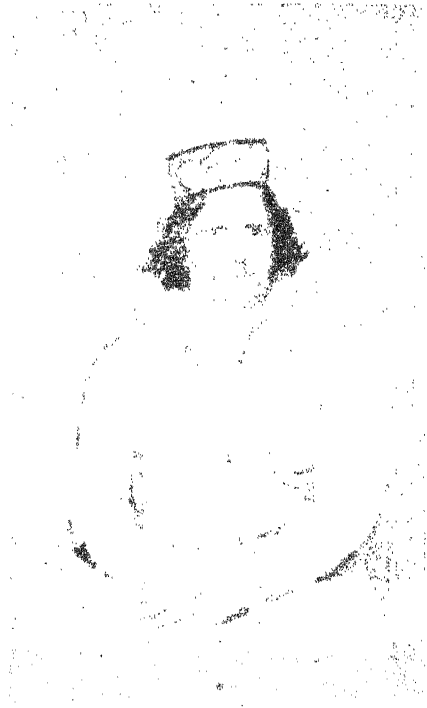
भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ।

# विषयानुक्रम ।

---

## उपसंहार।



---

उन महाशयों की सूची जिन का नाम प्रसंगानुसार इस पुस्तक में आया है और जिन की संक्षिप्त जीवनी नोट ( टिप्पणी ) वा २८ वें परिच्छेद में लिखी गई है।

# * हरिश्चन्द्र *

## प्रथम परिच्छेद ।

### वंशपरिचय ।

करुणामय ईश्वर की असीम दया से हम लोगों ही ऐसे मनुष्यों में कभीर कोई ऐसा अलौकिकगुणसम्पन्न पुरुष उत्पन्न हो जाता है जिस के चरित्र के देखने सुनने से सर्वसाधारण को महा आश्चर्य, बुद्धि के प्रकाश से जगत आलोकमय तथा सारगर्भित सदुपदेशों से संसार का कल्याण होता है और जो सर्वदा तन मन धन से सब के हितसाधन में दत्तचित्त रह कर अपने अमूल्य समय को परोपकार ही के निमित्त न्यौछावर किये देता है। ऐसे मनुष्य के चरित्र को पाठ करने से लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। एक अंगरेज़ कवि का कथन है—

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime.
And departing leave behind us,
Foot-prints on the sand of time.

*Longfellow.*

महत जनन को जीवनि यह है याद दिलावति।
करन योग हैं हमहुं उत्तमाचरन सिखावति॥
अरु या जग तें गमनकाल हमहूं निज पाछे।
छाड़ि सकत पदचिन्ह समयबालू पै आछे॥

अर्थात् बड़े लोगों के सुन्दर चरित्र पाठ करने से हम लोगों को इस बात की चेतावनी होती है कि उन लोगों के समान हमलोग भी अपना आचरण उत्तम बना सकते हैं और संसार से कूच करने के समय इस समयरूपी बालुका पर पदचिन्ह छोड़ सकते हैं जिस में और लोग भी उस को देख कर चलें अर्थात् उस का अनुकरण करें।

जीवनचरित्र पाठ करने का मुख्य उद्देश्य यही है। हमारे चरित्र-नायक भी एक ऐसे ही पुरुषरत्न हुए हैं कि इन के आचरण का अनु-करण किया जाय। यह बात इन के चरित्र पाठ करने ही से विदित हो जायगी, किन्तु इन के चरित्र लिखने के पूर्व इन के पूर्व-पुरुषों का भी संक्षिप्त वृत्तान्त लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

इन का वंशवृक्ष देखने से ज्ञात होता है कि इन के आदिपुरुष राय बालकृष्णजी थे। इस से कोई यह न समझे कि उन के पूर्व इस वंश में कोई हुआ ही नहीं किन्तु उन के पूर्व की नामावली अप्राप्य होने से वंशचक्र उन्हीं के नाम से आरम्भ किया गया है। हमारे चरित्रनायक ने भी स्वरचित "भक्त-माल" नामक ग्रंथ में निज वंशपरम्परा राय बालकृष्ण ही के नाम से आरम्भ की है *। वंशावली में राय बालकृष्ण के पुत्र लक्ष्मी राय और उन के पुत्र गिरिधारी लाल देखे जाते हैं और बाबू साहिब ने गिरिधारी लाल को राय बालकृष्ण का पुत्र लिखा है। सम्भव है कि भारतेन्दु ने किसी नोट से यह वंशपरम्परा लिखी हो जिस से यह नाम छूट गया। वंशवृक्ष ही की नामावली ठीक है क्योंकि वह इन के पुरोहित की बही के लेख से मिलती है।

जो हो उन लोगों की कथा छोड़ कर सेठ अमीचन्द ही के समय से इस वंश का वर्णन किया जाता है। इस का विशेष कारण यह है कि सेठ अमीचन्द एक ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं। भारतवर्षीय इतिहास पढ़नेवाला ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो अमीचन्द का नाम न जानता हो, परन्तु इतिहास पढ़े हुये लोगों में से अधिकांश उन्हें बंगाली ही करके जानते होंगे क्योंकि इतिहासों में

---

* "वैश्य अग्रकुल में प्रगट बालकृष्ण कुलपाल।
तासुत गिरिधरचरनरत, वर गिरिधारी लाल॥
अमीचन्द तिन के तनय, फतेचन्द ता नन्द।
हरखचन्द जिन के भये, निज कुल सागरचन्द॥
श्री गिरिधर गुर सेइ के, घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब, हरिपद भक्ति दृढ़ाइ॥
तिन के सुत गोपालससि, प्रगटित गिरधरदास।
कठिन करम गति मेटि जिन, कीनो भक्ति प्रकास॥
पारवती की कूख सों, तिन सों प्रगट अमन्द।
गोकुल चन्दाग्रज भयो, भक्तदास हरिचन्द॥"

प्रायः "Gentoo (हिन्दू) बंगाली" विशेषण के साथ इन का नाम पाया जाता है। इस ग्रन्थ के लेखक ने भी ऐसा ही पढ़ा था और सर्वविदित बंगाल के इतिहास में ऐसा ही लिखा है, किन्तु यथार्थ में वह बंगाली नहीं थे। वह हिन्दी प्रांत के एक हिन्दू सेठ थे। उन के पूर्वजों का दिल्लीदरबार से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था और शाही दरबार में उन लोगों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। जिस समय शाहजहां का पुत्र शाहशुजा १६३८ ई० में बंगाल का सूबेदार नियत हुआ उन के पूर्वज भी उस के साथ बंगाल में चले आये। जब तक बंगाल की प्राचीन राजधानी गौड़ नगर समृद्धिशाली रहा इन के घराने वाले वहीं आनन्दपूर्वक वास करते रहे। जब उस नगर पर कुदशा का बादल घिरने लगा और राजमहल में राजधानी बनी तो वे लोग राजमहल आये और अन्त में मुर्शिदाबाद जाकर वहां बड़े ठाट बाट से रहने लगे, इन दोनों स्थानों में इन के पूर्वजों के प्रासादों का अवशिष्ट चिह्न अद्यावधि पाया जाता है।

इसी वंश में सेठ अमीचन्द हुये जो कलकत्ता के वणिकों में बड़े ही चतुर और बुद्धिमान थे और उन्हों ने उसी चातुर्य्य और विज्ञता के बल से ४० वर्ष के अविरत परिश्रम से अपने कोष की बड़ी वृद्धि की। उन्हीं के समय इस देश में अंगरेज़ों का राज्य आरम्भ हुआ। कम्पनी के यहां पहिले उन का बड़ा सम्मान था। उन के नौ पुत्रों में से गोविन्दचन्द, आनन्दचन्द तथा एक और किसी पुत्र को राजा का और रत्नचन्द को रायबहादुर का पद प्राप्त था।*

सुख्यात इतिहासवेत्ता श्री रमेशचन्द्र दत्त† ने भी लिखा है कि अमीचन्द एक हिन्दुस्तानी वणिक अर्थात् भारतवर्ष के उस प्रान्त के रहनेवाले थे जहां पर हिन्दी भाषा का व्यवहार है। सिराजुद्दौला ने जब कलकत्ता पर

---

* Amongst the Gentoo (Hindu) merchants established at Calcutta, was one named Amichand, a man of great sagacity and understanding, which he had employed for 40 years with unceasing diligence to increase his fortune. *R. Orme, Book VI., 50*

† Umichand was a Hindu merchant of Calcutta who had sufferred greatly when the town was taken by Serajuddoula. Like other loosers, he had demanded compensation and Clive had strongly supported his claim.

*R. C. Dutta's "Ancient and modern India"*

आक्रमण कर के कलकत्ता अपना अधिकार जमाया तो उस समय उन की बहुत क्षति हुई और चार्ल्स वाट्सन के समान उन्हों ने भी अपनी क्षति पूर्ण किये जाने का दावा किया था और क्लाइव ने उन का समर्थन भी किया था।

सेठ अमीचन्द के सम्बन्ध में बाबू अक्षयकुमार मित्र ने "सिराजुद्दौला" नामक ग्रंथ में जो कुछ लिखा है उस के देखने से ज्ञात होता कि वह कैसे बड़े आदमी थे। इसी अभिप्राय से उस का कुछ अंश यहां पर उद्धृत किया जाता है।

"हिन्दू वणिक उमाचरण * अंगरेज़ों के इतिहास में उमीचन्द [ अमीचन्द ] के नाम से प्रसिद्ध हैं। अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने इन्हें लोक-समाज में धूर्तता की मूर्त्ति कह कर प्रसिद्ध करने में कुछ त्रुटि नहीं की है। लार्ड मेकाले ने तो इन्हें धूर्त्त बंगाली कहने में कुछ संकोच ही नहीं किया है, परन्तु ये बंगाली नहीं वरञ्च पश्चिम देशीय हिन्दूवणिक थे। केवल बंगाल बिहार में वाणिज्य करने के लिये बंगाल में रहते थे। इन्हें केवल वणिक कहने से इन का पूरा परिचय नहीं होता। इन की नाना प्रकार के पदार्थों से सुसज्जित राजपुरी, इन का कुसुमदामसज्जित प्रसिद्ध पुष्पोद्यान ( बाग़ ), इन का मणि माणिक्य से भरा इतिहास प्रसिद्ध राजभण्डार, इन का शस्त्रधारी सैनिकों से वेष्टित सुन्दर सिंहद्वार देखकर दूसरे को कौन कहे अंगरेज़ लोग भी इन्हें एक बड़ा राजा ही मानते थे। सेठों में जैसे जगतसेठ थे वणिकों में वैसे ही इन का भी मान और आदर नवाब के दरबार में था। अंगरेज़ वणिक जब २ विपद में पड़ते इन के शरणापन्न होते थे और कई बार केवल इन्हीं की कृपा से उन की लज्जा की रक्षा होने का कुछ कुछ प्रमाण पाया जाता है। †"

---

* हम नहीं समझते कि अक्षय बाबू ने अमीचन्द का नामान्तर उमाचरण कहां से पाया और कैसे लिखा।

† The extent of his habitation, divided into various departments the number of his servants continually employed on various occupation and a retinue-of armed men in constant pay, resembled more the state of a prince than the condition of a merchant. His commerce extended to all parts of Bengal and Behar, and with presents and services he had acquired so much influence with the Bengal Government of Murshedabad that the Presidency in times of difficulty used to employ his mediation with the Nawab. *R. Orme, Book VI., 59.*

उस समय के अंगरेज़ केवल इन्हीं की सहायता पाकर बंगाल देश में अपना वाणिज्य फैला सके थे। इन्हीं की सहायता से गांव गांव में दादनी देकर रूई और कपड़े लेकर धन उपार्जन करते थे। यह सुविधा न होती तो इस अपरिचित देश में उन लोगों की अपनी शक्ति फैलाने का अवसर मिलता कि नहीं इस में सन्देह होता है, परन्तु देशीय लोगों के साथ जान पहिचान होजाने पर दैवकोप से अंगरेज़ वणिक लोग इन की उपेक्षा करने लगे। जिस समय सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठा उस समय अंगरेज़ लोग अमीचन्द का उतना विश्वास नहीं करते थे। इन दोनों के मन में जो मैल आगई थी वह धीरे २ बहुतही बढ़ गई।"

यद्यपि अंगरेज़ों का सेठ अमीचंद के साथ बाहरी मेल था परन्तु भीतर से अंगरेज़ वणिक उन से बहुत चिढ़े हुये थे। चिढ़ने का ठीक कारण क्या था यह तो वेही लोग जानते होंगे परन्तु चिढ़ने का प्रमाण निस्सन्देह पाया जाता है। दीवान राजावल्लभ का लड़का कृष्णदास जब अपना धन जन ले कर सिराजुद्दौला के भय से कलकत्ता जाकर अंगरेज़ों का शरणागत हुआ तो सिराजुद्दौला ने चर देश के राजा राय राम सिंह पर दूत भेजने का भार सौंपा था। अंगरेज़ों को उस समय नवाब की ओर से ऐसी शंका बनी रहती थी कि नवाब का कोई आदमी कलकत्ता में घुसने नहीं पाता था। राय राम सिंह ने अपने भाई को बिसाती के भेष में कलकत्ता भेजा। वह सेठ अमीचंद के मकान पर ठहरे और अमीचंद ने उन को अंगरेज़ों के पास ले जा कर गवर्नर के अनुपस्थित रहने के कारण हालवेल साहिब से सब हाल कहा परन्तु दूत की कोई बात नहीं सुनी गई और वह अनादर पूर्वक निकाल दिया गया। इस घटना के विषय में उन लोगों ने नवाब को यह लिखा था कि:—

"एक दूत आया तो था पर वह नवाब सिराजुद्दौला का भेजा दूत है यह हम लोग कैसे समझ सकते थे। वह एक साधारण फेरीवाले के छद्मवेष में आकर हम लोगों के सदा के शत्रु अमीचन्द के यहां ठहरा था। अमीचन्द के साथ हम लोगों का झगड़ा था। इस से हम लोगों ने समझा था कि अपनी साज बढ़ाने के लिये ही उन्हों ने यह कौशल जाल फैलाया है इसी लिये राजदूत की उपेक्षा की गई। जो कहीं नेक भी हम लोग जानते कि स्वयं नवाब सिराजुद्दौला ने दूत भेजा है तो हम लोग क्या पागल थे कि उस का ऐसा अपमान करते।"

नवाब के पास जो कुछ लिखा गया हो परन्तु उन के नवाब का दूत होने में

कम्पनी के नौकरों को सन्देह नहीं था और इस कारवाई का बुरा फल होने का भी उन लोगों को भय था। इसी से वाट साहिब के पास पत्र भेजा गया था कि वह सावधान रहैं। * परन्तु सिराजुद्दौला यह सब कब सुननेवाला था। उस ने चटपट कलकत्ता पर आक्रमण किया। इस अवसर पर राय राम सिंह ने अमीचन्द को एक गुप्त पत्र भेजा जिस में वह कलकत्ते से निकल जांय परन्तु वह पत्र इन के पास नहीं पहुंच सका। राह ही में छिन गया। अंगरेज़ वणिकों ने सेना भेज कर अमीचन्द को बन्दी कर लिया।

"अमीचन्द के यहां उन के एक सम्बन्धी हज़ारी मल्ल कार्य्याध्यक्ष थे। उन्हों ने डर कर धन, रत्न और परिवार को ले कर भागने का विचार किया। फिरंगियों से यह नहीं देखा गया। श्रेणी की श्रेणी अंगरेज़ी सेना आकर अमीचन्द के घर को घेरने लगी। उन का जमादार एक सद्वंश क्षत्रिय था। वह इन के नौकर बर्क़न्दाज़ों को एकत्रित कर के रक्षा का उपाय करने लगा। फिरंगियों ने आकर सिंहद्वार पर छापावाही आरम्भ की। अन्त में उनके बर्क़न्दाज़ सब नहीं ठहर सके। एक एक करके बहुतेरे भूतलशायी हो गये। जहां तक मनुष्यों का साध्य था उन लोगों ने किया। फिरङ्गियों की सेना महा कोलाहल के साथ अन्तःपुर में घुसने लगी। तब तो जमादार का रक्त उबलने लगा कि हाय! जिस आर्य्य महिला के अन्तःपुर में सूर्य्य नारायण अत्यन्त आदर के साथ प्रवेश करते हैं वहां विदेशीय सेना का पदस्पर्श होगा, जिस

---

* The bearer of the letter was brother of Ramram Sinha, the head of the spies, he came in small boat and landed in the disguise of a common pedlar on the 14th of April and immediately proceeded to Omichand's, who, as the Governor was absent at his country house, introduced him to Mr. Holwell.

The Governor returning the next day summoned a council of which the majority being prepossessed against Omichand concluded that the messenger was an engine prepared by himself to alarm them, and to restore his own importance........... and resolved that both the messenger and his letter were too suspicious to be received; and the servants, who were ordered to bid him depart, turned him out of the factory and off the shore with insolence and derision, but letters were despatched to Mr. Watts., instructing him to guard against any evil consequences from this proceeding *R. Orme, Book VI., 54.*

स्वामी के निष्कलंक कुल की अवगुण्ठनवती कुलकामिनियों को पर पुरुष की छाया भी न छू सकी है उन का पवित्र देह अनार्य्यों के हाथ से कलंकित होगा, इस से तो हिन्दू बालाओं को मृत्यु की गोद ही कोमल फूल की शय्या है। यह प्राचीन हिन्दू गौरव नीति तुरन्त जमादार के हृदय में उदय हुई उस ने कुछ भी आगा पीछा न सोच कर चट एक बड़ी चिता जला दी और एक २ करके प्रभु परिवार की १३ स्त्रियों का सिर छेदन करके चिता में डालता गया और अन्त में उसी सती-शोणित से भरी तलवार को अपने कलेजे में घुसा कर आप भी वहीं भूतलशायी हुआ। फिरंगी लोग उठा कर जमादार को अन्दर लाये परन्तु घर के भीतर न घुस सके। अमीचन्द का इन्द्रभवन श्मशानभस्म से भर गया। केवल इस शोक समाचार को आमरण कीर्तन करने ही के लिये उस बूढ़े जमादार का प्राण वायु न निकला" *

परन्तु सिराजुद्दौला के साथ अंग्रेजों की कुछ बन नहीं आई। वे मरहटा खाड़ी के पास परास्त होकर क़िले में जा छिपे, और कुछ सोच विचार कर अपने बाल बच्चों को उन लोगों ने जहाज़ में भेज दिया। सन्ध्या होते ही ड्रेक साहिब और सेनापति मिंचिल साहिब भी जहाज़ में खिसक गये। क़िले के सैनिक गण ने एकत्र हो कर हालवेल साहिब को अपना सरदार बनाया परन्तु क़िले की रक्षा का कोई उपाय न देखकर अन्त में अपने गाढ़े समय के मीत अमीचन्द से सहायता मांगी। उन्हों ने उन लोगों के कुव्यवहार का कुछ भी विचार न करके नवाब के सेनापति राजा मानिकचन्द को यह पत्र लिख कर कि "बस बहुत शिक्षा हो चुकी, अब जो आज्ञा नवाब देंगे वही अंगरेज़ लोग करेंगे† इत्यादि" हालवेल साहिब के हवाले किया। उन्हों ने पत्र को क़िले के बाहर गिरा दिया किसी ने उसे ले लिया। कदाचित् राजा तक नहीं पहुंचा। अन्ततः नवाब ने क़िले में प्रवेश करके १४६ अंगरेज़ों को बन्दी किया। अमीचन्द और कृष्णवल्लभ को भी ढूंढ़वा कर अपने सामने बुलवाया, पर उन लोगों पर कुछ क्रोध न किया। इस के बाद 'काली भक्खी', वा 'कालीबिल' ( Black hole )

---

* The head of the peons, who was an Indian of high caste, set-fire to this house, and in order to save the women of the family from the dishonor of being exposed to strangers, entered their apartments and killed, it is said, thirteen of them with his own hand after which he stabbed himself, but contrary to his intention not mortally.

*R. Orme, Book VI., 60.*

† *Holwell's Indian tracts P. 330.*

को दुर्घटना हुई जिसे सब इतिहास पढ़नेवाले भली भांति जानते हैं।

हालवेल साहिब का अनुमान है कि अमीचन्द ने राजामानिकचन्द से कह कर अंगरेज़ों की कालीभक्की की दुर्गति कराई थी, पर अपने धन कुटुम्ब के नाश होने पर भी अमीचन्द ने जो उन्हें सिफ़ारशी चिट्ठी लिख दी थी उस की बात वह एक दम भूल गये।

इस घटना के अनन्तर अंगरेज़ लोग फ़लटा में डेरा डाले रहे। जब इस दुर्गति का समाचार मद्रास पहुंचा तो वहां से क्लाइव और वाट्सन साहिब ८०० गोरे और १५०० देशीय सिपाही लिये कलकत्ता पहुंचे। "रोम्हिआ स्कूनर" नामक जहाज़ पर कौन्सिल बैठी *। उसी समय आरमनिक वणिक के द्वारा अमीचन्द ने अंगरेज़ों को पत्र भेजा कि "मैं जैसा सदा से था वैसा ही अंगरेज़ों का भला चाहनेवाला अब भी हूँ। आप लोग राजा राजवल्लभ, राजा मानिकचन्द, जगत सेठ, ख़्वाजावजीद इत्यादि जिस के साथ पत्र व्यवहार करना चाहें उस का मैं प्रबन्ध कर दूं"। जिस की जो इच्छा हो कहे परन्तु इस से यह बात स्पष्ट विदित होती है कि अमीचन्द कम्पनी की सहायता और कार्य्य करने में सदा तत्पर थे। यदि उन की सहायता न मिलती तो नवाब के दरबार तक अंगरेज़ों का पत्र भी पहुंचाना कठिन था और अंगरेज़ों के खून के प्यासे राजा मानिकचन्द केवल सेठ अमीचन्द जी के उद्योग से अंगरेज़ों के पक्षपाती हुये †।

अमीचन्द ने अंगरेज़ों को चिनसुरा से यह भी लिख भेजा था कि "नवाब के भय से कोई बोल नहीं सकता परन्तु ख़्वाजावजीद इत्यादि नामी सौदागर लोग अंगरेज़ों के (कलकत्ता में) फिर आने से अत्यन्त हर्षित होंगे।" ‡

अंगरेज़ लोग फिर कलकत्ता में पहुंचे। क्लाइव ने कर्नाटक में जो वीरता दिखलाई थी उस का वृत्तान्त नवाब को पूरा ज्ञात था। इस से नवाब ने भी

---

* Consultations on board the Rhomia Schooner; Fulta (फलटा) August 22, 1756.

† Omichand and Manikchand were at this time in friendly correspondence with the English. They negotiated at this time between the Nawab and the English understanding how to run with the hare and keep with the hound. *R. Long.*

‡ Omichand writes from Chinsura that Coja Wafid and other merchants would be glad to see the English return were it not for the fear of the Nawab. *R. Long.*

नीतिपथ अवलम्बन कर के अंगरेज़ों के साथ सन्धि करना ही उचित समझा। योरोप देश में अंगरेज़ों तथा फ्रान्सीसियों में अकस्मात युद्ध ठन जाने से यहां क्लाइव भी नवाब के साथ सन्धि करने को व्यग्र हो कर अमीचन्द तथा जगतसेठ के पास जा कर इस की चेष्टा कर रहे थे।

नवाब स्वयं कुछ सेना ले कर अलीनगर ( कलकत्ता ) आये। उस समय कलकत्ता में अमीचन्द ही का सर्वोत्तम और रमणीय राजगृह था। उसी के दीपालोक—विभूषित तथा सुसज्जित पुष्पोद्यान में नवाब ने बड़े ठाट से दरबार किया *। दो अंगरेज़ प्रतिनिधि जो दरबार में गये थे नवाब का तेज प्रताप देख कर विस्मित हो गये। नवाब ने आदरसहित उन लोगों का कुशलक्षेम पूछ सन्धिपत्र लिखे जाने की आज्ञा दे कर विश्राम स्थान में गमन किया। नवाब के मंत्रिगण तो विरोधाग्नि ही को प्रज्वलित रख कर किसी प्रकार नवाबको अंग्रेज़ों के द्वारा सिंहासनच्युत कराने की ताक में लगे थे उन्हें यह सन्धि कैसे सुहाती। उन लोगों ने उन मुग्ध अंगरेज़ प्रतिनिधियों का कान कुछ ऐसा भर दिया कि वे मशाल बुझा कर अंधेरे में भाग गये और दुर्ग में जा कर क्लाइव से ऐसा कुछ कह सुनाया कि क्लाइव चट थोड़ी सेना ले कर रात ही को आ पहुंचे और दोनों ओर से गोली चलने लगी। नवाब अवाक हो गये। इस समय १२० अंगरेज़ खेत रहे जिन में कप्तान पाईं, कप्तान ब्रिजेज् तथा क्लाइव के सिक्रेटरी बेलचर साहिब भी काम आये। प्रातःकाल नवाब ने इस घटना का कारण अनुसन्धान कर के देखा कि यह उन के मन्त्रियों की कुटिलता का फल था अतएव क्लाइव को पत्र लिख कर सन्धि संस्थापन की ( ९ फरवरी १७५७ ई० )। यह अलीनगर की सन्धि कहलाती है। इस सन्धि के द्वारा कम्पनी को फिर पूर्ववत सब अधिकार प्राप्त हुआ, लड़ाई का खर्च भी देना स्वीकार किया गया, और दुर्ग के दृढ़ करने की भी आज्ञा दी गई।

इस सन्धि के विरुद्ध अंगरेज़ों ने फ्रान्सीसियों के चन्दरनगर पर चढ़ाई की। सामने पहुंच कर देखा कि एक तो फ्रान्सीसी स्वयं बली थे दूसरे

* February 4, 1757, at seven in the evening, the Subah gave them audience in Omichand's garden, where he affected to appear in great state, attended by the best looking men amongst his officers, hoping to intimidate them by so warlike an assembly.

*Scrafton's Reflections.*

महाराज नन्दकुमार भी अपनी सेना लिये निकट ही वर्तमान थे । अंगरेज़ लोग बहुत कठिनाई में पड़े। इस समय भी सेठ अमीचन्द ही इन की सहायता को पहुंचे और नन्दकुमार के पास जाकर बहुत समझाया बुझाया। नन्दकुमार वहां से हट गये और अंगरेज़ों ने जयलाभ किया * । क्लाईव ने यह विजय-पताका केवल अमीचन्द्र ही की सहायता से उड़ाई। इस को उन्हों ने स्वयं स्वीकार किया है और लिखा है कि इस कार्य्य के लिये इष्टइन्डिया कम्पनी के नौकरों को अमीचन्द का सर्वदा बाध्य रहना चाहिये। †

विलायती वणिकों की यह ढिठाई देख कर सिराजुद्दौला उन लोगों को दंड देने का फिर प्रबन्ध करने लगे किन्तु उन के कर्म्मचारीगण परम विरोधी होकर उन के सौभाग्य सूर्य्य को सर्व ग्रास करने पर उद्यत थे। जगतसेठ के मन्दिर में नवाब को सिंवासनच्युत कराने के निमित्त गुप्त मन्त्रणा हुई। सुनते हैं कि उस गुप्त मन्त्रणा में कृष्णनगराधिपति महाराज कृष्णचन्द्र भी बुलाये गये थे और यह भी सुना जाता है कि अर्द्धबंगाधिकारिणी प्रतिभाशालिनी रानी भवानी ने राजा कृष्णचन्द्र के कायरपने का परिचय पा कर संकेत द्वारा सुन्दर उपदेश देने के लिये उन के पास "शांखा चूड़ी और सिंदूर" उपहार भेजा था। परन्तु वीर रमणी की भर्त्सना पर किसी ने कान नहीं दिया, वरञ्च मीर जाफ़र को सिंहासन पर बैठाने ही का उद्योग आरम्भ किया गया ।

---

* Nandcoomar had been bought over by Omichand for the English and on their approach the troops of Sirajuddawalah were withdrwn from Chandernagore. *Thornton's History of the British Empire Vol. 1. P. 221.*

† At a Select Committee held 10 April 1757.

Present:—
Colonel Robert Clive
Major Kilpatrick
J. Z. Holwell Esq.

We the servants of the East India Company should always be grateful to the noble-minded and wealthy native merchant of Calcutta—Omichand. It was through his agency that we succeeded to secure the assistance and co-operation of Dewan Nuncoomar, Phoujdar of Hoogly. A body of Subadar's troops

युद्ध समाप्त के अनन्तर सन्धिपत्र लिखा गया जिस में और बातों के साथ यह भी लिखा गया था कि मीर जाफर के नवाब बनाये जाने पर किसको २ कितना २ रुपया मिलेगा। इस का मसविदा तैयार होने के समय वाट्सन साहिब ने क्लाइव को लिख भेजा था कि 'अमीचन्द जो चाहता है उस को देने में आगा पीछा करने से नहीं चलेगा। वह सहज मनुष्य नहीं है। सब भेद नवाब से खोल देगा तो कोई काम न होगा"। इसी से क्लाइव साहिब ने चिढ़ कर उन के सब पूर्वोपकारों को भूल कर उन्हें धोखा देने पर कमर बांधा और अपने नाम में धब्बा लगाया। दो प्रतिज्ञापत्र लिखा गया जिस में अमीचन्द को २० लाख देने की बात थी वह लाल कागज़ पर और जिस पर उन का नाम तक नहीं था वह उजले कागज़ पर था। वाट्सन साहिब ने उस पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार किया था। लार्ड क्लाइव के आज्ञानुसार लशिंगटन साहिब ने* उस पर वाट्सन साहिब के हस्ताक्षर का जाल बनाया। इस कार्य्य की समालोचना करते समय इतिहासलेखकों को पसीना आ जाता है। परन्तु लार्ड क्लाइव ने (हाउस औफ कोमन्स) महासभा के समक्ष अपने साक्ष्य देने के समय किञ्चित मुख मलीन किये बिना कहा था कि समय आने से हम ऐसा कार्य्य सौ बार कर सकते हैं।†

इस के पीछे पलासी का युद्ध हुआ। सिराजुद्दौला के पराजित होने और मीर जाफर के नवाब बनाये जाने पर जब अमीचन्द रुपया पाने की आशा से खड़े थे और प्रतिज्ञापत्र में उन का नाम न पढ़ा गया तो उन्हों ने कहा कि साहिब, वह पत्र तो लाल कागज़ पर था। उत्तर मिला कि "वह जाली था।

---

was stationed within the bounds of Chandernagore, previously to our attack of that place. The troops belonged to the garrison of Hoogly, and were under the command of Dewan Nancoomar. *If these troops were not withdrawn, it would have been highly improbable to gain victory.*

* Mr. Lushigton was the person who signed Admiral Watson's name, by his Lordship's order.

† His Lordship never made any secret of it, *he thinks it warrantable in such a case, and would do it again a hundred times.*

*Thornton's History of British Empire, India Vol. 1 P. 256.*

असली यही है"। क्लाइव ने यह बात स्क्रैटन के मुख से कहवाई थी। कदाचित उन को स्वयं कहने का साहस न हुआ। यह बात सुनते ही अमीचन्द मूर्छित हो कर भूमि पर गिरना चाहते ही थे कि इतने में उन के एक मुसाहिब ने उन्हें थाम्ह लिया और लोग उन्हें पालकी पर चढ़ा कर घर ले गये। इसी रुपये के शोक से वह कदाचित पागल हो कर डेढ़ वर्ष के बाद परमधाम को सिधारे। अमीचन्द के सुकार्यों के लिये सर्वदा बाध्य रहने की कौन कहे अल्प कालही में क्लाइव ने उन के साथ ऐसा बर्ताव किया कि बेचारे जान ही से गये। इसी से आज तक क्लाइव की सभी निन्दा करते हैं।

ओरमी साहिब लिखते हैं कि यद्यपि अमीचन्द ने भंडा फोड़ने की धमकी दी थी तथापि उन को रुपया दे देना उचित था *। ह्वीलर साहिब कहते हैं कि यद्यपि उस रुपये में से क्लाइव के पाकेट में एक फूटी चित्ती भी न गई परन्तु आज तक उन के आचरण की निन्दा होती है। †

जो कुछ हो, यह बात तो प्रत्यक्ष देखने में आती है कि जितने लोग सिराजुद्दौला के मुख्य अनिष्टकारक थे प्रायः सभी को अन्त में ईश्वर का दंड भोगना पड़ा। मीरजाफ़र को कुष्ट ही हुआ, सिराजुद्दौला के प्राणहन्ता मीरन के सिर पर वज्रपात ही हुआ, नन्दकुमार को सूली ही पर चढ़ना पड़ा, अमीचन्द पागल ही हुये, और क्लाइव को आत्मघात ही करना पड़ा।

यद्यपि ऊपर यह बात लिखी जा चुकी है कि black-hole ( काली बिल या अन्धकूप) की घटना इतिहास पढ़नेवालों पर अविदित नहीं है तथापि उस के सम्बन्ध में जो कई रोचक बातें अवगत हुई हैं उन को पाठकों पर प्रगट कर देना कुछ अनुचित न होगा।

---

* However ..., as his tales and artifices prevented Sarajuddaula from believing the representations of his most truly servants, who early suspected, and at length were convinced, that the English were confedrated with Jafar, the 2000,000 of rupees he expected should have been paid to him, and he left to enjoy them in oblivion and contempt. Orme, Book VII P. 157.

† T, Talboys Wheeler says—" But the action of Clive, although he did not put a penny in his pocket, has been condemned to this day as a stain upon his character as an English gentleman.

"सिराजुद्दौला" नामक ग्रन्थ के रचयिता बाबू अक्षयकुमार मित्र को इस घटना के होने ही में अकाट सन्देह उत्पन्न हुआ है। उन्हों ने सप्रमाण लिखा है कि इस घटना की कहानी सर्वथा अमूलक है और इस के गढ़नेवाले और प्रचार करनेवाले हालवेल साहिब हैं। ऐसी सम्मति में और लोगों ने भी उन का साथ दिया है। डाक्टर भोलानाथ चन्द्र ने भी "कलकत्ता युनिवर्सिटी मेगज़ीन" में लिखा है कि यह घटना बड़ा ही सन्देहजनक है। हालवेल साहिब ही ने जगत में इस का राष्ट्र किया है। १८ वर्ग फीट की कोठरी में १४६ मनुष्य कैसे घुसाये जा सकते हैं यह बात ध्यान में नहीं आती। अंकगणित को खंडन करते हुये रेखागणित इस कहानी को सर्वथा मिथ्या सिद्ध करता है। *

बेवरिज साहिब जज लिखते हैं कि ओरमी के इतिहास की उज्वल ज्योति तथा श्याम छाया को मुसलमान इतिहासवेत्ता के लेख से तुलना करनी एक रोचक विषय है। मुसलमान इतिहासलेखक ने "काली विल" के सम्बन्ध में एक अक्षर भी नहीं लिखा है। †

हाजी मुस्तफ़ा "सैर मुताख़रीन" के अनुवादक ने नोट में लिखा है कि उन्हों ने समसामयिक बंगाली लोगों से बहुत ही अनुसन्धान किया। किसी ने

---

* As to the Black-Hole tragedy,—the unburied site of which is the subject of so much fuss in our days, I have a very doubtful faith in its account. Holwell, one of the fellow-sufferers, was the first to publish it to the world. But I have always questioned it to myself, how could 146 beings be squeezed into a room 18 feet square, even if it were possible to closely pack them like the seeds in a pomegranate, or like the bags in ship's hold made into one mass by packets shoved in here and there into the interstices? Geometry contradicting arithmetic gives a lie to the story. It is little better than a bogey against which was raised an uproar of pity

*Dr. Bholanath Chander, Calcutta University Magazine.*

† It is interesting to contrast the lights and shades of Orme's history with those of Mahommedan historian. Thus the latter does not say a word about the Black Hole.

*H. Beveridge. C. S.*

इस घटना का कुछ हाल नहीं बताया। औरों की कौन कहे कलकत्ता के रहने वाले भी इस का कुछ हाल नहीं जानते। *

अक्षय बाबू कहते हैं कि सम्भव है कि मुसल्मान इतिहासलेखक ने अपने स्वजातीय सिराजुद्दौला के कुव्यवहार पर परदा डालने के लिये इस घटना का वर्णन नहीं किया हो, परन्तु उस समय के अंगरेज़ों के काग़ज़ पत्र में भी इस घटना का हाल क्यों नहीं देखा जाता? मेजर किलपाट्रिक ने सब से पहले नवाब को पत्र लिखा था। उस में इस घटना के विषय में कुछ भी नहीं उराहना लिखा। निज़ाम तथा आर्काट के नवाब ने सिराजुद्दौला को जो पत्र भेजा था उन पत्रों में भी इस का कुछ हाल नहीं पाया जाता। मन्द्राज के पिगेट साहिब ने जो बड़े आतंक से सिराजुद्दौला को पत्र लिखा था, तथा क्लाइव एवं वाटसन ने कलकत्ता पहुंच कर जो पत्र नवाब के पास भेजा था उन में भी इस दुर्घटना का उल्लेख नहीं है और न अलीनगर के सन्धिपत्र में ही इस की चर्चा पाई जाती है। उस समय के काग़ज़ पत्रों में केवल वाणिज्य की क्षति तथा साहिबों की दुर्गति ही का उल्लेख देखा जाता है। स्पष्टरूप से अन्धकूप की कहानी नहीं पाई जाती। केवल परवर्ती इतिहासों ही में यह बात लिखी है।

२४ फरवरी १७५७ ई० को हालवेल साहिब ने अपने भाई डेविस के पास जो पत्र लिखा था केवल उसी में इस दुर्घटना का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। पलासी युद्ध के पश्चात जब विलायत में वणिक अंगरेज़ों की अपकीर्ति का बड़ा कोलाहल उठा तब वह पत्र प्रस्तुत करके वहां का कोलाहल शान्त किया गया और सिराजुद्दौला नरपिशाच सिद्ध किया गया। एक बात और भी है कि जिस कम्पनी के वाणिज्य रक्षार्थ इतने लोगों ने अन्धकूप में जीवन विसर्जन किया उस ने उनका कोई स्मारक चिह्न नहीं निर्माण किया। वरं हालवेल साहिब ने १७६० में इस देश से बिदा होने के समय स्मारक स्तम्भ निर्माण किया था। हेस्टिंग्स के शासन काल के प्रारम्भ में "कष्टम घर" बनाने के लिये वह स्मारक स्तम्भ भी तोड़ दिया गया। 'अन्ध कूप' की कहानी यदि ठीक होती तो यह पवित्र स्मारक स्तम्भ भसाया नहीं जाता।

---

* This event which cuts so capital a figure in Mr. W[illegible] performance, is not known in Bengal. *Haji Mustapha.*

हालवेल ही साहिब के लेखानुसार अक्षय बाबू ने गणना कर के यह भी सिद्ध किया है कि बन्दी किये जाने के समय दुर्ग में केवल ५० ही अंगरेज़ थे उन में भला १२१ अन्धकूप में कैसे मरेंगे और १० कैसे बचेंगे यह तो निस्सन्देह हांसोत्पादक बात है और गणित की भी मिट्टी खराब करती है। अक्षय बाबू की पुस्तक पाठ करने से इस की कथा पूरी ज्ञात होगी। यहां पर केवल पाठकों के मनोरञ्जनार्थ इतना उद्धृत किया गया। *

बंगला "साहित्य संग्रह" पत्र में एक महाशय ने अमीचन्द का हिन्दी भाषा में लिखा हुआ एक दानपत्र † ( Will ) प्रकाशित किया है। उस से ज्ञात होता है कि अमीचन्द ने कुछ रुपया कड़ाह प्रसाद के निमित्त निकाला था और अमृतसर जाने की भी इच्छा प्रगट की थी। यद्यपि उस दानपत्र में अमीचन्द की जाति पांति अथवा कोई तिथि आदि नहीं लिखी है तथापि पूर्वोक्त दो बातों के लिखे रहने से बाबू महाशय उन का सिक्ख होना अनुमान करते हैं और अपने अनुमान तथा लेख से यही फल निकालते हैं कि वह बंगाली नहीं थे और मेकाले आदि ने उन्हें बंगाली समझ कर बंगाली जाति की व्यर्थ निन्दा की है।

उस लेख के देखने से कुछ सन्देह हो सकता है कि अमीचन्द सच मुच क्या थे—सिक्ख, वा वैश्य ? उस दानपत्र के लिखनेवाले यही अमीचन्द थे इस का तो कुछ प्रमाण उस से मिलता है क्योंकि उस में हजारी मल्ल का भी नाम पाया जाता है। परन्तु उन के सिक्ख जाति होने का विशेष प्रमाण नहीं है। जिन बातों पर लेखक महाशय ने अपना अनुमान संस्थापन किया है वह दृढ़ प्रमाण नहीं कहा जा सकता। प्रथम तो दानपत्र में जाति पांति वा वंशपरंपरा

---

* The troops in garrison consisted, by the "muster-rolls laid before us about the 6th or 8th of June, of 145 in battalion, and 45 of the train officers includded, in both only 60 Europeans.

*Holwell's Indian Tracts p. 302.*

† मेन्स हिन्दू ला (Mayne's Hindu Law and Usage.) में लिखा है कि हिन्दुस्तानियों में सब से पहिले अमीचन्द ही ने दानपत्र लिखा था। इस दानपत्र के विषय में एक अभियोग भी उपस्थित हुआ था। हमने चाहा था कि उस मुकद्दमे का काग़ज़की नक़ल लेकर यथार्थ बात निश्चय करें। परन्तु डेढ़ सौ वर्ष का काग़ज़ मिलने में बड़ी कठिनता समझ कर इस की चेष्टा नहीं की।

का कुछ बर्णन नहीं है। दूसरे वह दानपत्र हिन्दी भाषा में लिखा हुआ है। यदि वह सिक्ख होते तो इस भाषा में दानपत्र कदापि नहीं लिखते। दानपत्र या तो फ़ारसी उर्दू भाषा में लिखा जाता जो उस समय दरबारी भाषा थी, वा बंग-भाषा में होता जो बंग देश की भाषा है, वा पंजाबी भाषा में होता जो सिक्खों की भाषा है। इन भाषाओं में न होकर हिन्दी भाषा में होना यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। तीसरे उन के नाम के साथ सिंह की पदवी नहीं पाई जाती जो पदवी सब सिक्खों के नाम के साथ अवश्य होती है।

केवल गुरु नानक साहेब के कड़ाह प्रसाद के निमित्त कुछ द्रव्य निकाल देना अथवा अमृतसर की यात्रा की इच्छा करने ही से कोई सिक्ख जाति नहीं कहा जा सकता। हम भी गुरु नानक के सम्प्रदाय के अनुगामी हैं परन्तु हम सिक्ख नहीं हैं। सम्भव है कि गुरु नानक के धर्म्म में अमीचन्द का विश्वास हो। उस धर्म्म को वह मानते हों और इसी से वे सब बातें दानपत्र में लिखी गई हों। इस धर्म्म में उन की निष्ठा का एक कारण भी देखते हैं। उन के एक पौत्र का नाम नानक चन्द देखा जाता है। सम्भव है कि उन के नव पुत्रों के मध्य केवल उसी पौत्र का जन्म उन के जीवित काल में हुआ हो और नानक सम्प्रदाय के किसी साधु वा महात्मा की कृपा से वह पौत्ररत्न लाभ हुआ हो और तब से उन की निष्ठा गुरु नानक में हुई हो।

बाबू हरिश्चन्द्र के पूर्वज मुर्शिदाबाद में रहते थे यह बात तो निर्विवाद है क्योंकि बाबू साहिब के स्वर्गवास के थोड़े ही काल के अनन्तर "इन्डियन-क्रोनिकल" नामक अंगरेज़ी समाचार पत्र में लिखा था कि "बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म एक धनाढ्य वैश्य कुल में हुआ था जिन के पूर्वज बङ्गाल की प्राचीन राजधानी गौड़ नगर की बढ़ंती के समय वहां बास करते थे। फिर राजमहल आये और जब बङ्गाल की राधजानी मुर्शिदाबाद हुई तो वे लोग वहां गये।" *

---

* Harish Chander was descended from a rich and old Vasya family which flourished at Gour during the palmiest days of that ancient capital of Bengal ; and when misfortunes began to thicken on that doomed city, and the seat of Government was transferred to Rajmahal, the ancestors of Harish Chadera came to Rajmahal and ultimately emigrated to Murshidabad.

" काश्मीरकुसुम " ग्रंथ के अन्त में बाबू साहिब का जो संक्षिप्त वृत्तान्त अंगरेज़ी भाषा में प्रकाशित हुआ है उस से भी यही बात पाई जाती है कि इन के पूर्वज लोग दिल्ली तथा गौड़ दरबार में उच्च पदों पर नियुक्त थे। पहिले वे लोग गौड़ नगर में जा के रहे थे फिर राजमहल आये फिर मुर्शिदाबाद गये। यह लेख बाबू साहिब के एक अंतरंग मित्र पं० रामशंकर व्यास जी का लिखा हुआ है। *

इस के सिवाय कृष्णचन्द्र ( विष्णुचन्द्र ) के दासीपुत्र सुमेरचन्द्र थोड़े दिन हुये तब तक जीते थे। कभी २ काशी भी आते थे। राजमहल मुहल्ला पत्थर-घरा में बाबू साहिब के वंश का बड़ा मकान उन्हीं के अधिकार में था। यह बात बाबू राधाकृष्ण जी ने एक पत्र में हम को लिखी है।

कुछ हो, जब अमीचन्द के वंशधर बाबू राधाकृष्ण जी उन को अपना पूर्वज स्वीकार करते हैं तो हम को या दूसरे किसी को इस विषय में सन्देह ही करना व्यर्थ है।

और " साहित्यसंग्रह " के पत्रप्रेरक का तो कार्य्यसाधन दोनों ही से होता है। चाहे अमीचन्द सिक्ख हों, चाहे वैश्य।

---

* The ancestors of the author of this Work were very rich and much respected, holding high positions at Delhi and Gour Royal Durbars. They first settled at Gour (Lakhnouti in Bengal), and then at Rajmahal and Murshidabad.

## बाबू फ़तेहचन्द ।

सेठ अमीचन्द का कैसे और कब स्वर्गवास हुआ इस का हाल अभी वर्णन हो चुका है । उन के स्वर्गारोहण के अनन्तर उन के पुत्र फ़तेहचन्द जिन का विवाह काशी के नौपती * नगर सेठ गोकुलचन्द की कन्या से हुआ था, मुर्शिदाबाद से विरक्त होके काशी चले आये और चौखम्भा † मुहल्ला में अपने श्वसुर के घर रहने लगे। गोकुलचन्द की उस कन्या के अतिरिक्त जिस का फ़तेहचन्द से विवाह हुआ था और कोई सन्तति नहीं थी। इस कारण से गोकुलचन्द के परलोक होने पर फ़तेहचन्द उन के भी उत्तराधिकारी हुये और उन्होंने उन का धन तथा मान मर्य्यादादि सब कुछ प्राप्त किया।

---

* श्री मनसारामजी वर्तमान काशीनरेश के आदिपुरुष थे । काशी के नौ महाजनों ने रुस्तमअली को पदच्युत कराके अवध के नवाब से काशी का राज्य प्राप्त कराने में उन की सब रीति से सहायता की थी । उसी के पुरस्कार में उन लोगों को "नौपति" की पदवी मिली थी। उन्हीं नौ महाजनों में से एक गोकुलचन्द के पूर्वज भी थे। उसी समय से भले बुरे सब कार्य्यों में उन के वंशधरों के यहां काशिराज स्वयं जाते थे। जब से बाबू फ़तेहचन्द अपने श्वसुर के उत्तराधिकारी हुये तब से विवाहादि शुभ कार्य्यों में, किसी की मृत्यु के समय एवं पगड़ी बांधने की विधि के अवसर पर आज तक काशिराज उन के वंशजों के यहां स्वयं विराजमान होते हैं। शेष आठ नौपतियों के वंश का अब कुछ पता नहीं मिलता।

† श्री गोपाल मन्दिर के समीप चार खम्भे की एक प्राचीन मसजिद है। इसी से इस मुहल्ले का नाम चौखम्भा पड़ा है । काशी के प्रसिद्ध साहुकार महाजन विशेषत: इसी मुहल्ले में रहते हैं । शेरिंग साहिब ने इस के विषय में यों लिखा है—

"The long Chowkhambha Street in the city of Benares in or near which most of the great Bankers have their place of business, takes its name from four low massive pillars of modern structure towards its north-eastern extremety. Over the door-way there is an Arabic inscription. With the exception of this door, there is nothing Mahomedan in its structure.

*Sherring's "Sacred city of Hindus" page 314.*

" बन्दोबस्तदवामी " के समय " ईष्टइन्डियाकम्पनी " को बाबू फतेहचन्द से बहुत कुछ सहायता मिली थी जिस के लिये कम्पनी के कर्म्मचारीगण उन का बहुत सम्मान करते थे और कठिन समय उपस्थित होने पर उन से सम्मति लेकर कार्य्य करते थे। *

गवर्नर जेनरल की ओर से उन के पास अरअफ़शां (सोनहरे छिड़काव के) कागज़ पर खुर्द (छोटी) मोहर की हुई चिट्ठी आती थी और उस में यह अलक़ाब (सम्मानसूचक वाक्य) लिखा रहता था।

بابو فتح چند ساهو - بابو صاحب مهربان دوستان سلامت -

बाबू फ़तहचन्द देन लेन का व्यवहार करते थे। और वे हनुमान जी के बड़े भक्त थे। प्रति मङ्गलवार को काशी भदैनी हनुमानघाट वाले बड़े हनुमान जी † के दर्शन को जाया करते थे। एक दिन उन्हें प्रसाद में माला मिली। घर आकर उस को गले से उतारने पर उस में से अंगूठे के बराबर हनुमान जी की एक स्वर्णप्रतिमा गिर पड़ी। उस समय से उस प्रतिमा की भक्तिपूर्वक सेवा होने लगी और अब तक इस वंश में कुलदेव वही महावीर जी माने जाते हैं।

---

## रायरत्नचन्द्र बहादुर।

बाबू फतेहचन्द के काशी आने के कुछ काल पीछे उन के भाई रायरत्नचन्द्र बहादुर भी मुर्शिदाबाद से उदास होकर काशी चले आये और राम कटोरा ¶

---

* To the great grand-father of Harish Chandra the East India Company was indebted for valuable help rendered at the time of Permanent Settlement for which he was held in high esteem by the Officers of the Company who sought and received his advice in the time of emergency.

*"The Indian Chronicle" 10th January 1885.*

† काशी में बड़े हनुमानजी का मन्दिर अति प्राचीन तथा प्रसिद्ध है। वहां पर हनुमानजी की एक विशाल प्रस्तर मूर्ति संस्थापित है।

¶ रामकटोरा काशी खंडोक्त एक तीर्थ स्थल है। रामकटोरा बाग़ के सामने सड़क पर एक तालाब है जिस में पहिले कटोरा की भांति पानी भरा रहता था। परन्तु अब म्युनिसीपलिटी के प्रबन्ध से ऊंचा नल हो जाने के कारण उस में पानी कम आता है। यह तालाब चारों ओर से पक्का बंधा हुआ है। यह बाग़ तथा तालाब आदि अब भी हमारे चरित्रनायक के वंशजों के अधिकार में हैं।

बाग़ को ख़रीद करके और उस में घर बनवा कर वहीं वास करने लगे। इसी से इस वंश का आदिस्थान रामकटोरा माना जाता है और विवाह तथा पुत्रजन्मोत्सव आदि में इस वंश के लोग डीह डिहवारा (ग्रहदेवता) की पूजा वहीं करते हैं। रायरत्नचन्द्र जी बड़े ठाट से रहते थे। डंका, निशान, सन्तरी का पहरा, तथा नक़ीब आदि, रयासत का पूरा सामान उन के साथ रहता था। रायरत्नचन्द्र श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी थे *। रामकटोरा बाग़ में उन के ठाकुरजी अद्यावधि विराजमान हैं और श्री लालजी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

रायरत्नचन्द्र के पुत्र बाबू रामचन्द्र और उन के पुत्र बाबू गोपीचन्द्र हुये, किन्तु गोपीचन्द्र को कोई सन्तति नहीं हुई।

## बाबूहर्षचन्द्र।

बाबू फ़तहचन्द्र को एकही पुत्र हर्षचन्द्र हुये। वह काले हर्षचन्द्र करके प्रसिद्ध थे। वह बालावस्थाही में पितृहीन हो गये। उन का प्रथम विवाह काशी के एक बड़े धनाढ्य पुरुष चम्पतराय अमीन की कन्या श्यामा बीबी से हुआ था जिन के नग्रहर में लोग सोने की थाली में खाते थे। जब श्वसुरबाड़ी में उन की स्त्री को साधारण थाली में भोजन दिया गया तो उन्हों ने कहा था कि "क्या अब हम को ऐसे बर्तन में खाना होगा"? पर ऐसे धनाढ्य पुरुष का अब केवल एक बाग़ स्मारकचिन्ह रह गया है जिसे चम्पतराय अमीन का बाग़ कहते हैं। उस स्त्री से हर्षचन्द्र को कोई सन्तति नहीं हुई।

दूसरा विवाह बनारस के एक सुप्रसिद्ध रईस बाबू बृन्दावन दास की लड़की से हुआ था। उस स्त्री का नाम भी श्यामा बीबी था। बाबू बृन्दावन दास का दो बाग़ एक मौज़ा कोल्हुआ में और दूसरा मुहल्ला नाटी इमली में हर्षचन्द्र को प्राप्त हुआ।

बाबू हर्षचन्द्र गोस्वामी श्री गिरिधरदास जी † महाराज के शिष्य और बड़े

---

* ठाकुरमूर्ति, गडुरस्तम्भ, एवं मन्दिर के ऊपर चक्रस्थापन इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण देखे जाते हैं।

† श्री गिरिधर महाराज बड़े ही सदाचारी गोस्वामी थे। औरों के समान आडम्बर की ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे। यहां तक कि हर्षचन्द्र के बहुत अनुरोध से अपना जन्मोत्सव मनाने की आज्ञा दी थी और साथही

गुरु भक्त * थे। गुरु को देवता के समान मानते थे। गुरु महाराज भी उन पर विशेष स्नेह रखते थे। उन्हीं की आज्ञा से हर्षचन्द्र ने अपने घर में श्रीवल्लभ कुल के प्रथानुसार श्रीमदनमोहन जी की सेवा पधराई। इस वंश में इस ढंग से सेवा होते ८५ वर्ष से अधिक हुआ।

श्री गिरिधर जी महाराज के श्रीजी द्वार से श्री मुकुन्दराय जी को काशी

---

कह दिया था कि इस कार्य्य में ठाकुरजी के मन्दिर का एक पैसा भी व्यय नहीं किया जायगा। यह जन्मोत्सव करना बाबू हर्षचन्द्रही ने आरम्भ किया। इस में सब तयारी उन्हीं की ओर से होती थी और अब भी उन्हीं के वंशधर करते हैं। परन्तु अब यह उत्सव श्रीमकुन्द राय जी के घर के सब सेवक मनाते हैं। श्री गिरिधर महाराज ही के प्रभाव से काशी में वैष्णवता की जड़ जमी।

* एक बार कार्य्यवशत: श्री गिरिधर महाराज जी ने हर्षचन्द्र से ४० हज़ार रुपया मांगा। समय पर रुपया नहीं था। इस से हर्षचन्द्र ने वह दोनों बाग़ जो श्वसुरालय से पाया था गुरु महाराज को भेंट कर दिया कि उन्हीं को बेंच कर वह कार्य्य सम्पन्न किया जाय। परन्तु एक ही का दाम ४० हज़ार आजाने से दूसरे के बेचने की बारी नहीं आई। वह गाटोइमली का बाग़ जो बच गया अब मुकुन्दविलास के नाम से प्रसिद्ध है। काशी के भरतमिलाप के दिन श्री ठाकुरजी का विमान उसी बाग़ में ठहरता है। हर्षचन्द्र के वंशधरों को उस बाग़ से अब इतनाही सम्बन्ध है कि उसी बाग़ के एक कमरे में ठहर कर श्रीठाकुर जी का दर्शन पूजादि करते हैं। इस वंशवाले रामचन्द्र की दो दिन और पहुनई करते हैं—एक दिन रामकटोरा बाग़ में और दूसरे दिन चौकाघाट पर।

कहते हैं कि काशी में एक जन मेघा भगत के श्री रामचन्द्र के दर्शनार्थ अनशन व्रत करने पर उन को स्वप्न में आज्ञा हुई थी कि साक्षात दर्शन नहीं हो सकता, तुम मेरी लीला का अनुकरण करो। तभी से रामलीला आरम्भ हुई और कदाचित भरतमिलाप के दिन श्री रामचन्द्र की कुछ झलक अब भी आ जाती है मेघा भगत ही से संसार में पहिले पहल रामलीला का सूत्रपात हुआ। फिर गोस्वामी तुलसीदास जी असीसंगम पर रामलीला करने लगे। फिर लाट भैरव में होने लगी। अब तो नगर २ में यह लीला हुआ करती है।

में पधरावनी के समय हर्षचन्द्र ने बड़ी धूम धाम से बारात की तयारी करके उक्त ठाकुरजी को नगर के बाहर से भीतर पधाराया था।

मुकुन्दराय जी का मन्दिर तयार होने पर काशी के सब महाजनों ने सम्मति करके सब बनारसी कपड़े, गोटे पट्ठे, जवाहिरात इत्यादि बिकरी की वस्तु पर सवा पांच आने सैकड़ा काट कर मन्दिर में देने लगे। श्री गिरिधर जी महाराज के समय तक हिन्दू मुसलमान सभी व्यापारी देते रहे। परन्तु अब काटते तो सब हैं पर कोई मन्दिर में देता है कोई नहीं भी देता है।

हर्षचन्द्र को दूसरी स्त्री से पांच सन्तति हुई। कहते हैं कि उन की बड़ी अवस्था हो जाने पर भी उन को कोई पुत्र नहीं हुआ था। एक दिन वह अपने गुरु स्वामी के पास उदासीन भाव से बैठे हुये थे। गुरु जी महाराज के उन की उदासी का कारण पूछने पर लोगों ने कहा कि इन का वयस अधिक हो गया और कोई पुत्र रत्न इन्हें लाभ नहीं हुआ, वंश कैसे चलेगा, इसी से उदास हैं। श्री गुरु महाराज ने कहा कि इसी वर्ष इन्हें पुत्र होगा। और उसी वर्ष गोपालचन्द्र का जन्म हुआ। उसी आनन्दोत्सव में गोपाल मन्दिर का एकनक्कार खाना बनाया गया था। श्री गिरिधरदास के आशीर्वाद से जन्म होने के कारण ही गोपालचन्द्र कविता में अपना नाम " गिरिधरदास " लिखते थे।

बाबू हर्षचन्द्र की पांच सन्तति में दो कन्या बचपन ही में मर गईं। शेष तीन में एक बाबू गोपालचन्द्र थे और दो कन्या थीं। बड़ी यमुना बीबी और छोटी गंगा बीबी। बाबू गोपालचन्द्र और यमुना बीबी का विवाह बाबू हर्षचन्द्र ने अपने समय में किया था। यमुना बीबी का विवाह बनारस के सुख्यात रईस राजा पट्टनीमल बहादुर * के पौत्र राय नृसिंह दास से हुआ था। उन

* राजा पट्टनीमल पटने के नायब सूबा खुशालीराम बहादुर के पौत्र थे। बालावस्था ही में पिता से रुष्ट होकर लखनऊ गये। उन्हीं के द्वारा लखनऊ के नवाब और अंगरेज़ी गवर्नमेंट से सुलह की बात चीत तय हुई। उस समय नवाब की ओर से पट्टनीमल के उस्ताद उन्हें बहकाने गये थे। परन्तु उन्होंने उस कार्य्य में बड़ी ईमान्दारी से काम किया। उन को आगरा क़िले के ठीके में बहुत रुपया मिल गया था। उसी से उन्हों ने मथुरा वृन्दावन में सुदीर्घ विष्णु का मन्दिर, शिव तालाब कुण्डादि; आगरे में शीशमहल, पीली कोठी इत्यादि, दिल्ली में अच्छे मकानात, काशी में कीर्ति बालेश्वर का मन्दिर, हरतीर्थ एवं कर्मनाशा का पुल बनवाया। तिस पर भी एक करोड़ की सम्पत्ति छोड़ कर वह स्वर्गधाम सिधारे।

के पुत्र रायप्रह्लाद दास हुये। वह और उन की छोटी बहिन सुभद्रा नानिहाल में पले। इस का कारण यह हुआ कि यमुना बीबी को जो सन्तति होती थी बचती नहीं थी। नानिहाल में पाले जाने के कारण राय प्रह्लाद दास को विद्या का बहुत अनुराग हुआ और वह संस्कृत बहुत अच्छी तरह जानते हैं एवं बनारस के आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। उन की बहिन सुभद्रा बीबी के पुत्र बाबू यदुनाथप्रसाद हैं।

बाबू गोपालचन्द्र का विवाह बनारस के शिवालाघाट के सुप्रसिद्ध पुरुष राय खिरोधर लाल की कन्या से हुआ था जिस का वृत्तान्त बाबू गोपालचन्द्र के प्रकरण में वर्णन किया जायगा। गंगा बीबी का विवाह बाबू गोपालचन्द्र के समय में बनारस ही के एक सुप्रसिद्ध रईस बाबू कल्याणदास से हुआ। गंगा बीबी को दो पुत्र हुये और लक्ष्मी देवी नाम्नी एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र जीवनदास बचपन ही में मरे। द्वितीय पुत्र हिन्दी के प्रसिद्ध सुलेखक बाबू राधाकृष्ण दास हैं जिन का कुछ हाल आगे लिखा जायगा। लक्ष्मी बीबी का विवाह बाबू दामोदर दास बी० ए० से हुआ था, पर उन को कोई सन्तान नहीं हुई।

बाबू हर्षचन्द्र का काशी में बड़ा ही सम्मान था। काशी में अंगरेजी पन्सेरी जारी करने के विषय में जब झगड़ा उठा था और काशी के दूकान-दारों ने हरताल कर दी थी तो गवर्नमेंट और काशीवालों ने उन को तथा बाबू जानकीदास और हरिदास को पंच माना था और उन लोगों ने पुरानी पन्सेरी जारी रहने का फ़ैसला दिया था। उस समय वे लोग हाथी पर सारे नगर में घुमाये गये थे, चंवर डोलाया जाता था, नगर की स्त्रियां खिड़कियों से उन लोगों पर पुष्पवृष्टि करती थीं। हर्षचन्द्र की पन्सेरीवाली कहानी बनारस में अब तक प्रसिद्ध है।

काशीराज के वह महाजन और मुशीर थे। राज की अशर्फ़ियां उन्हीं के यहां रक्खी जाती थीं और उन को उन की धगोराई मिलती थी।

उन्हें तथा उन के पिता को बिरादरी के लोग सरपंच मानते थे और उन के वंश को यह प्रतिष्ठा अब तक प्राप्त है। इसी से शेरिंग साहिब ने स्वरचित "Caste and Tribe of Benares" नामक पुस्तक में बाबू हरिश्चन्द्र को भी अगरवालों का चौधरी लिखा है

बाबू हर्षचन्द्र का ठाट अमीराना था। पगड़ी जामा पहिरे तामजाम पर सवार हो कर बाहर निकलते थे। पचास साठ सिपाही भाला बल्लम अस्त्र इत्यादि लिये साथ जाते थे और आगे २ नकीब बोलता जाता था। ग्रीष्म काल में उन के रहने के सब स्थानों में फ़ौवारा छूटा करता था।

होली तथा बुढ़वा मङ्गल * में एवं अपने और निज पुत्र गोपाल चन्द्र के जन्मगांठ के दिन बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाते थे। बिरादरी का जेवनार होता था। बसंतपञ्चमी में बनारस की सब रंडियों को इनाम बांटा जाता था। दिवाली में जूआ भी बड़े ज़ोर शोर से होती थी। पञ्चकोस के उत्सव में, श्री हनुमान जी के उत्सव में, एवं श्राडादि के समय, पूरी तयारी की जाती थी। वर्ष में बीसों बार बिरादरी तथा ब्राह्मणों का जेवनार कराते थे।

उन की घ्राणशक्ति ऐसी थी कि कई प्रकार के मिश्रित अतर सूँघ कर कह देते थे कि इस में अमुक २ वस्तु की अतर मिली हुई है। इसी प्रकार चार पांच तरकारी मिला कर और खा कर कह देते थे कि किस में कैसा नमक है।

चौखम्भावाले मकान में उन्हीं ने सुन्दर दिवानखाना बनाया था जो बड़ा

---

* वर्तमान रीति से बुढ़वा मङ्गल का मेला श्री मान महाराज चेत सिंह के समय से प्रचलित है और इस के उन्नति देनेवाले बाबू हर्षचन्द्र ही कहे जा सकते हैं। पहिले काशी निवासी जन वर्ष के अन्तिम मङ्गलवार को नाव पर चढ़ कर दुर्गा जी के दर्शन को जाया करते थे। फिर नावों पर नाच होने की रीति निकली। बाबू हर्षचन्द्र ने श्री काशिराज की सम्मति से इस मेले की और भी उन्नति की। बाबू हर्ष चन्द्र का कच्छा बड़ी सजावट से पटता था। बिरादरी को नेवता दिया जाता था। बिरादरी के सब लोग क्या वृद्ध क्या युवक, क्या बालक, इत्यादि के साथ गुलाबी वस्त्र पहिन कर सुशोभित होते थे। जिस के पास उस प्रकार के वस्त्र प्रस्तुत नहीं रहते थे उस को वह अपने घर से देते थे। गंगा जी के पार रेत में हलवाइयों की दूकानें खोलवाई जाती थीं और चार दिन तक बिरादरी की जेवनार होती थी। श्री काशिराज भी उन के कच्छा की शोभा देखने आते थे। बाबू गोपालचन्द्र के समय तक यही धूम धाम और यही रीति रही। बाबू हरिश्चन्द्र के समय द्रव्याभाव से कुछ कमी हो गई थी परन्तु कच्छा उत्तम रीति से पटता था और नाच रङ्ग भी पूरा होता था।

दीवानखाना उन्हों ने बनवाया था उस के ऊपर स्वर्णकलशसुशोभित ठाकुर जी का एक मन्दिर भी है। इसी से सारे तैलङ्गदेश में उन का नाम "नवकोटि नारायण" * कर के प्रसिद्ध है। तैलङ्ग देशीय उस मन्दिर के दर्शन को आया करते हैं। काशी के पंडों से "नवकोटि" का नाम लेने ही से वे लोग यात्री को वहीं दर्शन कराने को लेजाते हैं।

एक बार हर्षचन्द्र जगन्नाथ यात्रा को गये थे और राह में बंगाल के प्रसिद्ध पुरुष लाला बाबू † के यहां ठहरे थे। जब उन के पूर्वज मुर्शिदाबाद में थे तभी से उन के वंशवालों को लाला बाबू के वंश से विशेष सम्बन्ध और मित्रता थी। कहते हैं कि उस समय कृष्णचन्द्र जी के मन्दिर का प्रसाद बाबू की ओर से १०० ब्राह्मण एक रङ्ग के पीताम्बर पहिने १०० चान्दी की थालियों में उन के पास लाये थे, और सब प्रसाद फलाहारी था। हा! भारतवर्ष का वह समय कहां गया!! जब सोने चान्दी ही के बर्तन धनी लोग काम में लाते थे? आज भारतवासी चीन की रिकाबी और कांच के गिलास पर लट्टू हुये देखे जाते हैं। काल की भी विचित्र गति है।

सरकार में हर्षचन्द्र का बहुत मान था। विश्वेश्वरगंज बाज़ार बनने के समय उन्हों ने गवर्नमेंट को भी कुछ कर्ज़ दिया था और उस के पटपटाव होने तक वह बाज़ार उन्हीं के अधिकार में रही। उन्हों ने कलकत्ते में भी कोई कोठी खोली थी। उन को मुर्शिदाबाद के रेज़िडेंट से भी पत्रव्यवहार था।

उन की बाल्यावस्था ही में पितृवियोग होने के कारण लोगों ने उन के चचा राय रत्नचन्द्र से उन्हें लड़ा दिया। परन्तु पीछे लोगों की धूर्त्तता और दुष्टता समझ कर और चचा के चरणों पर गिर कर उन्हों ने अपना अपराध क्षमा कराया। राय रत्नचन्द्र के पुत्र तथा पौत्र उन्हीं के सामने ही परलोक चल बसे थे अतएव उन की सम्पूर्ण सम्पत्ति के भी हर्षचन्द्र ही उत्तराधिकारी हुए।

---

* तैलङ्ग देश में "नवकोटि नारायण" कोई महा धनिक पुरुष हो गये हैं। उस देशवाले उन को एक अवतार मानते हैं और उन के सम्बन्ध में अनेक भांति की कहानियां प्रसिद्ध हैं।

† राजा कृष्णचन्द्र जी लालाबाबू के नाम से प्रसिद्ध थे, वारेनहेस्टिंग साहिब के बनिया दीवान गंगागोविन्द के वंशधर थे। वह पैकपारा के राजा के नाम से ख्यात थे किन्तु उन का वासस्थान कांदी ज़िला मुर्शिदाबाद में था। वह बड़े धनी थे। निज माता के श्राद्ध में उन्हों ने २० लाख रुपया व्यय किया था।

## बाबू गोपालचन्द्र ।

बाबू हर्षचन्द्र के स्वर्गवास के समय बाबू गोपालचन्द्र की अवस्था केवल ११ वर्ष की थी। गुरु के आशीर्वाद से जन्म पाने के कारण ही बाल्य काल ही में पितृवियोग होने पर भी और नियमपूर्वक शिक्षा न पाने पर भी वे एक बड़े विद्वान, धर्मनिष्ठ, एवं सच्चरित्र पुरुष हुए।

पिता ही के समय उन का विवाह बनारस शिवालाघाट के सुप्रसिद्ध रईस राय गिरिधर लाल के पुत्र राय खिरोधर लाल की एकमात्र कन्या श्रीमती पार्वती देवी से हुआ था जिन की सुशीलता एवं गुणों की प्रशंसा उस समय की स्त्रियां आज तक किया करती हैं । पार्वती देवी का चित्त बड़ा ही

---

उन्हों ने कुछ काल तक बर्धमान तथा उड़ीसा में काम किया। फिर २० वर्ष की अवस्था में ब्रजमंडल चले गये और ४० वर्ष की अवस्था में अपना सब ऐश्वर्य परित्याग कर के श्रीवृन्दावन में मधुकरी मांग कर खाते और जंगलों में भ्रमण करते कृष्णभजन में मग्न रहने लगे। दो वर्ष के बाद किसी घोड़े के लात मारने से उन का परलोक हुआ। उन के तथा एक अन्य धनाढ्य हरिभक्त पारिख की मृत्यु के सम्बन्ध में ब्रजवासी यह दोहा कहा करते हैं। "लाला बाबू मर गये, घोड़ा दोष लगाय। पारिख को कीड़ा पड़ा, बिधि सो कहा बसाय॥" उन्हों ने कांदी और वृन्दाबन में ठाकुरजी का मन्दिर बहुत अच्छा बनवाया था। ब्रजमंडल में लाला बाबू का नाम अब तक आबाल वृद्ध सभी जानते हैं । वृन्दाबन वाले मन्दिर के विषय में ग्राउस साहिब ने "मथुरा" नामक ग्रन्थ में यों लिखा है—

Of the modern temples, five claim special notice. The first in time of erection is the temple of Krishna Chandrama, built about the year 1810, at a cost of 25 Lakhs, by the wealthy Bengali Kayath, Krishna Chandra Sinh, better known as the Lala Babu. It stands in a large court-yard, which is laid out, not very tastefully, as a garden, and is enclosed by lofty wall of solid masonary with an arched gateway at either end. The building is of quadrangular form, 160 feet in length, with a front central compartment of three arches and a lateral colonnade of five bays reaching back on either side towards the cella. The workmanship throughout is of excellent character, and the stone has been carefully selected. The two towers, or *sikharas*, are singularly plain, but have been wisely so designed that their smooth polished surface may remain unsullied by rain and dust.

*F. S. Growse's Mathura. P. 237.*

बाबू गोपालचन्द्र ( गिरधरदास )।

उदार था। भिक्षुक सब जो मांगते थे वही देती थीं। नौकरों को तिहवारों में खूब इनाम बांटती थीं, और स्त्रियों को भी बहाने २ बहुत कुछ दिया करती थीं।

राय गिरिधर लाल दिल्ली के काशीस्थ शाहज़ादों के मुख्य दीवान थे। वली अहद जहांदार शाह के साथ बनारस आकर रहे थे। शाहज़ादे लोग नाम मात्र के थे। सब काम वे ही एवं उन के पुत्र करते थे और वे लोग शाहज़ादों के बड़े भारी शुभचिन्तक थे। जब तक राय खिरोधर लाल जीते रहे शाहज़ादों में बड़ा ही मेल था और वे लोग सुखपूर्वक कालक्षेप करते थे। कहते हैं कि उस समय शिवालाघाट में साक्षात् लक्ष्मी विराजमान थीं।

यह विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ था। सब बिरादरी को पोशाक तथा दोशाले बांटे गये थे। वर के घर से कन्या के गृह पर्यन्त तीन मील तक बराबर बाराती लोग जमे थे। बाबू गोपालचन्द्र के श्वसुर राय खिरोधर लाल ने भी बड़ी तयारी की थी यहां तक कि कूओं में चीनी के बोरे छोड़वा दिये थे। कदाचित् ऐसा विवाह काशी में कम हुआ होगा। राय खिरोधर लाल बड़े उदार थे। उन्हों ने १० लाख रुपया अपने हाथ से पैदा किया होगा और सब को अपने ही हाथ से व्यय भी कर दिया।

कोई अन्य सन्तति नहीं होने के कारण राय खिरोधर लाल की स्त्री नन्ही देवी ने अपने दामाद गोपालचन्द्र को अपने ही घर रख कर अपनी सम्पत्ति का भी उन्हें अधिकारी बनाया।

पार्वतीदेवी से बाबू गोपालचन्द्र को मुकुन्दी बीबी, बाबू हरिश्चन्द्र, बाबू गोकुलचन्द्र, तथा गोबिन्दी बीबी ये चार सन्तति हुईं। मुकुन्दी बीबी का विवाह उन्हों ने अपने ही समय में बनारस के रईस बाबू जानकीदास के पुत्र बाबू महाबीर प्रसाद से किया था। शेष तीन का विवाह उन के स्वर्गवास के पीछे हुआ। अर्थात् बाबू हरिश्चन्द्र का शिवालाघाट के रईस राय गुलाब राय की कन्या से, बाबू गोकुलचन्द्र का बाबू हनुमानदास की कन्या मुकुन्दीदेवी से, और गोबिन्दी बीबी का विवाह पटना के प्रसिद्ध नायब सूबा महाराज खयालीराम के वंशज राधाकृष्ण राय बहादुर से हुआ; जिन के पुत्र सुयोग्य सर्वजनप्रिय राय गोपीकृष्ण बी० ए० थे जो अल्प काल ही में संसार से बिदा हो गये। इन विवाहों में बाबू हरिश्चन्द्र तथा गोबिन्दी बीबी का विवाह धूम-धाम से हुआ था। बाबू गोकुलचन्द्र का विवाह साधारण रीति से हुआ। ये तीनों [illegible] प्रबन्धकर्ता राय नृसिंह दास थे।

पहिली स्त्री पार्वती बीबी के परलोक होने पर बाबू गोपालचन्द्र का दूसरा विवाह बाबू रामनारायण के सगे भाई बाबू बेनीदास की कन्या मोहन बीबी से हुआ। दूसरी स्त्री से बाबू गोपालचन्द्र को कोई सन्तति नहीं हुई। माघ कृष्ण १० सं० १९३८ को मोहन बीबी का भी देहान्त हो गया।

बाबू गोपालचन्द्र के अल्पवयस्क होने के कारण बाबू हर्षचन्द्र ने एक धर्मोदतमानि के द्वारा किसी को प्रबन्धकर्ता नियत किया था। सुप्रबन्ध नहीं होने से उन की कोठी को बड़ी हानि पहुंची और न जाने आगे क्या होता, परन्तु ईश्वर की कृपा से १२ ही वर्ष की अवस्था में बाबू गोपालचन्द्र अपने घर का सब काम काज देखने लगे। इस से किसी की दाल न गल सकी।

गोपालचन्द्र को बाग़ का बहुत शौक़ था। चौखम्भा वाले मकान में श्रीठाकुर जी के लिये एक "पाई" बाग़ बनवाया था। रामकटोरा बाग़ के सामने सड़क के पास जो रामकटोरा तालाब है उस का भी जीर्णोद्धार कराया था। उन की इच्छा थी कि वहां पर एक मन्दिर बनवाकर देवताओं को स्थापित करें और मूर्तियां भी बनवा चुके थे परन्तु उन्हीं की मूर्ति का विसर्जन हो गया। मन की बात मन ही में रह गई। १८६४ ई० में बनारस की कृषिप्रदर्शनी में उन्हे प्रशंसापत्र और पारितोषिक मिला था।

गोपाल चन्द्र का स्वभाव शान्त था और वह हंसमुख थे उन्हें क्रोध नहीं होता था, परन्तु जो कोई धर्मसम्बन्धी किसी बात की निन्दा करे तो वह बर उठते थे। साधु महात्माओं की सेवा में सदा तत्पर रहते थे। भगवत्सेवा तथा कविता लिखने पढ़ने में अपना समय व्यतीत करते थे। नित्य बिना ५ भजन बनाये भोजन नहीं करते थे। पक्के वैष्णव थे और अन्य देवताओं की पूजा घर से उठा दी थी। घर के श्री ठाकुर जी की सेवा में बाधा पड़ेगी इस विचार से वे कभी दूर-देश की यात्रा नहीं करते थे। कभी २ चरणाद्रि (चुनार) जहां श्री वल्लभाचार्य तथा उन के पुत्र श्री विट्ठल नाथ जी का स्थान है दर्शनार्थ जाते और दूसरे ही दिन लौट आते थे। एक बार चित्रकूट करने को १५ दिन रहने की इच्छा से वह गया जो गये थे। परन्तु वहां पहुंचने पर अहर्निश ठाकुर सेवा का स्मरण कर रोया करें और तीसरे ही दिन वहां से कूच करके घर चले आये। उन के सच्चरित्र होने के कारण काशी के सब लोग उन पर पूर्ण भक्ति और स्नेह रखते थे। उस समय के बनारस के सुयोग्य कमिश्नर गबिन्स साहिब ने लिखा

था कि "गोपालचन्द्र एक फ़िरिश्ता है जो पर काट कर पृथ्वी पर छोड़ दिया गया है"।

वह गवर्नमेंट के विश्वासपात्र थे। १८५७ के विद्रोह में बनारस रेज़िडेन्सी के चान्दी सोने के सब बरतनादि उन्हीं की कोठी में रखे गये थे। आर्म्स ऐक्ट (अस्त्रसम्बन्धी कानून) पास होने पर तलवार बन्दूक आदि ४८ अस्त्र रखने की उन को आज्ञा मिली थी। १८५२ ई० में चौक मुहल्ले में कोई सड़क बनाने के लिये उन्हों ने बिना मूल्य लिये सरकार को भूमि दी थी।

साधारण समय का सब ठाट बाट, बसंतोत्सव तथा बुढ़वामङ्गलादिक उत्सव अपने पिता ही के समान निबाहते रहे। इसी बुढ़वामङ्गल के मेले में एक बार नाव उलट जाने से सपरिवार डूबने से बचे थे और उस समय यह कहा था "गिरिधर दास उबार दिखायो भवसागर को नमूनो" एक समय हाथी से भी गिरे और उसी दिन उस हाथी को श्री काशीनरेश को भेंट कर दिया।

विद्यानुरागी होने के कारण अलभ्य और अमूल्य ग्रंथों का संग्रह करके एक सरस्वतीभवन बनाया था जिस का मूल्य डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र, बाबू हरिश्चन्द्र की आयु, सर्कार से एक लाख दिलवाते थे। इस घर में सरस्वतीपूजा उन्हीं के समय से आरम्भ हुई और अभी तक आश्विन शुक्ला सप्तमी से तीन दिन तक होती है।*

उन की सभा में कवियों का बड़ा सन्मान होता था। उन के पास से कोई कवि विमुख नहीं फिरता था। उन की सभा के किसी कवि का पूरा वृत्तान्त नहीं मिला है। किन्तु इतना कहा जा सकता है कि पंडित ईश्वरीदत्त (ईश्वर कवि) सरदार कवि, दीनदयालगिर, कन्हैयालाल (लेखक), पंडित लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्याणदास, माधोराम जी गौड़, गुलाबराम नागर, तथा बालकृष्ण टेकसाली † उन के मुख्य सभासद थे।

गोपालचन्द्र संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के बड़े पंडित थे। बाल्यावस्था ही

---

* पुस्तकों का पहाड़ बना कर और उस पर सरस्वती की मूर्ति स्थापन कर के पूजा की जाती है।

† कदाचित इन्हीं के भाई हरिप्रसाददास टेकसाली ने "गिरधरचरितामृत" में लिखा है कि हर्षचन्द्र भी कविता बनाते थे।

में कविता सिंहासन पर अधिकार किया था। सब से पहिले सातों काण्ड वाल्मीकीय रामायण का छन्दोबद्ध भाषानुवाद किया था। इस ग्रंथ का कुछ अंश भारतेन्दु जी ने बालाबोधिनी में छापा था। भारतेन्दु जी के इस पद से "जिन श्री गिरिधरदास कवि रचे ग्रंथ चालीस" प्रतीत होता है कि उन्होंने ४० ग्रंथों की रचना की थी। भारतेन्दु ने एक नोट में कई ग्रंथों का नाम भी लिखा है यथा वाल्मीकीय रामायण का भाषानुवाद, गर्ग संहिता (भाषा), एकादशी की चौबीसों कथा, एकादशी की कथा, छन्दोर्णव, भाषा छन्दोबद्ध व्याकरण (छपा है), नीति, अद्भुत रामायण, लक्ष्मी नखशिख, वार्ता संस्कृत, गया-यात्रा, गयाष्टक, द्वादशदल कमल, ककारादि सहस्रनाम, दशावतार कथामृत ❋ भारती भूषण §, नहुषनाटक ¶, जरासन्धवध महाकाव्य ☫, कीर्तन की पुस्तक, स्तुतिपंचाशिका। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उन के रचे सङ्कर्षणाष्टक, दनुजारि-स्तोत्र, वाराहस्तोत्र, शिवस्तोत्र, श्रीगोपालस्तोत्र, भगवत्स्तोत्र, श्रीरामस्तोत्र, श्रीराधास्तोत्र, रामाष्टक, कालियकालाष्टकादि, लक्ष्मीरामकृत संस्कृत टीका-सहित बाबू राधाकृष्णजी को हस्तगत हुए हैं।

असावधानी से रखे जाने कारण वा ऐसे महापुरुषों की कृपादृष्टि से जो किसी की कोई पुस्तक लेकर उसे लौटाना अपने को दोनों आंखों का अन्धा होना समझते हैं, उन के ग्रंथ सब प्राय: ऐसे लोप हो गये हैं कि दो चार के

---

❋ दशावतार कथामृत में बलराम कथामृत सब से बड़ा है जिस के बनाने में दो वर्ष लगे थे। इस ग्रन्थ के "स्तुतिप्रकाश" पर सरदार कवि ने टीका भी लिखी थी॥

§ यह अलंकार का अत्युत्तम ग्रन्थ है और कविलोग इस का बड़ा आदर करते हैं। यह छप गया है।

¶ भाषा में यही पहला नाटक है। इस का प्रथमभाग "कविवचनसुधा" में भारतेन्दु जी ने छापा था।

☫ यह वीर रस का एक प्रधान ग्रन्थ है। लोग कहते हैं कि कवि केशवकृत रामचन्द्रचन्द्रिका से इस की तुलना हो सकती है। १८७३ के कविवचन सुधा में प्रकाशित एक नोटिस देखने से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का छपना भी आरम्भ हुआ था।

सिवाय किसी का ठीक पता भी नहीं लगता। किन्तु जो कुछ देखने में आया है उस से ज्ञात होता है कि वह बड़े अच्छे कवि थे उन की कविता पाण्डित्यपूर्ण होती थी और अलंकार श्लेष यमकादिपरिपूर्ण कविता करने का उन्हें बहुत व्यसन था। शिवसिंहसरोज * नाम ग्रंथ में उन की अच्छी प्रशंसा देखी जाती है। उन की बनाई कई एक कविता यहां पर उद्धृत कर दी जाती है।

सोना से सरीर पै सिंगारन सुभग सजि सेज साज साजि स्याम संगम सुखन में। सुन्दरी सिरोमनि सुहागिनी सलोनी सुचि स्यामा सुकुमारी सोहै सीसा के सदन में॥ सीस सीस-सुमन सुहायो गिरधरदास † सूर सरसात ज्यों सकारे सर-पन में। सिंधुसुता सैलसुता सारदा सचीसो सुचि सामन में सरसै सरस सखियन में॥

शुक्लाभिसारिका नायिका।

चतुर चलांक चित चपला सी चन्दमुखी गिरिधरदास बास चन्दन सु-तन मैं। सारी चांदतारे की सुचहर चमकदार चोली चुस्त चुभी चारु चम्पक बरन मैं॥ चामीकर नूपुर चरन चम्म चम्म होत चली चक्रधर पै मिलन चाहु मन मैं। तारन समेत तारापतिहिं लपेटि मानो चली जाति राकाराति चाहु सों चमन मैं॥

ऋतुवर्णन।

चम्पक चमेलिन के चमन चमतकार चमू चंचरीक की चितौत चोरैं चित हैं। चांदी के चउतरा चहूंघा चमचम करें गिरिधरदास सबै चन्दन रचित हैं॥ चारु चांद तारे

---

* देखो शिवसिंह सरोज पृष्ठ ३६८।

† "गिरधर कबिराय" जिन की कुण्डलिया प्रसिद्ध है वे दूसरे व्यक्ति थे। वे अन्तर्वेद के रहने वाले सं० १७७० में हुए थे।

को चंदोवा चांद चांदनी सो चामीकर चौपन में चंचला चकित हैं। चूनिन की चौंगी चढ़ी चन्द्रमुखी चूड़ामनि चाहन सों चैत चावैं चैन के चरित हैं ॥

कारे घन अङ्गरङ्ग सुन्दर सुठङ्ग सोई पीत पट विज्जु बक-माल मोतीमाल गरे। इन्द्रधनु बैजयन्ती बनो गिरिधरदास सीतल समीर खगराज पै निवास करे ॥ मोरन की सोर सो पुकारत हैं भारत जे जीवन दया को बरसावत अनन्द भरे। अति ही अनूप ब्रजभूप चारु रूप देखो आयो अब पावस रमापति को रूप धरे ॥

नखशिख ( पदनख वर्णन )

किधौं द्विजपाल हेम थालबाल बीच बैठे गिरिधरदास मन मोद को भरत हैं। किधौं हीराजटित लसत हेमसम्पुट मैं किधौं जस आए बास कंज पै करत हैं ॥ किधौं सेत सुमन सोहाए कल्पपादप में राजत कै बिन्दु किधौं सोभा बितरत हैं। किधौं हेमद्रवद्रुतपात पै नखत बैठे किधौं स्वातीपदनख उपमा धरत हैं ॥

जरासन्धवध महाकाव्य से।

छप्पय।

चल्यो वीर सिसुपाल गहे करवाल ढाल कर।
लोचन लाल बिसाल चारु मन्दारमाल गर ॥
साल देत उत्ताल समर हित सत्रु काल वर।
धारे अमल प्रबाल व्याल मनि लाल जाल धर ॥
नरपालसिरोमनि चेदिनृप चढ़ि निहाल रथ व्याल रिसि।

बिकराल मगध-महिपाल हित तक्यो बिहारी लाल दिसि ॥
स्याम असमानौ स्याम भयो असमानौ तैसो लखि अस-
मानौ सुखमुची असमानौ री। सब अहिरानौ दुखसहि
ष।हरानौ फूलि फिरें अहिरानौ संग हरि अहिरानौ री ॥ गिर-
धरदास ताप मिल्यो धुरवा नौ खंड उठे धुरवानौ किय धीर
धुरवानौ री। सुख बरसानौ शोभा लियो बरसानौ त्योंही यह
बरसानौ रौत रस बरसानौ री ॥

बरवै—रसबरसा बरसावन सावन मास।
लसैं हिंडोरें गिरधर गिरधरदास ॥

बाबू गोपालचन्द्र उर्दू की भी कविता करते थे, परन्तु बहुत कम। भारतेन्दु संग्रहीत "गुलज़ारेपुरबहार" में हम ने उन की दो ग़ज़लें देखी हैं एक में लिखा है।

"दास गिरधर तुम फ़क़त हिन्दी पढ़े थे खूब सी।
किस लिये उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।"

बचपन ही से भङ्ग छानने का व्यसन होने के कारण २७ वर्ष की अवस्था में जलोदर रोग से पीड़ित होकर बैसाख सुदी सात सं १९१७ (ई० १८५९) को वे संसार से बिदा हो गये।

---

# द्वितीय परिच्छेद।

## बाल्यावस्था।

पुण्यभूमि भारतवर्ष में जहां देवगण भी मानवशरीर धारण कर के वास करने की लालसा रखते हैं, काव्यकला को प्रचारित, सुकीर्ति को विस्तारित, एवं भारतवासियों को देशहितकर कार्य्यों में प्रवृत्त करने ही के लिये विधाता ने पूर्वोक्त अग्रकुल में श्रीमती पार्वती देवी के पवित्र कोख से विद्या निधान, महागुणवान, हरिभक्त, गणनायकसमान बाबू हरिश्चन्द्र को जन्म दिया था। परम विद्यानुरागी कवि-कुल-भूषण बाबू गोपालचन्द्र के यह ज्येष्ठ पुत्र थे। मिति भाद्रपद शु० ७ सं० १९०७ (८ सेप्टेम्बर १८५०) के चन्द्रवार को श्रीगौरीपति धाम (काशी नगरी) में इन का जन्म हुआ *। अतएव बालपनही से यह एक ऐसी नगरी में रहे जो भारतवर्ष में एक प्राचीन, परमपवित्र, और रमणीय स्थान है जहां इस देश के सब प्रान्त के लोग संस्कृत विद्याध्ययन करने के निमित्त जाया करते हैं, और नित्यही भिन्न २ स्थान एवं भिन्न २ देशों के यात्रीगण रंग २ के वस्त्राभूषण पहिने दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं आनन्द मूर्ति संन्यासी दंड कमण्डलु लिये भ्रमण करते. कहीं नये फ़ैशन के लोग कोट बूट कसे टहला करते हैं। कहीं कोई शिव २ करता, कोई राधे श्याम २ रटता विचरता है। कहीं बाज़ारों में दूकानों पर लोगों की भीड़ लगी रहती है, कहीं युत्थ के युत्थ दर्शकवृन्द जलपात्रादि हाथों में लिये धक्का खाते मन्दिरों में घुस जाते हैं, कहीं भिक्षुकों की मंडली दूर तक "बाबू, दाता" कहती दौड़ती चली जाती है। जहां के घाटों की अपूर्व शोभा मन में एक अकथनीय भाव उत्पन्न करती है। ऊंचे २ बंधे घाट एवं तटस्थ गगनचुम्बी गृहसमूह गिरिवर की छवि दिखलाते हैं। घाटों पर कोई वेद पाठ कर रहा है, कोई बैठा ध्यान में

---

* सायन गणना से जैसे श्री रामचन्द्रादि की जन्मकुंडलियां बनाई गई थीं, उसी रीति से पंडितवर श्री सुधाकरजी ने हरिश्चन्द्र की भी जन्मपत्री बनाई थी और उस में एक ऐसी कुंडली भी लिखी है जो विलायती ज्योतिषियों के देखने योग्य है। इन कुंडलियों के वर्णन में १२ पृष्ठ की एक पुस्तक ही छपी थी जो पाठकों के विनोदार्थ appendix में ज्यों की त्यों प्रकाशित कर दी गई है।

मग्न है। कहीं कम्पितशरीर वृद्धागण मौनभाव से स्नान कर रही हैं, कहीं बालकबालिकागण जल उछाल रहे हैं, कहीं महासमुख चन्द्रबदनी युवतीगण डुबकी दे रही हैं और कुंतलसमूह सपरिवार पन्नगों के समान जल के ऊपर लहरा रहे हैं एवं पूर्ण विकशित कमल सी मुख की छटा छहरा रही है। जहां घाटों पर बाल रवि की कम्पायमान सुखद किरणों की झिलमिलाहट विरक्त जीवों का भी चित्त कभी २ चंचल किये देती है और जिस काशी के विषय में हमारे चरित्रनायक के पिता ने यों लिखा है—

"चारिहु आश्रम वर्न बसें मनि कंचन धाम अकास बिभासिका। सोभा नहीं कहि जाय कछू बिधि ने रची मानो पुरीन की नासिका॥ आपु बसें गिरिधारन जू तट देवनदी बर बारि बिलासिका। पुन्यप्रकासिका पापबिनासिका हीयहुलासिका सोहत कासिका॥

रचित प्रभा सी भासी अवली मकानन की जिन में अकासी फबै रतन नकासी है। फिरैं दास दासी बिप्र गृही औ संन्यासी लसै बर गुनरासी देवपुरी हू न जासी है॥ गिरधरदास बिस्व कीरति-बिलासी रमा हांसी लौं उजासी जाकी जगत उलासी है। ख्वासी परकासी पुनवासी चन्द्रिका सी जाके बासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है॥"

बाल्यावस्था ही से ऐसे विलक्षण स्थान में वास करने का बहुत कुछ प्रभाव हमारे चरित्रनायक पर हुआ।

जब बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था इन के पिता की सभा के एक कवि पंडित ईश्वर मिश्र ने श्रीमद्भागवत पुस्तक के निमित्त इन के पिता के पास कुछ श्लोक और यह कविता लिखी थी:—

"धनाधीश बाबू श्री गुपालचन्द्र जू के गृह पाय के जनम जस पायो है तुरंत हीं। कोविद कविन्द्र गुनी निगुनी धनी ह्वै देंहि आसिख असेष वे विसेष हरखत हीं॥ कहैं कवि ईश्वर सुमोद पितु मातु हिय बाढ़त बिनोद गोद

मांहि हरसत हौं। ऐसो सुत जीवै जुग जुग जग जाहिर है जाचक अजाचक भे जाहि जनमत हौं॥"

लिखा है कि बाबू गोपालचन्द्र ने एक अत्युत्तम पुस्तक मंगा कर स्वर्ण-सिंहासन एवं अन्य सामग्री समेत संकल्प कर के मिश्र जी को प्रदान किया। वह पुस्तक अद्यावधि मिश्र जी के घर में वर्त्तमान है। इस में कुछ सन्देह नहीं कि इन के पिता के धर्मकार्य्य तथा सत्पात्र ब्राह्मणों के आशीर्वाद के फल से भी इन को बुद्धिमत्ता, सुशीलता, उदारता तथा कविता का यश इस रीति से संसार में चतुर्दिक व्याप्त हुआ।

इन के युवा होने पर उक्त पंडित जी ने इन के विषय में कहा था

" श्रीयुते थे हरिश्चन्द्रे जगदाह्लादिनो गुणाः।
दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने॥"

पितृकुल के समान हरिश्चन्द्र का मातृकुल भी परम प्रतिष्ठित एवं विद्यानुरागी था। इन के मातुल और मातामह फ़ारसी भाषा के प्रवीण पंडित थे। अर्थात् उभय कुल से विद्याधन इन के बांटे पड़ा था।

हरिश्चन्द्र एक होनहार बालक थे। और होनहार बालकों में जो बातें प्रायः पाई जाती हैं; इन में भी आदि ही से वे सब बातें प्रगट होने लगीं और परम साधु कवि शेखसादी का यह कथन "बालाय सरश ज़ होशमन्दो। मीतफ़्त सितारये बलन्दो" चरित होने लगा। अर्थात् बालपन ही से एक होनहार पुरुष के लक्षण इन में प्रकटित होने लगे। ५ वर्ष ही की अवस्था में बालक हरिश्चन्द्र ने निज चमत्कारिणी बुद्धि से अपने पिता को चमत्कृत कर दिया।

इन के पिता जी "कथामृत" नामक ग्रन्थ की रचना कर रहे थे। एक दिन बलरामकथामृत में जरासंधवध का प्रकरण लिखवा रहे थे। इस समय हरिश्चन्द्र की अवस्था ५ वर्ष की थी। यह पिता के पास जा पहुंचे और बोले "बाबू जी मैं भी कविता बनाऊंगा"। इतना कह कर प्रसंगानुसार इन्हों ने चट यह दोहा जोड़ा।

" लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये, श्री अनुरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥

स्वयं लिखने का अभ्यास तो था ही नहीं, इस से निज पिता के लेखक कन्हैयालाल से इस दोहे को लिखवा कर पिता जी के हाथ में दिया।

इन के पिता स्वयं काव्यरसिक होने के कारण इन की रचना पर विलायती कवि "पोप" के पिता के समान रुष्ट नहीं हुए *। बरंच उन्हों ने इन को सहर्ष छाती से लगाया और कहा कि "तू मेरा नाम बढ़ावेगा"। हरिश्चन्द्र ने उन का नाम कैसा बढ़ाया यह बात इन के चरित्र ही के पाठ करने से स्पष्ट विदित होगी। देशीय विदेशीय हिन्दीरसिक ऐसा विरलाही कोई होगा जो आज भी उन के पुत्र का नाम न जानता हो और गुणगान न करता हो।

हरिश्चन्द्र के पिता ऐसे महाकवि थे कि उन के पुत्र होने का इन को बड़ा ही अभिमान था और इसी से एक स्थान में साभिमान कहा भी है—

"जिन श्री गिरधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्री हरिचन्द को, को न नवावै सीस॥"

अब बालक हरिश्चन्द्र की एक और लीला सुनिये।

एक दिन इन के पिता ने स्वरचित "कच्छप कथामृत" के इस सोरठा का "करन चहत जस चारु, कछु कछु वा भगवान को" निज सभास्थ कवियों से अर्थ पूँछा किसी ने कहा "भगवान् का कुछ कुछ यश" और किसी ने कहा "कछुआ भगवान अर्थात् कच्छप भगवान का कुछ यश"। इसी अवसर में बालक हरिश्चन्द्र भी वहां जा पहुंचे और चट बोल उठे "बाबू जी हम अर्थ बताते हैं"। वा (उस) भगवान का जिस को आप ने कछुक (थोड़ा थोड़ा)

---

* यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि "पोप" की रुचि बाल्यावस्था ही से कविता रचना की ओर थी। उन के पिता ने अनेक बार उन्हें कविता करने का निषेध किया परन्तु उन्हों ने पिता का कहना नहीं माना। एक समय "पोप" के पिता उन को कविता बनाते देख कर छड़ी द्वारा प्रहार करने लगे। उस समय भी "पोप" के मुख से कविता ही स्फुरित हुई और कहा :—

"Papa! Papa! pity take,
No more verses I will make."

अर्थात्—बाबा, बाबा, दया दिखाइय। अब न करौं कविता उर आनिय॥

यह कहा तो सही परन्तु कविता रचना की बान न छोड़ी और पीछे वे एक विख्यात कवि हुए।

छू लिया है ( अर्थात् समझ गये हैं ) उसी का यश वर्णन करना चाहते हैं। इस नई उक्ति पर सभासद लोग आनन्द से उछल पड़े और चकित हो गये। पिता ने इन अपूर्व का सानन्द मुखचुम्बन किया और गले से लगा कर अपना भाग्य सराहा और कहा " शाबास ! यह अर्थ हम ने भी नहीं सोचा था।"

इन की ऐसी बुद्धि देख कर लोगों को बड़ी अचम्भा होने लगी। कोई कुछ सोचने लगा और कोई कुछ विचारने लगा। इन के सम्बन्ध में सर्व साधारण के चित्त का भाव जैसा हुआ वह इस अंगरेज़ी पद से कुछ प्रगट हो जायगा।

" The neighbours stared and sighed,
Yet blessed the lad
Some deemed him wondrous wise
And some believed him mad."

अनुवादः—पुरजन निरखहिं निरखि सिहाहीं तदपि असीस उचारैं।
कोउ सोचहिं यह बुद्धि विलच्छन कोउ उन्मत्त विचारैं॥

किन्तु यह पागलपना नहीं था। यह उस अपूर्व प्रतिभा की ज्योति की प्रथम झलक थी जिस से एक समय पश्चिमोत्तर ही प्रान्त क्या भारतवर्ष के सभी प्रान्त चमक उठे थे।

इन का मुंडन काशी में बाल्यावस्था में हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में कंठी का मंत्र दिया गया। फागुन १९१६ में अर्थात् नव दश वर्ष की अवस्था में में प्रसिद्ध कर्मठविद्वान पंडित घनश्यामजी गौड़ ने इन को जनेऊ कराई और वल्लभीय गोस्वामी व्रजपालजी महाराज ने इन्हें जनेऊ का मंत्र दिया। जनेऊ की महफ़िल तथा जेवनार की तय्यारी थी। इसी अवसर में वैशाख शु० ७ १९१७ सं० में इन के पिताजी का स्वर्गवास हो गया। जेवनार और महफ़िल के लिये जो मिठाई बनी थी सब कंगालों को बांट दी गई।

इन की शिक्षा बाल्यावस्थाही से प्रारम्भ हुई। जिस गुरु से इन्हों ने अक्षरारम्भ किया था उन का नाम पंडित ईश्वरीदत्त तिवारी था। फ़ारसी के शिक्षक मौलवी ताजअली थे और अंगरेज़ी इन्हों ने नन्दकिशोरजी से शुरू की थी जो विलायत जाकर वहीं परमधाम को सिधारे। राजा शिवप्रसाद के यहां जो स्कूल था कुछदिन उस में * और कुछ दिन ठठेरी बाज़ारवाले मह्न्तजी स्कूल में पढ़े।

* इसी नाते बाबू साहिब उन्हें गुरुवर कहते थे और राजासाहिब इन्हें प्रियवर मित्रवर इत्यादि लिखते थे।

इन की ५ वर्ष की अवस्था में इन की पूज्य माता का परलोक हो गया था और अब, जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, इन की ९ वर्ष की अवस्था होनेपर इन के पूज्य पिताजी भी २७ वर्ष के वय में छोटे बालकों को और बड़ी सम्पत्ति को छोड़ कर स्वर्गधाम सिधारे। पिता के स्वर्गवास के समय इन पर तथा इन के कनिष्ठ भ्राता बाबू गोकुलचन्द्र पर शीतला का प्रकोप था। अन्तकाल में उन्हों ने दोनों पुत्रों को सामने बुला कर और देखकर विदा किया था। युवा होने पर हरिश्चन्द्र लोगों से प्राय: कहा करते थे कि "पिता जी की वह मूर्ति अब तक मेरे आंखों के सामने विराजमान है। तिलक लगाये बड़े तकिये के सहारे बैठे थे। दिव्यकान्ति से मुखमंडल देदीप्यमान था। देखने से कोई रोग नहीं प्रतीत होता था। हम दोनों भाइयों को देखकर उन्हों ने कहा कि शीतला ने बाग मोड़ दी। अच्छा, अब ले जाओ।"

पूर्वोक्त घटनाओं से इन्हें माता पिता का लाड़ प्यार और सुख कम प्राप्त हुआ; और बाल्यावस्थाहो में पितृहीन हो जाने के कारण यह एक प्रकार से स्वच्छन्द हो गये। जिन की स्वतन्त्र प्रकृति किसी समय बड़े२ राजपुरुषों तथा स्वदेशीय गुरजन लोगों के विरोध की तनिक भी परवाह नहीं की। इन को कौन परतन्त्र रख सकता था? क्या विमाता और भृत्यगण? कदापि नहीं! इसी से यह बाल्यावस्थाहो से स्वतंत्र हो चले और किसी का दाब नहीं मानने लगे। तो भी कालेज में इन का नाम लिखाया गया। पढ़ने भी जाने लगे। कालेज में पान खाकर जाने का निषेध था। परन्तु इन को तो बचपन ही से पान खाने का व्यसन था, यह किसी का कहा कब सुननेवाले थे। क्षितरञ्ज ले कर खूब पान खा कर स्कूल की राह लेते, परन्तु रास्ते में अपने रामकटोरा बाग के तालाब पर भली भांति कुल्ला कर के तब कालेज के कमरे में प्रवेश करते थे।

पढ़ने की भी वही दशा थी। मन दे कर कभी नहीं पढ़ते। सर्वदा चंचल चित्त रहते थे। पर बुद्धि तो ईश्वरप्रदत्त थी। जिस को और सहपाठी दिन भर घोख कर भी याद न कर सकते वह विषय इन्हें दो एक बार के सुनने और *

---

* "बनारस गोवर्धन सराय निवासी पंडित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी बनारस कालेज के अध्यापक तथा जानकीमंगल के कर्त्ता और उन के भाई पंडित छोटूराम त्रिपाठी पटना कालेज के संस्कृत प्रोफेसर कहते थे कि जानकीमंगल नाटक जब महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर की आज्ञानुसार बना और उस के खेलने का प्रबन्ध हुआ तो एक लड़का जो लक्ष्मण बननेवाला था बीमार

पढ़ने ही से याद हो जाता था और सर्वदा परीक्षोत्तीर्ण भी होते थे । इस से इन के मास्टर लोग भी चकित रहते थे । इसी रीति से यह कुछ दिन कालेज में अंग्रेजी और संस्कृत पढ़ते रहे । ११ ही १२ वर्ष की अवस्था में संस्कृत इतना जान गये थे कि बात की बात में समस्यापूर्त्ति कर देते थे । कविता की ओर बालपन ही से झुकाव था । उस समय का इन का एक संग्रह प्राप्त हुआ है । उस समय इन्होंने जो स्वयं कविता की है वे सब शृङ्गार वा धर्म्मसम्बन्धी देखी जाती हैं । सारांश यह कि यत्न होने पर भी नियमित रीति से इन की शिक्षा नहीं हुई और पढ़ने में जैसा चाहिये इन्होंने चित्त नहीं दिया तथापि विद्योपार्ज्जन में त्रुटि नहीं हुई ।

इसी से वर्त्तमान 'विहारटाइम्स' के सम्पादक हमारे परममित्र बाबू महेशनारायण के ज्येष्ठ भ्राता परम आदरणीय बाबू गोविन्दचरणजी एम० ए०, बी० एल० ने "इण्डियन क्रानिकल" पत्र में लिखा था कि "यह ( बाबू हरिश्चन्द्र ) बहुत थोड़े दिन बनारस क्वीन्स कालेज में रहे । और यह अच्छी बात हुई कि केवल थोड़े ही दिन तक रहे । नहीं तो कौन जानता है कि एक अर्द्धशिक्षित डिपुटी मजिष्ट्रेट वा बिना विरीफ़वाला एक वकील पाकर यह देश एक उत्तम कवि को न खो बैठता "*

---

पड़ गया और यह हाल सभा जुटने पर मालूम हुआ । तब यह विचार किया गया कि दूसरे दिन नाटक किया जाय । उसी समय बाबू हरिश्चन्द्र जी आ गये और उन्होंने पूछा कि आज नाटक क्यों न होगा । महाराज बहादुर ने स्वयं पछतावे के साथ कहा कि जो लक्ष्मण बननेवाले थे वह बीमार पड़ गये । इस पर बाबू साहिब ने कहा "कि मैं लक्ष्मण बनूँगा, पोथी मुझे दीजिये पाठ देखूँ" । इस पर महाराज ने कहा कि इस समय याद होना कठिन है । बाबू साहिब ने कहा कि "गुस्ताखी माफ़ हो, मैं एक पाठ क्या समग्र जानकी-मंगल स्मरण कर लूँगा, एक बार देखना चाहिये" । महाराज ने पुस्तक दी और बाबू साहब ने घंटे भर के भीतर महाराज के हाथ में वह पुस्तक दे कर ज्यों का त्यों अक्षर अक्षर जानकीमंगल सुना दिया । तब महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बाबू हरिश्चन्द्र लक्ष्मण बने और नाटक खेला गया" । देखो पं० प्रतापनारायण मिश्र कृत "चरिताष्टक" में जगन्नाथ तर्कपंचानन का प्रकरण ।

* He was for a short time in the Queen's College Benares, and it is well, it was only for a short time, or else who knows the country might have lost a poet to gain a half-educated Dy. Magistrate or a briefless Vakil.

कहते हैं कि "लार्ड मेकाले" ८ वर्ष की अवस्था में लैटिनभाषा लिखने पढ़ने जान गये थे। और यहां हरिश्चन्द्र का विद्याध्ययन (जो एक समय तैलंग तथा तामील भाषा को छोड़कर भारतवर्षीय यावत् भाषा के पण्डित और दो एक विदेशीय भाषा के ज्ञाता हुये) ११ ही वर्ष की अवस्था में समाप्त हो गया, क्योंकि उसी अवस्था में यह परिवारसहित श्रीजगन्नाथदर्शन को चले गये और पढ़ने पढ़ाने की बात एकदम जाती रही। इन्हों ने एक स्थान में स्वयं लिखा है कि "११ वर्ष की अवस्था में हम जगन्नाथजी गये थे। मार्ग में वर्द्धमान में विधवाविवाह नाटक बंगभाषा में मोल लिया सो अटकल ही से उस को पढ़ लिया"। इसी से समझ लीजिये कि और भाषा भी यह किस रीति से पढ़े होंगे।

पिता के परलोक गमन के अनन्तर १४ वर्ष की अवस्था में अर्थात् अगहन सं० १९२० में काशी के शिवालय घाट के सुप्रसिद्ध रईस शाहज़ादों के महाजन लाला गुलाबराय की कन्या श्रीमती मन्नोदेवी से बड़ी धूमधाम के साथ इन का विवाह हुआ।

बाल्यावस्था में यह बड़े ही चंचल थे। शाखामृग की भांति पतले २ मुड़ेरों पर घूमा करते थे, वृक्षों की फुनगी तक चढ़ जाते, दौड़ती हुई गाड़ी पर चढ़ते और उस पर से कूदते थे। पंचक्रोश में एक बार कादवा (कर्दमेश्वर) से जो दौड़े तो ढ़ाई तीन कोस पर भीमचंडी जाकर दम लिया। यह कुछ हठी भी थे जिस का प्रमाण आगे के परिच्छेद में मिलेगा, किन्तु दुष्ट बालकों के समान किसी से लड़ाई दंगा नहीं करते थे। इन की दाई कालीकदमा इन्हें बहुत प्यार करती थी। यह भी उसे चाहते थे और युवा होने पर भी उस से बहुत डरते थे। उसी समय के गड्डू नामक एक अहीर नौकर के साथ भी यही बात थी। उस से बहुत दबते थे और सदा उस का सम्मान करते थे। वह ऐसा ईमानदार सच्चरित्र तथा स्नेह करनेवाला नौकर था कि जोखों की ताली उसी के पास रखते थे।

यह बाल्यकाल ही से कौतुकप्रिय थे। अंधेरी गली में अपने घर के पीछे फ़ासफ़रस से दीवारों पर ऐसा २ विचित्र चित्र बना देते थे कि लोग देख कर डर जाया करते थे।

हम को यह बात पूरी रीति से ज्ञात नहीं हो सकी कि इन के बाल सखा कौन २ थे। परन्तु इतना मालूम हुआ है कि बिसवां ज़िला अलीगढ़ के ठाकुर

गिरिप्रसाद सिंह एवं छपरा जिलांतर्गत मसरख के बाबू देवीप्रसाद इन के स्कूल के साथी थे। सहपाठी थे वा नहीं यह हम नहीं कह सकते।

ठाकुर गिरिप्रसाद जी जाति के जाट विद्यारसिक एवं परम वैष्णव थे। श्री वल्लभसम्प्रदाय के अनेक ग्रंथों को प्रकाशित किया था और शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य भी किया था। हम को उर्दू भाषा में लिखाहुआ एक प्रोग्राम मिला है जिस में लिखा है कि एक सभा करके उस में ठाकुरसाहिबरचित ग्रंथ उपस्थित किया जाय और सब लोगों की ओर से, विशेषतः पंडितों की ओर से, बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा ठाकुरसाहिब को धन्यवाद भेजा जाय। सम्भवतः वह सभा वेदभाष्य ग्रंथ के सम्बन्ध होमें हुई होगी। ठाकुरसाहिब हिन्दी की भी कविता करते थे और एशियाटिक सोसाइटी आदि के मेम्बर थे। ग्राउस साहिब ने "मथुरा" नामक ग्रंथ में ठाकुरसाहिब की प्रशंसा की है *। हरिश्चन्द्र तथा ठाकुरसाहिब में सर्वदा मित्रता बनी रही।

---

* But lately the subject has attracted the attention of native enquirers also, and a novel theory has been propounded in a little Sanskrit pamphlet entitled Jatharotpati, compiled by Shastri Angad Sharma for the gratification of Pundit Giri Prasad, *himself an accomplished Sanskrit Scholar*, (*a*) and Jat by caste, who resides at Beswan on the Aligarh border.

(*a*) He is the author of a Hindi Commentary on the White Yayur Veda.

"Mathura" by F. S. Growse. p. 7.

# तृतीय परिच्छेद।

## यात्रा।

प्रसिद्ध अंगरेज़ी कवि शेक्सपियर का कथन है "The homely youth have homley thoughts" अर्थात् जो लोग सदा घरही वा ग्रामही में रहा करते हैं और देशाटन नहीं करते वे कूपमंडूक के समान बने रहते हैं। तात्पर्य्य यह कि देशभ्रमण से बुद्धि विकशित एवं परिवर्द्धित होती है। भिन्न २ स्थानों में भ्रमण करने से वहां के लोगों का आचार, व्यवहार, नीति, रीति का ज्ञान होता है। नाना जाति के अद्भुत पदार्थ देखने में आते हैं। देश देश की प्राकृतिक छवि अवलोकन से अपूर्व आनन्द लाभ होता है। अनेक प्रकार के लोगों के संसर्ग एवं उन के साथ सम्भाषण से बुद्धि प्रखर होती है। हमारे ऋषियों ने देशाटन का अनेक लाभ विचार करके भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में तीर्थस्थान नियत किया है जिस में देश देशान्तर के लोग समय २ पर उन स्थानों में सम्मिलित हों, परस्पर के व्यवहार और आलाप से सुख पावें, महात्माओं के दर्शन से कृतार्थ हों, उन के सदुपदेशों से ज्ञान लाभ करें, और बुद्धि को मानो खराद पर चढ़ाकर अपना लोक परलोक सुधारें। देशाटन में जो कुछ यात्रा तथा प्रवास का कष्ट होता है वह इन सुखों के सामने एकदम भूल जाता है। बिहार प्रान्त के हरिहरक्षेत्र ही के मेला की ओर ध्यान दीजिये। एक ओर जाने से जैसे शृंगार रसकी छवि नेत्रों के सामने मूर्तिमान खड़ी होजाती है, वैसेही गंगातटस्थ भिन्न २ सम्प्रदायों के साधु, महात्माओं के दर्शन से मन में शान्तिरस का उद्रेक होता है। मीना बाज़ार में जाने से जैसे शिल्पकलादि-जनित पदार्थ हृदय को आनन्द देते हैं वैसे ही चिड़िया बाज़ार की ओर दृष्टि-पात करने से उस असीम-कलाधारी ईश्वर की रंग बिरंगी रचना देख कर मन मुग्ध हो जाता है। वह गंगा की स्वच्छ धारा, वह गंडकी का प्रेमोन्मत्त व्यक्ति के समान तीव्र गति से प्रवाहित हो कर गंगा से सम्मिलित होना, वह नावों का कहीं नदी कूल पर मतवालोंकी नाईं झूलना, और कहीं धनमदान्ध पुरुषों के समान सिर उठाये अपने आसपासवालों को तुच्छ समझते पाल उड़ाते हुए बड़ी नौकाओं का जाना, वह बहुमूल्य वस्त्राभूषित राजा बाबुओं का टमटम फिटन दौड़ाना, वह भस्मोद्धूलित सुखद साधु मूर्तियों का अपनी स्वाभाविक शोभा से औरों को प्रतिभाहीन बनाना, वह साधुमंडली में घंटाओं का नाद,

वह उन्नत मस्तकवाले हस्तिसमूह की गरज, वह भोंगा वस्त्र पहिने जलपात्र हाथों में लिये जय २ ध्वनि करते लोगों का मन्दिर को ओर प्रधावित होना, निस्सन्देह अकथनीय आनन्दप्रद और सुखद होता है। न्यूनाधिक ऐसी ही अवस्था प्राय: सब मेले और तीर्थस्थलों में पाई जाती है।

ऐसे स्थानों में जाना तथा देशाटनकरना सब के लिये सुखद और लाभ दायक है; परन्तु मेरी समझ में, कवियों के लिये तो यह एक परमावश्यक कर्तव्य जान पड़ता है क्योंकि उन लोगों की बुद्धि का जितनाही विकाश होगा उतनीही उन की कविता भी ललित एवं हृदयग्राहिणी होगी। "दास" कवि ने भी कहा है।

"रीत कवित्त बनाइबे की जिहि जन्म नछत्र में दीन विधातें। काव्य की रीत पढ़ी सुकबीन सों देखी सुनी बहु-लोक की बातें॥ दास * जू जामें मिलै यह तीन बनै कविता मनरोचक तातें। एक बिना न चलै रथ जैसे धुरन्धर चक्र की सूच निपातें॥"

ईश्वर ने हमारे चरित्रनायक को बालकपन ही में यात्रा का भी सुअवसर दिखलाया था। ११ वर्ष की अवस्था में इन्होंने सपरिवार जगदीश की यात्रा की थी। कहते हैं कि उसी यात्रा के समय जब सब लोग नगर से बाहर निकल कर कहीं ठहरे हुये थे एक महापुरुष जिन के पितामह ने बाबू हर्षचन्द्र के बाल्यकाल में, और जिन के पिता ने भी बाबू गोपालचन्द्र के समय में, इन के घर से बहुत कुछ लाभ उठाया था, इन लोगों से मिलने गये। यह सोचा कि इस अवसर को क्यों हाथ से जाने दें। सब लोगों से मिलने के अनन्तर वह बालक हरिश्चन्द्र को एकान्त में ले जा कर दो अशर्फी देने लगे कि रास्ते में काम आवेगी। हरिश्चन्द्र ने कहा कि "हमारे साथ मुनीब, गुमाश्ते, रुपये पैसे सभी कुछ हैं फिर इन तुच्छ दो अशर्फियों से क्या होगा"। उस महापुरुष ने कहा "आप लड़के हैं, इन भेदों को नहीं जानते। मैं आप का पुश्तैनी

---

* भिखारी दास कायस्थ, अरवल बुंदेलखंडी—जन्म १७८० सं०। ये महान् कवि भाषा साहित्य के आचार्य्य गिने जाते हैं। छंदोर्णव पिंगल, रससारांश, काव्यनिर्णय, शृंगारनिर्णय, बागबहार, ये पांच ग्रंथ इन के बनाये अति उत्तम हैं।

शुभचिन्तक हूँ इस लिये इतना कहता हूँ। मेरा कहना मानिये और इसे पास रखिये, काम लगे तो खर्च कीजियेगा नहीं तो फेर दीजियेगा। मैं क्या आप से कुछ मांगता हूँ ? आप के यहां वहूजी का हुक्म चलता है। जो आप का जी किसी वस्तु को चाहे और वे न दें तो उस समय क्या कीजियेगा ? कहावत है कि पैसा पास का जो वक़् पर काम आवे।" "हरेरिच्छा बलीयसी" की बात हुई। बालक हरिश्चन्द्र उसमहापुरुष की जाल में फंस गये। अशर्फ़ियों को लेकर एक संगी ब्राह्मण को रखने को दिया। धीरे २ दोनों अशर्फियां ख़र्च होगईं। उन्हीं अशर्फ़ियों के सूद ब्याज तथा अदला बदला में अन्त में उस पुश्तैनी नमकख़ार के हाथ हरिश्चन्द्र का एक बहुमूल्य मकान लगा। ऐसे कितने महापुरुष हैं जो बड़े आदमियों के पितृहीन बालकों का सत्यानाश कर डालते हैं। "मुंह में आन बगल में छूरी"वाले मनुष्यों से सबों को सदा सावधान हो रहना चाहिये। हम को तो हरिश्चन्द्र के उस व्यक्ति की धूर्तता में फंसने पर आश्चर्य होता है और यही कहना पड़ता है कि ईश्वर ही की ऐसी इच्छा थी, नहीं तो ऐसे बालक का, जो उसी यात्रा में और उसी बाल्यावस्था में जगदीशपुरी पहुंचने पर भोग के समय श्री जगन्नाथ जी के सिंहासन पर भैरव की मूर्ति बैठाते देख कर उस बात को शास्त्रविरुद्ध माने और अयोग्य सिद्ध करे, किसी धूर्त के जाल में फंसना कब सम्भव था। परन्तु "जैसी हो भवितव्यता वैसी उपजै बुद्धि" यथार्थ में यही बात हुई। लोग कहते हैं कि हरिश्चन्द्र को ऋण का चसका उसी से लगा। परन्तु हरिश्चन्द्र ने एक याददाश्त पर पहले पहल ऋण लेने की कथा यों लिखी है कि "एक बेर कोई कलकत्ते से लालरंग की चन्द्रजोति पहले पहल मंगल के मेले में लाया था। घर की नाव तमाशा देखने को हुई थी। हम ने बाल स्वभाव से चार रुपये की पावभर बुकनी मंगाकर उस पर छोड़ दी। पीछे उस का रुपया मुनीबजी ने नहीं दिया। ज़नाने में इत्तिला हुई। मायजी ने भी नहीं दिया। बड़ा पचड़ा हुआ। एक दिन भोजन नहीं किया। अन्त में तंग होकर छग्गन लाल नामक एक मनुष्य से पुरज़ा लिख कर चार रुपया मंगाया तो उन्हों ने उसी समय भेज दिया। यही मानो चसका लगा। बालकों के सुधारने की इच्छा करनेवाले माता पिता इस क़िस्से को कान लगाकर सुनें। उस समय वह चार न देना कैसा विष हुआ। अन्त में चार लाख ले गया। बारूद तो जल ही गई थी बिना दिये कैसे काम चलता। यौवनारम्भ में बालक को इतनी क़ैद वा निगरानी ख़राब करती है।"

हमारी समझ में ये दोनों घटना सब को याद रखने योग्य हैं। धूर्तों से सावधान रहना वैसाही आवश्यक है जैसा कि युवा बालकों को नितान्त परवश नहीं रखना। उन दो अशर्फ़ियों ने जैसे बालक हरिश्चन्द्र के मन में निःशंकता का बीज बोया वैसे ही चार रुपये के न मिलने से भी इन के हृदकार से विशेषतः निज विमाता से इन का मन अवश्य विरक्त होगया होगा।

इसी यात्रा में बर्द्धमान में विमाता से रुष्ट होकर यह भाग कर घर लौट चले थे। लोगों ने सोचा था कि इन के पास रुपया तो है नहीं जायंगे कैसे? यही सोच कर लोगों ने इन को उपेक्षा की थी। परन्तु यहां पर भी लोगों से बड़ी भारी भूल हुई। इन के यह कहने पर कि "हम घर लौट जाते हैं" लोगों को सोचना चाहता था कि अवश्य कहीं से इन के हाथ में कुछ पैसा आगया है। यदि उसी समय अन्वेषण होता तो निस्सन्देह अशर्फ़ीवाली बात खुल जाती और आगे के लिये बहुत लाभ होता, परन्तु लोगों ने इसपर कुछ भी खयाल नहीं किया और यह स्टेशन तक चले आये। यह समाचार जब छोटे भाई को मिला तो वह सजलनेत्र स्टेशन पर आकर इन के गले से लिपट गये। उस समय हरिश्चन्द्र का स्वाभाविक स्नेहमय हृदय सम्हल न सका, भ्रातस्नेह उबल पड़ा। पहिले दोनों भाई मिलकर खूब रोये, फिर दोनों डेरे पर लौट गये। *

जगदीश यात्रा के अनन्तर इन्हें और कई स्थानों की यात्रा करने की बारी आई थी।

सम्वत् १९२३ ( १८६६ ई० ) में यह बुलन्दशहर तथा कुचेसर गये थे और उसी समय इन्हों ने निम्नलिखित छन्द लिखा था; परन्तु इस छन्द से कोई विशेष बात ज्ञात नहीं होती। बोध होता है कि इस का कुछ अंश नष्ट होगया है।

"सम्वत सुभ उनईस सत, बहुरि तेइसा मान।
जेठ सुदी पूनो परी, अरु बुध बासर जान॥
राधाकृष्ण पदाब्ज को, सेवत नहिं अन आस।

---

* इन के वर्द्धमान से भाग चलने एवं एक समय रोष में एक रात भोजन न करने से बाल्यावस्था में इन का हठी होना प्रमाणित होता है, परन्तु बाल्यावस्थाही से इन का हृदय स्नेहमय था इस में भी किञ्चित् मात्र सन्देह नहीं।

निज कुल पंकज-सुभवनहिं, सूरज सम जु प्रकास ॥
वैश्य अगरवाले सुभग, सब विद्या को रास ।
हरिश्चन्द्र निज पानि सों, लिख्यो दस्तखत खास ॥

यह पीछे भी एक बेर कुचेसर गये थे और वहां से अपने भ्रातृपुत्र कृष्णचन्द्र को जो पत्र लिखा था उस के प्रत्येक शब्द से स्वाभाविक स्नेह टपकता है। जिस प्राणी को संसारमात्र बन्धु के समान प्यारा था उस को एक स्वात्मीय बालक कैसा प्रिय होगा यह तो तनिक सोचने ही से लोग जान सकते हैं।

"चिरंजीव, श्रीकृष्ण, प्यारेकृष्ण, राजाकृष्ण, बाबूकृष्ण, आंखों की पुतली! तुम्हारा जी कैसा है? सर्दी मत खाना, रसोई रोज़ खाते रहना। तुम को छोड़ कर हमारा अख़तियार होता तो क्षण भर भी बाहर नहीं आते! क्या करें लाचारी से झख मारते हैं। कृष्ण! तुम्हारा अभी कोमल स्वच्छचित्त है। तुम हमारे चित्त को ध्यान से जान सकते किन्तु बुद्धि और वाणी अभी स्फुरित नहीं है। इस से तुम और किसी पर उसे प्रगट नहीं कर सकते हो। परमेश्वर के अनुग्रह से उस की उस स्वाभाविक कृपा से जो आजतक इस वंश पर है तुम चिरंजीव हो, तुम्हारे में उत्तम गुण हों। हम इस समय बुलन्दशहर में हैं। आज कुचेसर जायंगे।"

सं० १९२८ ( ई० १८७१ ) में यह फिर यात्रा को निकले थे। उस यात्रा में यह कहां २ गये थे उस का वर्णन इन्होंने इस छप्पै में किया है:—

"प्रथम गये चरणाद्रि * कान्हपुर को पगधारे।
बहुरि लखनऊ होइ सहारनपूर सिधारे ॥
तहँ मनसूरी होइ जाइ हरिद्वार नहाये।
फेर गये लाहौर † सुपुनि अम्बरसर आये ॥

---

* चुनार।

† सुनते हैं कि लाहौर में इन्हों ने एक व्याख्यान भी दिया था जिस की, प्रकाशित होने पर, बड़ी प्रशंसा हुई थी। परन्तु वह व्याख्यान हम को देखने में नहीं आया।

दिल्ली ह्वै ब्रज बसि आगरा देखत पहुंचे आय घर।
तेंतीस दिवस में यातरा यह कीन्ही हरिचन्द बर ॥"

उस यात्रा में हरिद्वार के पंडे को जो इन्हों ने पत्र लिखा था वह नीचे प्रकाशित किया जाता है। इस से भी कुछ हाल ज्ञात होगा।

सम्वत बसु युग ग्रहससी, पूनो शुक्ल अषाढ़।
रविबासर हरिद्वार में, लिख्यो पत्र अति गाढ़॥
मित्र‡ मिलन मधुबन गमन, के हित कियो पयान।
मध श्रीगंगाद्वार में, हरखि कियो अस्नान॥
संग कन्हैयालाल जू, × और किशुन दृकदास। ए

---

‡ कुचेसर ज़िला बुलन्दशहर राव कृष्ण देवशरण सिंह बहादुर ( राजा भरतपुर ) से मिलने गये थे। वह बाबू साहिब के अनन्य मित्र और बड़े विद्यानुरागी थे। बाबू साहिब कृत चन्द्रावली नाटिका का उन्होंने ब्रज भाषा में अनुवाद किया था। एक उत्तम उपन्यास भी लिखा था। उन की स्फुट कविता कुछ "कविवचनसुधा" और कुछ "चन्द्रिका" में छपी हैं। परन्तु उन का कोई ग्रंथ छपा नहीं पाया जाता। उन्हें बाग़ का बड़ा शौक़ था और उन की फ़र्नरी अब तक बर्तमान है जिसे देखकर एस० पी० चटर्जी (जो इस विद्या में बड़े दक्ष हैं ) आश्चर्य में आगये थे। सब हाकिम तथा देशीय अङ्गरेज़ उस को देखने जाते हैं। हाथ के बड़े भारी कारीगर थे। बहुत सी वीणाआदि, यन्त्र, मूर्ति, अनेक वस्तु अपने हाथ से बनाई थी। एक फ़ौवारा स्वयं अपने हाथ से बनाया था जिसे मथुराजी के प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मण दास ने दस हज़ार पर मोल लिया और वह मथुराजी में सेठ जी के बाग़ में है। सुनते हैं कि एक बार लार्ड डफ़रिन साहिब बहादुर ने उस फ़ौवारा को मंगाकर देखाथा और उस की बड़ी प्रशंसा की थी। गाने में और वीणा सितार बजाने में वह परम प्रवीण थे। फ़ोटोग्राफ़ी में उस्ताद थे। काशी में उन्हीं से और लोगों ने फ़ोटोग्राफ़ी सीखी थी। अङ्गरेज़ी भी जानते और बोलते थे। बड़े उदार थे। अतएव ऋणग्रस्त भी थे।

ए यह इन के पिता के समय के लेखक थे। × यह इन का नौकर था।

रैन युगल बसि कै कियो, न्हान चन्द्र-की-ग्रास ॥
द्विजबर नागर मल्ल पुनि, श्रीगोविन्द्दा राम ।
पोखरिया उपनाम है, तीरथद्विज गुन धाम ॥
इन को पंडा मानि कै, पूजन बहुबिधि कीन्ह ।
पाठ कियो शुकसंहिता, यथाशक्ति धन दीन्ह ॥
यातें जो आवै इतै, मेरे कुल कै मांहि ।
सो इनही को पूजिहैं, और द्विजन को नाहिं ॥
बिमल वैश्यकुल कुमुद ससि, सेवत श्रीनन्दनन्द ।
निजकर कमलन सों लिख्यो, यह कविवर हरिचन्द ॥

सं० १९३४ (१८७७ ई०) के वैशाख कृष्ण अष्टमी को यह पुष्कर गये थे। इन की पुष्कर की यात्रा का लेख यह है।

दुष्कर पुष्करतीर्थ में, दानपात्र को दान ।
लिख्यो जौन कछु अनुज सम, सो सब इमें प्रमान ॥

श्रीकृष्णायनमः

ये सर्वेस्युर्भाविनः पार्थिवेन्द्राः
तेभ्यो भूयो याचते रामचन्द्रः ।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां
काले काले रक्षणीयो भवद्भिः ॥

आगे मि: वैशाख कृष्ण अष्टमी को हम ने श्री पुष्कर स्नान किया और पंडा हर जी पंडा को ।) महीना नियत किया। सो जब कोई इन के वंश का वा यह दूसरे तीसरे वर्ष काशी आवें तो जोड़ कर ले जायं। ”

इसी साल जून के महीने में यह इलाहाबाद हिन्दीवर्द्धिनी सभा में बुलाये गये थे और हिन्दी की उन्नति पर एक पद्यबद्ध लेक्चर एक ही दिन में लिख कर पढ़ा था जो ७ पृष्ठ में छपकर तयार हुआ है।

काशी “नागरी प्रचारिणी सभा” ने उस लेक्चर को छपवा कर उस की हजारों प्रतियां गत वर्ष सर्वसाधारण में वितरण की हैं, और फिर वितरण करने

की इच्छा रखती है ; और उस लेक्चर के चार दोहों को अपने अैमासिक पत्र का मोटो ( सिद्धान्त वाक्य ) बनाया है। वे दोहे ये हैं।

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥ *
करहु बिलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल ।
निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
बिबिध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार ।
सब देशन से लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न ।
राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥"

निस्सन्देह वह लेक्चर ऐसाही है जिस के पठन मात्र से मन में हिन्दी भाषा का अनुराग उत्पन्न हो। हम तो यह कहेंगे कि हिन्दी भाषा के प्रेमियों को उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

सं० १८३६ ( १८७८ ई० ) में शरयूपार की यात्रा हुई थी। उस यात्रा में कैप्न हरैया बाज़ार तक पहुंचने में राह में जो २ कष्ट हुए उन का वर्णन कर के इन्हों ने लिखा है कि "... ख़ैर रोते कर यहां ... पहुंचे। यहां पहुंचते ही हरैयाबाज़ार के नाम से यह गीत याद आया 'केरे लैहैं गा, हरैया लागल अंखिया।' शायद किसी ज़माने में यहां हरैया बहुत बिकती होगी। ... मिठाई हरैया की तारीफ़ के लायक़ है। बालूसाही सचमुच बालू सा ही, भीतर काठ के टुकड़े भरे हुये ... बरफ़ी, अहाहा हा, गुड़ से भी बुरी। लाचार चने पर गुज़र की।"

वहां से बस्ती गये। लिखा है "...वाह रे बस्ती ! अगर बस्ती...इसी को कहते हैं तो उजाड़ किस को कहैंगे। ... बैसवारे के पुरुष सब अभिमानी, पुरुष सब पुरुष, सभी भीम अर्जुन, सभी सूतपौराणिक, सभी वाजिद अलीशाह। ...नई सभ्यता अब तक इधर नहीं आई है। रूप कुछ ऐसा नहीं पर स्त्रियां नेत्र नचाने में बड़ी चतुर। यहां के पुरुषों की रसिकता मोटी चाल सुरती और खड़ी मोंछ

---

* इस दोहे को "आरा नागरीप्रचारिणी सभा" ने भी अपने पत्र का मोटो बनाया है।

में छिपी है और स्त्रियों की रसिकता मैले वस्त्र और सूप ऐसी मथ में, ... मुझे उन को सब गीतों में 'बोलो प्यारी सखिया, सीताराम राम राम' यही अच्छा आलूम हुआ। ...बैलगाड़ी की डाक में बैठे २ सोचते थे कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुआ पर शिव आजही हुये।" इत्यादि

वहां से मेंहदावल गये। कहते हैं कि वहां एक नाऊ बड़ा पंडित था। उस से किसी ब्राह्मण ने प्रश्न किया "किंत्वं" (तुम कौन जात हो)? तब नाई ने जवाब दिय "चटपटाक चटपटाक" (नाई)। तब ब्राह्मण ने कहा "तंदूरं" (तुमदूर जाओ)। तब नाई ने जवाब दिया "किंक्षौरं" (तब मूँड़ कौन मूड़ेगा)। एक का बाप डूबकर मर गया। उस के बाप का पिण्डा इस मंत्र से कराया गया। "आर गंगा पार गंगा बीच में पड़ गई रेत। तहां मरमर गये नायका चले बुजबुजा देत, धर दे पिण्डवा"

यहां (मेंहदावल में) इन्हों ने प्राण (प्रणामी) नाम *का एक धर्म प्रचलित देखा। लिखा है कि "...इन के ग्रंथ में मैं ने एक श्लोक श्री महाप्रभुजी की श्री-सुबोधिनी की कारिका का देखा। इसी से हम को सन्देह हुआ। फिर हम ने बहुत खोदर कर पूँछा तो यह साफ़ मालूम हुआ कि इसी मत से यह मत निकला है क्योंकि एक बात वह और बोले कि हमारा मत वल्लभाचार्य्य की टीका में लिखा है। इन लोगों के उपास्य श्रीकृष्ण हैं और एकादशी, शालग्राम, मूर्ति पूजा, तीर्थ, किसी को नहीं मानते। इन के पहिले आचार्य्य देवचन्द जी कायस्थ थे और दूसरे प्राणनाथ कच्छ क्षत्री (भाटिया) थे। हमारे ही मत की शाखा सही पर विचित्र (Reformed) मत है। वैष्णव होकर मूर्तिपूजा के खंडन करनेवाले यही लोग सुने गये"। ये लोग 'मदीनाःस्थाम शरदःशतं' और 'गोविन्दंगोकुलानन्दमकेश्वरं' ये श्लोक पढ़ के कहते हैं कि वेद में मक्का मदीने का वर्णन है इत्यादि।

इसी साल यह जनकपुर भी गये थे। उस यात्रा के वर्णन में इन्हों ने लिखा है "राह में रेल में कुछ कष्ट हुआ क्योंकि सेकेंड क्लास में तीन चार अंगरेज़ थे बस उन में अकेला 'जिमि दसनन महं जीभ बचारी' कष्ट हुआही चाहे।...जैसी ही उन को पान सुरती की पचापच से नफ़रत वैसी ही इधर चुरट के धूम से ...फ़र्स्ट और सेकेण्ड क्लास की गाड़ियों में हिन्दुस्तानियों का पायखाना अलग

---

* इस संप्रदाय के एक दूर्जन मनुष्य बांकीपुर के पास शजापुर में भी वर्तमान हैं। हाल ही में इन लोगों से शास्त्रार्थ की बारी आई थी।

बमना चाहिये क्योंकि न 'कमोडु' का इन को अभ्यास और न स्वतंत्र। जलादिक बिना इन को सुभीता। मगर गोर सभ्य-बाज़े तो बड़े सभ्य और दिल्लगीबाज़ मिलते हैं। अब की बरसात में सेकेन्ड क्लास में एक साहिब सोये हुये थे। मैं भी उसी में था। पानी की कुछ बौछार भीतर आई। साहिब ने जानकर पूछा Have you made water ? मैंने कहा Not I but God। इस पर बहुत ही प्रसन्न हुआ। मुज़फ़्फ़रपुर से मधुबनी हो कर, और दरभंगा से सीधे, जनकपुर की राह है।...गाड़ीपर रहिये तो चरखी पर, और पालकी पर रहिये तो झूले पर झूलने का मज़ा मिलता है।" राह की सफ़र का हाल जो इन्हों ने वर्णन किया है बहुतही मनोहर है। वहां पहुंच कर इन्हों ने राम जानकी की स्तुति में कई पदों की रचना की थी। उन में से यहां पर दो पद लिख दिये जाते हैं—

१ "जयति जयति जय जनकलली।
मिथिलापुरमंडनि महरानी निमिकुलकमल कली॥
जगस्वामिनि अभिरामिनि भामिनि सबहीं भांति भली।
हरीचंद जा मुख कमलन पर लोभ्यो राम अली॥
२ भजुमन श्री मिथिलेश किशोरी। अंतर सांवरि बाहर गोरी॥
पीय प्रेम जलनिधि रंग बोरी। सब विधि सुन्दर बयस की थोरी॥
भाग सुहाग समुद्र हिलोरी। जानत सबहि तदपि अति भोरी॥
हरीचंद जग करि इक ओरी। भजु सिय चरण बहोरि बहोरी॥"

इसी यात्रा में इन्हों ने संस्कृत में "सीतावल्लभस्तोत्र" की रचना की थी।

१८८० के आषाढ़ मास में यह श्री काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ यात्रा को गये थे। राह की छबि जो इन्होंने वर्णन की है निस्सन्देह बड़ी ही रोचक तथा इन की वर्णना शक्ति का पूर्ण परिचय देनेवाली है। लिखा है कि "श्री महाराज काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ को चले ... चारों ओर हरी २ घास का फ़र्श ऊपर रंग२ का बादल ... बगसर के आगे बड़ा भारी मैदान। पर सब्ज़ काशानी मख़मल से मढ़ा हुआ। सांझ होने से बादल के छोटे २ टुकड़े लाल पीले नीले ... बनारस कालेज की रंगीन शीशे की खिड़कियों का सामान था...पटना पहुंचते२ पानी बरसने लगा। बस पृथ्वी आकाश सा नीरब्रह्म मय होगया। इस धूमधाम में भी रेल कृष्णाभिसारिका सी

अपनी धुन में चली ही आती थी। सच है, सावन की नदी और दृढ़प्रतिज्ञ उद्योगी और जिन का मन प्रीतम के पास है वे कहीं रुकती हैं? राह में बाज़ पेड़ों में इतने जुगनू थे कि पेड़ सचमुच 'सर्वे चिरागां' बन रहे थे। ......( सेकेंड् क्लास ) की गाड़ी ऐसी टूटी फूटी जैसे हिन्दुओं की क़िसमत और हिम्मत।... दानापुर से दो चार नीम अंगरेज़ ( लेडी नहीं सिर्फ़ लेड ) मिले उन को बे तकल्लुफ़ उस में बैठा दिया था। सच मुच अब तो तपस्या कर के गोरी २ कोख से जन्म लें तब संसार में सुख मिले...ख़ैर इसी सात पांच में रातकट गई। बादल के परदों को फाड़ फाड़ कर ऊषादेवी ने ताक झांक आरम्भ कर दी। परलोकगत सज्जनों की कीर्ति की भांति सूर्य्य नारायण का प्रकाश पिशुन मेघों के बागाडम्बर से घिरा हुआ दिखलाई पड़ने लगा। प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ। ठंढी २ हवा मन की कली को खिलाती हुई बहने लगी।" इत्यादि।

इस यात्रा में यह वहां के मंदिर एवं सभामंडप की प्रशस्तियों की प्रतिलिपि भी लाये थे और उन को प्रकाशित भी कर दिया था। इसी यात्रा के विषय में "काशीपत्रिका" में लिखा था कि "हमारे काशीवासियों के मुकुटमणि श्रीमन्महाराजाधिराज काशीनरेश बहादुर जी० सी० एस० आई० श्रीवैद्यनाथ को गये थे। कुशलता पूर्वक यहां लौट आये। रसिकशिरोमणि श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी भी महाराज के साथ ही थे। हम को इस के देखने से परम हर्ष होता है कि हमारे आर्य्यशिरोमणि महाराज बाबू साहिब पर अत्यन्त कृपा और प्रेमदृष्टि रखते हैं। क्यों नहीं किसी ने कहा है 'क़द्रे गौहर शाह दानद, या बिदानद जौहरी'।"

१८८२ ई० के मार्ग शीर्ष में यह मेवाड़ गये थे जिस यात्रा का वर्णन इन्होंने बहुत लम्बा चौड़ा लिखा है। काठे माठे ( पत्थर के ढेले ), पहाड़, राज्य की चौकी, चौकी पर का कर, और ठगी-यही मेवाड़ का पांच रत्न बतलाया है। वहां इन को बैलगाड़ी पर जाना पड़ा था। इन का गणेश नाम का गाड़ीवान एक खिन्न शरीर, धनहीन और बुद्धिविहीन मनुष्य था। यह विचार कर कि गणेश जी को विद्या सुटाई ऋद्धि सिद्धि सब कुछ, और उस में तीनों नदारद, हमारे चरित्रनायक ने उस पर यह दोहा बनाया था।

"नहि विद्या नहि बांहु बल, नहि खर्चन को दाम।
श्रीगणेश बिनशंडके, तिन को कोटि प्रणाम॥"

इस गाड़ीवान की गाड़ी भी वैसी ही थी जिस के विषय में इन्हों ने यह कविता की ।

"हिलत डुलत चलत गाड़ी आवै । झुलत सिर टुटत गोढ़ कमर झोंका खावै ॥ टख़ टख़ टिख़ इचर मचर थिप खस धस चें चूं चूं टं टिन टिन हड़ड़ हड़ड़ धड़ धिड़ धिड़ावै । चल चल कहै गाड़िवान चाबुक हते पोंछ ऐंठ भारत सम बैल तऊ तनिक नाहिं धावै ॥ छोड़त नहीं कबहुं लीक भार बहत दुःखहि सहत केवल भुस खाई तुष्टधर्म्म तऊ कहावै । कंटक पग सीस धूप ऊंच नीच ठोकर गरद सड़क सतत धड़क सहित पंथ ना लखावै ॥ थकित पथिक सुपंथ रसिक रंद बंद चूर चूर एक कोस चल्यो मनहु सहस कोस धावै । गड़ बड़ भयो उदर नीर लुंज चरन जोड़ सिथिल सोवत चमे न बैठो जाई पिडुई भुन भुनावै । चौकीदार ठगयार कारहु लेत दुरवहुं देत सबसीं वढ़ि मिलै न अन्न क्षुधा अति सतावै ॥"

गाड़ी की यह व्यंग स्तुति केवल लोगोंके हंसाने ही के लिये नहीं है । इस से बाबू साहिब का कुछ और भी अभिप्राय था और उन्होंने लिखा भी है "बस भारतवर्ष की उन्नति को गाड़ी की चाल का नमूना समझो ।"

मेवाड़ पहुंच कर बाबू साहिब ने १०८ श्रीमान् महाराजाधिराज महाराणा सज्जन सिंह देव बहादुर के चरण कमलों का दर्शन किया । श्री अधीश के जयनिवास के महलों में एक दिन काव्यशास्त्र सम्बन्धी प्रसंग आने पर तीन समस्या श्रीमान् अधीश ने, दो बारेट कृष्ण सिंह जी ने और दो समस्या कवि जय-करण जी ने इन्हें पूर्ति करने को दी थीं । इन्हों ने प्रत्येक समस्या के प्रत्येक छंद की चार २ मिनिट में पूर्ति की । इस से पाठकवृन्द इन की कविताशक्ति का कुछ अंदाज़ पासकते हैं । उन पूर्तियों में से कई एक यहां उद्धृत की जाती हैं ।

समस्या श्रीदरबार की ।

जा मुख देखन को नितही रुख दूतिन दासिन को अव-

देख्यो । मानी मनौती हू देवन की हरिचंद अनेकन जोतिस लेख्यो ॥ सो निधि रूप अचानक ही मग में जमुना जल जात में देख्यो । सोक को थोक मिट्यो सब आजु "असोक की छांह सखी पिय पेख्यो" ॥

समस्या बारटे कृष्ण सिंह जी की ।

जो ही एक बार सुनै मोहै सो जनम भरि ऐसो ना असर देख्यो जादू के तमासा में । अरिहु नवावैं सीस छोटे बड़े रीझै सब रहत मगन नित पूर होइ आसा में ॥ देखी ना कबहूं मिसरी में मधुहू में ना रसाल ईख दाख में न तनिक बतासा में । अमृत में पाई ना अधर में सुरंगना के "जेती मधुराई भूप सज्जन की भाषा में" ॥

समस्या कवि जयकरण जी ।

"राधास्याम सेवें सदा वृन्दावन बास करें रहें निहचिन्त पद आस गुरुवर के । चाहें धन धाम ना अराम सों है काम हरिचंद जू भरोसे रहैं नन्दराय घर के ॥ एरे नीच धनी हमैं तेज तू दिखावै कहा गज परवाही नाहिं होहिं कबौं खर के । होइ ले रसाल तूं भले ही जग जीव काज आसी ना तिहारे ये निवासी कल्प तर के ॥"

सब ही गुणग्राही श्रीमान अधीश भी बाबू साहिब से बहुत प्रसन्न हुए और इन को ५००) की खिलअत दी और इन का बहुत कुछ सम्मान किया ।

हमारे चरित्रनायक ने एकबार समस्या पूर्ति की शक्ति श्रीकाशीनरेश के दरबार में भी दिखलाई थी । कहते हैं कि महाराज ने एकबार कोई समस्या दी थी । किसी से उस की पूर्ति न हो सकी । महाराज ने बाबू साहिब

की पूर्ति करने की आज्ञा की। आपने चट लेखनी उठा कर उसी क्षण पूर्ति कर दी। पूर्ति सुनकर एक साहिब बोल उठे "बाबू साहिब को पुराना कवित्त याद होगा"। इस पर बाबू साहिब दस बारह कविता बनाते गये और पूछते गये "कहिये साहिब यह भी पुरानी है"। यहां पर ठीक उर्फ़ी और फ़ैज़ी * का हाल हुआ। अन्त में महाराज के बहुत कहने पर इन्हों ने अपनी लेखनी रोकी। इसी से तो यह "आशुकवि कालिदास" कहलाते थे।

उदयपुर की इसी यात्रा में बाबू साहिब ने श्री १०८ महाराणा सज्जन सिंह जी • सी • एस • आइ को यह पत्र लिखा था।

---

* अकबर के दरबार में फ़ारसी के सुप्रसिद्ध कवि फ़ैज़ी थे जिन्हों ने रामायण महाभारत आदि का फ़ारसी में अनुवाद किया है। यवन होने के कारण लोग उन को संस्कृत पढ़ाना स्वीकार नहीं करते थे तब वह ब्राह्मण के वेष में एक पाठशाला में जाकर संस्कृत पढ़ने लगे। एक दिन संयोगवश कोई विद्यार्थी गुरु महाशय के पीने के लिये जल लाया। जलपात्र देखते ही वे बिछौने से उठ गये। गुरु महाशय को संदेह हुआ और उन से कारण पूछा। शापभय से विह्वल हो कर वे गुरु के चरणों पर गिर पड़े और स्पष्ट कथा कह कर छद्मवेष धारण करने की क्षमा मांगी। गुरु ने प्रसन्न होकर क्षमा की। उन की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। जिस पद को वह एक बार सुनते उन को स्मरण हो जाता था। उन का एक नौकर था उस को कोई पद दो बार सुनने से स्मरण हो जाता था। इसी से अकबर के दरबार में जो कोई नयी कविता की रचना करके ले जाता और एक बार पढ़ता वह कह उठते कि यह हमारा रचा हुआ है मेरे भृत्य को भी स्मरण है। यह कह कर इस को फिर सुना देते थे। दो बार सुनने से उन का नौकर भी उस के कहने में समर्थ हो जाता था। एक समय उर्फ़ी नामक कवि अकबर पादशाह के दरबार में एक क़सीदा बना कर ले गया। वह फ़ैज़ी का हाल खूब जानता था। पादशाह की आज्ञा पा कर जब स्वरचित क़सीदा सुनाने लगा तो एक २ पद पढ़ कर फ़ैज़ी से कहने लगा कि यदि आप का बनाया हो तो इस का दूसरा पद कहिये। इसी प्रकार अपना सारा क़सीदा सुना गया और फ़ैज़ी की बुद्धि चकरा गई। उर्फ़ी भी पादशाह के दरबार में रहने लगा। दोनों में प्रायः नोकझोंक की बातें हुआ करती थीं।

श्री १०८ महाराणा सज्जन सिंह उदयपुराधीश, जी० सी० एस० आई।

श्रीचरणयुगल--सरसोरुहेषु निवेदनम्

कह्यो वृत्त सब आज को, पंडा * जू समझाय।
जल पयान सह श्रीचरन, दरसन हेतु उपाय॥
कवि श्यामल † श्यामल करत, कच श्यामल उद्यान।
मोहन राजसभा रहे, काज करन के ध्यान॥
मैं बिनु तिन की श्रीसभा, ह्वै बकलो हतज्ञान।
संकितहीं रहिहौं सतत, सब बिधि कृतहिं अजान॥
तासो उचित बिचारि जो, आयसु दीजे जोइ।
मोहन मोहि न छाड़हीं, पद जोहन लौं मोइ॥

---

* पंडा जू से पण्ड्या मोहनलाल का आशय है जिन को बाबू साहिब ने हरिश्चन्द्रचन्द्रिका प्रकाशित करने की आज्ञा दी थी। यह राजसभा के मेम्बर थे।

† कवि श्यामल से कविराजा श्यामलदान का मतलब है। वह जाति के चारण थे और अपनी जाति में एक बड़े प्रसिद्ध पुरुष थे। १८३७ ई० में उन का जन्म हुआ था और १२ वर्ष की अवस्था में अपने पिता के संग उदयपुर आये। पिता का परलोक होने पर महाराणा स्वरूप सिंह जी ने उन को उदयपुर शहर में एक हवेली दी और तीसरे नम्बर का स्थान सभा में दिया गया। १८७७ ई० में श्रीमन्महाराणा सज्जन सिंह जी उन के घर पर जाकर उन्हें सरदारों की निशानी चान्दी की छड़ी दी। फिर पांव में पहिनने का उन्हें सोने का लंगर दिया गया। फिर वह कविराजा के पद से सम्मानित किये गये। श्रीमान् सज्जन सिंह प्रायः उन के निवास स्थान और उन के बाग़ में जाकर उन को सम्मानित करते थे। १८८८ ई० में सरकार से उन्हें महामहोपाध्याय का पद प्राप्त हुआ। उदयपुर दरबार के वह एक शुभ-चिन्तक सरदार और अदालत इजलास खास के मेम्बर थे। वह विलायत के रोयायल एशियाटिक सोसाइटी और कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के मेम्बर थे। उन्हों ने महाराणा सज्जन सिंह जी की आज्ञा से "वीरविनोद" नामक राजपुताना का एक वृहत इतिहास लिखा है जो छपकर पूरा होने पर भी हम लोगों के दुर्भाग्यवश अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

देखो "तारीख़ तुहफ़ह राजस्थान"।

श्रीमान् मेवाड़पति सज्जन सिंह जी की प्रशंसा में इन्होंने इन दोहों की रचना की थी। सूर्य्य के साथ श्रीमान् की तुलना करने में इन्होंने अनुप्रास यमक तथा कविता की अच्छी छटा दिखलाई है।

दोहा।

उदय सकल सुचिसंध पर, सुदय जोड़ कर खीस।
उदय महा मंगल महत, उदय उदयपुर ईस॥
उदय होत उदयेस के, देस देस के लोग।
जगे पगे निज काज में, लगे अनेक सुयोग॥
आकर कर जबहीं उदय, बिन प्रेरन बिन बोल।
निज उछाह सब राह में, चले अमोल अलोल॥
आठ मास ठठ ठाट सों, हूँच सींच चहुं पास।
पर यह बिदुषन बरन पै, बरसत बारों मास॥
वह बरसै छिप जात है, यह हरसै ही हात।
हर से होकर देत हैं, दर से नहिं फिर जात॥
यद्दपि दिवाकर बंस में, प्रगटे परम प्रसंस।
तद्दपि गुनन में सुनन में, वाहू के अवतंस॥
ग्रहन ग्रहन में ग्रहपती, बहुधा हतप्रभ होत।
रहन सहन अरु बहन में, दिन दिन दूनी जोत॥
दिन प्रकास अवकास है, रजनी निलय निवास।
सकल समय भय सों रहित, नय सों सहित बिलास॥
उत अंधेर चारो पहर, इत चहुं जाम प्रकास।
यहां एक रस रहत है, महत मरीचमवास॥
तनिक पीठ फेरें अमल, कमल जात कुम्हलास।
यह न पीठ दे दीठ सों, दूर करत अनख्रास॥

जैसे जिते गुन सूर में, तिते तिते भरपूर ।
भूर भूर धारि रहत, यह जन जीवनमूर ॥
इमि उपमा कह दीजिये, होत घनी अपकर्ष ।
केवल पूरन अंश में, यह उत्कर्ष सहर्ष ॥
जियो जियो जुग २ जियो, कियो कियो नित राज ।
लियो लियो भुज जीत कै, दियो दियो सुख साज ॥

प्रतीत होता है कि इन्हों ने निम्नप्रकाशित पत्र अपने सुयोग्य सुहृद् भ्राता को इसी यात्रा में लिखा था। इस का कुछ अंश पेन्सिल से लिखे जाने के कारण पूरा पत्र स्पष्ट पढ़ा नहीं जा सका किन्तु जितना अंश पढ़ा गया है उसी से बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। पाठकगण उस के उद्धृत करने से असंतुष्ट न होंगे।

"विदेश से हम लौट कर न आवें तो इस बात का जो हम यहां लिखते हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या अपने पर फ़र्ज़ समझना। किन्तु हम जल्दी जीते जागते फिरेंगे। कोई चिन्ता नहीं है! सिर्फ़ संयोग के वश हो कर लिखा है। यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना। यह तुम जानते हो कि तुम्हारी भाभी को हम को कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि तुम्हारे ऐसा देवर जिन का वर्त्तमान है उस को और क्या चाहिये। दो बात की हम को चिन्ता है। प्रथम क़र्ज़, दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी सी डिगरी जो बच गई है उस को चुका देना। और जीवन भर दीन हीन मल्लिका की जिस को हम ने धर्म्म पूर्वक अपनाया है रक्षा करनी। कृष्ण को ऊंची शिक्षा संस्कृत अङ्गरेजी और बंगला की हो। जो ग्रन्थ हमारे या बाबू जी के बे छपे रह जांय वे छपैं। इस पत्र को हम ने कलेजा फाड़ फाड़ कर चार दिन में अर्थात् अछनेरा से शुरू करके भिलाडे में ख़तम किया है। इस पर हंसना मत दुःखी होना, क्योंकि अभी तो अणु मात्र भी मरने की सम्भावना नहीं है। शारीरिक कुशल है तनिक भी चिन्ता न करना।"

पत्र में तारीख़ नहीं है। इन के पत्रों में तथा पुस्तकों के समर्पणों में तारीख़ प्रायः नहीं पाई जाती है जिस से उन का समय निर्णय करने में बहुत कुछ असुविधा हुई है।

मेवाड़यात्रा से लौट आने पर यह अस्वस्थ हुये और उसी समय से बराबर कभी रुग्न और कभी स्वस्थ रहने लगे ।

नवम्बर १८८४ ई० में यह बलिया में बोलाये गये थे ।

इन के व्याख्यान के निमित्त जो नोटिस बंटी थी उस में इन्हें "शायर मारूफ़ बुलबुले हिन्दुस्तान" लिखा था । ५ वीं को इन्हों ने "बलियाइनस्टि-ट्यूट" में "भारतवर्ष का कैसे सुधार होगा" इस विषय पर व्याख्यान दिया था । उस समय राबर्ट साहिब बहादुर जिलाधीश सभापति के आसन पर सुशो-भित थे । साहिब बहादुर ने इन की बड़ी प्रशंसा की और बलिया में पधारने तथा व्याख्यान देने के लिये इन को बहुत धन्यवाद दिया । मुंशी बिहारी लाल डिपुटी कलक्टर को धन्यवाद देते हुये साहिब ने कहा था कि आपही की कृपा से मेरा एक ऐसे सज्जन सुयोग्य पुरुष से साक्षात् हुआ । पीछे बाबू साहिब के साथ साहिब बहादुर ने पत्र व्यवहार भी जारी रक्खा ।

इसी समय बलिया देशोपकारिणी सभा की ओर से बाबू साहिब को धन्य-वाद देते हुए एक महाशय ने यह कहा था :—

"आज का दिन धन्य है कि हम लोग इस बलिया में भारतभूषण भारतेन्दु श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी के स्वागत के निमित्त एकत्र हुए हैं । बलिया ऐसे सामान्य स्थान में एक ऐसे बड़े विद्वान और देशशुभचिन्तक का आगमन एक बड़े सौभाग्य और धन्यवाद का विषय है । ऐसे अवसर का उपस्थित होना बड़ा ही दुर्लभ है । हम लोग आज देशोपकारिणी सभा की ओर से जो यहां बलिया इनस्टिट्यूट से एक पृथक् ही सभा है श्रीमान् बाबू साहिब को अनेका-नेक धन्यवाद देते हैं कि इन्हों ने बलिया में इस अवसर पर विराजमान हो कर हमलोगों का मनोरथ सिद्ध किया और अपने मुखचन्द्र से अमृत की वर्षा कर के हम बलिया निवासीअनुरागियों का उत्साह बढ़ाया । श्री कृपासागर जगदीश्वर से हम सब भारतवासियों की यही प्रार्थना है कि श्री बाबू साहिब सरीखे उत्साही, गुणग्राही, स्वदेशानुरागी, उदारचरित्र, सर्वप्रिय पुरुष को दीर्घायु करे और सदा इस दीन भारतवर्ष के हितसाधन में तत्पर रक्खे । आज हम श्रीमान् टी० डी० राबर्ट साहिब बहादुर को भी कोटि २ धन्यवाद देते हैं कि श्रीमान् ने कृपानुरागपूर्वक इस सभा में सुशोभित हो कर हम लोगों को आदर दिया" ।

इसी अवसर पर बलिया में "सत्यहरिश्चन्द्र" तथा "नीलदेवी" का अभि-नय हुआ था । इस अभिनय के सम्बन्ध में एक अङ्गरेजीपत्र के सम्वाद-दाता ने

लिखा था कि "हिन्दी के ये दोनों उत्कृष्ट नाटक खेले गये थे जिन के रचयिता सुख्यात काशीनिवासी बाबू हरिश्चन्द्र हैं। नाटक मण्डली के लिये यह एक बहुत लाभदायक बात थी कि बाबू साहिब स्वयं उपस्थित थे। जिस समय सूत्रधार ने कवि का नामोच्चारण किया दर्शक लोग आकाशभेदी करतलध्वनि करने लगे। इस से विदित होता है कि इस प्रान्त में बाबू साहिब कैसे सर्वजन-प्रिय हैं और लोग इन का कितना सम्मान करते हैं।" *

बाबू साहिब अस्वस्थ ही अवस्था में बलिया आये थे। इस से स्पष्ट विदित होता है कि इन का स्वदेशानुराग कैसा था और यह कैसे देशहितैषी थे। देश की भलाई के आगे निज शारीरिक सुख तथा धन की कुछ परवाह नहीं करते थे।

बलिया ही की यात्रा इन की अन्तिम यात्रा थी। इस यात्रा के अनन्तर इन को और कोई यात्रा का अवसर नहीं मिला। कुछ दिन बाद इन्हें स्वर्ग ही की यात्रा करनी पड़ी, परन्तु बलिया के व्याख्यान में यह स्पष्ट बतलाते गये कि देश का कैसे सुधार होगा।

पूर्वोक्त स्थानों के अतिरिक्त, डुमरांव, पटना, कलकत्ता, इलाहाबाद, हरिहरक्षेत्र आदि स्थानों में यह प्रायः आया जाया करते थे।

---

* These two dramas, especially the former, are master pieces of Hindi composition, and claim no less a personage than the celebrated poet Harish Chander as their author. ...... The theatrical party had the advantage of the distinguished presence of Baboo Harishchandra. The announcement of the paet's name by the *Sutradhar* ( Master of the dramatic ceremonies ) on the day of his first visit to the theatre, was received with loud cheers. This shows how truly popular Baboo Harishchandra is in these provinces, how our countrymen love to idolize him.

# चतुर्थ परिच्छेद ।

## लोकहित कार्य ।

प्रतिभाशाली कवि हरिश्चन्द्र ने जो हिन्दी साहित्य के संस्कार, विद्या के प्रचार, एवं देशोपकार के लिये जन्म ही धारण किया था, इस के भिन्न इन का उद्देश्य ही क्या होता । इसी से जगदीशयात्रा से लौटने के साथ ही इन के मन में यही धुन समाई कि देश का उपकार कैसे होगा । वयोवृद्धि के साथ साथ इन के हृदय में देशानुराग ऐसा प्रबल होता गया कि देशदशा देख २ कर और सोच २ कर यह कभी २ उन्मत्त के समान हो जाते और एकान्त में बैठ कर अश्रुधारा प्रवाहित करते थे । इन्हों ने आदि ही से अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि बिना मातृभाषा * के उद्धार तथा पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार के देश का उपकार वा समाज का सुधार नहीं हो सकता । अतएव इन्हों ने साहित्य तथा समाज के सुधार और उसी द्वारा देशोपकार का व्रत धारण करके उद्योगसागर में अपने कर्तव्य की नौका छोड़ी । नौका के कुछ दूर चल निकलने पर उस की गति के अवरोधक कितने प्रकार के सामान दृष्टिगोचर होने लगे । कितने निरर्थक अपवादों का झक्कड़ उठा; कितने व्यंग की गरज होने लगी; कितने तिरस्कार हास्य की चपला चमकने लगी; कितने कुतर्क की वृष्टि होने लगी; कितने कुटिल झखमगरसमूह गुप्त और प्रकट रीति से इस नौका को जलनिमग्न करने की चेष्टा करने लगे । परन्तु निर्भीक कर्णधार हरि-श्चन्द्र नौका को आगे ही बढ़ाते गये और मन में यही दृढ़ कर लिया कि "[illegible] खाहा बाद मा कश्ती दराज अंदाख्तेम"—होवनि होय सो होय प्रभु, अब तो नउका इस सागर डारों ! धन की हानि हुई, शारीरिक कष्ट हुआ, कभी २ मानसिक व्यथा भी सहनी पड़ी, परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ हरिश्चन्द्र अपने लक्ष्य से न चुके । जो व्रत धारण किया उसे आजन्म निबाहा और यही अटल सिद्धान्त इन का सर्वदा बना रहा ।

अनेक वर्ष पीछे जब इन्हों ने "भारत दुर्दशा" नामक नाटक लिखा तो उस के पांचवें दृश्य की कमेटी में भी एक देशी महाशय के मुख से यही कह-लाया है कि "हाय ! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिल कर एक-

---

* " नानान् देशेर नानान् भाषा ।
बिने स्वदेशी भाषा मिटे कि आशा "—निधू बाबू ।

भिन्न हो कर विद्या की उन्नति करो, कला सीखो, जिस से वास्तविक कोई उन्नति हो। क्रमशः सब कुछ हो जायगा"। अतएव यह आदि ही से स्वयं इसी कार्य्य में कटिबद्ध हुए।

## चौखम्भा स्कूल।

उस समय बनारस में सरकारी स्कूल और पादड़ियों की पाठशाला थीं तो सही, परन्तु साधारण जन फ़ीस दे कर अपने लड़कों को वहां पढ़ाने में समर्थ नहीं थे। अतएव यह अपने कनिष्ठ भ्राता की सहायता से बालकों को अपने घर ही पर पढ़ाने लगे। पहले ५ ही लड़के थे। क्रमशः जब बालकों की संख्या ३० हुई तब इन्हों ने अध्यापक नियुक्त कर दिया। फिर १८६७ में, जब इन की अवस्था १७ वर्ष की हुई इन्हों ने नियमित रीति से चौखम्भा में एक स्कूल संस्थापित किया जिस में अधिकांश बालक बिना फ़ीस पढ़ते थे। उन को पुस्तक पेन्सिल, स्लेट, काग़ज़ इत्यादि वस्तु भी बिना मूल्य दी जाती थी। अनाथ बालकों को खाना कपड़ा भी दिया जाता था।

इस स्कूल के शुभचिन्तक परम विद्यानुरागी राजा शिवप्रसाद (*) सी॰ एस॰ आइ॰, आनरेबुल सर सय्यद अहमद खां बहादुर (†) सी॰ एस॰ आइ॰-तथा

---

* यह राजा डालचन्द के परपौत्र थे। सं॰ १८८० में बनारस के भाट महल्ले में इन का जन्म हुआ। पांच वर्ष की अवस्था से आरम्भ करके १८। १८ वर्ष तक फ़ारसी, संस्कृत इत्यादि पढ़ते रहे। १६ वर्ष की अवस्था में भरतपुर में दीवान हुए। फिर मुदकी की लड़ाई में यह सरकारी गुप्तचर बनाये गये। लड़ाई समाप्त होने पर शिमला सरकारी दफ़्तर में नौकर हुए। सिपाहीविद्रोह के पश्चात् यह कानपुर ज़िले में स्कूल इन्स्पेक्टर बनाये गये। इसी काम में इन का १०००) तक वेतन हो गया। १८७० ई॰ में इन्हें सी॰ एस॰ आइ॰ की पदवी मिली। १८८३ में यह गवर्नरजनरल के कौन्सिल के मेम्बर नियुक्त हुए। कौंसिल में इलबर्टबिल उपस्थित होने के समय देशियों की निन्दा करने के कारण कलकत्ता में लोगों ने इन का पुतला जलाया था। यह बड़े विद्यानुरागी थे। कई पुस्तकों की रचना भी की थी। इन्हों ने उर्दू में एक अपनी जीवनी भी लिखी है।

† १७ दिसम्बर १८१७ ई॰ में इन का जन्म हुआ था। इन के नाना और दादा दोनों ही दिल्ली में वज़ीर थे। इन की शिक्षा अच्छी नहीं हुई थी परन्तु

बाबू भूदेव मुकुर्जी सी० आइ० ई० (*) प्रभृति थे। राजा शिवप्रसाद ने एक बार अपनी रिपोर्ट में यह आशय प्रगट किया था कि "हमारे युवक मित्र बाबू साहिब स्कूल की स्थिति एवं बालकों की उन्नति के निमित्त स्वयं इतना वित्त देते हैं और इतना करते हैं जिस में परहित साधन हो और देशी लोगों के विद्योपार्ज्जन में सुविधा हो"। सर सय्यद साहिब ने भी ऐसा ही रिमार्क किया था।

मई सन् १८७३ ई० में इस स्कूल के बालकों को पारितोषिक बांटने के समय भी जब एम० ए० शेरिङ्ग, डाक्टर लाज़रस एम० डी०, श्रीयुत बालकृष्ण

---

बुद्धि बड़ी ही प्रखर थी। अपने सम्बन्धियों की सम्मति के विरुद्ध इन्हों ने सरकारी नौकरी स्वीकार की। पहिले सदर अमीन के दफ़्तर में सरिश्त:दार हुए। होते२ सब जज का पद मिला। इन्हों ने कई स्थानों में काम किया। बनारस में भी सबजज थे। मुरादाबाद और ग़ाज़ीपुर में स्कूलसंस्थापन के कारण यही हुए। अलीगढ़ में कालेज बनवाया (१८७५)। उस समय बाबू हरिश्चन्द्र को एक पत्र लिखा था जो अन्यत्र प्रकाशित हुआ है। यह अपने दो लड़कों को ले कर बुढ़ापे मे विलायत भी गये थे। मुसलमानों में ये बड़े भारी समाज-संशोधक और विद्याप्रचारक हुए। इन के एक पुत्र महम्मद महमूद इलाहाबाद हाइकोर्ट के जज हुए थे। उर्दू में इन की बड़ी भारी जीवनी छपी है। इन्हों ने कईएक ग्रन्थ भी बनाये हैं।

* इन का जन्म १८२५ ई० में कलकत्ता में हुआ था। पहिले संस्कृत कालेज में पीछे हिन्दु कालेज में इन्हों ने शिक्षा पाई। कुछ दिन हवड़ा स्कूल के हेड मास्टर और हुगली नार्मल स्कूल के सुपरिंटेन्डेण्ट का काम करने पर यह स्कूल के असिस्टण्ट इन्स्पेक्टर हुए फिर तो बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों जगह के सुप्रबंधकर्त्ता इन्स्पेक्टर हुए। कुछ दिनो के लिये डाइरेक्टर भी हुए थे। १८७७ ई० में इन्हों ने सी० आइ० ई० का पद प्राप्त किया और १८८२ में बंगाल कौन्सिल के मेम्बर हुए। १८९७ में इन का परलोक हुआ। इन्हों ने पारिवारिक प्रबन्ध आदि कई पुस्तकों की रचना की है। समाज सुधार के लिये आज तक हिन्दी, बंगला वा उर्दू में वैसी कोई पुस्तक नहीं बनी है। इन्हों ने बिहार में हिन्दी प्रचार के लिये बहुत यत्न किया था। कचहरियों में हिन्दी जारी कराने में भी इन्हों ने बड़ी चेष्टा

ईश्वरशरण सिंह बहादुर, श्रीयुत बाबा सुमेर सिंह जी साहिब ज़ादे प्रभृति कतिपय महापुरुषगण उपस्थित थे, राजा शिवप्रसाद सी० एस० आइ सभापति ने यह वक्तृता की थी कि "......इस का व्यय अद्यपर्य्यन्त श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी के आधीन है, दूसरा कोई सहायता नहीं करता। बड़ी लज्जा की बात है कि यह काशीपुरी बड़े २ महाजनों से भरी हुई है, अब तक किसी का जी न उभड़ा कि उक्त बाबू साहिब को कुछ सहायता दें। केवल वे अपनी शक्ति से इस की रक्षा किये जाते हैं।......

१८७९ ई० तक बाबू साहिब सब कुछ अपने पास से व्यय करते रहे। १८८० ई० से सरकार से पहिले २०) और कालान्तर में ४५) मासिक सहायता इस स्कूल को मिलने लगी। म्युनिसिपैलिटी ने भी २००) रुपया प्रति वर्ष देना आरम्भ किया। पहिले यह प्राइमरी स्कूल था और चौखम्भा स्कूल कहलाता था। १८८५ ई० में बाबू साहिब के स्वर्गवासी होने पर बालकों की पारितोषिक वितरण के समय राजा शिवप्रसाद ने प्रस्ताव किया कि इस का नाम "हरिश्चन्द्र चौखम्भा स्कूल" रखा जाय और आडम साहिब बहादुर कलक्टर ने भी उस का अनुमोदन किया। तब से यह उसी नाम से प्रसिद्ध है। १८८८ ई० में मिडल स्कूल हुआ। फिर हाइस्कूल हो गया और बाबू साहिब की कीर्ति प्रकाशित कर रहा है जिसे चिरस्थाई रखना लोगों का कर्त्तव्य है।

## समाचारपत्र।

इन्होंने विद्या प्रचार के लिये समाचारपत्रों की ओर भी ध्यान दिया। उस समय तक कोई पत्र ऐसा नहीं निकलता था जो हिन्दी का पत्र कहा जाय।

---

की थी। इन्हीं के समय से बिहार में हिन्दी भाषा में पुस्तकें लिखी जाने लगीं। इन्हों ने संस्कृत विद्या की उन्नति के लिये डेढ़ लाख रुपया, और एक यंत्रालय, एडूकेशन गज़ट और स्वरचित सब पुस्तकों की आमदनी दे दी है जिस के लिये भारतवर्ष भर के शिक्षित समाज साधुवाद प्रदान करते हैं। ब्राह्मणत्व और आचार व्यवहार के लिये तो यह आदर्शस्वरूप थे। इन का वृहद् जीवनचरित बंगभाषा में छप रहा है। पूरा होने पर हिन्दी में भी छापा जायगा। इन के बड़े पुत्र सदराला थे और दूसरे बा० मुकुन्ददेव मुकर्जी यहीं डिपुटी कलक्टर हैं। धर्मनिष्ठता और ड्यूटीशिक्षा की यह मानों मूर्ति ही हैं। यह महाशय बांकीपुर धर्मसभा के उपसभापति हैं।

यों तो १८४५ ई० में राजा शिवप्रसाद की सहायता से "बनारस अखबार" का जन्म हुआ था परन्तु वह हिन्दी पत्र कहलाने के योग्य नहीं था। केवल हिन्दी अक्षर में था। अवद उर्दू ही के भरे रहते थे जैसे आजकल विहार की कचहरियों के कागज़ों में देखा जाता है। उस का मोटो यह था।

"सुभनारस अखबार यह शिव प्रसाद आधार।
बुधि विवेक जन निपुन को चित हित आगार॥
गिरजापति नगरी जहां गंग अमल जल धार।
नेत शुभाशुभ मुकर को लखो बिचार बिचार॥"

जैसा मोटो वैसा ही लेख। यदि प्रतीति न हो तो लेख का भी नमूना देखिये।

"यहां जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहिब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उस का हाल कई दफ़ा ज़ाहिर हो चुका है अब वह मकान एक आलीशान बनने का निशान तयार हर चेहार तरफ़ से होगया बल्की इस के नकशे का बयान पहिले मुन्दर्ज है सो परमेश्वर के दया से साहिब बहादुर ने बड़ी तनदेही और मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है।"

पाठकवर्ग मन में कहते होंगे कि अब बस कीजिये नमूना देख चुके। अतएव हम भी और लिखना व्यर्थ समझते हैं। परन्तु उस पत्र के विषय में श्री काशिराज के विद्यागुरु मुंशी शीतल सिंह जी ने जो एक रुबाई लिखी थी उसे पाठकों को अवश्य दिखलावेंगे।

"बनारस में इक जो बनारस गज़ट है।
इबारत सब उस की अजब जट पट है॥
मुहर्रिर बिचारा तो है बा सलीक़ा।
वले क्या करे वह कि तहरीर भट है॥"

१८५० ई० में बाबू तारामोहन आदि ने हिन्दीसुधार के निमित्त "सुधाकर" पत्र निकाला था। हां! उस की दशा कुछ सुधरी हुई थी तथापि वह पूर्ण रीति से हिन्दी पत्र नहीं कहलाया जा सकता था। हरिश्चन्द्र के हृदय में, जो हिन्दी के उद्धार में कटिबद्ध हुये थे, हिन्दीपत्र का अभाव बहुत खटकने लगा। इन से नहीं रहा गया। इन्हों ने स्वयं हिन्दीपत्र निकालना आरम्भ किया।

## कविवचनसुधा ।

भाद्रपद सम्वत् १९२६ ( १८६८ ई० ) में "कविवचनसुधा" नामक पहिला मासिकपत्र निकला। उस के शीर्ष का दोहा यह था—

"सुधा सदा सुरपुर बसै, सो नहिं तुम्हरे योग।
तासों आदर देहु अरु, पीवहु एहि बुध लोग॥"

पहिले तो उस में प्राचीन कवियों की कविता प्रकाशित होती थी। कविदेव * कृत "अष्टयाम", दीनदयालु † कृत "अनुराग बाग", कवि मलिक महम्मद जाइसी ‡ कृत "पद्मावत", कबीर + की "साखी", कविवर

---

* देवकवि देवदत्त ब्राह्मण समाने गांव ज़िला मैनपुरी निवासी, जिन का जन्म सं० १६६१ में हुआ, अपने समय के अद्वितीय काव्य के आचार्य्य थे। प्रेमतरंग, भावविलास, रसविलास, रसानंदलहरी, सुजानविनोद, काव्य-रसायन, पिंगल, अष्टयाम, देवमायाप्रपंच नाटक, प्रेमदीपिका, सुमिल विनोद, राधिकाविलास ये १२ ग्रंथ इन के बनाये पाये जाते हैं।

† यह हरिश्चन्द्र के समय में जीवित थे और इन के पिता के सभासद भी थे। इन के रचित अन्योक्ति कल्पद्रुम और अनुरागबाग दोनों अच्छे ग्रंथ हैं।

‡ सं० १६८० में जन्म हुआ। अलाउद्दीन बादशाह ने चित्तौड़ के राजा रत्नसेन को धोखा देकर बन्दी बना लिया था और आज्ञा की थी कि जब तक वह अपनी परम सुन्दरी स्त्री पद्मिनी ( पद्मावती ) को नहीं बोला देंगे मुक्त न किये जायंगे। रानी ने यह समाचार पा कर बादशाह को कहला भेजा कि मैं आती हूँ और सहेलियों के बहाने सात सौ डोलियों में हथियारबन्द सिपाहियों को इस ढब से छिपा लाई कि आप भी सलामत निकल गई और पति को भी बन्दीखाने से निकाल ले गई। चित्तौड़ का दुर्ग विजय होने पर भी वह अपनी सहेलियों के साथ चिता पर बैठ कर भस्म हो गई। बादशाह को खाकही हाथ लगी। उस का सतीत्व नष्ट नहीं कर सके। यही कहानी कवि ने शेरशाह के राजकाल में दोहा चौपाइयों में लिखा था। वही पद्मावती के नाम से प्रसिद्ध है। कवि ने भीमसेन के बदले रत्नसेन लिखा है यह भूल है। २५० वर्ष हुआ कि एक जन अलावेल खां ने बंगभाषा में इसी का स्वतंत्र अनुवाद किया है। देखो दिनेशचन्द्र सेन कृत "बंगभाषा ओ साहित्य" पृ० ३११।

+ कबीर जी सं० १५१०। इन्हों ने एक धर्मपंथही निराला चलाया है।

बिहारी * के "दोहे", गिरिधर दास † क्रत "नहुषनाटक", शेखसादी ✠ क्रत "बूसितां" का छन्दबद्ध अनुवाद इत्यादि अनेक ग्रन्थ खंड २ करके प्रकाशित हुए।

पीछे यह विचार करके कि जिस समय अन्य प्रान्त के लोग अपनी २ भाषा की उन्नति करके बढ़ते चले जाते हैं बिना गद्य रचना के केवल कविता प्रकाश ही से काम न चलेगा बाबू साहिबदूसरे वर्ष से "कविबचनसुधा" को पाक्षिक कर के उस में भिन्न २ विषयों के लेख प्रकाशित करने लगे। शीर्ष का दोहा वही रहा परन्तु पीछे यह दोहा भी साथ २ छपने लगा।

"नित नित नव यह कविबचन, सुधा सकल सुख खान।
पीवहु रसिक अनन्द भरि, परम लाभ जिय जान॥"

कुछ काल के अनन्तर इन्हों ने "कविबचनसुधा" को पाक्षिक से साप्ताहिक कर दिया और उस में सामाजिक, धार्म्मिक, राजनैतिक सब प्रकार के लेख छपने लगे एवं सब विषयों पर उस में समालोचना होने लगी और उस का सिद्धान्तवाक्य यह हुआ।

"खल गनन सों सज्जन दुखी मत होहिं हरि पद मति रहै।
उपधर्म्म छूटै स्वत्व निज भारत लहै कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होहिं जग आनन्द लहै।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै॥

---

* बिहारीलाल चौबे जिन का सं० १६०२ ई० में जन्म हुआ था जयसिंह कछवाहे महाराज आमेर के यहां थे। जयपुरकी तवारीख़ देखने से प्रगट होता है कि राजा मानसिंह के समय से जो सं० १६०२ में थे सं० १८७६ तक तीन जयसिंह हो गये हैं, परन्तु लोगों को यह निश्चय है कि यह कवि महाराज मानसिंह के पुत्र जयसिंह के साथ थे जो महागुणग्राहक थे। बिहारी की सतसई हिन्दीभाषा में एक अमूल्य रत्न है।

† गिरिधरदास—बाबू हरिश्चन्द्र के पिता गोपालचन्द्र।

✠ शेखसादी को तो प्रायः सभी फ़ार्सी पढ़नेवाले जानते हैं। फ़ार्सी पढ़नेवाले बालक पहिले इन्हीं का बनाया करीमा ग्रन्थ पढ़ते हैं जिस में शिक्षा की बातें भरी हुई हैं। गुलिस्तां और बूसितां भी इन के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

इस में कोई२ बात किसी समाज की कर्णकटु ही प्रतीत हुई होगी तथापि हरिश्चन्द्र ने उस पत्र का यही सिद्धान्त स्थिर किया। जिस भाव तथा विचार से किया इस को वही भलीभांति जानते थे, परन्तु देशभक्त तथा राजभक्त हरिश्चन्द्र का अभिप्राय बुरा न रहा होगा इतना कहने का हमें साहस होता है।

ऐसा सिद्धान्तवाक्य होने पर भी उस पत्र का देश विदेश में सर्वत्र मान होने लगा था। देशी भाषा के समाचार पत्रों के सम्बन्ध में सरकारी रिपोर्ट में एक बार लिखा गया था कि "कविवचनसुधा हिन्दी भाषा का एक प्रसिद्ध एवं सर्व जन प्रिय पत्र है। उस की भाषा शुद्ध और आदर्श स्वरूप होती है। उस के विषय अत्युत्तम एवं रोचक होते हैं। यह उस के योग्य तथा विज्ञ सम्पादक के यत्न का फल है। उस के सम्पादक देशी भाषाओं के पण्डित ही नहीं हैं किन्तु एक असाधारण कवि भी हैं।"

फ्रांस देशीय एक विद्वान "गार्सिन दी तासी" अपने पत्र "लीलैंगुआ डेस हिन्दुस्तानी" में बाबू साहिब की तथा उस पत्र की फ्रान्सीसी भाषा में सदैव प्रशंसा करते रहे। १८७२ में जो उन्हों ने उस की समालोचना की थी वह अनुवाद सहित प्रगट की जाती है। *

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने उस क०व० सुधापत्र के विषय में स्व-रचित "बिहारी विहार" नामक ग्रंथ में लिखा है कि "बाबू साहिब ने कवि-वचन-सुधा नामक पत्र निकाला और अपनी कविता से सहृदयों के हृदय को प्लावित करना आरम्भ किया। दूर से लोग इन की मधुर कविता सुन आकृष्ट होते थे और समीप आ मधुर श्यामसुन्दर घुंघराले बालवाली मधुर मूर्त्ति देख बलिहारी होते और वार्त्तालाप में इन के मधुर भाषण, नम्रता और शिष्ट व्यवहार से बद्धप्रबद्ध हो जाते थे।"

---

* Le Kabi-Bachan Sudha or Kavi-Vachan Sudha continue, comformement à son titre, de publier des extraits d'ouvrages hin dis, et c'est toujours surtout par la que ce journal se distingue des autres journaux hindis et urdus. &c. &c.

अनुवाद—कविवचनसुधा अपने नाम के अनुसार हिन्दी के उत्तम ग्रंथों से उल्लेख करता है और यह सर्वदा इस कारण से विख्यात है कि अन्य हिन्दी तथा उर्दू पत्रों से यह विलक्षण है इत्यादि।

उस पत्र को २०० प्रतियां शिक्षाविभाग में भी ली जाती थीं, परन्तु कुछ दिन बाद "परहित हानि लाभ जिनकेरे" ऐसे महापुरुषों की कृपा से सरकार से उस की खरीदारी बन्द हो गई। उस पत्र में कभी २ अंगरेजी लेख भी छपा करता था। गोस्वामी राधाचरण जी, बाबू गदाधर सिंह, पं० बापूदेव शास्त्री, बाबू काशीनाथ, लाला श्रीनिवास दास, पं० शरयूप्रसाद, पं० मदनमोहन मालवीय, बाबा सुमेर सिंह, बाबा संतोष सिंह, पं० दामोदर शास्त्री, बाबू तोताराम, बाबू नवीन चन्द्र राय प्रभृति का लेख भी उस में प्रकाशित हुआ करता था। कुछ दिन तक हमारे मित्रवर पं० रामशंकर व्यासजी, जो आज कल सरहरी ष्टेट जिला गोरखपुर में मनेजर हैं, उस को सम्पादित करते थे।

समय पर नहीं निकलने के कारण तथा पंडित चिन्तामणि के आग्रह से बाबू साहिब ने उस पत्र को उक्त पंडितजी को देदिया था और सूचना देदी थी कि "क० व० सुधा के कार्य्य मात्र का पूर्ण अधिकार पंडित चिन्तामणि को दिया गया, आगे से सब काम वही सम्हालेंगे केवल लेखादि की हमारी सहायता रहेगी।"

कुछ दिन पीछे बाबूसाहिब ने उस पत्र से अपना सम्बन्ध मात्र छोड़ दिया जिस से लोगों को बड़ा ही खेद हुआ। इन के उस पत्र से सम्बन्ध छोड़ने पर "काशीपत्रिका" पत्र के सम्पादक ने लिखा था कि:—

"बड़े ही सोच की बात है कि हमारे परम मित्र श्रीहरिश्चन्द्र जी ने कविवचन सुधा से अपना सम्बन्ध बिल्कुल तोड़ दिया। बाबू साहिब ने जिस स्वतन्त्रता के साथ इस समाचारपत्र को साढ़े सात वर्ष तक चलाया था और इस के कारण जैसी कुछ हिन्दी की उन्नति हुई उस का वर्णन नहीं हो सकता है। हमें कुछ भी आशा नहीं है कि यह समाचार पत्र किसी दूसरे के पुरुषार्थ से चल सकेगा और हम अपने देशवालों की ऐसी भारी हानि पर जी से अफ़सोस करते हैं।"

सचमुच यही बात देखने में आई। जब से बाबू साहिब ने उस की ओर से अपनी लेखिनी रोकी उस की रद्दी सी दशा हो गई। रोचक वा स्वतंत्र लेख उस में कम छपने लगे। इसी पर "उचितवक्ता" के सम्पादक हमारे मित्र पं० दुर्गाप्रसाद जीने सं० १९३९ ( १८८२ ई० ) के चैत्र में लिखा था "कि क्या यह वही पत्र है जो सदैव पक्षपात रहित बातों ही के कहने में तत्पर रहता था और

सर्वदा निःशंक हो चोखी बातें कह न्याय की बातों ही का पक्षपाती रहता था ?

और क्या यह वही क० व० सुधा है जो यथार्थ देशहितैषी बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित होती थी जिस में स्वतंत्रता के लेख छपते थे ?

"इल्बर्ट बिल के आन्दोलन के समय राजा शिवप्रसाद के पक्ष करने से साधारण सहानुभूति भी उस से जाती रही। अन्त में उस ने ऐसी कृतघ्नता दिखलाई कि अपने जन्मदाता के स्वर्गवास होने पर एक दिन भी अपना कालम काला नहीं किया। उस का फल भी उस को शीघ्र ही भोगना पड़ा। सब की आंखों में घृणास्पद हो कर १८८५ ही से उस ने भी संसार में अपना मुंह दिखलाना बन्द कर दिया।

## हरिश्चन्द्रमेगज़ीन

तथा

## हरिश्चन्द्रचन्द्रिका।

केवल "कवि वचन सुधा" ही के प्रकाश से इन्हें सन्तोष नहीं हुआ। अकतूबर १८७३ ई० से यह एक अत्युत्तम मासिक पत्र "हरिश्चन्द्रमेगज़ीन" के नाम से प्रकाशित करने लगे। उस समय तक बाबू साहिब ने लोगों का उत्साह बढ़ाकर बहुतों को सुलेखक भी बना लिया था। मेगज़ीन में प्रायः ऐसे २ उत्तम लेख छपते थे जो आज भी बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। बाबू साहिब का "पांचवां पैगम्बर", मुन्शी ज्वालाप्रसाद का "कलिराज की सभा", बाबू तोताराम का "अद्भुत अपूर्व स्वप्न", मुन्शी कमलासहाय का "रेल का विकट खेल" इत्यादि लेख बड़े मनोहर हैं।

फ्रांस देशान्तर्गत पेरिस नगर निवासी "गार्सिन दी तासी" ने उस की भी बड़ी प्रसंशा की थी और एक बार लिखा था कि "हरिश्चन्द्र प्रसिद्ध हिन्दी कवि भाष्यकार एवं समालोचक हैं और अंगरेज़ी भाषा में भी पद्य गद्य लिखते हैं। इस मेगज़ीन में प्राचीन अप्रकाशित हिन्दी काव्य भी छपा करता है" *

* Le Haris Chandra's Magazine de continue a obtenir la feveur quil merite. On ytrouve tout ceque le prospectus avait ammouncé, Haris Chandra est à la fois un excellent

यह मेगज़ीन ८ संख्या तक निकली, फिर जून १८७४ से वही "हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" के नाम से प्रकाशित होने लगी जिस के शीर्ष पर निम्नलिखित श्लोक तथा छन्द छपा करते थे।

श्लोक—"विद्वत्कुलामलस्वान्तकुमदामोददायिका।
आर्य्याज्ञान तमोहन्त्री श्रीहरिश्चन्द्र चन्द्रिका॥

छन्द—कबिजन कुमुद गन हिय विकासि चकोर रसिकन सुख भरै। प्रेमिन सुधा सों सींचि भारत भूमि तम आलस हरै॥ उद्यम सुऔषधि पोसि बिरहिन दाहि लख चोरन दरै। हरिचन्द की यह चन्द्रिका प्रकासि जग मंगल करै॥

उस के सहायक सम्पादक (Contributors) श्री बाबू ऐश्वर्यनारायण सिंह, श्री पंडित ईश्वरचन्द्रविद्यासागर*, श्रीदामोदर शास्त्री बिहार*, पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी बनारस कालेज *, कुंअर ज्वालाप्रसाद इलाहाबाद† श्री पं० बापूदेव शास्त्री, स्वामी, दया नन्द ए, पंडित गुरुप्रसाद युनिवर्सिटी लाहौर, मुंशी ज्वालाप्रसाद वकील इलाहाबाद, श्री राधा कृष्णजी चीफ़ पण्डित लाहौर, पं० बेचनरामजी बनारस कालेज, पं० ढुंढिराज शास्त्री, पं० संत सिंह अमृतसर, बाबा शालिग्राम दास अकतमर, मि० निवलेट साहिब, रेवरेंड एम० ए० शेरिंग, मु० बी० प्रसाद, बाबू गोकुलचन्द्र (हरिश्चन्द्रजी के कनिष्ठभ्राता), बाबू काशीनाथ सिरसा, बाबू गदाधर सिंह कानपुर, बाबू अक्षय कुमार मित्र, बाबू उमाचरण दत्त तिडला, मुं० तोताराम, मुं० आत्माराम इत्यादि थे।

---

poete hindi, un commentateur habile, an spirituel critique. Il ecrit aussi en anglais en vers et en prose, comme il le fait en hindi. Son "Magazine" ouesd surtt precieux pour-les amateurs dlu hindi en ce quon ytrouve nombre de morceaux choisis des paetes hindi classiques dont les ouvrages n existent qu'en manuscrit.

* इन लोगों का संक्षिप्त वृत्तान्त पृथक परिच्छेद में लिखा जायगा।

† यह पीछे ज़िला और शेसन जज हो गये थे।

ए इन लोगों का वृत्तान्त अन्यत्र लिखा गया है।

उस चन्द्रिका का प्रकाश रसिक चकोरों को बहुत दिन तक आनन्द देता रहा। उदयपुर महाराणा के कौन्सिल के मेम्बर एवं बाबू साहिब के प्राचीन मित्र पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने इन से कहा कि "मुझे मोहन चन्द्रिका निकालने की इच्छा है। आप हरिश्चन्द्रचन्द्रिका का भी भार मुझे दे दीजिये दोनों साथ प्रकाशित हुआ करें"। इन्हों ने १८८० के चैत्र में चन्द्रिका उन्हें दे दिया। तब से वह कुछ दिन "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका" के नाम से काशी में छपी। फिर १८८१ ई० में नाथद्वारा उदयपुर में जाने से उस में "विद्यार्थीपत्र" भी मिल गया और पं० दामोदर शास्त्री उसे सम्पादन करने लगे। उन का उत्साह ढीला पड़ने पर चन्द्रिका अस्त हुई। पंड्या जी के साथ जो प्रतिज्ञापत्र लिखा गया था उस में दो बातें मुख्य थीं कि कभी पंड्या जी पत्र का नाम परिवर्तन न करें और बाबू साहिब की अनुमति बिना यदि छ: मास पर्य्यन्त उस का प्रकाश बन्द रखें तो बाबू साहिब की जैसी इच्छा हो बिना रोक टोक उसे प्रकाशित करें। इसी से १८८४ में भारतेन्दु ने "नवोदिताहरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" के नाम से फिर काशी में उस का प्रकाश आरम्भ किया था परन्तु दो ही महीना पीछे यह आप ही अस्त हो गये। इन के कनिष्ठ भाई बाबू गोकुलचन्द्र ने तीसरा नम्बर प्रकाशित किया। यद्यपि प्रतिज्ञापत्र के अनुसार पंड्या जी को अब कोई अधिकार नहीं था तथापि उन्हों ने नोटिस दी कि "बाबू साहिब पत्र का अधिकार हमें दे गये हैं और कोई उस को प्रकाश न करे"। बस बाबू गो-कुलचन्द्र भी चुप बैठ गये और भारतेन्दु के साथ ही चन्द्रिका भी लीन हो गई।

कवि व० सुधा एवं चन्द्रिका के मूल्यादि नियमावली का विवरण भी पद्य ही में छपा रहता था यथा :—

कविवचनसुधा की न्यौछावर,

षट मुद्रा पहिले दिये, बरस बिताये सात।
साथ चन्द्रिका के लिये, दस में दोउ मिल जात॥
बरस गये बारह लगे, दो के दो महसूल।
अलग चन्द्रिका सात खट, बचनसुधा सम तूल॥
दो आना इक पत्र को, टका पोसटेज् साथ।
सारध आना आठ है, लहत चन्द्रिका हाथ॥

प्रति पंगति आना युगल, जो कोउ नोटिस देइ ।
जो विसेस जानन चहै, पूछि सबै कछु लेइ ॥

## बालाबोधिनी ।

१८७४ ई० से स्त्रीशिक्षा के निमित्त गवर्नमेंट के इच्छानुसार बाबू साहिब "बालाबोधिनी" नामक पत्र निकालने लगे । उस के शीर्ष पर जो दोहा प्रकाशित हुआ करता था उसी से उस का उद्देश्य प्रगट होता है । दोहा यह है:—

दोहा—जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति ।
जो नारी सोई पुरुष, या में कछु न बिभक्ति ॥
पितु पति सुत करतलकमल, लालित ललना लोग ।
पढ़ैं गुनैं सीखैं सुनैं, नासैं सब जग सोग ॥
बीरप्रसविनी बुधवधू, होय हीनता खोय ।
नारी नर अरधंग की, सांचेहि स्वामिनि होय ॥

यद्यपि वह पत्रिका स्त्रीशिक्षा के निमित्त प्रकाशित होती थी और ललनागण के उपयोगी उत्तमोत्तम लेखों से भूषित रहती थी तथापि उस में अन्य प्रकार के भी लेख छपा करते थे । मुद्राराक्षस नाटक का कई अंक उसी में छपा था । उस की १०० प्रतियां सरकार में ख़रीदी जाती थीं, परन्तु पीछे उस की भी ख़रीद बन्द हो गई । १८७४ ई० से ४ वर्ष पर्य्यन्त बराबर प्रकाशित हो कर "बालाबोधिनी" मौन हो गई क्योंकि उस के बाहरी ग्राहक बहुत कम थे । तौ भी कवि व० सु० के साथ मिल कर नाम मात्र को कुछ दिन और जीती रही जैसा कि निम्नलिखित सूचना तथा बाबू साहिब के पत्र से विदित होता है ।

"बालाबोधिनी, कविवचन सुधा में मिला दी गई । इस का कारण श्री युत बाबू हरिश्चन्द्र के पत्र से विदित होगा जिस को छापने की उन की अनुमति नहीं थी तथापि हिन्दी भाषा के रसिकों पर उन के हृदय का अनुराग प्रकाश करने ही के लिये उन की इच्छा के विरुद्ध भी हम प्रकाश करते हैं । इस विषय में हम को विशेष वक्तव्य नहीं है । इस पत्र ही से सब कुछ विदित हो जायगा ।

"श्री युक्त प्राणोपम पं० चिन्तामणि शर्म्मणि भगवत् स्मरण पूर्वक निवेदन-

मिटे। हमारे वात्सल्य का परमपात्र कविवचनसुधा पत्र जो अब आप के हस्तगत है ऐसी सुरीत से समय पर निकलता है कि जैसा उचित है। हमारे लगाये इस अमृत वृक्ष के लालन पालन का फल तुम्हें ईश्वर देगा क्योंकि मुझ से कुछ इन दिनों दैव ऐसा रुष्ट है कि मैं इस के पुरस्कार में आप को आशीर्वाद के अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकता और न जैसी कि लोक प्रवृत्ति देखता हूं उस से कुछ दूसरों से आशा है। हाय! पश्चिमोत्तर देश के हेतु मैं सिर पटक दूं क्या करूं कुछ सूझता ही नहीं। न जाने क्या हिन्दुओं से ऐसा अपराध बना है जो करुणामय हो कर भी ईश्वर इन से ऐसा विमुख है।

यह तो हुआ। अब नई बात सुनिये। बालाबोधिनी का नाम हिन्दी समाज के सामाजिक मात्र जानते हैं। यह पत्रिका यहां की स्त्रियों को कितनी उपकारिणी थी यह मुझे वक्तव्य नहीं। जगत साक्षी है। पर मैं बड़े शोच से लिखता हूं कि मैंने उस का मुद्रण होना आगे से रहित किया। इस का कारण आप भली भांति जानते हो कि सरकार की सहायता न मिलना मात्र है क्योंकि स्वयं व्यय देकर मुझे सावकाश नहीं। इस के न चलने का जो दुःख है वह कहने के बाहर है क्योंकि अपने लगाये विष वृक्ष और अपने अंक में लालित कुपुत्र का भी संसार को स्नेह होता है। भला यह तो अमृतलता और प्राण से भी अधिक प्रिया सन्तति थी! सरकार ने इस नये वर्ष से इस का लेना बन्द किया। इस का कारण हमारी हिन्दी है जो सर्वदा बिरोधियों के हृदय में खटकती है। यह सच है कि बड़ों को नेत्र नहीं होते केवल कान होते हैं। अन्यथा हिन्दी की यह दुर्दशा नहीं होती। ............अब इस विषय में मुझे वक्तव्य यह है कि यद्यपि इस को मैं ने बन्द कर दिया तथापि मुझ को सन्तोष नहीं होता और बेर बेर मेरा जी उमगता है कि और नहीं तो इस का नाम तो रह जाय। और इसी हेतु आप को यह पत्र लिखा है। जैसे गंगा में मिल कर सब जल गंगा हो जाते हैं वैसेही 'कविवचनसुधा' रूपी अमृतप्रवाह में यह भी मिल जाय और अपने प्यारे बड़े भाई के साथ अपने दुःखी जीवन को यह बितावे और इसी बहाने इस का नाम बना रहे। आशा है कि आप स्वीकार कर लोगे क्योंकि 'बाला बोधिनी' पर आप का भी स्नेह है कुछ मेराही नहीं।"

शिक्षाविभाग में उन पत्रों की खरीदारी बन्द होने का कारण तो पूर्वोद्धृत चिट्ठी से भी प्रगट है तथापि इस का कुछ और कारण आगे लिखा जायगा। यहां पर हम इतना ही कहेंगे कि किसी पत्र का खरीदना या नहीं

खरीदना शिक्षाविभाग की रुचि पर निर्भर है। वह किसी को सर्वदा खरीदने के लिये बाध्य नहीं है।

यद्यपि बाबू हरिश्चन्द्र ने १८६८ में "कविवचनसुधा" की धारा प्रवाहित करनी आरम्भ की थी किन्तु हिन्दी के पुनर्जन्म का काल यह मैगज़ीन के प्रकाश ही के समय से मानते थे, कारण कि १८६८ से १८७३ ई० तक अर्थात् चार पांच वर्ष के भीतर इन्हों ने अनेक लोगों को नाना रीति से प्रोत्साहित कर के हिन्दी लिखने पढ़ने को ओर उन की रुचि बढ़ाई थी। इतने ही अवसर में बहुधा सुलेखक तयार हो गये थे जिन में से कई एक का नाम ऊपर लिखा गया है। वे लोग सभी हरिश्चन्द्री हिन्दी के आदर करनेवाले और अनुगामी थे। यह हिन्दी क्या थी इस का वर्णन उपर्युक्त स्थान में किया जायगा।

केवल दो तीन हिन्दी पत्रिका प्रकाशित करना आरम्भ करके यह चुप न बैठे। समय के अनुसार जैसी २ पुस्तकों का अभाव हिन्दी में देखा वैसी २ पुस्तकों की भी रचना आरम्भ की। कुछ पुस्तकें इन्हों ने अपनी उक्ति से लिखी, कुछ अन्यभाषा के ग्रन्थों की छाया लेकर निर्माण किया। किसी का अविकल अनुवाद ही कर डाला। स्वयं पुस्तकें निर्माण की, दूसरों के मन में भी पुस्तक रचना का उत्साह बढ़ाया। स्वरचित एवं अन्य विरचित अनेक प्राचीन नवीन ग्रंथों को छपवा २ कर नाम मात्र का मूल्य रख कर, वरन विना मूल्य भी, उन पुस्तकों की सहस्रों प्रतियां वितरण करने लगे। जिस ने मांगा उसी को दिया, जिस को योग्य समझा बिना मांगे भी दिया। यह रीति इन को केवल लोगों के मन में हिन्दी का अनुराग जनमाने के समय ही तक नहीं रही, किन्तु यह प्रथा इन में आजन्म वर्तमान पाई गई। पुस्तकों को छपाई आदि में इन्हों ने असंख्य रुपया व्यय कर डाला और इन रीतियों से लोगों के मन में हिन्दी भाषा का प्रेम और अनुराग उत्पन्न किया। इस में सन्देह नहीं कि यदि इन के ऐसा पुरुष तन मन धन सब अर्पण कर के हिन्दी का हाथ उस अवस्था में नहीं पकड़ता जब कि यह मध्य धार में पड़कर निराधार हो रही थी तो आज हिन्दी का इस अवस्था पर पहुंचना कठिन था।

अपने निज पत्रों के प्रकाशित करने के सिवाय काशीपत्रिका, आर्य्यमित्र, मित्रविलास, भारतमित्र, हिन्दी प्रदीप आदि प्राचीन हिन्दी पत्रों के जन्म के प्रधान कारण यही हुये। इन्हीं के प्रोत्साहन से उन सबों का प्रकाश होना आरम्भ हुआ और यह लेखादि द्वारा सर्वदा उन की सहायता करते रहे।

हिन्दी के प्रचार के निमित्त इन्हों ने हिन्दी में एक परीक्षा भी कुछ काल पर्य्यन्त प्रचलित की थी। कहते हैं कि एक बार इन्हों ने उस परीक्षा के सम्बन्ध में राजा शिवप्रसाद इन्सपेक्टर स्कूल के पास एक रिपोर्ट भेजी थी जिस से इन के हृदय का उमंग तथा एक हिन्दी युनिवर्सिटी संस्थापित करने की लालसा और देश वासियों के उत्साह हीन होने से उदासीनता स्पष्ट झलकती है। परन्तु वह रिपोर्ट हम को देखने में नहीं आयी।

हिन्दी समाचारपत्रों के प्रकाश करने वा कराने के अतिरिक्त इन्हों ने कई एक सभायें भी संस्थापित की थी।

## कविसमाज।

सं० १९२७ (१८७० ई०) में बाबू साहिब ने "कवितावर्द्धिनीसभा" संस्थापित की थी वह सभा इन के घर पर वा रामकटोरा के बाग़ में हुआ करती थी। उस समय काशी में अच्छे २ प्रसिद्ध कवि वर्तमान थे। सरदार *, सेवक †,

---

* श्रीमहाराज ईश्वरीनारायण सिंह बहादुर काशीनरेश के दरबार के कवि थे। इस काल के कवियों में यह एक प्रसिद्ध कवि हुये हैं। इन के बनाये हनुमत भूषण, तुलसीभूषण, मानसभूषण, कविप्रिया का तिलक, रसिकप्रिया की टीका, शृंगार संग्रह, सूरदास के कूटों की टीका, साहित्यसरसी, सतसई का तिलक, ये सब ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

† इन के पूर्वज लोग मझौली ज़िला गोरखपुर के महाराज के दरबार में रहते थे। उन में से कवि देवकीनन्दन का विवाह अकबर की सभाकवि असिनी निवासी नरहरि की पुत्री से हुआ था। उन के पुत्र ऋषिनाथ काशीनरेश श्री बरिबंडजूदेव के दरबार में थे। महाराज चेत सिंह के समय में असनिनिवासी वेणीप्रसाद वाजपेयी ने एक स्थान में कुञ्जर शब्द को स्त्रिलिंग लिखा था। उसी कारण से और कवियों के साथ शास्त्रार्थ उपस्थित हुआ। वाजपेयी जी से कुछ बन न आई। तब कवियों ने ऋषिनाथ से कहा कि आप इन के स्वदेशीय हैं आप बताइये। उन्हों ने सूरदास का "बिन गोपाल बैरिन भई कुञ्जरें" कह कर शास्त्रार्थ तो जीता परन्तु उसी दम रुष्ट हो कर महाराज के बहुत कहने पर भी असिनी चले गये। उन के पुत्र सुप्रसिद्ध कविठाकुर हुये। कहते हैं कि काशी के बाबू देवकीनन्दन सिंह ने उन्हें गज चांदी का हौदा आसायसमादि दान दिया था। उन के पुत्र कवि धनी राम हुवे। उन के चार पुत्र शंकर प्रसाद, सेवक, शिवगोपाल, और शिवगोविन्द हुये। सेवक अपने समय के प्रसिद्ध

दीनदयालगिरि*, नारायण†, (दत्त पण्डित दुर्गादत्त गौड़) ‡, द्विजमन्नालाल §, हनुमान ¶ प्रभृति सभी कविगण उस सभा में उपस्थित होकर सभा की शोभा

---

कवि हुये। सब राजा लोग उन का सम्मान करते थे। महाराज ईश्वरी प्रसाद सिंह उन्हें बहुत प्यार करते थे। सेवक ने अपने दादा ठाकुर से कविता पढ़ी थी। देवकीनन्दन ने, जो सूबा प्रयागराज के सरकार में थे, इनके पढ़ने में बहुत सहायता की थी। सुनते हैं कि रामप्रसन्न सिंह देवजू ने इन्हें गजदान दिया था। यह उन्हीं के वंशधर हरिशंकर सिंह के साथ रहते थे। कदाचित यह उन के काव्यगुरु भी थे। इन का वृत्तान्त शिव सिंह सरोज में नहीं है। हम ने इन के भतीजे श्रीकृष्ण शर्मा कवि ब्रह्म भट्ट मिश्र मक्कीलोवाले असिनी ज़िला फ़तहपुर निवासी के हस्तलिखित कापी से ये सब बातें लिखी हैं। यह सं १८३८ में ६६ वर्ष की अवस्था में काशी में शिवलोक सिधारे।

* इन का हाल पहिले लिखा जा चुका है।

† यह कवि सरदार के शिष्य थे। इन्हों ने अष्टयाम, भाषाभूषण का पद्यवद्ध तिलक, और कविप्रिया का वार्तिक तिलक बनाया है। यह ब्राह्मण थे।

‡ यह पंडित अम्बिकादत्त व्यास के पिता थे। इन का आदिनिवास जयपुर था। काशी में मानमन्दिर मुहल्ला में रहते थे। इन का जन्म भाद्र शुक्ल तृतिया सं० १८७२ में हुआ था। यह भी अच्छे कवि थे। इन की जीवनी इसी प्रेस में पृथक छपी है।

§ यह पं० अम्बिकादत्त व्यास के सम्बन्धी थे। सुन्दरी सर्वस्व छपवाया था।

¶ यह महान कवि मणिदेव के पुत्र थे जिन्हों ने भारत के अनुवाद में गोकुलनाथ गोपीनाथ के साथ कई पर्वों का उल्था किया था। हनुमान कवि का अल्पावस्था ही में देहान्त हुआ। बाबा सुमेर सिंह साहिबज़ादे कहते थे कि जिस मनोहर ढंग से हनुमान कविता पढ़ते थे ऐसा कोई कम पढ़ता था। कवि समाज में इन के मुख से कविता सुनने को, और को कौन कहे, इन के गुरु भी लालसित रहते थे। व्यास अम्बिका दत्त ने "बिहारी बिहार" में लिखा है कि "मणिदेव के पुत्र सुप्रसिद्ध हनुमान कवि…इन दिनों मेरे पिता जी के पास काव्य पढ़ते थे इत्यादि"। परन्तु हनुमान के लेख से प्रतीत होता है कि इन के काव्य गुरु सेवक थे। हनुमान ने कहा है।

"सुवन सुकवि मणिदेव कों, नाम सौर हनुमान।
मोहि पढायो हेत करि, सुकवि सेवक सुजान।"

वर्द्धित करते थे। पारितोषिक इत्यादि द्वारा कविता की ओर उत्साह बढ़ाना और नया२ उत्तम कवि बनाना ही उस सभा का मुख्य उद्देश्य था। प्रति पूर्ति पर यथायोग्य पारितोषिक देकर कवियों का मान बढ़ाया जाता था। कितनों को प्रशंसापत्र दिये जाते थे।

व्यास गणेशराम ने एक स्थान पर लिखा है कि "वारबार बांध्यो या तें बारबार कसिके" और "सोई हरिचन्द हैं कि दूजो हरिचन्द हैं" इन दोनों समस्यों की पूर्ति करने पर उन को प्रशंसापत्र मिला था।

"पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी" इस समस्या की इस पूर्ति पर कि "आनन्द से प्रजा विकसै सब कौन में कोस सिरी हरखानी। सेवकिनी चिरिया सम बोलि रहीं निज स्वामिनि को सम मानी॥ भोर प्रकास सों जा को प्रताप लखै इमि अम्बिकादत्त बखानी। पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजिवो सदा विक्टोरिया रानी" पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य्य को इसी सभा से पारितोषिक और प्रशंसापत्र मिला था। इस के विषय में व्यास जी ने निज जीवन वृत्तान्त में लिखा है कि "योधपुर के राजगुरु पं० तुलसी दत्त ओझा इस समय काशी में आये थे उन्हों ने मेरी परीक्षा ली और हनुमान सेवक, नारायण, सरदार कवि जनों के सम्मुख सुझे समस्या दी और मैं ने तत्क्षण पूर्ति की। इस पर वह अति प्रसन्न हुये और पारितोषिक तथा प्रशंसापत्र दिया···मेरी कविता से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी अति प्रसन्न हुये और उस समय को कविवचनसुधा (जिल्द २ नं ४) में यों छापा 'कि इस बालक कवि की बुद्धि भी विलक्षण है और अवस्था इस की केवल १२ वर्ष की है हम इस का और समाचार लिखेंगे।"

कुछ दिन पीछे बाबू साहिब ने पण्डित अम्बिकादत्त व्यास को स्वयं प्रसंशापत्र तथा सुकवि की पदवी दी जिस के प्रसंग में व्यास जी ने यों लिखा है "इस समय एक दाक्षिणात्य काले से मोटे तैलंग अष्टावधान काशी में आये थे। उन का अष्टावधानकौशल भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की कोठी में हुआ था··· ग्रीष्म काल था। बाबू साहिब की कोठी पर चान्दनी में हम लोग बैठे थे। दोनों भाई बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू गोकुलचन्द्र थे। काशी के और भी कई पण्डित थे। उन ब्राह्मण ने अति रमणीयता से अष्टावधान दिखलाया। समाप्त होने पर बाबू हरिश्चन्द्र ने उन्हें साधुवाद दिया। एक कवि ने कहा कि 'चन्द्रसूर्य्य साथ ही उगे।' * इस तात्पर्य्य की पूर्ति अष्टावधान जी मन्दा-

* हम अनुमान करते हैं कि व्यास जी का तात्पर्य्य इस कविता से है।

श्लोक में और बाबू साहिब कवित्त में साथ ही करें । बस दोनों काव्य वीरों की लेखिनी दौड़ पड़ी और मद्य: साथ ही वह श्लोक और यह कवित्त सम्पन्न हुये। श्लोक का भावार्थ तो मैं भूल गया परन्तु बाबू साहिब के कवित्त में खण्डिता की उक्ति में नायका के मुख पर उत्प्रेक्षा थी ··· फिर बाबू हरिश्चन्द्र ने अपनी रचित हिन्दी में बहुत सी कविता पढ़ी और मुझ से मेरी पढ़वाई, तथा मुझे सुकवि पद महित प्रशंसापत्र दिया।"

## पेनीरीडिंग क्लब।

१८७३ ई० में इन्होंने काशी में "पेनिंगरीडींग" नामक क्लब * स्थापित किया। सुलेखक गण हिन्दी भाषा में उत्तम २ लेख लिख कर लाते थे और उस क्लब में पढ़ते थे। जो २ मनोहर लेख "हरिश्चन्द्र मैगज़ीन" में छपे हैं,

---

"आओ जु आओ जु प्रान प्रिया हम तो हैं तिहारे ही सोच के ख्याल में। देखु महा सुख रूप दिखाय फंस्यो मन चित्त बनी बनमाल में॥ कुंडल मंडित वेष बने त्यों खुभे कजरा कछु नैन बिसाल में । त्यों मुख में हम मानिक क्रीट उए रवि औ ससि एक ही काल में।"

* उस की नियमावली यह थी :—

"१. पढ़नेवालों को अपने विषय का नाम तीन दिन पहिले लेखाध्यक्ष के पास भेज देना होगा।

"२. अपशब्द और अश्लील और विभत्स शब्द कोई न प्रयोग करे, और ईश्वर के विषय में कोई निंदा का शब्द वा किसी सभ्य के विषय में मर्मवाक्य कोई न बोले।

"३. बिना पास के कोई न आने पावेगा और पास सब सम्पादित लोग लेखाध्यक्ष से मंगवा लेंगे।

"४. जो पास पाने का अधिकारी नहीं है उस को ५) देने से सीज़न पास मिलेगा।

"५. जहां तक हो सकेगा पढ़ना शीघ्र ही आरम्भ और शीघ्र ही समाप्त होगा।

"६. कोई देखनेवाला कोलाहल कर के विघ्न करेगा तो निकाल दिया जायगा।

"७. कोई रंगमन्दिर में न जाय, यदि जायगा तो निकाल दिया जायगा।

प्रायः सबही उस क्लब में पढ़े गये थे। उस के द्वारा भी हिन्दी का बहुत कुछ उपकार हुआ था। पठन पाठन के अतिरिक्त उस क्लब में गाने बजाने का भी आनन्द होता था।

उसी क्लब में बाबू साहिब एक बार एक श्रान्त पथिक का स्वांग बन कर आये थे। गठरी पटक कर पैर फैला कर इस ढंग से बैठ गये थे कि दर्शक गण आनन्द से लोट पोट हो गये। एक बार चूसा पैग़म्बर बने थे। स्टेज सजा था, परदा खुला था। आप सिर नंगे, बनारसी ज़री की कफ़नी पहिने चौकी पर खड़े थे, आगे रङ्ग बिरङ्गी शर्बत बोतलों में भरा था। पण्डित चिन्तामणि * तथा पण्डित माणिक लाल जोशी † शिष्य बन कर चंवर हाथ में लिये दोनों ओर खड़े थे। सैकड़ों गज़ काग़ज़ जोड़ कर जन्मपत्री सा लपेटे स्वयं हाथ में लिये हुये थे। उसी को खोलते जाते थे और "पाचवें पैग़म्बर" ‡ का उपदेश पढ़ते जाते थे। अपूर्व दृश्य हुआ था। जिन लोगों को वह देखने का अवसर मिला था वे लोग आज भी इन की वह मूर्ति स्मरण कर के आनन्द पाते हैं।

## तदीय समाज।

श्रावण शुक्ल १२ बुधवार सं० १९३० (१८७३ ई०) को इन्हों ने "तदीय-समाज" संस्थापित किया था। उस का उद्देश्य धर्म्म तथा ईश्वरप्रेम था। किन्तु उस समाज के द्वारा अनेक उत्तम २ अन्य कार्य्य भी हुआ करते थे। आज भारतवर्ष में मादक वस्तुओं के प्रचार रोकने के लिये नगर २ में सभायें (Total abstinence

---

* पंडित चिन्तामणि राव बालकृष्ण धड़फले—यह पूनानिवासी महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। पहिले बाबू साहिब के साथ रहते थे, स्कूल में पढ़ाते, और कविवचन-सुधा का प्रबन्ध करते थे। पीछे क० व० सुधा इन्हीं को दे दी गई थी। दक्षिणी भाषा में "धड़फले" शब्द का अर्थ है पूरा फल हुआ। परन्तु यह अभी तक विदित नहीं हुआ कि यह उपनाम क्यों पड़ा।

† पंडित माणिक्य लाल जोशी—पहाड़ी ब्राह्मण, पहिले हरिश्चन्द्र स्कूल में मास्टर थे। फिर फ़ौजी स्कूल के मास्टर हुये। अब डिपुटी कलक्टर हो गये हैं। काशी में "जोशी आइस फैक्टरी" (Joshi Ice Factory) के नाम से इन का एक कारखाना है।

‡ यह उपदेश छप भी गया है और निस्सन्देह देखने योग्य है। हास्यरस का एक अच्छा लेख है।

society ) नियत हुई हैं। समुद्र पार से स्त्री पुरुष आ आ कर इस विषय पर खूब लम्बा चौड़ा व्याख्यान देते हैं। किन्तु उस समय हरिश्चन्द्र ने उसी समाज के द्वारा इस सम्बन्ध में भी बहुत कुछ उद्योग किया था और सच पूछिये तो इस देश में इन्हीं ने इस की नेव भी डाली। उस समाज की ओर से चेकबही के ढंग की बहुत सी पुस्तकें लोगों को बांटी गई थीं। एक पर दो साक्षियों के सन्मुख मद्यपान न करने की और दूसरी पर मांस न खाने की प्रतिज्ञा लिखाई जाती थी। इस रीति से इन्हों ने सहस्रों मनुष्यों से प्रतिज्ञा ले कर मद्य मांस का प्रचार बन्द कराया था। उस समाज से इन्हें "तदीयनामाङ्कित अनन्य वीर वैष्णव" की पदवी मिली थी। और उस समाज में इन्हों ने स्वयं भी एक प्रतिज्ञापत्र लिख दिया था जिस के साक्षी पं० बेचनराम तिवारी, पं० ब्रह्मदत्त, पं० चिन्तामणि, पं० दामोदर शर्म्मा, पं० शुकदेव, पं० नारायणराव, तथा पं० माणिक्य लाल जोशी शर्मा थे।

२२ जनवरी १८७४ ई०

हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्री गोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्भा महल्ले के निवासी तदीयसमाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मान कर "तदीय नामङ्कित अनन्य वीर वैष्णव" का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं।

१. हम केवल परम प्रेममय भगवान् श्री राधिकारमण का भजन करेंगे।

२. बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी अन्याश्रय नहीं करेंगे।

३. हम भगवान से किसी कामना के हेतु प्रार्थना नहीं करेंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेंगे।

४. युगलस्वरूप में हम भेद दृष्टि से नहीं देखेंगे।

५. वैष्णव में हम जातिबुद्धि नहीं करेंगे।

६. वैष्णव के सब आचार्य्यों में से एक पर पूर्ण विश्वास रखेंगे परन्तु दूसरे आचार्य्यों के मत विषय में कभी निन्दा वा खंडन नहीं करेंगे।

७. किसी प्रकार की हिंसा वा मांसभक्षण कभी नहीं करेंगे।

८. किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायंगे और न पीयेंगे।

९. श्रीमद्भगवद्गीता और श्री भागवत को सत्यशास्त्र मान कर नित्य मनन अनुशीलन करेंगे।

१०. महाप्रसाद में अन्नबुद्धि नहीं करेंगे।

११· हम आमरण अपने प्रभु और आचार्य्य पर दृढ़ विश्वास रख कर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेंगे।

१२· वैष्णवमार्ग के अविरुद्ध सब कर्म करेंगे। और इस मार्ग के विरुद्ध श्रौत स्मार्त वा लौकिक कोई कर्म नहीं करेंगे।

१३· यथाशक्ति सत्य शौच दयादिक का सर्वदा पालन करेंगे।

१४· कभी कोई बात जिस से रहस्य उद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न कहेंगे। और न कभी ऐसा वाद अवलम्बन करेंगे जिस में नास्तिकता की हानि हो।

१५. चिन्ह की भांति तुलसी की माला वा कोई पीत वस्त्र धारण करेंगे।

१६. यदि ऊपर लिखे हुये नियमों को हम भंग करेंगे तो जो अपराध बन पड़ेगा हम समाज के सामने कहेंगे, उस की क्षमा चाहेंगे, और उस पर घृणा करेंगे।

मिति भाद्र शुक्ल ११ सं० १९३०
हस्ताक्षर——हरिश्चन्द्र
तदीयनामांकित अनन्य वीरवैष्णव।

इस प्रतिज्ञापत्र के नियमों के देखनेही से ज्ञात होता है कि इन नियमों का यथार्थ पालन करनेवाला एक महान पुरुष होगा। हम को दृढ़ विश्वास है कि हरिश्चन्द्र सरीखे दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति ने केवल लोकाजन के दिखलाने के निमित्त यह प्रतिज्ञापत्र नहीं लिखा होगा किन्तु इस के पालन के आन्तरिक अभिप्राय से लिखा होगा। हस्ताक्षर के नीचे निज्र कल्पित अक्षरों में उन्हों ने जो ईश्वर से एक प्रकार की प्रार्थना की है कि "यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि इस की लाज तुम्हीं को है" उस से इन के मन की इच्छा स्पष्ट विदित होती है।

इस समाज में दर्शकों को टिकट लेकर जाना होता था *। एक समय

* समाज के कुछ नियम भी इस स्थान पर प्रकट कर दिये जाते हैं।

१. तदीय समाज इस का नाम होगा।

२. यह प्रति बुधवार को होगा।

३. कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भी होगा।

४. प्रत्येक वैष्णव इस समाज में आ सकते हैं, किन्तु जिन का शुद्ध प्रेम होगा, वे इस में रहेंगे।

बनारस के सुप्रसिद्ध जज-पंडित हीरालाल चौबे जी के वंशधर पण्डित लोकनाथ जी ने टिकट पाने के निमित्त इन के पास निम्नलिखित दोहा लिख भेजा था—

"श्रीब्रजराज समाज को, तुम सुन्दर सिरताज।
दीजे टिकट निवाज के, नाथ हाथ हित काज॥"

इसी समाज के द्वारा इन्हों ने गोरक्षा का उद्योग किया था। दिल्ली दरबार के समय (१८७७ ई० में) इन्हों ने ६०००० मनुष्यों का हस्ताक्षर बनवा कर सरकार की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भिजवाया था। जो पत्र लोगों के पास हस्ताक्षर के निमित्त घुमवाया था उस पर निम्नलिखित छंद लिखा हुआ था।

"अरिहु दन्त तृन धरहिं ताहि नहिं मार सकत कोइ।
हम सन्तत तृन चरहिं बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं बच्छ महि थम्भन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पिआवहिं॥

---

५. कोई आस्तिक इस समाज में आ सकता है। पर जब एक सभासद उस के विषय में भली भांति कहेगा।

६. जो कुछ द्रव्य समाज में एकत्रित होगा धन्यवादपूर्वक स्वीकार होगा।

७. समाज क्या करेगा?

(क) समाज का आरम्भ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा।

(ख) गुरुओं के नामों का सङ्कीर्तन होगा।

(ग) एक वक्तृता कोई सभासद गत समाज के चुने हुये विषय पर कहेगा।

(घ एक अध्याय श्रीगीताजी का और श्रीमद्भागवत दशम स्कंद का एक अध्याय पढ़े जायंगे।

(ङ) समाज की समाप्ति में नाम सङ्कीर्तन होगा और दूसरे समाज के हेतु विषय नियत किया जायगा और अन्त में प्रसाद बटेगा।

८. इस के और भी क्रम सामाजिकों की आज्ञा से बढ़ सकते हैं।

९. यद्यपि इस समाज से जगत और मनुष्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं तथापि जहां तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करेगा और हिंसा के नाश करने में प्रवृत्त होगा।

कह नरहरि * अकबर सुनहु, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुये चाम सेवत चरन॥"

* कहते हैं कि अकबर के शासन काल में प्रसिद्ध कवि नरहरि ने गोवध निवारणार्थ एक सभा करके यह उद्योग किया कि उपर्युक्त छप्पै बना कर और उस को बड़े २ अक्षरों में लिखवा कर बहुत सी बूढ़ी गौओं के गले में बांध दिया और अनेक ब्राह्मण बैरागी उन के संग हुये। एतवार का दिन था। अकबर प्रातःकाल हवा खाने आते थे कि इतने में सामने से यह लोग पहुंचे। कौतुकाविष्ट होकर अकबर खड़े होगये और लोगों से समाचार पूँछा और छप्पै पढ़वाया। फल यह हुआ कि गोवध निषेध की आज्ञा हुई। तब नरहरि ने बादशाह को स्तुति में निम्नलिखित कविता बनाई।

"नेकबख़्त दिलपाक सख़ी ज्वांमर्द शेरनर। अव्वल अली ख़ुदाय दिया बिसयार मुल्कज़र॥ तुम ख़ालिक़ बहु वेश हकान अल्लाहे आलिम। दौलतमन्द बुलन्द ज़ोर दुश्मन पर ज़ालिम॥ इन्साफ़ तुरा गोयद ख़लक़ कवि नरहरि गुफ़तन चुनी। अकबर बराबर पादशाह दिगर न दीदम दर दुनी॥

"नरहरि क़बि तें गऊ की बिनती को सुन ह्वै गयो ऽक़ब्बर सबीह जैसे नकसी। दीनों करुणा करि हुकुम आम ख़ास बीच बन्द भयो गोबध ख़बरफेरी बकसी। फैल गयो सुयश दलीप लों जहान बीच हिंसक बिहाल बैठि बोलैं अकबक सी। आनन्द कसाइन को गाइनको देत भयो, गाइन को मौच ले कसाइन को बकसी॥"

नरहरि बन्दी जन असनी ज़िला फ़तहपुर के रहनेवाले अकबर के दरबार में रहते थे और असनी गांव उन को माफ़ी मिला था। असनी के पास ही पूरब, गंगा के बायें तट पर, राजाओं के सदृश उन का गढ़ था। अकबर ने उन को महापात्र ( आलीज़र्फ़-उच्चवंशीय ) का पद प्रदान किया था। अकबर उन को बन्धु के समान मानते थे। नरहरि संस्कृत और भाषा दोनों में प्रवीण थे। गान विद्या भी जानते थे। उन के पुत्र हरिनाथ महा कवीश्वर और उदारचित्त थे। उन के वंशधर अब इधर उधर तितर बितर हो गये हैं। अब असनी में उन का गृह उजाड़ सा पड़ा है। ईंट बिकती हैं। दिन हीं में शिवा घूमती और शब्द करती हैं। सं० १६६० के लगभग नरहरि हुये थे। शिवसिंह सरोज में सम्वत १८८८ भूल से लिखा है।

इन्हीं ने गो-महिमा आदि ग्रंथ भी लिखकर वितरण किया था। पं० अम्बिकादत्त व्यास ने भी इन्हीं की सम्मति से गोसंकट नाटक लिखा था। स्थान २ में गो-रक्षिणी सभायें संस्थापित होने का आदि कारण लोग इन्होंको और स्वामी दयानन्द * को मानते हैं। किन्तु ये सभायें संस्थापन होने में इन लोगों का यह अभिप्राय नहीं था कि हिन्दू मुसल्मानों में सिरकटौवल हो जैसा कि कई वर्ष देखने में आया है। मूर्ख लोग चाहें तो एक भली वस्तु को भी कलंकित और दूषणीय बना दें।

* १८२४ ई० में काठियावार देश में ब्राह्मणकुल में इन का जन्म हुआ था इन को दो भाई और दो बहिन थीं। इन के पिता महाजनी और तहसीलदारी का काम करते थे और परम शैव थे। इन के पिता ने इन्हें शैवमत की शिक्षा दी थी परन्तु इन को मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं हुआ। इन के विवाह होने की तयारी हो उसी समय यह घर से निकल भागे। और सैब्ब स्थान में जा कर लालभगत के शिष्य हुए और इन का नाम शुद्धचैतन्य पड़ा और यह गेरुआ वस्त्र धारण करने लगे। फिर यह बड़ोदा जा कर चैतन्य मठ में ठहरे। वहां ब्रह्मानन्द से सम्भाषण करने से इन्हें जीव ब्रह्म का ज्ञान हुआ। फिर यह संन्यासी हुवे और इन का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती हुआ। इन्हों ने संसार के यावत धर्म्म हैं सबों का खंडन करते हुये जहां तहां आर्य्य-समाज संस्थापित किया। सर्वत्र शास्त्रार्थ की घोषणा देते चले। एक साहिब ने लिखा है कि "हिन्दू धर्म्म ग्रन्थों के विषयों को जितनी इच्छा होती थी उस को स्वीकार करते थे और जो चाहते थे उसे त्यागकर देते थे। उन सबों का मनमाना अर्थ लगाते थे। जो इन की सम्मति से विरोध करते वह मूर्ख कहे जाते थे। महान् पंडितों की ढाई तीन हजार वर्ष की पुस्तकें सब मिथ्या, केवल इनहीं का कथन सत्य। शास्त्रार्थ के समय दस पांच आदमी साथ रहते थे और वह ठहाका लगाया करते थे बस यही शास्त्रार्थ का ढंग था"। इन्हों ने वेदभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि इत्यादि अनेक पुस्तकें बनाई हैं। इन के सब ग्रन्थ प्रायः हमारे देखे हुए हैं। हम इन के मत से पूर्ण विरोध रखते हैं। किन्तु स्वामी जी को सादर स्मरण करते तथा इन के गुणों की प्रतिष्ठा करते हैं। १८८३ में अजमेर में इन्हों ने शरीर त्याग किया। इन के नाम का लाहौर में दयानन्दवैदिककालिज खुला है। हिन्दी भाषा को इन से भी बहुत सहायता मिली है।

उस समाज ने बहुत से लोगों से यह भी प्रतिज्ञा कराई थी कि यथासम्भव देशीय पदार्थों का व्यवहार करेंगे। हरिश्चन्द्र आप भी यथासाध्य इस नियम का पालन सदैव करते रहे।

उस समाज से "भगवद्भक्ति" मासिकपत्रिका भी कुछ काल तक निकल कर फिर बन्द हो गई। उस समाज के प्रायः सभी सभासद प्रसिद्ध और नामी थे जिन के नामों * के सुनने ही से समाज का गौरव प्रगट होता है।

१८७४ ई० में इन्हीं ने वैश्य लोगों के हितार्थ ठठेरी बाज़ार बनारस में "वैश्यहितैषिणी" सभा संस्थापित की थी जिस का उद्देश वही था जो कायस्थकान्फ़रेंस का है।

विवाह में अपव्यय रोकने के लिये सभा हुई थी उस में स्वयं काशीनरेश भी विराजमान हुये थे और उन की ओर से उस विषय में एक प्रबन्ध भी पढ़ा गया था और उस पर पंडितों ने हस्ताक्षर भी किया था। उस के विषय में एक उर्दू के पत्र ने यह आशय प्रगट किया था कि "विवाहादि में अपव्यय रोकने में पहिले बाबू हरिश्चन्द्र साहिब अग्रसर हुये और सचमुच जो बातें बाबू साहिब ने सोची हैं यदि वे पूरी हो जायं तो निस्सन्देह कार्य्य सफल होगा। यदि एक काग़ज़ क्या सौ काग़ज़ पर भी बनारसी पंडितगण हस्ताक्षर करें तो कुछ नहीं होगा। बाबू साहिब की यह सम्मति है कि पृथक२ वर्ग के लोग अपनी पृथक२ सभा कर के अपना नियम निश्चय करें और उस के अनुसार कार्य्यवर्ती हों और

---

* बाबू हरिश्चन्द्र, राव कृष्णदेवशरण जी (राजा भरतपुर), बाबू गोकुलचन्द्र, रामायणशरण जी (जिन्हें तुलसीकृत रामायण समग्र कण्ठस्थ था), पं० माणिक्यलाल जोशी (डि० कलक्टर); पंजाब केशरी महाराणा रणजीतसिंह के गुरु श्रीपंडित मधुसूदन जी के पौत्र लाहौर कालेज के चीफ़ पंडित, सुप्रसिद्ध विद्वान ठाकुर गिरिप्रसाद जी, राजा बेसवां, प्रसिद्ध महात्मा तथा कवि श्री शलिग्रामदास जी, श्री निवासदास जी लाहौर, पं० दामोदर शास्त्री, पं० शीतलाप्रसाद बनारस कालेज, पं० बेचन जी अध्यापक, रामचन्द्र पंत, वृन्दाबन निवासी प्रसिद्ध कवि शाह कुन्दनलाल, पं० राधाकृष्ण लाहौरी, श्री गोपाललाल जी के मन्दिर के शुकदेव मिश्र, जम्बूराजगुरु रघुनाथजी, तारकाश्रम प्रयागदत्त, पं० गणेशदत्त व्यास, कन्हैयालाल, रामदास मिश्र, विठ्ठलभट्ट, गौर जी दीक्षित, पं० चिन्तामणि, राघवाचार्य्य, ब्रह्मदत्त, गोपालदास, श्री मद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ता परमेश्वरदासजी, गिरिधरचरितामृत आदि, ग्रन्थ के रचयिता बाबू हरिकृष्णदास, श्रीमोहनलाल जी नागर, छोटेलाल मास्टर हरिश्चन्द्रस्कूल इत्यादि।

जा उन नियमों का उल्लंघन करें स्वजातीय रीति के अनुसार दंड पावे। हम यह सच कहते हैं कि सर्व साधारण के हितकर बनारस वा उस के आसपास में जितने कार्य्य होते हैं उस के मुख्य कारण हरिश्चन्द्र ही होते हैं। यदि सभा उन की सम्मति की अनुवर्त्तिनी होगी तो थोड़े ही काल में अनन्त लाभ होगा।"

इन्हों ने एक वैष्णव समाज कर के वैष्णव ग्रंथों में भी एक परीक्षा प्रचलित कराने की मनशा की थी, परन्तु वह परीक्षा प्रचलित नहीं हुई। उस विषय में जो नियमावली प्रकाशित हुई थी वह यहां पर उद्धृत कर दी जाती है।

## परीक्षा की नियमावली।

वैष्णवों के समाज में निम्न लिखित पुस्तकों में तीन श्रेणियों में परीक्षा नियत की है और १५०) प्रथम के हेतु, १००) द्वितीय के हेतु और ५०) तृतीय के हेतु पारितोषक नियत है। जिन लोगों को परीक्षा देनी हो काशी में श्रीहरिश्चन्द्र गोकुलचन्द्र को लिखें। नियत परीक्षा तो सं० १९३२ के वैशाख शुद्ध २ से होगी पर बीच में जब जो परीक्षा देना चाहै दे सकता है।

| श्रेणी | श्रीनिम्बार्क | श्रीरामानुज | श्रीमध्व | श्रीविष्णुस्वामि |
|---|---|---|---|---|
| प्रविष्ट | वेदान्त रत्न मंजूषा, वेदान्त-रत्न माला, सुरद्रुम मंजरी | यतीन्द्रमत दीपिका, शतदूषणी | वेदान्त रत्न माला, तत्व प्रकाशिका | षोडश ग्रन्थ, षोड़श बाद, संप्रदाय प्रदीप |
| प्रवीण | वेदान्त कौस्तुभ और प्रभा, षोड़शी रहस्य, पंच कालानुष्ठान | श्रुति सूचतात्पर्य्य निर्णय, प्रस्थान त्रय का भाष्य | भाष्य सुधा, न्यायामृत | विद्वन्मन्डन, स्वर्ण सूत्र, निबन्ध आवर्ण भंग वा-प्रहस्त, पंडित करभिंदिपाल, वहिर्मुख मुख मर्द्दन |
| पारङ्गत | अध्यास गिरि-वज्र सेतुका, जाह्नवी मुक्तावली | वेदान्ताचार्य्य का लघुभाष्य, बृहच्छतदूषणी | सहस्र दूषिणी | अणु भाष्य, भाष्य प्रदीप, भाष्य प्रकाश, प्रमेय रत्नार्णव * |

* यदि रश्मि में परीक्षा दें तो ५००) रु० पारितोषिक मिले।

पूर्वोक्त सभाओं के अतिरिक्त इन्हों ने "हिन्दी डिबेटिंग क्लब" "अनाथ-रक्षिणी सभा" "काशी सार्वजनिक सभा" "यंगमेन्स असोसियेशन" तथा कई अन्य सभायें संस्थापित की थीं जिन का अब पूरा२ वृत्तान्त जानना दुष्कर है।

## अन्य-संस्थापित सभा।

स्वस्थापित सभाओं के सिवाय और भी जो २ सभायें थीं सबों से इन का कुछ न कुछ सम्बन्ध था। यह किसी के कार्य्याध्यक्ष, किसी के कोषाध्यक्ष और किसी के मुख्य सभासद थे।

श्रीकाशीनरेश की ओर से जो "धर्मसभा" संस्थापित हुई थी उस के यह कार्य्यसम्पादक थे। उस सभा क द्वारा परीक्षायें होती थीं और अनेक धर्मकार्य्य सम्पन्न होते थे।

"बनारस इंस्टिट्यूट" के यह मुख्य सभासद थे। गुरु चेले अर्थात् राजा शिवप्रसाद और बाबू साहिब के बीच में द्रोणाचार्य्य और अर्जुन के समान शस्त्रप्रहार की बहार तो नहीं किन्तु वाग्बाणों की बौछारों की बहार वहीं देखने में आती थी।

१८७३ ई० में जो "ब्रह्मामृतवर्षिणी" सभा बनारस में स्थापित हुई थी, उस के भी यह प्रधान सहायक थे। एक बार उस में कर्नल अल्कट साहिब भी उपस्थित हुये थे जिन्हों ने उस के साथ अपनी सहानुभूति प्रगट कर के उस की उन्नति की प्रार्थना की थी और उस सभा को देश देशान्तर में प्रसिद्ध करा॥ सिंहलद्वीपवालों का भी उस से पत्रव्यवहार करा दिया था। उसी समय राम-राव वकील ने एक वक्तृता में हमारे चरित्रनायक के गुणों का वर्णन करके कर्नल साहिब को एक अद्वितीय देशहितैषी का परिचय कराया था। कर्नल साहिब बाबू साहिब के घर पर भी मिलने आये थे। बादशाहों के समय का जो पत्रसमूह बाबू साहिब ने बहुत परिश्रम तथा व्यय से हस्तगत किया था उस अमूल्य पदार्थ को देख कर कर्नल अत्यन्त प्रसन्न हुये थे और बाबूसाहिब के सदा मित्र बने रहे।

## अन्य देशहितकर कार्य्य।

जिस समय बनारस में "होमियोपैथिक" चिकित्सा * का कोई नाम भी नहीं जानता था इन्हों ने अपने घर में उस का प्रचार किया और उस का

* बंगदेश में होमियोपैथिक चिकित्सा के आदरदेनेवाले तथा इस मार्ग र

चमत्कार गुण देख कर १८६८ ई० में "होमियोपैथिक" दातव्य चिकित्सालय संस्थापित कराया और सर्वदा तन मन धन सर्व प्रकार से उस की सहायता करते रहे। १८६८—७२ ई० तक उस में १२०) प्रति वर्ष चन्दा देते रहे। उस चिकित्सालय में पहिले पहल बाबू लोकनाथ मैत्र और फिर ईश्वरचन्द्र राय चौधरी डाक्टर नियत हुये थे। उन लोगों से बाबू साहिब को बड़ा स्नेह रहता था।

१८७१में विलायत में एक महा प्रदर्शिनीसभा हुई थी। उस के निमित्त श्री मती स्वर्गीय भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिया की आज्ञा से एक कमीशन नियत हुआ था जिस के सभापति वर्तमान भारतेश्वर श्रीमान् सप्तम एडवर्ड थे। उस प्रदर्शिनी के सम्बन्ध में बाबू साहिब ने कुछ कार्य्य किया था जिस के लिये सभापति के हस्ताक्षर से एक धन्यवादपत्र * इन के पास आया था।

उसी वर्ष बङ्गाल प्रदेश में "ब्रह्म समाज विवाह" का आन्दोलन हुआ था। उस विषय में इन्हों ने काशी के विख्यात पण्डितों की सम्मति भेजी थी जिस के लिये बाबू केशवचन्द्र सेन ने एक पत्र में इन्हें बहुत धन्यवाद दिया था।

१८७२ में "हिन्दू पेट्रियट" के भूतपूर्व सम्पादक बाबू क्रिष्टोदास (कृष्णदास) पाल ने पार्लिमेंट में एक प्रार्थनापत्र भेजा था। उस कार्य्य में भी बाबू साहिब ने उन की बड़ी सहायता की थी।

---

में परिश्रम करनेवाले डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, रमेशचन्द्रदत्त तथा शंभुचरण मुकर्जी थे। मुकर्जी को तो इस विषय में अधिक अभ्यास करने से अमेरिका देश के एक विश्वविद्यालय से एम० डी० की पदवी भी मिली थी।

* Dated 15 June 1872.

No 146

The undersigned has much pleasure in forwarding to Baboo Harish Chandra the accompanying letter received from the President conveying the thanks of Her Majesty's Commissioners for the services rendered to them in connection with the International Exhibition of 1871.

(Sd) A. Shakespear
Commissioner

Her Majesty's Commissioners hereby convey their thanks to Baboo Harish Chandra for the services he has rendered to them in connection with the International Exhibition of this year.

(Sd) Albert Edward
President
(H. R. H. The Prince of Wales)

जब काशी की किसी सड़क के निकटस्थ महावीर जी का मन्दिर म्युनिसपैलटी ने तोड़वाना चाहा था तो इन्हों ने बहुत से लोगों का हस्ताक्षर बनवा कर सरकार में एक प्रार्थनापत्र भेजवाया था और सरकार की कृपा से उसे भंग होने से बचाया था।

जन्तुओं के प्रति अत्याचार और बीभत्स प्रथा के दूर करने के लिये भी इन्हों ने बहुत उद्योग किया था और उस के निमित्त सभा करने के विचार से एक पत्र उस विषय के क़ानून के भाषानुवाद के साथ प्रकाशित किया था, पर मजिष्ट्रेट साहिब ने म्युनिसपैलिटी के नियमानुसार उस विषय की आज्ञा प्रचारित कर दी और इन को समझा दिया कि आप की इच्छा पूर्ण हो गई अब कमेटी करने की आवश्यकता नहीं।

सहस्रों पुस्तकें दे कर "कारमाइकल लाइब्रेरी" एवं "बाल सरस्वती भवन" के स्थापन में इन्हों ने सहायता की थी।

बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने जब नेशनल फंड खोला था और काशी पधारे थे तब इन्हों ने उन की बड़ी सहायता की थी और एक रात (Evening party) जलसा से उन का सत्कार भी किया था।

इन के द्वारा बंगाल एशियाटिक सोसाइटी को भी बहुत सहायता मिलती थी। यह कई एक प्राचीन पुस्तकों को वहां भेज २ कर धन्यवाद के भागी हुये थे।

एक पत्र में डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने इन्हें लिखा था कि "यदि आप मुझे प्राचीन हस्तलिखित भागवत की पुस्तक अपने प्रतिज्ञानुसार भेज दें तो मैं उस के विरोधियों का दांत खट्टा कर दूं"। और दूसरे पत्र में लिखा था कि "आप मुझे अपनी हस्तलिखित भागवत की पुस्तक दीजिये। उस से यह बात सिद्ध हो जायगी कि भागवत कब बना। वैष्णव धर्म के विरोधी कहते हैं कि भागवत बोपदेव का बनाया हुआ है। आपवाली भागवत की तारीख़ से वे लोग झूठे बन जायेंगे और मैं खास पोथी का ख़्याल यह बात सिद्ध करने को उत्कंठित हूं।"

इन्हों ने वह पुस्तक एशियाटिक सोसाइटी में उपस्थित कर के यह बात निर्णय करा दी थी कि श्रीमद्भागवत बोपदेव का बनाया नहीं है। वह प्राचीन [illegible] है। उस में [illegible] डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र और [illegible] भी बहुत कुछ सहायता [illegible] थी।

[illegible] डाक्टर राजेन्द्रलाल के द्वारा [illegible] तथा उन के शिष्यों

का चित्र भेजा था जिस के लिये सोसाइटी से इन्हें अनेक धन्यवाद मिले थे।

केवल एशियाटिक सोसाइटी ही को नहीं वरञ्च इन से और इन के सरस्वतीभवन से अनेक लोगों को सहायता मिला करती थी।

बंगदेशीय सुख्यात पंडित श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अपने अभिज्ञानशाकुन्तल की भूमिका में इन के विषय में बहुत कुछ लिखा है। हम उस का अविकल अनुवाद ही लिख देते हैं। "फिर हम कार्य्य वशत: गत फाल्गुन मास में वाराणसी धाम गये थे। इस समय उस नगर के अधिवासी श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र के साथ आलाप हुआ। इन महाशय ने दया कर के अपने पुस्तकालय से हम को शाकुन्तल ग्रंथ के तीन मूल, एक टीका और तीन प्राकृतविकृति दी थी।

"इस स्थान में उल्लेख करना आवश्यक है कि वाराणसीनिवासी श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र की कृपा बिना हम किसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रकाशित करने का कार्य्य सम्पन्न नहीं कर सकते थे।

"हम को अभिज्ञानशाकुन्तल की आवश्यकता थी यह बात जानते ही उस सौम्यमूर्ति, अमायिक, निरहंकार, विद्योत्साही, देशहितैषी ने जिस स्नेह और उत्साह के साथ हमारे हाथ में पुस्तक अर्पण की थी उसे क्या हम किसी काल में भूल सकते हैं?"

शेरिंग साहिब को भी Hindu Tribe and Caste नामक ग्रंथ लिखने में इन से बड़ी सहायता मिली थी और उन्हीं ने उस ग्रंथ में बाबू साहिब रचित "अग्रवालों की उत्पत्ति" नामक पुस्तक का कई स्थानों में हवाला दिया है। और इन के पूर्वजों का संक्षिप्त वृत्तान्त भी लिखा है। *

---

* It has been remarked already that the Chaudhri, or headman of the Agarwala tribe in Benares, is Babu Haris Chandra. He is of the Sinhala *gotra* or clan. In the attack on Agroha by Shahab-ud-din many persons belonging to this clan were slain. Their widows, who immolated themselves, are still worshipped as Suttees in the family house in the city. Two of these were wives of his direct ancestors. They are represented by certain figures or images. On quitting Agroha the family resided for many years at Lakhnauti, a village near Delhi; but it was not until the reign of Bahadur Shah, son of Aurungzebe, that any of its members rose to distinction. Under this ruler some of them

१८८३ में जब कलकत्ता में महाप्रदर्शिनी हुई थी उस समय इन्हों ने उस में नीचे लिखी हुई अनेक उत्तम वस्तुएं भेजी थीं, जो बात प्रदर्शिनीसभा के कार्य्यसम्पादक वेली साहिब बहादुर के पत्र तथा एक सूची से विदित होती है।

१· अलबम जिस में सोनहरे फ़ारसी अक्षरों में लिखे हुये वे सब पत्र थे जो प्रथम ४ गवर्नर जेनरलों के समय दिल्ली के अन्तिम बादशाह के पास भेजे गये थे और जो वहां से अंगरेज़ों के पास आये थे।

२· अलबम जिस में स्वर्णाक्षरों से लिखे हुये वे सब पत्र थे जिन को मोग़ल बादशाह, शाहज़ादे तथा शाहज़ादियों ने अपने नातेदारों, मित्रों और हिन्दू राजाओं के पास भेजा था।

३· अलबम जिस में भारतवर्ष के जावत प्रकार के अक्षरों का नमूना था।

४· अलबम जिस में देशीय राजे महाराजे और भद्र लोगों के मुहर, मोनोग्राम इत्यादि थे।

५· अलबम जिस में पश्चिमोत्तर प्रदेश के उच्चश्रेणी की स्त्रियों की दस्तकारी के नमूने थे।

६. नयाकुसुमाञ्जलि—१६८० ई० का तालपत्र पर बंगला अक्षरों में लिखा

---

occupied a high position in the State, and attained to the rank of Raja. Going back thirteen generations from the present time, the lineal ancestor was Balkrishna. One of his sons was sent as an ambassador to the Nawab of Murshidabad, with whom he so much ingratiated himself that, as a token of good-will and cofidence, His Highness presnted him with an estate in Rajmahal, which still in part remains with the family. One of his descendants married the daughter of Sahu Ram Chandra, a banker of great reputation in Benares, a hundred years ago, in the time of the famous Balwant Sing, Raja of Benares. At his death he bequeathed his property to his son-in-law, Anu Chandra, who had two brothers and ten sons, besides many daughters. One of brothers became a *fakir* or Devotee, and founded a *math* or monastic house at Bhagulpur, wich is still in existence. So great, however, have been since then the changes of fortune in the family, that its only surviving representatives are Babu Haris Chandra and his brother Sherring's Hindu Tribe and Caste p. 288.

हुआ "मीमांसा दर्शन"। उस की स्याही साधारण नहीं थी। पत्तों पर तेल चुप देने से अक्षर चमकने लगते थे।

७. सं० १७४५, १७६८, १८१८ तथा १८३१ (अर्थात् १६८८, १७४१, १७६१ और १७७४ ई०) का हस्तलिखित संस्कृत पन्ना; १८०८ ई० का लकड़ी के अक्षरों का छापा; १८१७ ई० का पन्ना जिस में प्राचीन पदार्थों की अपेक्षा कई एक नवीन बातें थीं; और १८८३ ई० का श्रीबापूदेव शास्त्री रचित अंगरेज़ी ढंग का पन्ना।

८. दीवान हाफ़िज़—फ़ारसी लिखावट का एक सुन्दर नमूना।

९. अनेक प्रकार के चित्रकाव्य।

१० राधाकृष्ण का चित्र जिस के अंग प्रत्यंगों में धर्मवाक्य लिखे हुये थे। चित्र रेशमीय सामग्री से बना हुआ था।

११ धर्मटोपी जो प्राचीन भारतवर्षीय धार्म्मिक जन व्यवहार करते थे।

१२. स्वरचित हिन्दीभाषा की पुस्तकें।

पूर्वोक्त सूची के देखने से ज्ञात होता है कि इन्हों ने कैसी२ प्राचीन वस्तुएं एकत्रित की थीं।

१८८४ ई० में प्रसिद्ध संस्कृतवेत्ता प्रोफ़ेसर विलियम्स मोनियर साहिब "इण्डियन इंसटिट्यूट आक्सफ़ार्ड के म्यूज़ियम (अजाएबघर) के निमित्त अद्भुत पदार्थों का संग्रह करते थे। उस समय ग्राउस साहिब * कलक्टर एवं राजा लक्ष्मण सिंह † डिपुटी कलक्टर ने उस कार्य्य में इन से भी सहायता मांगी थी और इन्हों ने बनारसी पीतल के पूजा की सामग्री अर्घा इत्यादि भेजवायी थी। हम समझते हैं कि इन्हों ने अपनी ओर से भी कोई पदार्थ अवश्य भेजा होगा क्योंकि राजा लक्ष्मण सिंह ने एक पत्र में लिखाया कि "यदि आप अपनी ओर से कोई वस्तु अर्पण कीजियेगा तो ग्राउससाहिब उसे सानन्द प्रेषित करेंगे और वह वस्तु अजाएबघर में आप के नाम से पृथक बार रक्खी जायगी"। भला यह कब सम्भव है कि ऐसा पत्र पाकर हरिश्चन्द्र ने कुछ न भेजा हो।

---

* इन्हीं ने तुलसीकृत रामायण का अंगरेज़ी गद्य अनुवाद किया है और मथुरा नामक एक ग्रंथ लिखा है जिस में मथुरा नगर के भिन्न २ स्थान तथा वस्तुओं का वर्णन है।

† इन का वृत्तान्त पृथक परिच्छेद में लिखा जायगा।

# पञ्चम परिच्छेद ।

## हिन्दी भाषा तथा हिन्दी अक्षर ।

इन कई एक परिच्छेदों में हरिश्चन्द्र के उन गुणों का वर्णन किया जायगा जिस से यह जगन्मान्य और जगद्विख्यात हुये, जिस कारण से यह हिन्दू समाज में आदरणीय, विद्यानुरागियों में सराहनीय, एवं हिन्दी भाषा के रसिकों के लिये स्मरणीय हुये। सब गुणों की अपेक्षा हिन्दी भाषा के मृत-प्राय शरीर में विलक्षण जीविनीशक्ति संचारित करने एवं भाषाभंडार में अलभ्य तथा अमूल्य रत्नों के भरने ही से आज भी यह संसार में जीवित पुरुषों की भांति सुजनगण के हृदय को आनन्द देरहे हैं और आज भी इन के उपदेशमय, रसमय, हास्यमय और व्यंगमय लेखों को रसिकचकोरगण आनन्द से देखते हैं और देखकर अन्तःकरण से प्रसन्न होते हैं।

हिन्दीरसिक जी० ए० ग्रियर्सनसाहिब महोदय ने लिखा है कि "वर्तमान काल के देशीय कवियों में यह महाप्रसिद्ध कवि हुये। इस समय के हिन्दुस्तानियों में सब से अधिक इन्हीं ने देशी (हिन्दी) भाषा के प्रचार के लिये यत्न और परिश्रम किया है। यह स्वयं अनेक ढंग के बहुप्रसूवी ग्रंथ-कर्त्ता थे और सब प्रकार की रचना में यह औरों से बढ़े चढ़े थे।" *

हिन्दी क्या है और इस की उत्पत्ति कैसे हुई यह लिख देना भी हम यहां परमावश्यक समझते हैं। शाक्यसिंह (बुद्ध) के निर्वाण के थोड़े ही काल पीछे बौद्धों की प्रथम सभा हुई थी। उस समय एक प्रकार के अपभ्रंशित संस्कृत का प्रचार पाया जाता है जो गाथा के नाम से प्रसिद्ध है और जिस भाषा में उस समय के बन्दीजन प्रायः कविता किया करते थे। संस्कृत भाषा का प्राकृत भाषा में परिवर्त्तित होने की वही पहली अवस्था थी। ईसा के पूर्व छठीं शताब्दि में भारतवर्ष की यह प्रचलित भाषा थी। अर्थात् गाथभाषा संस्कृत से जनसाधारण

---

* The most celebrated of the native poets of the present day. He has done more for the popularisation of Vernacular literature than almost any living Indian. He himself was a prolific author in many styles, and he excelled in all. Vide G. A. Grierson's "The Modern Literary History of Hindustan" p. 124.

कर के छठी शताब्दी से भारतवर्ष के बोलचाल की भाषा रही। ईसा के पूर्व ३रौ शताब्दी में पाली भाषा का जन्म हुआ। विक्रमादित्य के २०० वर्ष पूर्व अशोक की ओर से भिक्षुकगण उसी भाषा में सर्व साधारण को बुद्धधर्म का उपदेश करते थे और उस समय की प्रशस्तियां भी उसी भाषा में पाई जाती हैं। यह भाषा प्राकृत का रूपान्तर थी एवं वह वररुचि तथा पाणिनीय के संस्कृत व्याकरण की मध्यवर्त्तिनी देखी जाती है। किन्तु भारतवर्ष के सर्वसाधारण के बोलचाल की भाषा पाली थी वा नहीं इस में लोगों की सम्मति में भिन्नता पाई जाती है। कोई कहते हैं कि वह धर्मसम्बन्धिनी भाषा थी न कि व्यवहारिक। किन्तु डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि पाली भाषा भारतवर्ष को बोल चाल की भाषा थी *। वह कहते हैं कि यदि यह बात न होती तो सुविख्यात तथा समर्थ राजा होने पर भी अशोक में यह सामर्थ्य नहीं था कि वह और उन के भिक्षुकगण धर्मोपदेश के लिये कोई नूतन भाषा गढ़कर उस भाषा में व्याख्यान देना आरम्भ कर देते। हम कहते हैं कि यदि अशोक को यह सामर्थ्य होता तो भी यह कब सम्भव है कि उन की प्रचारित भाषा को सर्वसाधारण तुरन्त ही समझने के योग्य होजाते और यदि सर्वसाधारण समझ ही नहीं सकते तो ऐसी भाषा में उपदेश करने से लाभ ही क्या होता? यदि आज कल संस्कृत भाषा में सर्वसाधारण को उपदेश दिया जाय तो उस से क्या उपकार होगा। हम ने अपने बाल्य काल में रामाबाई को तथा कई वर्ष पूर्व निज परम स्नेही स्वर्गीय पण्डित अम्बिकादत्त व्यास को संस्कृत भाषा में व्याख्यान देते सुना था। परन्तु श्रोतृवर्ग की क्या दशा थी, सब चित्रलिखित से बने उपदेशिका एवं उपदेशक का मुंह ताकते थे और सबों को वह समय पहाड़ सा भारी प्रतीत होता था। अतएव जिस भाषा में अशोक के भिक्षुकगण उपदेश करते थे वह अवश्य सर्वसाधारण के बोधगम्य तथा प्रचलित भाषा थी इस में किंचित् मात्र सन्देह नहीं। सब वस्तुओं के समान देशभाषा भी परिवर्त्तनशील है और देशकाल के अनुसार वह अपना

---

* And if these arguments be admitted, and similar arguments have led Dr. Max Muller, Mr. Muir and others to admit that, the Pali was the Vernacular of India from Dhauli in Cattak to Kapur-di-giri in the Yusufzai country in the time of Asok and some time before and after it. Dr. Rajendralal's "Indo-Aryan Vol: p. 312.

देश रूप बदलती जाती है। इसी कारण से ईसा के प्रथम शताब्दी में मागधी सौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची और अपभ्रंश इन भिन्न २ रूपों में प्राकृत भाषा का दर्शन होता है।

मागधी * भाषा का प्रचार बिहार प्रान्त में, सौरसेनी का मथुरा प्रदेश के आसपास, एवं महाराष्ट्री * भाषा का उज्जैनी प्रान्त, राजपुताना के दक्खिन प्रान्त तथा आधुनिक महाराष्ट्र देश के उत्तरीय भाग में था। अपभ्रंश का प्रचार कदाचित सिंध तथा राजपुताना के पश्चिमांचल में था। पैशाची भाषा के सम्बन्ध में डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने लिखा है कि पुरातत्त्ववेत्ताओं को अभी भली भांति ज्ञात नहीं हुआ है कि वह भाषा किस प्रान्त में प्रचलित रही और उस का क्या २ रूपान्तर हुआ। परन्तु डाक्टर हार्नली साहिब श्री पं० लक्ष्मीधर के साधुभाषाचन्द्रिका के आधार पर अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि किसी२ देशीयभाषा के वैयाकरण का यह सिद्धान्त है कि पैशाचीभाषा का उत्तरीय प्रांत (हिमालय, नेपाल) एवं दक्षिण प्रांत (पांडुआ तथा दक्खिन) की सीमावर्ती जाति व्यवहार करती थी †।

प्राकृत भाषा का कितने काल तक प्रचार रहा, उस की क्या २ अवस्थान्तर हुई तथा उस के बाद और किस २ भाषा का प्रचार हुआ इस विषय का अभी तक कुछ निर्णय नहीं हुआ। इस पर अद्यापि घनपटल छाये हुआ है, किन्तु प्राकृत के उद्भव से लगभग सहस्र वर्ष के पश्चात ईस्वी की दसवीं शताब्दी में हिन्दी भाषा का रूप दृष्टिगोचर होता है। हर्नली साहिब लिखते हैं कि ई० की ८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी के मध्य में प्राकृत भाषा का युग सर्वथा लोप हो गया और "गौड़ीय" ‡ भाषा की श्रीवृद्धि हुई।

---

* बौद्ध धर्म का ग्रन्थ मागधी प्राकृत अर्थात् पालीभाषा में और जैनधर्म का ग्रंथ महाराष्ट्री प्राकृत में है।

† It is ascribed by the native Grammarians to the tribes bordering on the Aryan area in the north ( Himalya, Nepal ) and south (Pandya-Dakhin ). Dr Hœrnle's Grammar of Gaudian language. p. 19.

‡ हिन्दी, बङ्गला, नेपाली, महाराष्ट्री, गुजराती, सिंधिया, पञ्जाबी, एवं काश्मीरी—इन सभी भाषाओं को इन्हों ने गौड़ीय भाषा के अन्तर्गत माना है।

यहां पर लोगों का यह प्रश्न होता है कि हिन्दी भाषा प्राकृत से समुद्भूत हुई या किसी अन्य भाषा से इस का जन्म हुआ जिस ने प्राकृत को देश से बाहर कर के स्वाधिकार जमा लिया हो। म्यूर साहिब, दी तासी तथा जर्मनदेशीय विद्वज्जन हिन्दी का जन्म प्राकृत से मानते हैं। परंतु क्राफर्ड, ल्याथाम, अन्डरसन, काल्डवेल साहिब इस बात में सम्मत नहीं हैं।

इन पण्डितों का यह कथन है कि आदिकाल में हिन्दी, बङ्गला तथा अन्यान्य गौड़ीय भाषा को संस्कृत से कुछ सम्बन्ध नहीं था। विभक्ति तथा विन्यासप्रणाली ही से किसी भाषा का आदिकाल निरूपण करना उचित है; केवल शब्दगत सादृश्य से कोई बात निर्णय नहीं की जाती। पूर्वोक्त महाशय गण कहते हैं कि आर्य्यलोगों ने धीरे धीरे दक्षिण पूर्व बढ़ कर स्वनिवास स्थापन कर के विजित अनार्य्यों के साथ रह कर उन लोगों की भाषा को ग्रहण किया। संस्कृत का प्रभाव पुनर्विस्तार होने से संस्कृत शब्द भी गौड़ीय भाषा में बहुत सम्मिलित होते गये, किन्तु विभक्ति चिन्ह एवं विन्यास-प्रणाली में उन सबों का अनार्य्यसम्बन्ध अब तक वर्तमान है। इसी से बहुत से लोग कहते हैं कि हिन्दी भाषा का "को" (यथा आप को) और बङ्गभाषा का "के" (यथा আমাকে) तुरानी भाषा के "क" से निकला है और काल्डवेल साहिब हिन्दी का "को" द्राविड़ भाषा के "कू" से समुद्भूत होना स्थिर कर के हिन्दी भाषा का जन्म द्राविड़ भाषा से बताते हैं। डाक्टर हार्नली साहिब ने इस मत का पूरा खंडन किया है। काल्डवेल साहिब तथा डाक्टर हार्नली का खंडन मंडन नोट में उद्धृत किया जाता है *। हार्नली साहिब

---

* Dr. Caldwell – The change which took place when Sánskrit acquired predominance as the Aryan gradually extended their conquest and their colonies, was rather a change of vocubulary than of grammar.

Dr. Hœrnle – As up to this time, the Aryan population of North Indiá, who had emigrated many centuries before, had used exclusively Sanskritic languages ( Sanskrit, Prakrit and Pàli ) it would be a most remarkable phenomenon, if they had exchanged their native grammar for that of the uncultured and despised aboriginal population, supposing that the language of the latter was really a non-Aryan one and that it had really survived the long non-Aryan occupation ( both suppositions by no means established yet ). It had happened more than once, that conquering nation ( especially of inferior culture ) while retaining more or less its native vocubulary, adopted the grammar of the conquered people (as the Normans

एवं जर्मन देशीय अन्य विद्वानों ने यह बात दिखलाई है कि गौड़ीय भाषा की सब विभक्तियां संस्कृत वा प्राकृत से निकली हुई हैं।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र लिखते हैं कि "यह विषय सर्वसम्मत है कि हिन्दी भाषा में सैकड़े पीछे ६० शब्द संस्कृत वा प्राकृत भाषा से निकले पाये जाते हैं। यदि शब्दों के धातु ही का विचार किया जाय तो प्राकृत वा संस्कृत ही से हिन्दी का जन्म हुआ इस में किञ्चित् मात्र सन्देह नहीं। परन्तु केवल धातु ही पर ध्यान देने से काम नहीं चलेगा। इस के शब्दों की गठन की ओर दृष्टि करने से तुरानी वा शाक्य भाषा से इस की समता पाई जाती है और इसी से लोग इस की उत्पत्ति प्राकृतभाषा से अंगीकार करने में संकुचित होते हैं; किन्तु गाथा, पाली, प्राकृत इन भाषाओं के व्याकरणीय रचना में भी संस्कृत व्याकरण से बहुधा स्थानों में प्रभेद देखा जाता है और इन भाषाओं को सभी संस्कृत ही से उत्पन्न मानते हैं तो हिन्दी क्यों न मानी जायगी?" उन्हीं ने दृढ़ प्रमाणों से पुष्ट किया है कि हिन्दी भाषा की भी जननी निःसन्देह प्राकृत और संस्कृत ही है। बिम्स साहिब का भी यही सिद्धान्त है *।

डाक्टर राजेन्द्रलाल इत्यादि ने उर्दू (हिन्दुस्तानी) की भी सृष्टि हिन्दी ही से सिद्ध की है। ब्लाकमैन ने ई० की १६ शताब्दी से हिन्दी भाषा में फ़ारसी शब्दों का प्रयोग होना एवं उर्दू की सृष्टि मानी है † और उन्हीं के

---

in England, the Arabs and Turks in North India, the Franks in Gaul) under the condition that this progress commenced from the very beginning of the conquest. But the conquerors after having resided for centuries in the country and retained their native language (both in grammar and vocubulary, trifling instances in the latter excepted) entirely unmixed with the aboriginal languages should abandon their grammar in favour of the conquered, requires strong proofs to be credited, especially as it is by no means certain, whether the aboriginal at all survived at so late a date. For according to evidence afforded by the Prakrit of the plays, Prakrit was spoken by the low class population, which was composed no doubt principally of the subjugated aboriginal people, who spoke a Sanskritic language from the first or adopted the vulgar dialect of the conquerors. J. A. S. 1872. Part II. No. II. P. 123.

* Vide Beam's Comparative Grammar P. 10-11.

† Hindi did not begin to be inpregnated with Persian words,

लेख को उद्धृत कर के बीम्स साहिब भी लिखते हैं कि मुसल्मान लोग बहुत दिन पहिले से स्वच्छ हिन्दी बोलने सीख गये थे और उन लोगों ने हिन्दी भाषा में फ़ारसी शब्दों का प्रयोग करना आरम्भ नहीं किया, किन्तु स्वयं हिन्दुओं ही ने ऐसा किया जिन को टोडरमल्ल के नये कर प्रबन्ध से फ़ारसी पढ़ने की मजबूरी हुई थी *।"

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने हिन्दी के विषय में यह भी लिखा है कि "भारतवर्ष में जितनी देशीय भाषा प्रचलित हैं सबों में हिन्दीभाषा प्रधान है। यह हिन्दूजाति के सभ्य लोगों की भाषा है। बिहार की पूर्व सीमा से लेकर सुलेमानी पर्वत की श्रेणी पर्यन्त तथा विंध्य से लेकर तराई पर्यन्त इस का प्रचार है। गोरखा लोग इस को कमाऊं और नेपाल तक ले गये हैं। पेशावर के कोहिस्तान से आसाम तक एवं काश्मीर से कन्याकुमारी अन्तरीप तक सर्वत्र यह भाषा समझी जाती है। इस का भंडार ऐसा पूर्ण है कि आधुनिक दूसरी भाषा इस की समता नहीं कर सकती। इस में सन्देह नहीं कि यह सदैव एकही अवस्था में नहीं रही और न सब स्थानों में इस का एक सा रूप ही है। देशकाल के अनुसार यह भिन्नता उचितही है। किन्तु पृथ्वीराज के समय में जो रायसा †

---

and the Urdu language consequently did not begin to be formed till the sixteenth century. See "The Hindu Rajas under the Moghals" Calcutta Review, April 1871.

* The Musalman had been long accustomed to speak pure Hindi' and it was not they who introduced Persian words into the language but Hindus themselves who at the epoch above mentioned, were compelled by Todarmal's new revenue system to learn Persian. Vide Beam's Comparative Grammer P. 30.

† यह रायसा प्राचीन हिन्दीभाषा में चन्द्रकवि का बनाया ८८ खण्डों में विभक्त है। और लगभग ७०० वर्ष पूर्व अर्थात् १२ शताब्दी में रचागया था। चन्द्र पृथ्वीराज का कवि तथा मंत्री दोनों था। ११९२ ई० में जब शहाबउद्दीन महम्मद ग़ोरी ने दिल्ली पर आक्रमण किया और उस समय उस के विश्वासघात के कारण जब हिन्दू सेना पराजित हुई तो उस ने पृथ्वीराज और रायसा के रचयिता चन्द्र को बन्दी कर के ग़ज़नी भेज दिया। कहते

लिखा गया था उस से और आज की हिन्दीभाषा से तथा हिन्दीभाषा के रूपान्तर हिन्दुस्तानी, ब्रजभाषा, और रांगरी से इतना सादृश्य पाया जाता है कि जिस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये सब एकही वृक्ष की डालियां हैं, भिन्न२ वृक्ष की नहीं * । " पाठकों के अवलोकनार्थ रायसा के कुछ अंश यहां उद्धृत किया जाता है ।

---

हैं कि शहाबुद्दीन के भाई ग्यासउद्दीन से किसी ने कह दिया था कि पृथ्वीराज शब्दभेदी बाण अच्छा मारता है । पृथ्वीराज को तो सबों ने पहिले से अन्धा बना डाला था । एक दिन सभा हुई और सात लोहे के तावे बाण से फोड़ने को रक्खे गये । संकेत यह हुआ कि जब ग्यासउद्दीन हूं करे तब पृथ्वीराज तावों पर बाण मारें । चन्द्रकवि उन के साथ क़ैदी था । यह सामान देख कर उस ने यह दोहा पढ़ा " अब की चढ़ी कमान, को जाने फिर कब चढ़ै । जनि चुकै चोहान, इक्के मारे इकसर ॥ " उस का संकेत समझ कर ग्यासउद्दीन के हूं करने पर, पृथ्वीराज ने ग्यास हो को बाण से विद्ध किया । अन्त में चन्द्र ने भी पूर्व संकेतानुसार पृथ्वीराज को मार दिया और आप भी मारा गया ।

इसी रायसा के विषय में एक वार राजा शिवप्रसाद ने हरिश्चन्द्र को पत्र लिख कर पूछा था कि शुद्ध शब्द क्या है ? रायसा, राइसा वा राहसा ।

इसी चन्द्र को ' दी तासी ' साहिब ने राजपुताने का होमर ( Homer ) लिखा है ।

Chand, qu'on a nommé l' Homère des Rajpouts, est certainement le plus populair des poétes Hindvi. De Tassy's Rudiments de la Langue Hindivi, P. 7.

* The Hindi is by far the most important of all the Vernacular dialects of India. It is the language of the most civilized portion of the Hindu race from the eastern boundary of Bihar to the foot of the Sulimani Range, from Vindhya to the Terai. The Gurkhas have carried it to Kamaun and Nepal, and as a *lingua franca* it is intelligible everywhere from the Kohistan of Peshawar to Assam, and from Kashmir to Cape Comarin......and its literary treasures are richer and more extensive than any other of modern Indian dialects. Doubtless, it has not always been the same, nor is it exactly alike everywhere.........But there is sufficient similitude between the language of *Prithvi Raja*

अति दुचित भयो सारंग देव।
नितप्रति करै अरिहंत सेव॥
बुधधर्म्म लियो बांधे न तेग।
सुनि स्रवन राजमन भो उदेग॥
बुल्लाइ कुंवर सनमान कीन।
किहि काज तुमं इह भ्रम्म लीन॥
तुम छंडि सरम हम कहौ बत्त।
बानिक्क पुत्र हम तें दुचित्त॥
इह नष्ट ग्यान सुनिये न कान।
पुरषातन भज्जै क्रित्ति हान॥
तुम राजवंस राजनह संग।
मृगया सर खेलो बन दुरंग॥
परमोध तजो बोधक पुरान।
रामायन सुनहु भारथ निदान॥ ‡

बीम्स साहिब ने स्वरचित "कम्पेरेटिव ग्रामर औफ़ माडर्न एरियन लैंग्वेजेज़ औफ़ इन्डिया" में हिन्दी, महाराष्ट्री, पंजाबी, गुजराती, बंगाली उड़िया इन भाषाओं का वर्णन किया है और उस में लिखा है कि सब भाषायें आदि में हिन्दी ही से समुद्भूत हुई क्योंकि यही भाषा सब से प्राचीन है †

---

*Raysq* and the Hindi of our day, and between the several dialects of Hindi, Hindustani, Brajbhasha and Rangri into which the modern Hindi has been divided to show that they are essentially one, branches of the same stem and not issues from different trunks. Dr .Rajendra Lal Mitra's Indo--Aryan, Vol. II. p. 309.

* अजमेर के राजा विशालदेव का पुत्र सारङ्गदेव ने बौद्धधर्म्म स्वीकार कर लिया था। उसी के सम्बन्ध में कवि ने यह लिखा है।

† All the other languges of the group were originally dialects of Hindi. Beam's Comparative Grammar. p. 33.

और तीन सौ वर्ष पहिले जब बङ्गभाषा में ग्रन्थ लिखा जाना आरम्भ हुआ तो उस समय की भाषा बिहारप्रदेश के पूर्वीय प्रान्त की भाषा ( अर्थात् तिर्हुतीय भाषा ) से बहुत ही मिलती थी *। बंग कवि चंडी दास एवं मिथलादेशीय कवि विद्यापति का जो उन के समकालीन थे, एक एक पद पाठकों के अवलोकनार्थ नोट में उधृत किया जाता है । †

डाक्टर राजेन्द्रलाल के समान बीम्स साहिब ने भी हिन्दी भाषा को सर्व श्रेष्ठ लिखा है ‡ और कारण यह दिखलाया है कि इस में तदभव शब्द बहुत

---

* Bengali three centuries ago when it first began to be written very closely resembled the Hindi still spoken in Eastern Bihar. Beam's comparative grammar P. 33.

† সজনি ভাল করি পেখন না ভেল।
মেঘমালা সঙ্গে তড়িত লতা জনু হৃদয়ে শেল দেই গেল॥
আধ আচল খসি, আধ বদনে হাসি, আধহি নয়ন তরঙ্গ।
আধ উরজ হেরি, আধ আচর ভরি, তব ধরি দগধে অনঙ্গ॥
একে তনু গোরা, কনয় কটোরা, অতনু কাঁচল উপাম।
হরি হরি কহ মন, জনু বুঝি ঐজন, ফাঁস পসারল কাম॥
দশন মুকুতা পাতি, অধর মিলায়ত, মৃদু মৃদু কহ তাহি ভাষা।
বিদ্যাপতি কহ, অতয়ে সে দুঃখ রহ, হেরি হেরি না পুরলো আশা॥
কি দারুণ বুকের ব্যথা।
সে দেশে যাইব, যে দেশে না শুনি, পাপ পিরীতের কথা॥
সই কে বলে পিরীতি ভাল।
হাসিতে হাসিতে পিরীতি করিয়া, কান্দিতে জনম গেল॥
কুলবতী হইয়া, কুলে দাঁড়াএগ, যে ধনী পিরীতি করে।
তুষের অনল যেন সাজাইয়া, এমতি পুড়িয়া মরে॥
হাম বিনোদিনী, এ দুঃখে দুঃখিনী, প্রেমে ছল ছল আঁখি।
চণ্ডীদাস কহে, সে গতি হইয়া, পরাণ সংশয় দেখি॥

चण्डिदास और विद्यापति ईस्वी की १४वीं शताब्दी में थे। उड़िया कवि उपेन्द्रभुंज भी उन्हीं लोगों का समकालीन था। खेद का विषय है कि जिन देशीय भाषाओं में इतना सादृश्य था आज उन देशों के लोग प्रायः एक दूसरे की भाषा समझने में असमर्थ हो गये हैं।

‡ The most advanced language is the Hindi which is closely followed by the Panjabi and Gujrati. Beam's Comparative Grammar, P. 48.

है। उन का कथन है कि तद्भव शब्द बड़े काम के होते हैं और उस से भाषा की उन्नति प्रदर्शित होती है और किसी भाषा में ततसम शब्द के आधिक्य से यह बात पाई जाती है कि उस का शब्दभंडार पूरा नहीं है अतएव ऐसी भाषा को प्रायः उस भाषा से सहायता लेनी पड़ती है जिस से यह निकली हुई होती है और इसी कारण से बङ्गभाषा के रचित ग्रन्थ ऐसे कठिन हो गये हैं कि सर्वसाधारण के बोधगम्य नहीं रहे। जो हो, हम को यहां हिन्दी तथा बंगभाषा की तुलना करनी अभिप्रेत नहीं है। हम को केवल हिन्दी के उद्भव का समय दिखलाना था। प्रसंग वश इतना लिखा गया।

बीम्स साहिब के कथनानुसार हिन्दीभाषा ई० की ११ वीं शताब्दी में समुद्भूत हुई और पूर्व प्राकृत से विलग होकर एक स्वतन्त्र भाषा हो गई। तब १२-१३ वीं शताब्दी में महाराष्ट्रीय भाषा की सृष्टि हुई। तब उड़िया भाषा हुई, और उस के पश्चात दिल्ली के मुसलमानी राज्य नष्ट हो जाने पर हिन्दी भाषा से सर्वथा विलग होकर प्रचलित बंग भाषा स्वतंत्र हो गई *। किन्तु सुविज्ञवर रमेशचन्द्र दत्त महाशय लिखते हैं कि सम्भवतः सौरसेनी तथा महाराष्ट्रीय प्राकृत से आधुनिक हिन्दी भाषा की उत्पत्ति हुई और ई० की १२ वीं शताब्दी से यह स्वतंत्र भाषा मानीगई एवं मागधी प्राकृत बंगालीभाषा में परिणत होकर १४ वीं शताब्दी से आधुनिक बंगभाषा की सृष्टि हुई। †

डाकर राजेन्द्रलाल मित्र ने एक स्थान में लिखा है कि सौरसेनी, महाराष्ट्री एवं मागधी प्राकृत में वैसीही भिन्नता थी जैसा कि वेल्स और यार्कशायरादि की अंगरेज़ी भाषा में भेद देखा जाता है। तब मागधी प्राकृत से बंगभाषा समुद्भूत मानी जाय वा सौरसेनी प्राकृतोद्भूत हिन्दी से इस की सृष्टि मानी जाय, मेरी समझ में किसी में इतना प्रभेद नहीं है।

पूर्वोक्त प्रमाणों से यह बात सिद्ध है कि हिन्दी भाषा का जन्म प्राकृत एवं संस्कृत ही से हुआ और दसवीं शताब्दी से इस का प्रचार आरंभ होकर चन्द्र कवि के रायसा के समय यह भाषा पूर्ण उन्नति को प्राप्त हो गई थी। इसी से लोग हिन्दी का प्रथम काल चन्द्र के समय से मानते हैं। पीछे हिन्दी में ब्रजभाषा विशेष सम्मिलित होने लगी यहां तक कि अकबर के समय कविता की भाषा ब्रजभाषा ही हो चली और कदाचित् इसी से डाकर राजेन्द्रलाल ने ब्रजभाषा को हिन्दी का रूपान्तर माना है। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास ने ब्रजभाषा का

---

* Beam's comparative Grammer P. 120.

† R. C. Dutta's "Literature of Bengal" P. 2.

नियम * भंग कर दिया था तथापि ब्रजभाषा ने हिन्दी का साथ नहीं छोड़ा। आज भी कविता प्राय: ब्रजभाषा ही में लिखी जाती है और ब्रजभाषा की कविता में विशेष माधुर्य्य भी पायाजाता है। इस से यदि अकबर का समय हिन्दी भाषा का द्वितीय काल माना जाय तो कुछ अयोग्य नहीं होगा क्योंकि उसी समय हिन्दी में ब्रजभाषामिश्रित होने का अधिक प्रचार देखा जाता है, यद्यपि यह बात उस के कुछ पूर्व ही से चली आती थी। और उसी समय से फ़ारसी अरबी के शब्द भी हिन्दी भाषा में मिश्रित होने लगे। जब पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से लोगों के मन में यह भाव उदय हुआ कि बिना गद्यात्मक ग्रंथ के भाषा की शोभा नहीं बढ़ेगी और न उस से सर्वसाधारण का उपकार ही होगा तब लल्लूजी के प्रेमसागर आदि ग्रंथों का दर्शन हुआ। लल्लूलाल जी †

---

* दास कवि ने कहा है—तुलसि गंग दोऊ भये, सुकविन के सरदार।
इन की कविता में मिली, भाषा बिबिध प्रकार।

† लल्लू लाल ( लल्लू जी लाल = कविलाल = लालचन्द्र ) आगरा निवासी गुजराती औदीच्य ब्राह्मण चैनसुख जी के पुत्र अपने चार भाइयों में सब से बड़े थे। शेष भाइयों का नाम क्रम से दयाल जी, मोतीराम और चुन्नीलाल था। लल्लूलाल के पिता बहुत दरिद्र थे। कुछ पौरोहित्य करते थे। लल्लू जी घर से निकल कर सं० १८४३ में पहिले मुर्शिदाबाद गये और गोस्वामी गोपाल दास जी की कृपा से नवाब मुबारकउद्दौला से सम्मानित हो कर ७ वर्ष तक वहीं रहे। गोस्वामी के वैकुंठवास होने पर नवाब से बिदा हो कर वह कलकत्ते चले गये और सावनलक्खी रानीभवानी के पुत्र राजा रामकृष्ण के आश्रय से कुछ दिन वहां रहे। फिर उन के साथ नाटोर गये। फिर कलकत्ते आकर चितपुर की सड़क पर ठहरे। वहां पादरी बुरन साहिब से परिचय हुआ। बड़ा बाज़ार के दामोदर दास के चचा अर्थात् दीवान काशीनाथ के छोटे पुत्र और डाक्टर रसल के द्वारा इन को गिलक्राइस्ट साहिब से भेंट हुई। उन की सहायता एवं सम्मति से लल्लूलाल ने १८५७ में सिंहासनबत्तीसी और बैतालपचीसी ब्रज भाषा से, शकुन्तला संस्कृत से तथा माधवानल संस्कृत से अनुवाद किया।

तैरने में अच्छा अभ्यास होने के कारण एक दिन इन्हों ने एक डूबते हुए अंगरेज़ को गंगा से निकाला था। उस ने इन को द्रव्यसाहाय्य कर के एक छापखाना खोलवा दिया। सं० १८५७ (१८०० ई० ) में यह कलकत्ते के फ़ोर्ट

शुक्रनक्षत्र ( Morning Star ) की समान गद्यात्मक हिन्दी रचना के दिवस के सूचक हो नहीं हुए किन्तु उन्हों ने हिन्दी गद्य को उस समय सिंहासन पर बैठाया जब कि गुर्जरभाषा तथा वंगभाषा निरी गोद की बालिकाएं थीं *। यदि उस समय से लोग सह्योत्साह इस की यथोचित सेवा करते आते तो अब तक यह भाषा सारे भारतवर्ष में चक्रवर्त्तिनी हो गई होती । परन्तु फ़ारसी, अरबी के अनुराग ने लोगों को इस की सेवा से वंचित रखा । लल्लूलाल जी के लेख सरल और सरस देखे जाते हैं परन्तु उन्हों ने बहुत स्थानों में हिन्दी गद्य में भी ब्रजभाषा मिला रखी है और विलायती कवि अर्ल्डटेलर के लेख के समान उन का गद्य भी प्रायः पद्य हो जाया करता है ।

---

विलियम में अध्यापक नियत हुये । पूर्वोक्त पुस्तकों के सिवाय इन्हों ने माधव-विलास, सभाविलास, प्रेमसागर, राजनीति, भाषाक़ायदा, लतायफ़ हिन्दी ( उर्दू, हिन्दी, ब्रजभाषा में १०० कहानियां ) तथा लालचन्द्रिका ( बिहारी सतसई की टीका ) ये सब ग्रन्थ बनाये और छपवाये थे । पीछे इन का समय बहुत अच्छा हो गया था । आगरा में मकान बनवाया था, परन्तु इन का स्वर्ग-वास कलकत्ता ही में हुआ । इन को सन्तति नहीं थी । इन के भाइयों के वंशधर अब भी हैं । इन के पास अंगरेज़ों की अच्छी २ चिट्ठियां थीं उन्हीं को दिखला कर इन के भाई दयाल जी ने एक स्कूल खोला था जो धीरे २ आगरा कालेज हो गया ।

* यद्यपि राममोहन राय ने वंगभाषा में गद्य लिखना आरम्भ किया था ( वरन उन के पूर्व का भी दो एक चिट पुर्ज़ा पाया जाता है ) तथापि पं॰ ईश्वरचन्द्रविद्यासागर तथा अक्षयकुमार बाबू ही के समय से बङ्गला गद्यपुस्तक का अधिक प्रचार हुआ और वे लोग लल्लूलाल जी के परवर्ती थे । हारानचन्द्र-रक्षित दास ने स्वरचित "साहित्ये बङ्किम" नामक पुस्तक में यह आशय प्रगट किया है कि राममोहन राय के समय से आजतक बंगलासाहित्य में चार स्तर देखे जाते हैं । पहिले की भाषा ग्राम्य, अस्पष्ट, भावमलिन है; दूसरे में संस्कृत का आधिक्य है; तीसरे स्तर में बङ्गभाषा के सौभाग्यसूर्य्य का थोड़ा थोड़ा दर्शन होता है । इस स्तर के प्रधान नेता महात्मा ईश्वरचन्द्रविद्यासागर और अक्षयकुमार दत्त हुये । उन लोगों ने साहित्यस्रोत को कुछ फेरा किन्तु बङ्ग-वासियों की आशा पूर्ण नहीं हुई । चौथे स्तर में हारान बाबू ने बंकिम बाबू को प्रधान माना है ।

हम ने लल्लूलाल जी को गद्यात्मक ग्रन्थ रचना का प्रवर्त्तक इस कारण से लिखा है कि उन के पूर्व का कोई गद्य वा चम्पूकाव्य अद्यापि प्रकाशित नहीं हुआ। उन के पूर्व भी लोग गद्यरचना करते थे इस का कुछ २ पता मिलता है। सदल मिश्र और हैदरी इन के समसामयिक थे। वरन हैदरी ने लल्लूलाल से पहिले गद्य लिखना आरम्भ किया था।

किसी २ का अनुमान है कि नेवाज कवि ने भी शकुन्तला के अनुवाद में कहीं २ गद्य लिखा है। परन्तु वह पुस्तक देखने में नहीं आई। हमारे परम स्नेही स्वर्गीय बाबू रामदीन सिंह जी के पुस्तकालय में भागवत का अनुवाद एक प्रति है, जिस को वे लल्लूलाल के बहुत पहिले का लिखा कहा करते थे। वरन हिन्दी साहित्य के विषय में इन्हीं सब बातों के निर्णय के में एक पुस्तक छपवाने का विचार करते थे। एक फ़ार्मा उस का कम्पोज़ भी हुआ था, उसी अवसर में वह अस्वस्थ हो कर स्वर्ग सिधारे। खेद का विषय है कि हम को वह फ़ार्मा नहीं देखने में आया, जिस में उन्हों ने उस की तारीख़ और ग्रन्थ छापने का अभिप्राय लिखा था।

फिर राजाशिवप्रसाद ने जो ग्रन्थ रचना आरम्भ की तो वे अपनी पुस्तकों में फ़ारसी, अरबी के शब्द भरने लगे। लोग कहते हैं कि उन्होंने खिचड़ी हिन्दी का प्रचार आरम्भ किया। हम कहेंगे कि उन के ग्रन्थ शुद्ध उर्दू के ग्रन्थ थे केवल अक्षर ही हिन्दी का था। हम को उन का रचा हुआ कई एक ग्रन्थ पढ़ने का संयोग पड़ा है इसी से हम को ऐसा कहने का साहस होता है। जिन लोगों को राजासाहिब कृत ग्रन्थों के अवलोकन का सुयोग न मिला हो वे लोग चन्द्रकान्ता, तारा आदि ग्रन्थों से उन का अन्दाज़ लगा सकते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि राजा साहिब वैसी हिन्दी नहीं लिख सकते थे जिसे बाबू हरिश्चन्द्र ने शुद्ध हिन्दी कहा है और यह भी नहीं कह सकते कि वह ऐसी हिन्दी नहीं लिखते थे। परन्तु हम यह बात कदापि स्वीकार नहीं करेंगे कि यदि "वह नागरी का पक्ष लेकर सर्वसाधारण के बोधगम्य सरल भाषा को न लिखकर वर्त्तमान समय के हिन्दी समाचारपत्रों की सी भाषा लिखते तो निश्चय है कि उसी समय हिन्दी की 'इति श्री' हो जाती और जो कुछ हिन्दी की अवस्था अब है उस का शतांश भी शेष न रह जाता"। हां! हम यह स्पष्ट कहेंगे कि प्रचलित रीति की हिन्दी लिखने की ओर उन का भी ध्यान गया होगा तो बाबू साहिब के लेखों के अवलोकन

ही से गया होगा। बाबू साहिब उन के विद्यार्थी तथा उन के सामने के एक बालक थे इसी से उन को इस बात के प्रगट करने में संकोच हुआ हो।

बहुत से लोग यह कहेंगे कि जब उर्दू की उत्पत्ति हिन्दी ही से हुई है तब यदि हिन्दी उसी ढंग से लिखी गई तो इस में दोष ही क्या? यह ठीक है, परन्तु सन्तति का यही कर्तव्य है कि निज जन्मदाता के गुणों को ग्रहण करे विशेषत: जब कि जन्मदाता सद्गुणसम्पन्न हो। हिन्दी सर्वश्रेष्ठगुणसम्पन्न संस्कृत से जनमी है। संस्कृत ही का अनुकरण करने में इसकी विशेष शोभा और प्रशंसा है। हिन्दुस्तानी वा उर्दू का भी इसी में नाम है कि निजपोषक से सम्बन्ध बढ़ावे क्योंकि जैसे कोई निज पोषक की सहायता बिना निरवलम्ब हो जाता है वैसे ही उर्दू भी हिन्दी की सहायता बिना अवयवविहीनही कर किसी काम की न रहेगी। भाषा मात्र की वाक्य रचना में क्रिया ही प्रधान है। क्रियाविहीन कोई वाक्य हो ही नहीं सकता। उर्दू में यावत् क्रिया हैं सब की सहायक वा पोषक हिन्दी भाषा है। इस पर भी यदि वह निजपोषक और जन्मदाता का अनुकरण न करे तो वह अवश्य ही निन्दास्पद है। बीमृस साहिब लिखते हैं कि विना आर्य्य शब्दों के प्रयोग किये हुए उर्दू का एक वाक्य भी रचना असम्भव है परन्तु फ़ारसी अरबी के शब्दों के प्रयोग किये बिना उर्दू वाक्यों की रचना हो सकती है। *

हिन्दी भाषा कैसी होनी चाहिये और किस रीति पर चलने से इस की विशेष शोभा एवं सराहना होगी इस को हरिश्चन्द्र निज ईश्वर-प्रदत्त विलक्षण बुद्धि से पूर्ण प्रकार से समझ गये थे। इन्हों ने इस को ऐसे सांचे में ढाला कि पढ़नेवाले मुग्ध होगये। इन्हों ने इस को मौलवी वा राजाशाही हिन्दी होने से बचाकर निज जननी की पदानुगामिनी बनाते हुये भी ऐसा नहीं होने दिया कि सर्वथा उसी के पदों में विलीन हो जाय। अर्थात् दोनों ओर के अयोग संसर्ग से सावधानता पूर्वक बचाते हुये इसे शुद्ध मार्ग पर ले चले। दोनों ओर में किसी ओर विशेष झुकाव होने ही से एक दिन विचारी हिन्दी का भी पैशाची भाषा के समान नाम लोप हो जाता। इसी से हम इन्हीं को इस समय हिन्दी का सच्चा रक्षक कहने का साहस करते हैं और इन्हीं के समय

* It would be quite impossible to compose a single sentence in Urdu without using Aryan words, though many sentences might be composed in which not a single Persian word occurred. Beam's Comparative Grammar, p. 32. note.

को हिन्दीभाषा का तृतीय काल मानते हैं। व्रजभाषामिश्रित हिन्दी में लालित्य न हो यह बात नहीं है। अपेक्षाकृत व्रजभाषा मधुरतर है इस में सन्देह नहीं। परन्तु एक तो फ़ारसी अरबी के अनुरागी महाशयों के अनुग्रह से हिन्दीभाषा निज स्थान से कई सीढ़ी उतर चली थी दूसरे व्रजभाषामिश्रित वा अधिकांश संस्कृत शब्द मिश्रित हिन्दीभाषा शुद्ध हिन्दी नहीं कहला सकती थी। हिन्दीभाषा इस अवस्था को पहुंच गई थी कि बहुत से लोग इसे गवांरीभाषा कहने लगे थे और लोगों का यह अनुमान था कि उर्दू के सहारे बिना वा निज जननी से पोषित हुये बिना हिन्दी चलही नहीं सकती। डाक्टर राजेन्द्र लाल के कथनानुसार "हिन्दी का भाषा भंडार ऐसा पूर्ण होने पर भी कि आधुनिक अन्यभाषा इस की समता नहीं कर सकती" लोग इसे दिहाती भाषा ही मानते थे। हरिश्चन्द्र ही के यत्न और परिश्रम का यह फल हुआ कि अङ्गरेज़ों की लेखनी से भी यह बात निकलने लगी कि "जो भाषा दिहाती और किसानों की कहलाती थी वही आज सर्व गुण में श्रेष्ठ, मधुर, ललित, तथा मनभावनी बन गई; अब हम इस भाषा में किसी ग्रन्थ के किसी आशय को चाहे जिस सुगम रीति से प्रगट कर सकते हैं और लोगों का यह कहना व्यर्थ हो गया कि "यह भाषा उर्दूभाषा को दबा नहीं सकती।" जो लोग विवेकी हैं वे इस बात को अवश्य स्वीकार करेंगे कि हरिश्चन्द्र ने उस बिगड़ी हुई हिन्दी भाषा को नव अलंकारों से अलंकृत कर के सुसम्पन्न नागरी बना कर नागरी का नाम सार्थक किया। हिन्दीभाषा उन के समय में ऐसी सहज मधुर एवं लावण्यमयी हुई कि लोग देखते ही इस पर विमोहित होनेलगे।

इस में सन्देह नहीं कि हिन्दीसाहित्य के सेवक आज भी इस की सेवा कर रहे हैं और इस की उन्नति करते जाते हैं, परन्तु प्रचलित प्रणाली के जन्मदाता हरिश्चन्द्र ही हैं यह सभी को अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा और जबतक इस भाषा का नाम संसार में वर्तमान रहेगा इन का नाम भी साथ ही साथ वर्तमान रहेगा। हिन्दी के लेखक आज भी बहुत से हैं, परन्तु हम कह सकते हैं कि उन में उन्हीं लोगों के लेख में रस मिलता है जो इस प्रणाली के अनुगामी हों। और सच पूछिये तो ऐसा कौन है जो हरिश्चन्द्र का शिष्य न हो, चाहे कोई मुंह से यह बात स्वीकार करे या नहीं। हम यह भी पूछेंगे कि इन से पूर्व वा पश्चात् ऐसे कौन सुलेखक हुये जिन की रचना का सर्व मण्डली में इतना मान हुआ हो; जिन के लेख के पढ़ने से सभों के दांत खिल उठे हों या जिन से

सब समाचार पत्रवाले अपने लिये कोई लेख लिखाने वा पुस्तक की रचना कराने के निमित्त सदैव प्रार्थी हों ? रामायण तथा प्रेमसागर की बात छोड़ दीजिये उन के प्रचार का कारण कुछ और ही है । हरिश्चन्द्र को प्रथम आसन प्रदान करने से उन के परवर्तियों में उन के समान श्रेष्ठ आसन पानेवाला कौन नज़र आता है ? तभी तो उन के स्वर्गवास पर लोग यही कह कर विलाप करते थे " हाय नागरी के नाह छाड़ि कै कितै गयो । "

अब हम यदि यहां पर देवनागरी वर्णमाला के विषय में भी कुछ लिखें तो विश्वास है कि पाठक अप्रसन्न न होंगे क्योंकि जिस भाषा का ऊपर वर्णन हुआ है और जिस भाषा के एक प्रसिद्ध कवि तथा सुलेखक की जीवनी लिखी जाती है उस की वर्णमाला का पुरावृत्त जानना थोड़ा लाभदायक नहीं होगा । इस विषय की ओर हमारा ध्यान जाने का एक विशेष कारण यह भी हुआ है कि आरानागरीप्रचारिणी के प्रणिहसमालोचक सभा से " हिन्दी और हिन्दी अक्षर " पर कविता लिख भेजने के लिये मेरे पास एक पत्र आया था । उन दिनों अवकाश न रहने के कारण हम कविता तो न बना सके परन्तु हिन्दी ( देवनागरी ) अक्षर का इतिहास यहां पर संक्षिप्त लिख देते हैं जो कविता से भी अधिकतर लाभदायक है और जिसे जानकर हमारे बहुत से मित्रगण स्वेच्छानुसार स्वयं कविता बना लेंगे ।

भारतवर्षीय जितनी वर्णमाला का हाल आज तक ज्ञात हुआ है उन में पालीभाषा की वर्णमाला सब से प्राचीन कही जाती है । वह वर्णमाला ईसा से पूर्व ३री शताब्दी की है । मैक्समूलर का कथन है कि ईसा के पूर्व ५वीं शताब्दी के पहले भारतवर्ष में कोई वर्णमाला नहीं थी और भारतवासियों ने पश्चिमीय देश से वर्णमाला लाया और लिखना सीखा । किन्तु डाक्टर राथ तथा डाक्टर बुह्लर साहिब के लेख से पूर्वोक्त कथन का खंडन होता है । गोल्डस्टकर साहिब कहते हैं कि वेद ही के काल से लिपिबद्ध करने की रीति भारतवासियों को ज्ञात थी । लैसन साहिब कहते हैं कि पालीभाषा की वर्णमाला खास भारतवर्ष में उत्पन्न है कहीं से लाई नहीं गई है । इन बातों को विचार कर रमेशचन्द्रदत्त महाशय लिखते हैं कि वेद ही के काल में कोई वर्णमाला थी जो पाली वर्णमाला में परिवर्तित हुई । उसी से देवनागरी अक्षर हुये और उस से बंगभाषा की वर्णमाला बनी जो बात बंगभाषा की वर्णमाला अवलोकन मात्र से स्पष्ट विदित होती है । *

* A cursory examination of the Bengali alphabet will

किसी २ पुरातत्ववेत्ता का यह भी अनुमान है कि पाली से गुप्त अक्षर निकला एवं गुप्त से देवनागरी अक्षर की उत्पत्ति हुई। डाक्टर हार्नली साहिब ने स्वरचित गौड़ीय भाषा के व्याकरण में एक अङ्ग में वर्णमालाओं की उत्पत्ति का यह क्रम दिया है। पाली, गुप्त, अशोक, कुटिला, कैथी, महाजनी, देवनागरी, पंजाबी, बंगाली, उड़िया और उन्होंने लिखा है कि "कैथी का प्रचार बहुत है। कैथी अक्षर केवल पूर्वदेश ही में प्रयोग नहीं किया जाता वरन किञ्चित परिवर्तित अवस्था में हिन्दुस्तान के पश्चिम प्रान्त, महाराष्ट्र तथा गुजरात में भी यह प्रयोग किया जाता है और कैथी से देवनागरी तथा महाजनी की उत्पत्ति हुई है। देवनागरी कैथी की परिशोधित अवस्था और महाजनी उस की बिगड़ी हुई अवस्था है"।*

किन्तु कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेज के संस्कृत प्रोफेसर बाबू सतीशचन्द्र आचार्य विद्याभूषण एम० ए० का कथन है कि "देवनागरी वर्णमाला की उत्पत्ति किसी ऐसी वर्णमाला से हुई है कि जो पाली तथा गुप्त भाषा की वर्णमाला के साथ साथ वर्तमान थी। मध्य एशिया में जो प्रशस्ति मिली है और जिसे डाक्टर हार्नली साहिब ने पढ़ा है उस में ईस्वी ४ थी शताब्दी का भद्दा नागरी अक्षर पाया गया है। देवनागरी, बङ्गाली, एवं तिब्बत की वर्णमाला का इतिहास अन्वेषण करने से

---

convince our readers that it is derived and simplified from Devanagri alphabet. R. C. Datta's Literature of Bengal, p. 9.

That the ornate Devanagri character was a later developement of the simpler and older Indo-Pali character, and that the Bengali character is a simplification and later modification of the Deonagri character. Ibid, P. 10.

* It is most widely spread.........It is used in writing not only in Eastern; but also, slightly modified, in western Hindustan, Maharatta and Gujrat.........Besides these, there are two sub types much in use in area occupied by the Kaithi to which they are the most nearly related. These are the Nagri or Deonagri and Mahajni or Kothiwali, the first an improvement, and the second, a corruption of the Kaithi or of its more ancient original. Vide Dr. Hrœnle's Grammar of Gaudian Dialect, Alphabet, P. 2.

हमलोग देखते हैं कि वे सब एक अति प्राचीन वर्णमाला से उत्पन्न हुई हैं जो अति प्राचीनकाल में भारतवर्ष के उत्तरीय वा पश्चिमोत्तरीय प्रान्त में प्रचलित थी। किन्तु इधर थोड़े ही दिन में जैसी देवनागरी की बढ़ती हुई है, वह आश्चर्यजनक है। यह बात पहिले कदाचित् काशी के कान्यकुब्ज राजाओं की सहायता से हुई हो। सब प्रान्त के लोग काशी में विद्याध्ययन के निमित्त आते थे। वहां से इस को अपने २ देश में ले जाने लगे और धीरे २ यह लिपि तत्कालीन अन्य प्रचलित वर्णमाला को दबाने लगी। फिर ११ वीं शताब्दी में पण्डित मण्डली ने भी इसे मान प्रदान किया। आधुनिक काल में यूरोप-देशीय संस्कृतवेत्ता लोग भी संस्कृत ग्रन्थों को देवनागरी अक्षर में छापने लगे। थोड़े ही दिन पहिले संस्कृत के ग्रन्थ सब बङ्गाली, उड़िया, तैलंग तथा तामील भाषा में उद्धृत किये जाते थे परन्तु अब हमारे पंडित लोग भी देवनागरी ही अक्षरों में ग्रन्थों को मुद्रित कराते हैं। बम्बई, मन्दराज, इलाहाबाद तथा पंजाब विश्वविद्यालयों में भी छात्रों को देवनागरी अक्षर ही में लिखने की आज्ञा हुई है। यदि कलकत्ता विश्वविद्यालय भी ऐसी आज्ञा प्रचारित कर दे तो इस विस्तृत भारतवर्ष में यह प्रधान वर्णमाला हो जायगी। अधिक आश्चर्य तो यह है कि सिंहलद्वीप तथा बर्मा इत्यादि देशों में भी पालीभाषा के ग्रन्थ देवनागरी अक्षर में छपने आरम्भ हो गये हैं। ५०वर्ष से देवनागरी अक्षर ऐसे द्रुतवेग से चल रहा है कि यदि ऐसा ही चलता रहा तो हिन्दुस्तान को कौन कहे सारे एशिया पर अपना अधिकार जमा लेगा *"।

जिस भट्ट नागरी अक्षर की बात सतीश बाबू ने लिखी है वह सम्भवतः कैथी अक्षर वा उस का कोई रूपान्तर होगा क्योंकि उस भट्ट नागरी अक्षरवाली प्रशस्ति को हार्नली साहिब ने पढ़ा है और हार्नली साहिब ही ने नागरी अक्षर को कैथी का सुधरा हुआ रूपान्तर माना है और नागरी वर्णमाला को कैथी से समुद्भूत होना भी बताया है जो बात बाबू रमेशचन्द्र दत्त ने भी लिखी है। सतीश बाबू का लेख भी बिचार पूर्वक पढ़ने से इस से विरुद्ध नहीं पाया जाता। यद्यपि नागरी अक्षर के प्रचार के सम्बन्ध में उक्त बाबू ने जो लिखा है उस से कुछ द्वेष की गन्ध आती है परन्तु यह स्वाभाविक है और अपनी भाषा और भाषा की वर्णमाला पर उन को ममता दिखलाती है, जो निन्दनीय नहीं है।

* Calcutta University Magazine, July 1903 A. d.

पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि देवनागरी अक्षर अति प्राचीन है और कैथी वा उसी प्रकार के किसी रूपान्तर अवस्था में कम से कम ईसा के पूर्व ४ थी शताब्दी से ये अक्षर व्यवहृत होते हैं और देवनागरी लिपि का प्रचार भी बड़े वेग से बढ़ता जाता है जो आनन्द का विषय है । परन्तु शोच तो इस बात का है कि इस अक्षर का पंडितमंडली में आदर हो, यूरोप तथा सिंहल आदि देशों में सम्मान हो, अनेक विश्वविद्यालय में गौरव हो और जिस प्रांत का यह अक्षर है वहीं के लोग विशेषतः हमारे प्रियबन्धु कायस्थ लोग इस के प्रचार में ढिलाई करें और इस को व्यवहार करने में घृणा करें। हम कह सकते हैं कि यदि पश्चिमोत्तरदेश तथा बिहार अपने अपने नित्य के कार्य्यों में इस का व्यवहार करें तो निस्सन्देह अति अल्प ही काल में सतीश बाबू का भावीकथन फलीभूत हो जाय ।

हम ऊपर लिख आये हैं कि लल्लू लाल जी के पूर्व भी गद्य हिन्दी लिखने का पता पाया जाता है। उस के छपने के बाद बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्य्याध्यक्ष ने हमारे पास एक पत्र और एक चक्र भेजा है जिस के देखने से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि लल्लू लाल के पूर्व हिन्दी गद्य के अनेक पुस्तकें लिखी गई थीं। इस चक्र में ग्रंथ तथा ग्रंथकर्त्ता का नाम एवं पुस्तक बनने का समय लिखा हुआ है। यह चक्र उपसंहार 'ख' में धन्यवाद पूर्वक प्रकाशित किया जायगा। यद्यपि भूतकाल के आकाश में अनेक गद्यलेखक नक्षत्रों का दर्शन होता है तथापि लल्लू लाल ही गद्य हिन्दी के शुक्र नक्षत्र कहे जायेंगे क्योंकि इन्हीं ने अपेक्षाकृत गद्य रचना की अधिक ज्योति प्रसारित की और इन्हीं के थोड़े दिन बाद गद्य हिन्दी दिवस का आगम हुआ ।

# षष्ठ परिच्छेद ।

## कविता ।

हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य-वाटिका के एक प्रवीण माली थे। इन की इस वाटिका में काव्य नाटकादि की कैसी२ सुन्दर क्यारियां कटी हुई हैं, ललित लेख, प्रबन्ध, एवं पुस्तकों के कैसे२ अपूर्व वृक्षों से यह सुशोभित है; इस में कविता लता कैसी लहरा रही है; अलंकारों के पुष्पों की कैसी छटा छहरा रही है, अर्थ का कैसा पराग झर रहा है, भाव का कैसा सुगन्ध उड़ रहा है, सरसता का कैसा मधु टपक रहा है; विविध छन्दों की ध्वनि युक्त पिकादि नाना भांति के पक्षियों की कलरव सा कैसा आनन्द दे रही है; कभी२ भयानक और बीभत्स का भयप्रद रव भी चित्त में कैसा भय उपजाता है; शान्ति, भक्ति का शीतल मन्द सुगन्ध वायु हृदय को कैसा आह्लादित करता है; वीर और रौद्र का तीव्र तप्त वायु ग्रीष्मऋतु के पवन के समान कभी २ चित्त को कैसा चंचल कर देता है; हास्य की सुखद चन्द्र-किरण मन को कैसा आनन्दित करती है। स्वच्छ शृंगार सरोवर संयोग वियोगादि तरंगों से कैसा तरंगित हो रहा है, गम्भीराशय जल से वह कैसा परिपूर्ण है, शब्दविन्यास के भांति भांति के कमल कैसे विकसित हो रहे हैं और रसिकता का भँवर कैसा गुंजार कर रहा है। सच तो यह है कि इस बाटिका की सैर निस्सन्देह आमोदप्रद है परन्तु इस बाटिका में स्वयं भ्रमण किये बिना किसी को यथार्थ आनन्द नहीं मिल सकता क्योंकि यह अनिर्वचनीय है; और न किसी को सदुपदेशों का सुन्दर फल ही प्राप्त हो सकता। तथापि इस बाटिका की क्यारियों की कुछ छवि वर्णन करने की हम चेष्टा करेंगे जिस में पाठकों के जी में इस के भ्रमण का अनुराग उत्पन्न हो।

पहिले काव्यक्यारी की छटा दिखलाने का यत्न किया जायगा। कविता में श्री वागीश्वरी ने एक अपूर्व शक्ति प्रदान की है। जो विषय दर्शन और नीति के लिये कष्टसाध्य है, क्षणमात्र की चिन्ता में कवि उस रहस्य को प्रगट करने में समर्थ होता है। इसी से सुविख्यात अंगरेज़ी कवि शेक्सपियर ने लिखा है कि:—

" The poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven,

And, as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shapes and gives to airy nothing
A local habitation and a name.

A Midsummer's Night's Dream.

अंखिया सुकबीन की घूमि भले उनमत्त समान लखै कबहीं।
नभमंडल सों भुव ओर कबौं भुव सों निरखै नभ की दिसहीं॥
सिब ज्यों ज्यों अपूरब वस्तु अजान सुबुद्धि गढ़ै छिन हीं छिन हीं।
कबि लेखनि ताकर चित्र खिंचै अरु ठाम औ नाम कहै सबहीं॥

इसी कारण से यह कहावत प्रसिद्ध है "जहां न पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि" अर्थात् जहां सूर्य्य की किरणों की भी गति नहीं होती वहां भी कवि पहुंच जाता है। परन्तु यह बात केवल प्रकृत कवि पर घटित हो सकती है। वही भूत को वर्त्तमान के समान कर दिखलाने को योग्यता रखता है, वही किसी विषय के वर्त्तमान स्रोत को भविष्यत् में फेरने को समर्थ हो सकता है, और वही वर्त्तमान और भविष्यत् का पथप्रदर्शक होता है।

विषय और प्रबन्ध की सत्यता सम्पादन, भाव की गंभीरता, भाषा की सरलता और शब्दविन्यास की निपुणता का प्रदर्शन ही प्रकृत कवि के मुख्य गुण हैं। जिस कवि की कविता इन गुणों से भूषित हो वही उत्तम कवि कहलाने का अधिकारी है। विलायती कवि मिल्टन ने भी कहा है कि कविता सरल, मर्मस्पर्शिणी और मत्तकारिणी होनी चाहिये, थोड़े ही शब्दों में बहुत भाव प्रगट होना सत्कविता का एक मुख्य लक्षण है।

विचारपूर्वक देखने से हरिश्चन्द्र की कविता इन गुणों से भूषित पाई जाती है। चाहे प्राकृतिक वस्तु का वर्णन हो, चाहे किसी जीवधारी का गुण कथन हो, चाहे किसी नगर वा स्थान विशेष की छवि का चित्रण हो, चाहे ज्ञान और विज्ञान का प्रदर्शन हो, चाहे करुणरस वा हास्यरस का निरूपण हो, चाहे वीररस वा शांतिरस का विश्लेषण हो, सब स्थानों पर कविता में इन की लेखनी ने अपूर्व शक्ति प्रदर्शित की है। भाषा मानों इन की आज्ञाकारिणी घर की लौंडी थी। कठपुतली के समान जिधर इच्छा हुई है उधर ही उसे नचाया है।

हरिश्चन्द्र की कविता के सर्वगुणसम्पन्न होने के अनेक कारण थे। एक तो ईश्वर ही ने इन्हें कवि बना कर संसार में जन्म दिया था जिस से इन के मुख से उसी अवस्था में कविता स्फुटित होने लगी थी जब कि अधिकांश बालकों को किसी भाषा की वर्णमाला का भी ज्ञान नहीं होता, और उन के हाथों से गेंदा और लट्टू तक नहीं छूटता, दूसरे कविताई इन को पैत्रिक सम्पत्ति थी, तीसरे बाल्यकाल ही से काशी में निवास, जहां की प्रत्येक वस्तु हृदय में कवित्वगुणसंचार की अद्भुत शक्ति रखती है, चौथे ग्यारहवें वर्ष की अवस्था से समय २ देशाटन, पांचवें मित्रमण्डली सुरसिक। निदान सभी बातें कविता शक्ति विकशित करने की साधिका ही थीं बाधिका कोई नहीं।

इस के अतिरिक्त स्कूल में पढ़ने के समय भी इन को कविता सीखने का उत्तम योग मिल गया था। इन के क्लास के अध्यापक पं० लोकनाथ जी अच्छे कवि थे। *

इन्हीं से बालक हरिश्चन्द्र ने कविता सीखी। परन्तु स्वर्गीय पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने निज पिता श्री पण्डित दुर्गादत्त ( दत्तकवि ) के जीवनचरित में लिखा है कि "बाबू हरिश्चन्द्र ने सन्ध्योपासन, अमरकोष, पंचतन्त्र, रघुवंश आदि कई ग्रन्थ मेरे पिता से पढ़े थे। यह ऐसे उत्कृष्ट बुद्धिमान थे कि भाषा काव्य आप ही लगा लेते थे, कहीं सन्देह हो तो पंडित दुर्गादत्त से पूछ लेते। " परन्तु बाबू राधाकृष्ण ने हम को एक पत्र में लिखा है कि "पंडित दुर्गादत्त सुकवि थे, प्रतिष्ठित थे, वृद्ध थे, उन का मान बाबू साहिब के यहां बहुत था किन्तु बाबू साहिब उन से पढ़ते भी थे यह हम ने कभी नहीं सुना न देखा"। जो हो, बाबूसाहिब पण्डित लोकनाथ ही को बराबर गुरु कहते थे। और बारहों वर्ष की अवस्था में हिन्दी तथा संस्कृत इतना जान गये थे कि समस्याओं की पूर्त्ति

---

* पंडित जी कृत छपी हुई "सीयसुखमा" हमारी देखी हुई है उस से एक कविता उद्धृत की जाती है:—

सुन्दर सची के असुची के रंग फीके लगें हाल उर्वसी के जो सुरेस के बसी के हैं। सुन्दर सुकेसी के न घोषा मंजुकेसी के न मेनका घृताची के न रंभा सुरती के हैं॥ रूप जो रती के सो रती के सम हू न नीके चंपा चंपही के जोग सोना हू कसी के हैं। नाथ दामिनी के चारु चन्द चांदनी के रूप कोऊ कामिनी के नांहि जैसे जानकी के हैं॥ १॥

बात की बात में कर के लोगों को चकित कर देते थे। दो एक समस्या की पूर्त्ति नीचे लिखो जाती है "मृगात्सिंहः पलायते" इस की पूर्त्ति इन्हों ने इस प्रकार से की थी।

दृष्ट्वा त्वन्नेत्रनैशित्यं मोहितो वीरपुङ्गवः।
शङ्कितस्तद्भयेनेव मृगात्सिंहः पलायते॥

परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि पूर्वोक्त समस्या किस की दी हुई थी और इन्हों ने इस को किस अवस्था में पूर्त्ति की थी। किन्तु १८७३ ई० के नवेम्बर में जब पंजाब युनिवर्सिटी के एक अध्यापक श्रीपंडित गुरुप्रसाद जी श्री पंडित शिवकुमार जी को लेकर इन से मिलने आये थे और उन के यह कहने पर कि पंडित शिवकुमार जी कविता बहुत शीघ्र करते हैं "चन्द्रावली चुम्बति" समस्या दीगई, तो उक्त पण्डित जी तथा बाबू साहिब दोनों महानुभावों ने उस की पूर्त्ति की। बाबू साहिब की की हुई पूर्त्ति यह है।

"चन्द्रालोकमये चतुष्पथचये गन्धावहे मारुते।
चंचच्चालितचंचरीकनिचये चारुप्रमोदोदये॥
कूजत्कोकिलकाकलीकलकले कालिन्दिकाकूलके।
कुंजे केलिकलाऽऽकुलं प्रियतमं चन्द्रावली चुम्बति॥

इस के अतिरिक्त "सीतावल्लभस्तोत्र" तथा "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्" इत्यादि कई एक विषय इन्होंने संस्कृत भाषा में लिखे हैं।

इन के पूर्व जितने कवि हुये सभी शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शांति यही नव रस मानते थे। हरिश्चन्द्र ने १२ वें वर्ष की अवस्था में यह तर्क किया कि इन के अतिरिक्त वात्सल्य, सख्य, भक्ति एवं आनन्द ये चार रस और होने चाहिये क्योंकि इन नव रसों में से किसी रस में भी इन चारों का भाव नहीं मिलता है। इन्हों ने इस तर्क को अपनी उक्ति युक्ति द्वारा ऐसा पुष्ट किया था कि श्री काशीनरेश श्रीमान् ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह बहादुर के सभा पंडित ताराचन्द्र तर्करत्न को भी जो संस्कृत के प्रसिद्ध पण्डित तथा कवि थे यह बात माननी पड़ी थी और उन्हों ने स्वरचित "शृङ्गाररत्नाकर" में स्पष्ट लिखा है "हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्य, सख्य, भक्ति, आनन्दाख्यमधिकं रसचतुष्टय मन्वन्ते" अर्थात् हरिश्चन्द्र

वात्सल्य, सख्य, भक्ति तथा आनन्द नामक चार रस अधिक और मानते हैं। इन्हों ने उस ग्रन्थ में इन सबों का उदाहरण भी दिखलाया है। इसी प्रकार यह शृङ्गार रस में भी कई सूक्ष्म तथा नूतन भेद * मानते थे। पण्डित-मण्डिली में "पण्डित" नामक पत्रद्वारा इस विषय का कुछ दिन बड़ा आन्दोलन होता रहा। इन्हों ने अपने पूज्यपाद पिता जी का "रसरत्नाकर" नामक ग्रंथ पूरा कर के और उसी में इस विषय का निराकरण कर के एक ग्रंथ दो काज करना चाहा था और उस ग्रंथ को प्रकाश करना भी आरम्भ कर दिया था जो "हरिश्चन्द्र मेगज़ीन" के ७।८ अंक में प्रकाशित हुआ है। दुर्भाग्यवश वह ग्रंथ पूरा प्रकाशित नहीं हुआ। किन्तु जो कुछ छपा है वही नमूना के लिये थोड़ा नहीं है। उसी से नाज के ढेर का अन्दाज मिल सकता है। यहां पर उसका कुछ अंश उद्धृत कर देने से पाठकगण स्वयं समझ जायेंगे। हमारे चरित्रनायक लिखते हैं:—

"अथ परकीया। 'अप्रकट परपुरुषानुरागिणी परकीया' अर्थात् अप्रकट परपुरुष में जो अनुराग करे वह परकीया। पर इस सूत्र का और प्राचीन मत का आग्रह और अनुभव प्राचीनों ही को रहै। मैं तो न ऐसा मानता हूँ और न मेरा अनुभव है क्योंकि इस सूत्र के दो लक्षण हैं। एक तो अप्रगट अनुराग वह अनुभव के बाहर है क्योंकि यह प्रेम ऐसी आंच है कि कभी छिपती नहीं। इस में उदाहरणस्वरूप श्रीगोपीजन हैं जिन का प्रेम स्वयं ग्रंथों में विख्यात है। और इस दशा में कुलटात्व कभी नहीं आता क्योंकि अनुभव है कि किसी परकीया का प्रेम पतिव्रत से भी दृढ़ होता है। इस से पहिला लक्षण अनुभव-विरुद्ध है। और दूसरा यह कि आपही अनुराग करे, यह भी अनुभवविरुद्ध है क्योंकि अनेक नायिकों का एकांगी प्रेम होता है। इस दशा में क्या उन का वर्णन स्वकीया करके होगा? जैसा ठाकुर जी ने कहा है 'आवत है नित मेरे

---

* नायिका भेदः—कन्यका, स्वकीया, परकीया, कुलटा, सामान्यवनिता।

गर्विताः—प्रेम, धन, यौवन, क्रिया, कुल, रूप, गुण, वचनगर्विता। इस में भी पैत्रिक कुल तथा धन, एवं निज रूप और गुण के विचार से तथा पति के कुल धन, रूप इत्यादि के विचार से दो भेद मानते थे।

शृङ्गार—में पूर्व्वानुराग, सम्भोग, मानोत्कण्ठा, विरह। ईर्ष्यादि सब वस्तुओं में भेद मानते थे।

पं० ताराचरण ने अपने ग्रन्थ में इन सबों का भी उदाहरण दिखलाया है।

लिये इतना तो विशेष हूँ जानति ह्वै हैं' और इस दशा में नायिका में बिना दुर्गुण देखे कुलटा कहने से भी पाप है। इस से दूसरा लक्षण भी मतविरुद्ध है"।

अब परकीया में कवि ( हरिश्चन्द्र ) की उक्ति—

"दोहा—मन मोहै जोइत सकल, जाने रस निरधार।
प्रीति एकही सों करै, सो परकीया नारि॥
प्रगट करै अनुराग वा, राखे ताहि छिपाय।
नहिं चाहै पिय को तऊ, परकीया कहवाय॥

"जो परकीया हो वही परकीया है अर्थात् नाम ही में उस का लक्षण लक्षित है और यह परकीया तीन प्रकार की हैं। जैसे, उत्तमा, समा और विषमा। उत्तमा के दो भेद हैं प्रेमपूर्णा और शंकिता। अथ साधारण परकीया का उदाहरण —

"यह सावन सोक नसावन है मनभावनि या में न लाजैं भरो।
जमुना पै चलौ सु सबै मिलि कै अरु गाय बजाय कै सोच हरो॥
इमि भाखत हैं हरिचंद पिया अहो लाड़िली देर न यामें करो।
बलि झूलो झुलावो झुको उझको इहि पावैं पतीव्रत तावैं धरो॥

"अथ उत्तमा का लक्षण। जो प्रियतम के न चाहते भी आप चाहै वह उत्तमा। इस के दो भेद हैं शंकिता और प्रेमपूर्णा।

"जो नायिका नायक को तो उस के बिना चाहे चाहै, पर लोगों की शंका से प्रीति को प्रगट न करै वह शंकिताउत्तमा। यथा :—

"सब चहियो कहियो न कछु, रहियो जिय धरि मौन।
यह तेरी बाढ़ी बिथा, बूझनहारो कौन॥

"जानत कौन है प्रेमबिथा केहि सों चरचा या बियोग की कीजिये। को कही माने, कहा समझै कोऊ, क्यों बिनु बात की रारहिं लीजिये॥ जो हरिचंद जू बीतै सहैं बकि कै जग क्यों परतीतहिं छीजिये। पूछत हैं सब मौन है क्यों? पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिये॥

"प्रेम प्रगट मत कीजियो, यामें अति उत्पाति।
ठाढ़ो ही जरि जाइयो, तू दीपक की भांति॥"

इसी प्रकार इन्हों ने प्रेमपूर्णा तथा परकीया के अन्य भेदों का भी लक्षण और उदाहरण लिखा है।

परकीया के उदाहरण में "यह सावन सोक नसावन है" जो सवैया लिखी गई है यही सवैया इन्हों ने सब से पहिले गोकुल की समस्या पर बनाई थी। १५ पौष शुक्ल १८६४ से अर्थात् १४ वर्ष की अवस्था में पण्डित ताराचरण तर्करत्न की दी हुई इस समस्या की "तू वृथा मन क्यों अभिलाष करै" इन्हों ने निम्नलिखित पूर्ति की थी।

"जब तें बिछुरे नन्दनन्दन जू तब तें हिय में बिरहागि बरै। दुख भारि बढ़्यो सो कहौं किहि सों हरिचन्द को आइ कै दुःख हरै॥ वह द्वारिका जाइ कै राज करैं हमैं पूछि हैं क्यों यह सोच परै। मिलिबो उन को कछु खेल नहीं तू वृथा मन क्यों अभिलाष करै॥"

हरिश्चन्द्र के पूर्ववर्ती अनेक विख्यात भाषाकवि हुए जिन से साधारण रीति से तुलना करने पर हरिश्चन्द्र कोई श्रेष्ठ स्थान लाभ न कर सकेंगे, परन्तु विचार पूर्वक देखने से स्पष्ट विदित होगा कि यह एक प्रकृत कवि थे। इन की रचना सत्कविता के सब लक्षणों से भूषित पाई जाती है अर्थात् भाषा की सरलता, भाव की गम्भीरता, रुचि की निर्मलता, हृदयग्राहिता इत्यादि सब बातें इन की कविता में वर्तमान हैं। थोड़े से प्राचीन कवियों के अतिरिक्त ये सब लक्षण प्रायः अन्य लोगों की रचना में नहीं पाये जाते। इस का एक विशेष कारण है। साहित्य और समाज में एक घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस समय समाज की जैसी अवस्था होगी साहित्य भी तदनुरूप ही होगा। अनेक शताब्दी के मुसलमानों के साथ संसर्ग में जहां बकावली, मीरहसन, चेहारदुर्वेश, हातिमताई ऐसे ग्रन्थों का जन साधारण में आदर था, यदि हिन्दीकविता अत्युक्तिपूर्ण, वागाडम्बर में ढकी और कठोर शब्दों में भरी हुई हो तो आश्चर्य्य की बात नहीं, तत्कालीन कवि प्रायः मुसलमान राजाओं के आदरपात्र थे। उन लोगों की रुचि के अनुसार ही रचना भी किया करते

थे। हिन्दू राजा भी उसी ढंग की कविता का आदर करते थे। तभी तो चन्द्र-शेखर * जी का उन की इस कविता पर:—

"द्वादसों कला सों मारतण्ड ये उवेंगे चण्ड सेसवारी सांसनि समस्त सभु जलिहै। छूटि जैहै अचल अभास अमरेस वारो कूट जैहै कदली कली सी भूमि हलिहै॥ शेखर कहत अलका में कालापात ह्वै है पावक पिनाकी की त्रिसूल सों निकलिहै। तूं न तान भौंहैं भानुवंसी भूप मान ना तो जानि लैहै प्रलयपयोधि फूटि चलिहै॥"

मानसिंह के दरबार में १००) मासिक वेतन हुआ था; और पद्माकर † को निम्नलिखित कविता पर रघुनाथ राव पेशवा ने एक लाख रुपये पारितोषिक दिया था :—

---

* पौष शुक्ल १० सं० १८५५ में मौजवाबाद ज़िला फ़तहपुर में इन का जन्म हुआ था। इन के वंश में पहिले हुन्डी आदि की जीविका थी कविता केवल चित्तविनोदार्थ की जाती थी। परन्तु श्री गुरुगोविन्द सिंह जी के छैरुपांचें हंसराम जी के समय से कविता ही इस वंश की जीविका हो गयी थी। शेखर ने असनीनिवासी करनेश महापात्र से कविता पढ़ी थी। २२ वर्ष की अवस्था में घर से निकल कर दरभङ्गा की ओर आये और इस प्रान्त में यथोचित प्रतिष्ठा प्राप्त की। २८ वर्ष की अवस्था में जोधपुर गये। उस समय महाराज मान सिंह के दरबार में नामी २ बावन कवि थे। यह बांकीरामदानाचरण के द्वारा वहां दरबार में पहुंचे और यही कविता पढ़ी जिस पर मान सिंह ने १००) वेतन कर के इन्हें अपने पास रख लिया। मान सिंह के पुत्र तखूत सिंह के समय वहां से रुष्ट हो कर यह श्री महाराज कर्मसिंह के पास पटियाला गये। तब से बराबर वहीं रहे। उक्त महाराज के पुत्र महाराज नरेन्द्रसिंह के आज्ञानुसार इन्हों ने वीररसपूर्ण हम्मीरहठ काव्य की रचना की। इस के सिवाय इन्हों ने नखशिख, रसिकविनोद, वृन्दावनशतक, गुरुपंचाशिका, जोतिष का ताजक, माधवीवसन्त (वृहद्ग्रन्थ), हरिभक्तविलास (वृहद्ग्रन्थ) तथा एक राजनीति का ग्रन्थ बनाया है। इन के पुत्र पण्डित गौरी बाजपेयी पटियाले में वर्तमान हैं।

† यह बांदानिवासी मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। सन १८३८ में इन का

"सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावै काहुं तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना। कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर बिचारै ना॥ गंज गज बकस महीप रघुनाथ राव याही गज धोखे कहीं तेहि देइ डारै ना। याही भय गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥"

क्या इन छन्दों से बढ़ कर और कोई अतिशयोक्ति हो सकती है? क्या ऐसी कविता प्रकृत कविता कहला सकती है? नीति तथा धर्मसम्बन्धि कविताओं को छोड़ कर प्राय: नायिकाभेद या ऐसी प्रकार की रुचि की कुरुची पुस्तकें अधिकता से पाई जाती हैं। इस का कारण क्या है? यही, कि जो जितना ही बुद्धिसागर को मन्थन कर के रूपवर्णन या किसी के प्रशंसावर्णन में चमत्कारी दिखलाता था उतनाही उस को सुख्याति प्राप्त होती थी। प्रकृत कविता की खोजही कौन करता था, परन्तु उस से समाज का उपकार बहुत दूर था।

यदि ऐसी ही कविता सचमुच अश्लील और [illegible] होती तो बंगदेशीय प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र के विद्यासुन्दर काव्य की बुरी समालोचना करने के लिये कोई लेखनी नहीं उठाता और न विद्यापति तथा चण्डीदास की कविता की

---

जन्म हुआ था: यह संस्कृत तथा हिन्दीभाषा के पूर्ण पंडित थे। यह पहिले रघुनाथराव पेशवा के यहां थे। पीछे जयपुर सवाई महाराज जगत सिंह कछवाहा के पास रहे। वहीं पर इन्होंने जगतविनोद एक नायिकाभेद का ग्रंथ लिखा था। यह एक महान् कवि थे। इन्होंने काव्यबल से बहुत धन हाथी घोड़े इत्यादि लाभ किये थे। इन्हों ने अपने विषय में यह कवित्त कहा है—

"भट्टति लगाने को बुंदेलखंडवासी कवि सुयश प्रकाशी पदमाकर सो नामा है। जानत कवित्त छंद छप्पै हैं अनेक भांति संस्कृत प्राकृत पढ़े जु गुण-ग्रामा है॥ हय रथ पालकी गयंद गृह ग्राम चारु आखर लगाय लेत लाखन को सामा है। मेरे जान मेरे तुम कान्ह हो जगत सिंह तेरे जान तेरो वह बिप्र मैं सुदामा है॥"

इन के बनाये जगतविनोद, पद्माभरण, गंगालहरी, प्रबोधपचासा, बाल्मीकीय रामायण, आलीप्रकाश प्रसिद्ध हैं।

इतनी सराहना होती। प्रकृत कविता होने ही से गोस्वामी श्री तुलसीदास जी का रामायण, सूरदास जी की पदावली तथा बिहारीजी की सतसई आदि का देश विदेश में इतना मान होता है। शृंगार ही रस की कविता क्यों नहो परन्तु उसे प्रकृत कविता के लक्षण से सम्पन्न होनी चाहिये। केवल पाण्डित्यपूर्ण वा वागाडम्बरयुक्त कविता सराहनीय नहीं हो सकती। सुन्दर कविता करने की पूर्ण योग्यता रखते हुए भी जब अधिकांश कवियों ने केवल रस रस उत्साह-वर्द्धक और पालनकर्ता की रुचि अनुसार काव्यरचना की है तो कटुसमालोचना के लिये समालोचक दोषी नहीं हो सकता।

अन्य रस की कविता को बिलग रखिये। पहिले वीर रस की कविता की ओर दृष्टि डालिये। इस रस की कविता में प्रायः टवर्गी कवर्गी और द्वित्व शब्द अधिकता से भरे जाते हैं कि जिन के सुनने से कान के परदे फटने लगते हैं और जिन के उच्चारण में जिह्वा भी कभी २ अपनी गति भूल जाती है। ऐसे शब्दों को वीररस की कविता में विशेषतः प्रयोग करने का कारण यह कहा जाता है कि उन को सुन कर श्रोता के मन में वीररस का आवेश होता है और इसी अभिप्राय से लोग शब्दों को भी ऐसा तोड़ मरोड़ देते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। हम यहां पर उस ढङ्ग की दो एक कविता उद्धृत करते हैं।

" भुवन धुँधुरित धूलि धूम्नि धुंधुरित सुधूमहुं। पद्मा-कर परतच्छ स्वच्छ लखि परत न भूमहुं॥ भग्गत भरि भरि पग्ग मग्ग लग्गत अँग अंगनि। तहं प्रताप पृथिपाल ख्याल खेलत खलि खग्गनि॥ तहं तबहिं तोप तुंगनि तड़पि तत-ड़ान तेगनि तड़कि। धुकि धड़ धड़ धड़ धड़ धड़ा धड़ धड़ धड़ात तहा धड़कि॥

शेखर जी लिखते हैं।

जुत्थ जुत्थ कटि परै लुत्थ पर लुत्थ उलत्थिय।

कुंडन श्रोणित भरे सुंड बिनु डोलत हत्थिय॥ और

धूम धार धुंधरित धूरि धुंधरित धाम ध्रुव। डिगत कोट डगमगत कूट डोलंत भूरि भुव॥ भयो सोर परचंड घोर चहुंओर दंड छूक। खण्ड खण्ड गिरिवर बिहण्डि

छायो घखण्ड दिक ॥ जिमि चण्डवात वहत त्रिदर उठै उमंड उमंड रे। तिमि उड़त कोट पर्व्वे सहित दल दब्बै तल क्षिति परे ।

देखत कृपाण भूपमाण के मरीचे माण खल दल कम्प होत देख प्रलै माई सी। बांके गढ़ टूट फूट वीरण के प्राण छूट कलसो कराल काल कूट में बुझाई सी॥ अनत हुलास राम लकुमण तेरो तेग काट काट जात छोज फाट जात काई सी। काट जात टोप सोस पायण लो फाट जात चाट जात छिछव झमाठन मलाई सी॥

परन्तु हरिश्चन्द्र की वीररस की कविता भी सरल उत्तेजक और हृदयग्राहिणी पाई जाती है, साथ ही, उस के पढ़ने से हृदय में वीररस का संचार भी होता है। भारतीय सेना के अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण के समय "भारतवीरत्व" काबुल में अमीर अबदुर्रहमान और अयूब खां के मध्य युद्ध के समय "विजय-वल्लरी" तथा मिश्र देश में भारतीय सेना के जय लाभ करने पर "विजयिनी-विजयवैजयन्ती" आदि कविता जो इन्हों ने बनाई थीं उन के देखने से मेरा कथन प्रमाणित होगा। इन सब ग्रन्थों का सविस्तार वर्णन राजभक्तिप्रकरण में किया जायगा तथापि "विजयिनी विजय वैजयन्ती" से कुछ यहां उद्धृत किया जाता है।

अरे वीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए।
लेहु करन करवाल काढ़ि रनरंग समोए॥
चलहु वीर उठि तुरत सबै जयध्वजहिं उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रनरंग जमाओ॥
परिकर कटि कसि उठो बँदूकन भरि २ साधौ।
सजो युद्धबानो सबहीं रनकंकन बांधौ॥
का अरबी को वेग कहा वाको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मंझारी॥"

फिर उसी में है:—

खबरा तुम्हें नहिं खबर खबर अब को कुल आई।
जीत मिसर में सत्रु सैन सब दई भगाई॥
तड़ितसार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार यह।
भारतसैना कियो घोर संग्राम मिस्र मह॥
जेनरल मक्फ़रसन आदिक जे सैनापतियन।
तिन ले भारत सैन कियो भारी अति ही रन॥
बोलि भारती सैन दयौ आयसु उठि धाओ।
अभिमानी अरबी बेगहि बेगहि गहि लाओ॥
सुनि कै सबहीं परम वीरता आज दिखाई।
सत्रु गनन सों सम्मुख भारी करी लड़ाई॥
छिन में सत्रु भगाइ गह्यो अरबी पासा कर।
तीन सहस रन वीर करे बधुआ रंगर मर॥
आरज गन को नाम आजु सबहीं रख लीनो।
पुनि भारत को सीस जगत महँ उन्नत कीनो॥"

पाठकवृन्द स्वयं निरपेक्ष भाव से विचार कर देखें कि पद्माकरकृत कविता का चौथा पद कैसा है तथा उलत्थिय हलत्थिय ये सब शब्द कैसे हैं। हम यह नहीं कहते कि हरिश्चन्द्र के सामने उन लोगों की कुछ गिनती नहीं है। ऐसा कहने से लोग निस्सन्देह हमें पागल ही समझेंगे। हम यह भी नहीं कहते कि प्राचीन किसी कवि ने वीररस की प्रकृत कविता की ही नहीं। हमें तो केवल यही दिखलाना अभिप्रेत है कि हरिश्चन्द्र ने इस रस की कविता का भी ढङ्ग बदलने का यत्न किया है और दिखला दिया है कि इस रस की भी कविता सरलता के साथ वीररससंचारक हो सकती है।

देखिये गोस्वामी जी ने भी वीररस की कविताओं में टवर्गीय शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु न उन ने निष्प्रयोजन शब्द ही से काम लिया है और न इतनी अनैसर्गिक उपमाओं की भरमार की है; वरन कवितावली रामायण का सुन्दरकांड पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे बातें आंखों के

सामने हो रही है। यद्यपि रामायण में युद्धवर्णन अलौकिक ढंग से किया गया है तौ भी वह सच्चा ही चित्र खींचना कहा जायगा क्योंकि पौराणिक भी अलौकिक है; फिर भी उन का युद्धवर्णन प्रकृतिही को रोचक प्रतीत नहीं होता और इस का कारण वही अनैसर्गिक रचनाही कहा जायगा।

वर्णनीय वस्तु चाहे बुरी हो चाहे भली, चाहे उत्कृष्ट हो चाहे निकृष्ट, उस का सच्चा चित्र खींचना ही प्रकृत कवि का काम है। काव्य में मर्म-स्पर्शिनी शक्ति होनी चाहिये, उस में मादकगुण होना चाहिये। साथ साथ अत्युक्ति और अलौकिक उपमा भी रहे तो कुछ चिन्ता नहीं।

हरिश्चन्द्र में छविवर्णन की अपूर्व शक्ति थी। इन्हों ने सर्वत्र वस्तुओं का सुन्दर सच्चा चित्र नेत्रों के सामने खड़ा कर दिया है। यात्राप्रकरण में पाठकों को इस का कुछ अनुभव हुआ होगा। यमुना की छविवर्णनसम्बन्धिनी कविता "चन्द्रावली" से यहां भी उद्धृत की जाती है:—

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसनहित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज २ सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप वारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरिसेवाहित नै रहे निरखि नयन मन सुख लहत॥
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पांतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अगनित गोभा॥
कै करि कै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥
कै पिय पद उपमान जानि यह निज उर धारति।
कै मुख करि बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारति॥
कै ब्रजतिय गन बदन कमल की झलकत झाईं।

कै प्रन हरिपद परस हेत कमला बहु आईं ॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥
तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निस आवति ।
जल मैं मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ॥
सो को कबि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छबि इक सी नभ तीर की ॥
परत चन्द प्रतिबिम्ब कहूं जल मधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुं सोई मन भायो ॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ॥
कै रासरमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
कै जलउर हरिमूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है ॥
कबहुं होत सतचन्द कबहुं प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥
कै बालगुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारा गन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
कै कालिन्दी नीर तरंग जितो उपजावत ।

तिनको हो धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजतचकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत ॥
कूजत कहुं कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुं बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुं पियत कहूं भ्रमरावलि गावत ॥
कहुं तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत ।
जलपान न्हान करि सुख भरे तटसोभा सब जिय धरत ॥
कहूं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पांवड़े मनहु बिछाये ।
रत्नरासि करि चूर कूल में मनु बगराये ॥
मनु मुक्त मांग सोभित भरी श्याम नीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर मैं ब्रजनिवास लखि हिय हरसि ॥

जैसे सुन्दर एवं उत्तम वस्तुओं की छबि दरसाने में इन की लेखनी अपूर्व शक्ति दिखलाती, घृणित और निकृष्ट वस्तुओं का भी सच्चा चित्र नेत्रों के आगे खड़ा कर देने की वह वैसी ही सामर्थ्य रखती थी।

"सिर पै बैठे काग आंखि दोउ खात निकारत ।
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनँद उर धारत ॥
गिद्ध जांघ कहँ खोदि २ कै मांस उचारत ।
स्वान आंगुरिन काटि काटि कै खान विचारत ॥
बहु चील नोच लै जात तुच, मोद मढ़्यो सब को हियो ।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ, आज भिखारिन कहँ दियो ॥"

वाह वीभत्स का कैसा दृश्य दिखलाया है। क्या इस से भी अधिक और

कोई घृणाव्यञ्जक वर्णना हो सकती है? क्या यह सच्चा चित्र नहीं है? "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" आप लोग पढ़िये जिस में कवि ने प्रायः नीच पात्रों का समावेश किया है और देखिये कि उन पात्रों का कैसा सच्चा चित्र खींचा है।

कुछ भयानक की भी छवि देखिये:—

"करुणा चहुंदिस ररत डरत मुनि के नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी॥
अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयंद रव॥
रोअत सियार गरजत नदी स्वान भूंकि डरपावई।"
सँग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई॥

जिसे यह वर्णना सचमुच भयानक न प्रतीत होती हो वह वर्षाकाल की अँधेरी निशा में किसी नदी कूल पर खड़ा होकर इस का अनुभव करे।

अब रौद्र का भी एक उदाहरण देखिये—

"आजु अपमान अतिही निरखि भक्त को बैकुंठ वनि सिंह बहुत कोप्यौ। पटकि कर भूमि पै झटकि सिरकेस रद चाभि ओठन तेज गगन लोप्यौ॥ १॥

खंभ को फारि चिक्कारि केहरिनाद गर्भिनी गर्भ गरजन गिरायो। सटा फटकारि कै नछत्रगन नभहिं फेंकि इत सों उत हीं क्रोध छायो॥ २॥

कोटि सन विज्जुहक साथ ही गिरि परीं भयो अति घोर भुवसोर भारो। सिंधुजल उच्छल्यौ गिरे पर्वतशिखर वृक्ष जड़ सों सबै दिये उजारी॥ ३॥

देव दानव मनुज गिरे भय भागि वस्त्र फटिगये कान सुधि तनिक नाहीं। आजु असमय प्रलय देखि शिव चौंकि शूल ले धरि भ्रमत इत उत लखाहीं॥ ४॥

सृष्टि को क्रम भंग जानि बिधि बावरो मूंड पै हाथ धरि बहुत रोयो। दिशा हहिवे लगी भयो उल्कापात रुद्रित-मूरति तेज अगिन खोयो ॥ ५ ॥

नस्त मधुकर पिवत नाहीं मधु वृच्छ कों गज निज वत्स-गन नाहिं चाटैं। छवि अग्नि नहिं हरत डरत तहँ पौन नाही गौन करि सकत नभ धूर पाटैं ॥ ६ ॥

चकित माया नटी भूलि निज नटकला जगत गति जीव जड़ रोकि लीनी। रमा शृंगार निज करत ही रहि गई मनो सब चातुरी हार दीनी ॥ ७ ॥

जगत जा को खेल बनत बिगरे तनिक भौंह के कुत सों उत छलन माहीं। सोई त्रैलोक्यपति आजु कोप्यौ जबै तबै भव सबै कहं सरन नाहीं ॥ ८ ॥

\+ \+ \+ \+ \+ \+

सदा प्रभु सर्वदा गर्वहर अभयकर जनन उर सौख्य-कर दुखःहारी। पीर हरिचन्द की हरहु करुनातनय असित कलिकाल तव सरन धारी ॥ १२ ॥"

करुण और अद्भुत का भी नमूना देख लीजिये :—

कहाँ करुनानिधि केसव सोए।
जागत नेकु न यदपि बहुत बिधि भारत बासी रोए ॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारतहित बिसराए।
इत के पसु गज कों आरत लखि आतुर प्यादे धाए ॥
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई।
अपनो सम्पति जानि इनहिं तुम रछ्यो तुरतही धाई ॥
प्रलय काल सम जौन सुदरसन असुर-प्रान-संहारी।
ताकी धार भई अब कुंठित हमरो बेर मुरारी ॥

दुष्ट जवन बरबर तुव सन्तति घास साग सम काटैं।
एक एक दिन सहस सहस नर सीस काटि भुव पाटैं॥
ह्वै अनाथ भारत कुल बिधवा बिलपहिं दीन दुखारी।
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत खरारी॥
कहां गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई।
भक्तबछल करुनानिधि तुम कहं गायो बहुत बनाई॥
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई।
सब बिधि बूड़त लखि निज देसहिं लेहु न अबहिं बचाई॥"

"छूटि गई दोउ भौंह स्वेद सों तिलक मिटाए।
नयन पसारे लाल क्रोध सों ओठ चबाए॥
कटे कुंडलन मुकुट बिना शोभित दरसाए।
वायु बेग बस केस मूछ दाढ़ी फहराए॥
तुव तनय बान लगि बैरि सिर पच्छि बिध सों नभ में फिरत
तिन संग काक अरु कंक बहु रंक भये धावत फिरत॥"

शृंगार रस की कविता तो सब कवियों की मधुर और सरस होती है, परन्तु इन की इस रस की कविता सरस एवं मर्म्मस्पर्शिनी होने के अतिरिक्त सारगर्भित और उच्चाशय पूर्ण पाई जाती है। उस से प्रेम का आवेश होता है सही, परन्तु पाठक कर्तव्याकर्तव्य विमूढ़ नहीं हो जाते। शब्द सब भले ही विस्मृत हो जांय परन्तु प्रेम हृदय में जगह कर लेता है। प्रेममाधुरी, प्रेमफुलवारी आदि पुस्तकें, तथा इन की पदावली देखने से यह बात प्रत्यक्ष विदित होती है।

भला कहिये तो "जिन आंखिन में तुव रूप बस्यो उन आंखिन सों अब देखिये का" यह कैसा स्वच्छ और अनन्य प्रेम सिखलाता है। यही प्रेम अदूषणीय है, यही प्रेम आदर्शस्वरूप है, चाहे किसी से हो।

प्रेम का प्रतिफल नहीं पाकर सदा वियोग ही से सन्तप्त रहने से प्रेमी धैर्य्यच्युत किम्वा अधीरज हो कर कहता है:—

" इन दुखियान को न सुख सपने हूं मिल्यौ यौंही सदा व्याकुल विकल अकुलायंगी । प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औधि जौं पै जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायंगी ॥ देख्यौं एक बारहूँ न नैन भरि तोहि यातें जौन २ लोक जैहैं तहीं पछतायंगी । बिना प्रानप्यारे भये दरस तिहारे हाय देख लीजौ आंखैं ये खुली ही रहि जायंगी । "

क्या अनुराग है, और क्या ही चिताना है ! यहां केवल " कब्र तक लाशा भी मेरा राह तकता जायगा " यही नही है, वरन " देख लीजौ आंखैं ये खुली ही रहि जायंगी " और " जौन २ लोक जैहैं तहीं पछतायंगी " यह बात है जो कहीं बढ़ी चढ़ी हुई है ।

प्राचीन कवियों के सब रंग ढंग इन की कविता में पाये जाते हैं सही, परन्तु परिष्कृत रूप से एवं नई युक्ति द्वारा वे सब प्रगटित किये गये हैं ।

" रूसिवे सों पिय प्यारे तिहारे दिवाकर रूसत है क्यों बताइये " क्या यह प्राचीन भाव नये ढंग से वर्णन करना नहीं कहा जायगा ? फिर देखिये " जैसे छोटे पिंजरा में कोउ पच्छी फिरि तड़िपात । त्योंही प्रान परे ये मेरे छूटन को अकुलात ॥ कछु न उपाय चलत अति व्याकुल सुरि २ पछरा खात " । यह व्याकुलता तथा परवशता का कैसा सच्चा चित्र है । ऐसे सहस्रों उदाहरण इन की कविता में पाये जायेंगे ।—

सुन्दर उक्ति की भी कमी नहीं है । उदाहरण देखिये ।:—

" हौं तो याहि सोच में बिचारत रही री, काहे दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है । त्योंही हरिचन्द जू वियोग औ संयोग दोऊ, एक से तिहारे कछु लखि ना परत है ॥ जानी हम आज ठकुरानी तेरी बात, तू तौ परम पुनीत प्रेमपथ बिचरत है । तेरे नैन मूरति पियारे की बसत ताहि आरसी में रैन दिन देखिबो करत है ॥ "

ठाढ़े नन्दनन्दन कलिन्दिजा निकट लिये दोऊ ओर वृजबाल कंठ में भुजा दए। अंग अंग माधुरी निकाई सुकुमारताई पूरन प्रकास परिहास सुख सों छए॥ हरीचन्द धारि उर सेत रतनारे नख ध्यान करि प्रेम भरि मूंद दृग द्वै लए। करन प्रकास केरे हीय उदयाचल पैं बीस रवि दस ससि साथ ही उदै भए।

रूप दिखाइ कै मोल लियो मन बाल गुडी बहु रङ्गन ओरो।
चाहत मांझो दियो हरिचन्द जू ले अपुने गुन की रस डोरी॥
फेरि कै नैन परे तन पै बदनामी की तापै लगाई पुंछोरी।
प्रीत की चङ्ग उमङ्ग चढ़ाय कै सो हरि हाय बढ़ाय कै तोरी॥

अब इन के एक अति क्षुद्र काव्य के कईएक पद उद्धृत किये जाते हैं। पाठक देखें कि कैसी उत्तम और साधारण उपमा दी गई है।

"नाचत आवत पातपात छिड़नाल।
चलत तुरंग चाल पवन प्रभात॥
आप देत थपकी गुलाब चुटकार।
बालक खिलावै देखो प्रात की बयार॥
नव मुकलित पद्म पराग के बोझ।
भारवाही पौन चलि सकत न सोझ॥
लिये याचि फूलगन चले तेज धाय।
रेल रेल आवे लखो रेल प्रात बाय॥

"बादशाह दर्पण" के अन्त में यह कविता लिखी है:—

"जे सूरज सों बढ़ि तपे, गरजे सिंह समान।
भुज बल बिक्रम पाइ जिन, जीत्यो सकल जहान
तिन को आज समाधि पै, बैठ्यौ पूछत काक
को तुम, का थे, का भये, कहां गये करि खाक?"

इस छोटे पद में कितना गूढ़ाशय और उपदेश भरा है। इस के भाष्य में एक प्रबन्ध ही लिखा जा सकता है।

निम्न लिखित छन्द भी इस गुण में कम नहीं है।

"सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद होय।
भयो आज कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय॥
हाड मांस लाला रकत, बसा तुचा सब सोय।
छिन्न भिन्न दुरगन्धमय, मरे मनुस के होय॥
कादर जेहि लखि कै डरत, पंडित पावत लाज।
अहा! व्यर्थ संसार को, विषयबासनासाज ॥"

इन की पुस्तकें देखने से यह विदित होता है कि केवल प्रहसनों में हास्यरस का आनन्द नहीं मिलता वरन सुन्दर हास्यरस से सब विषय में चमक आ सकती है और उस विषय का गौरव भी नष्ट नहीं होता। इन का व्यंग और हास्य भी अपूर्व ही देखा जाता है। एक बार इन के साले चंडू लाल ने निज पिता के श्राद्ध के समय जो गुलाबजामुन भेजी थी उस पर इन्हों ने कैसी व्यंगमयी कविता की है।

काजर सों कारी तेल चिकट सों मैली यह आबनूस हारो छबि देखि आब ताब की। मरी मकरी सीं बढ़ि मारें दुरगंध स्वान माखी मेले गिद्ध काक हारे सड़े राब की॥ कोनाराम कीनो कम निरख हैं जाके एसी गली सड़ी दाम-बिना खरच खराब की। स्वर्ग हूं में पितर को नरक दिखावती है लाला चन्दू लाल जी की जामुन गुलाब की॥

छोटी छोटी मुकरियों में तथा हिन्दी और उर्दू कविताओं में भी इन्हों ने गूढाशयपूर्ण अनेक व्यंगमयी कविता लिखी है। कहां तक उदाहरण दिखलाया जाय।

संसार, देश, तथा समाज के संस्कार एवं उन्नति करने ही के लिये कवि का जन्म होता है। यदि समाज की रुचि ही के अनुसार वह अपनी

उस की परिपालित कर के अपने मुख्य लक्ष्य से चूक जाय तो निश्चय वह दोषभागी होगा और भविष्य में वह सम्मानपात्र न होगा। वर्तमान काल में वह चाहे कैसाही सुख्याति लाभ करे। किन्तु इन्हीं दो तीन बातों का लक्ष्य कर के यदि वह सर्वदा रचना किया करे तौ भी उस का उद्देश्य सफल नहीं होगा। बार बार एक ही सुर आलापना क्या रोचक हो सकता है? इस में सन्देह नहीं कि कवि कोई नई बात अपने घर से नहीं ला सकता क्योंकि संसार में नई कोई वस्तुही नहीं। परन्तु पुरातन बातों ही पर प्रवीण चित्रकार के समान सुन्दर रंग चढ़ाकर जगत के सम्मुख उपस्थित करने ही से वह अपूर्व और अपरिचित वस्तुओं का गढ़नेवाला कहा जाता है। बुसितां में एक कारिगर के लड़के ने निज गुरु से कहा है कि "बाबा मेरी सूई से कोई चित्र ऐसा नहीं निकलता जिस का ढांचा ईश्वर ने पहिले से न खड़ा किया हो"। *

अस्तु, सौंदर्य्य ही कविता का क्या, जगत का प्राण है। इस में बड़ी भारी चित्ताकर्षिणी शक्ति है। वैष्णव कवियों ने इसी से श्रीकृष्णचन्द्र रामचन्द्र में पराकाष्ठा की सुन्दरताई दिखलाई है। सौंदर्य्य सृष्टि करनाही प्रकृत कवि का कर्तव्य है। कवि को ऐसी रचना की सृष्टि करनी चाहिये जिस से पाठकवृन्द आनन्द में निमग्न होने लगें; प्रेम तथा करुणा से पाषाणवत् हृदय भी पिघल जाय; मूढ़त्व, जड़त्व, पशुत्व खोकरलोग सच्चरित्र हों एवं मनुष्यत्व लाभ करें; ऐसा आदर्श दिखलाना चाहिये कि उस का अवलोकन मात्र मंत्र और टोने का प्रभाव दिखलावे; ऐसा सदुपदेश देना चाहिये कि मनुष्य प्राणी मात्र से स्नेह करता हुआ, बन्धुत्व प्रगट करता हुआ, अपना लोक परलोक दोनों सुधार ले। इसी ढंग से नीतिधर्म्म का उपदेश हो, चाहे ज्ञान भक्ति का हो, सफल होता है। कोरे करिमस्तक सदृश कुच, काली घटा ऐसे कच, कुरंग के समान नैन निरूपण ही से काम न चलेगा। आप किसी रंग की नायिका लाइये, पर सच्चा रसिक उस का आदर नहीं करेगा।

पूर्वोक्त गुण हम हरिश्चन्द्र की कविता में विशेष पाते हैं। इन का आदर्श

---

* چه خوش گفت شاگرد منسوج باف
چو عنقا برآورد و پیل و زراف
مرا صورتی بر نیاید زدست
که نقشش معلم ز بالا نه بست

بوستان باب پنجم

अद्भुतम है। अपनी रचना में इन्हों ने महात्मा, शूद्र, सज्जन, कपटी, राजा प्रजा, स्वामी, सेवक, अंध, नीच सभी का उत्तम चित्र खींचा है। धर्मवीर, रणवीर, दानवीर सभी का निदर्शन दिखलाया है। पतिव्रता, पतिप्रेम विह्वला, मोहमाया, सभी के उत्तम आदर्श इन की रचना में देखते हैं। इसी से हम को हरिश्चन्द्र के प्रख्यात सत्कवि होने में कुछ सन्देह नहीं होता। जो कुछ कविता ऊपर उद्धृत की गई है उस से पाठकवृन्द भी स्वयं विचार सकेंगे और आगे भी इस के विचार करने का उन्हें बहुत कुछ अवसर मिलेगा।

---

## सप्तम परिच्छेद ।

काव्य कियारी की साधारण छवि दिखलाने के अनन्तर इस परिच्छेद में उस के कई एक मनोहर तरुवर तथा लतादि के सौंदर्य्य दिखलाने अर्थात् हरिश्चन्द्रकृत काव्यग्रन्थों के कुछ विवरण लिखने की चेष्टा की जाती है। किन्तु अवकाशाभाव से उन सबों की समालेचना सविस्तर नहीं हो सकती। कविता रसिकजन स्वयं पुस्तकों को देख कर पूरा आनन्द उठा सकेंगे। केवल नमूने की भांति जहां तहां पूर्ववत् उन में से कविता का उल्लेख किया जायगा।

आदि ही से बाबू हरिश्चन्द्र की रुचि शृंगार तथा भक्ति दोनों प्रकार की कविता की ओर झुकी और उसी समय से इन दोनों रस की कविता यह करने लगे थे। लोग कहते हैं कि इश्क़ मजाज़ी से इश्क़ हक़ीक़ी होता है, परन्तु हरिश्चन्द्र ने दोनों का साथ ही साथ रँग जमा दिया था। इन के ग्रन्थों के देखने से विदित होता है की अपेक्षाकृत इन्होंने प्रेम भक्ति के सम्बन्ध में विशेष कविता की है और अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। हां! उन में भी श्रीराधाकृष्ण की प्रेममयी लीलासम्बन्धिनी कविता शृंगाररस से खाली नहीं है, परन्तु उन सबों में इन का भावही कुछ और है और उस विषय में इन्होंने कहा भी है कि यह रहस्य सब कोई नहीं जान सकता।

उस शृंगार रस और नायिकाभेद वाले शृंगाररस में बड़ाही प्रभेद है। यदि ऐसे शृंगाररस से श्रीजयदेवजी की कविता निन्दनीय नहीं हुई तो हरिश्चन्द्र की भी कदापि निन्दनीय नहीं हो सकती। वैष्णवकविता अवश्य शृंगाररस-पूर्ण होती है। जो कुछ हो, जिसे साधारण शृंगाररस कहते हैं वह कविता "प्रेममाधुरी" ग्रन्थ ही में है और उस में भी कईएक कृष्णप्रेम-सम्बन्धिनी कविता देखी जाती है।

यह पुस्तक २१ मई १८८० ई० से क० व० सुधा में प्रकाशित होनी आरम्भ हुई थी। यह ग्रंथ सवैया और कवित्त छन्दों से पूर्ण है। भाषा अत्यन्त सरल और हृदयग्राहिणी है, भाव भी बहुत उत्तमोत्तम हैं। इस के आदि में लिखा है:—

"बार बार पिय आरसी, मत देखहु चित लाय।
सुन्दर कोमल रूप पै, दीठ न काहुँ लगि जाय॥

देखन देहुं न आरसी , सुन्दर नन्दकुमार।
कहुं मोहित ह्वै रूप निज , मति मोहि देहु बिसार॥

अहा ! इन दोहों में कितना प्रेम और भाव भराहुआ है । फिर देखिए इस सवैया में कैसा अनोखा प्रेम दरसाया है।

"राखति नैनन मैं हिय मैं भरि दूर भए छिन होत अचेत है। सौतिन की कहै कौन कथा तसवीरहुं सों सत-राति सहेत है॥ लाग भरी अनुराग भरी हरिचन्द सबै रस आपुहि लेत है। रूपसुधा इकलोही पियै पियहू को न आरसी देखन देत है॥"

फिर वियोगदुःख से सन्तप्त होकर नायिका कहती है :—

"व्याकुलहीं तड़पौं बिनु पीतम कोउ तो नेकु दया उर लाओ।
प्यासी तजौं तन रूपसुधा बिनु पानिप पी को पपीहै पिआओ॥
जीय मैं हौस कहूं रहिजाय न हा हरिचन्द कोउ उठि धाओ।
आवै न आवै पिया री, अरे! कोउ हाल तो जाइ कै मेरो सुनाओ॥

आंखें लड़ जाने से प्रायः प्रेम अंकुरित होता है और यदि वह प्रेम फलीभूत न हो तो आंखों ही को दुख से रोना भी पड़ता है। उसी को कवि कहता है :—

"पहिले बिनु जाने पिछाने बिना मिलीं धाइ कै आगे बिचारे बिना। अपुने सों जुदा ह्वै गईं तुरते निज लाभ औ हानि सम्हारे बिना॥ हरिचंद जू दोष सबै इन को जो कियो सब पूछे हमारे बिना। बरिआई लखो उलटी इन की अब रोवहिं आप निहारे बिना॥"

अब एक रूपक की भी बहार देख लीजिये:—

"नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि फूल माल गलै बन झालरि सी लाई है। भंवर गुंजार हरि नाम को उचार तिमि कोकिला सो कुहुक वियोगराग गाई है॥

हरीचन्द तजि पतझार घरबार सबै बौरी बनि दौरी चारु
पौन ऐसी धाई है। बेरे बिछुरे ते प्रान कंत के हिमंत
अंत तेरी प्रेमजोगिनी वसन्त बनि आई है॥

इसी प्रकार की सरस और मधुर कविता से "प्रेममाधुरी" परिपूर्ण है।

दूसरी पुस्तक "सतसई शृंगार" है। बिहारी जी के दोहों पर इन्होंने कुंडलिया बनाई थी उसी का नाम "सतसई शृंगार" रखा है। सेप्टेम्बर १८७५ ई० से "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" में यह ग्रंथ छपना आरम्भ हुआ था, परन्तु अपूर्ण रह गया।

इसी से हमारे परममित्र स्वर्गीय पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने स्वरचित "बिहारी बिहार" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "बाबू हरिश्चन्द्र वर्तमान शताब्दी में भाषा के परम प्रसिद्ध कवि हो गये हैं.........बिहारी की कविता ने भी इन के चित्त को आकर्षण किया और इन्हों ने बिहारी के किसी किसी दोहों पर कुंडलिया करना आरम्भ किया। कई वर्ष के श्रम में केवल कई सौ दोहों पर इन ने कुंडलिया बनाई परन्तु ग्रन्थ पूरा न हुआ।" इस वाक्य से यह ध्वनि निकलती है कि परिश्रम करने पर भी बाबू हरिश्चन्द्र वह ग्रन्थ पूरा नहीं कर सके। परन्तु हम मुक्तकंठ से कहेंगे कि व्यास जी का यह भ्रम था। यदि बाबू साहिब इसी के करने में समर्थ नहीं थे तो फिर उन्हें व्यास जी ने "परम प्रसिद्ध कवि" कैसे लिखा? हरिश्चन्द्र की लेखनी को तो गद्य और पद्य कोई वस्तु लिखने में श्रम होता ही नहीं था। इन को जो लोग जानते हैं वे सबही यही कहते हैं कि यह लेखनी उठाकर गद्य के समान पद्य भी बिना श्रम लिखते चले जाते थे। विलायती कवि स्काट के सदृश एक एक बैठक में कई फ़र्मा कविता का लिख डालते थे। गद्य की कौन कहे। अभी थोड़े दिन हुए कि पश्चिमोत्तर देश के बोर्ड औफ़रेविन्यु के जूनियर सेक्रेटरी बाबू बालेश्वरप्रसाद जी पचासों मनुष्य के सामने मेरे इस कथन का समर्थन कर रहे थे। अतएव "कई वर्ष के श्रम में केवल कई सौ दोहों पर कुंडलिया बनाई" यह कहना व्यास जी का ठीक और उचित नहीं। ग्रन्थ पूरा न होने का कारण यह है कि इन को केवल एकही ग्रन्थ की रचना की ओर ध्यान नहीं रहता था। इन्हें अनेक प्रकार के कार्य्यों पर ध्यान रखना पड़ता था। यदि एक ही में लगे रहते तो बीस बाइस वर्ष के भीतर ४०० से अधिक ग्रन्थों की अवतारणा नहीं हो सकती थी,

और इस के अतिरिक्त इन के और भी कईएक ग्रन्थ अधूरे रह गये हैं। तो क्या यह उन के पूरा करने में भी समर्थ न थे ? तब यह शेखी क्या ?

केवल हरिश्चन्द्र ही के विषय में नहीं वरन बाबा सुमेर सिंह साहिबज़ादे परमधामनिवासी श्री पटना हरिमन्दिर के सुयोग्य महंथ के सम्बन्ध में भी व्यास जी ने लिखा है कि "ये कविवर नानक सम्प्रदाय के प्रधान स्थान पटना के सङ्गत के अध्यक्ष हैं......कविता के बड़े मर्मज्ञ और बोधा हैं। इन की कुंडलिया लग ढ़ग तीस दोहों पर मैंने देखी है और कदाचित् इतनी ही बनी हैं। एक बेर खड्गविलास में इस ग्रन्थ के एक दो फार्म छपे थे पर आगे पूरा बना ही नहीं तो छपे क्या"। यहां पर भी व्यास जी ने यथार्थ बात जाने बिना ऐसा लिख दिया है। बाबा साहिब रचित सैकड़ों कुंडलिया अभी हम प्रस्तुत कर सकते हैं और जहां तक हम जानते हैं बाबा साहिब ने लगढग सब दोहों की कुंडलियां रची थीं। अब उन के स्वर्गवास होने के कारण वे सब प्राप्त हो सकती हैं वा नहीं सो हम नहीं कह सकते। इन दोनों महानुभावों के विषय में ऐसा लिखने का एक यही अभिप्राय हो सकता है कि जो किसी से नहीं हो सका वह व्यासजी ने कर दिखलाया। किन्तु ऐसा मर्मवेधक वाक्य न लिखने पर भी सभी जान सकते थे कि व्यास जी ने समूची सतसई पर कुंडलिया प्रकाशित की है। व्यास जी हमारे परम मित्र थे इसी से उन के इस अनुचित लेख की हम ने इतनी समालोचना कर के यथार्थ बात प्रगट कर दी है। नहीं तो, इस की कोई आवश्यकता नहीं थी। अस्तु, अब हरिश्चन्द्रकृत कुंडलियों का कुछ नमूना देखिये।

१. सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानिक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल॥
सदा बिहारीलाल बसो बांके उर मेरे।
कानन कुंडल लटकि निकट अलकावलि घेरे॥
श्री हरिचन्द त्रिभङ्ग ललित मूरति नटवर सी।
टरौ न उर ते नेकु आज कुंजन जो दरसी॥

२. अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति।
हरित बांसु की बांसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति॥
इन्द्रधनुष रंग होति स्याम घन लहि छबि पावत।

याहो तें हरि सुधासार सम रस बरसावत ॥
मुक्तमाल बकपांति सांझ फूलो माला मध।
बिजुरी सम हरिचन्द पीत पट रह्यो लपटि अध ॥

३. कहत सबै बेंदी दिये, आंक दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दियें, अगनित बढ़त उदोत।
अगनित बढ़त उदोत तोस अस्सी नब्बे गुनि।
तीन आठ नव सत सहस्र हरिचंद बढ़त पुनि ॥
बंदी बेना बेंदि भौंह लहि बनत रूपा जब।
मोती लर तें होत मुहर लखि थकित रहत सब ॥

४. रस सिंगार मञ्जन किये अञ्जन भञ्जन दैन।
अञ्जन रंजन हूँ बिना, खंजनगंजन नैन ॥
खंजन गंजन नैन लुकंजन मनहुं लगाए।
पैठि हिये मन लयो तबहुं नहिं परति लखाए ॥
वारों कोटिक मीन मैनसर मृग छबि सरबस।
कहं ये जड़ पसु निरस कहां वे भरे मदनरस ॥

५. खेलन सिखए अलि भलैं, चतुर अहेरी मार।
काननचारी नैन मृग, नागर नरन सिकार ॥
नागर नरन सिकार करत ये जुलुम मचावत।
अंजन गुनहूँ बंधे उड़त झपटत गहि लावत ॥
चीन्ह चीन्ह हरिचन्द्र रसिक ये मारत सेलन।
बधि फिर सुधि नहिं लेत भले सिखये यह खेलन ॥

नमूना के लिये इतनाही बहुत है और सच्चे रसिकों के लिए पुस्तक प्रस्तुत है। हरिश्चन्द्रजी ने किसो २ दोहे पर चार पांच कुंडलिया रचो हैं।

## पदावली वा कीर्तन की कविता।

पद (भजन) और कीर्तन की वस्तु भी कविता ही का एक प्रधान विभाग है। इसी से उस का वर्णन भी इसी परिच्छेद में किया जाता है।

गान वाद्य में हरिश्चन्द्रजी की बड़ी रुचि थी। यह इन के ख़ास पसन्द की वस्तुओं में थी और यह संगीत शास्त्र सम्बन्धी बातों के बड़े ज्ञाता भी थे। इस का प्रमाण हम लोग इन के "संगीतसार" नामक प्रबंध में पाते हैं जो पहिले सन् १८७४ ई० के सितम्बर मास की "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में छप कर पीछे से पुस्तकाकार छपा। इस में इन्होंने लिखा है कि "भारतवर्ष के सब विद्याओं के साथ यथाक्रम संगीत का भी लोप हो गया। यह गानशास्त्र हमारे यहां इतना आदरणीय है कि सामवेद के मंत्र मात्र गाये जाते हैं। हमारे यहां बरन यह कहावत प्रसिद्ध है 'प्रथम नाद तब वेद'। अब हमारे भारतवर्ष का सम्पूर्ण संगीत कव्वली-ठुमरी पर आ रहा है। तथापि प्राचीन काल में यह शास्त्र कैसा गम्भीर था इस को हम इस लेख में दिखावेंगे।" निस्सन्देह इस बात को इन्हों ने पूर्ण रीति से उस ग्रंथ में प्रदर्शित की है। प्राचीन एवं नवीन मत के अनुसार संगीत के सातो अंग, स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक, तथा हस्त की उस में पूरी व्याख्या की गई है।

इन्हों ने सब से पहिले इस पद की रचना की थी :—

"हम तो मोल लिये या घर के।
दास दास श्री वल्लभकुल के चाकर राधाबर के॥
माता श्रीराधिका पिता हरि बन्धु दास गुन कर के।
हरीचन्द तुमरे ही कहावत नहिं विधि के नहिं हर के॥

बालअवस्था ही में इन्हों ने इस पद को भी रचा था :—

"झूलत हरीचंद जू डोल। पटुली बिरह दुःख के खंभा चिन्ता झूमक लोल॥ सिर की धूर कपूर उड़ावत स्वांसा उड़त अबीर। पिचकारी नैनन तें निस दिन बरसत है रंग नीर॥ व्याकुल होय करत जो हा हा सोई काफ़ी राग। नाना ताल हृदय की ताड़नि बुक्का है बिरहाग॥ स्वेद गुलाब चुअत चहुं दिस तें लोटनि झालरु चारु। बैठत उठत देत सोइ मचका

झुलवत आपुहि मार ॥ फागुन चैत बहुत हौं भूल्यौं अब घूमत मन प्रान । वेगि उतारहु अब या पद तें प्राणनाथ भगवान । ”

नीचे लिखे हुए पद भी बाल्यावस्थाही में बने थे ।

“ बंसुरिया मेरे बैर परी रे । छिन हूं रहन देत नहिं घर में मेरी बुद्धि हरी रे । बेनु बंस की यह प्रभुताई बिधि हर सुमति छरी रे । हरीचन्द मोहन बस कीनो बिरहिन ताप करी रे ॥ ”

“ सखी हम बंसी क्यों न भये । अधर सुधारस निसु दिन पीवत प्रीतम रंग रये ॥ कबहुंक कर में कबहुंक कटि में कबहुंक अधर धरे । सब ब्रजजन मन हरत रहत नित कुञ्जन मांझ खरे ॥ देहिं विधाता एहि वर मांगों कीजे ब्रज की धूर । हरीचंद नैनन में निवसे मोहन रस भरपूर ॥

प्रस्तुत कवि हरिश्चन्द्र बाल्यावस्थाही से ऐसी २ मर्मस्पर्शिणी कविता कर के लोगों को मनोमुग्ध करने लगे थे । इन्हों ने सब से पहिले यह ठुमरी बनाई थी ॥

“ पकितालि गुजरिया घर में खरी । अब लगि स्याम सुन्दर नहिं आये दुख दारुन भई रात अंधरिया ॥ बैठत उठत सेज पर भामिनि पिया बिना मोरी सूनी सेजरिया । हरीचन्द पिया आय मिलो तुम बस जो गई मोरी उजरी नगरिया ॥ ”

यह केवल स्फुट पद और गीतही नहीं बनाते थे, किन्तु इन्हों ने इन विषयों की अनेक पुस्तकें भी बनाई हैं । १८७२ ई० में काशी में बनारसी लावनी-बाज़ों की लावनियों की बड़ी चरचा थी । उसी समय इन्हों ने “ फूलों का गुच्छा” नामक लावनियों का एक ग्रन्थ बनाया था । प्रतीत होता है कि १८८२ ई० में उस पुस्तक की कोई नूतन आवृत्ति हुई थी क्योंकि खड्गविलास में जो संस्करण हुआ है उस में हमारे चरित्रनायक की १९३९ सम्बत की लिखी हुई भूमिका देखी जाती है । आदर्श स्वरूप यहां पर एक लावनी लिखी जाती है ।

हज़ार लानत उस दिल पर जिस में इश्क़े दिलदार न हो ॥
फूटें आंखें वे, जिन में बंधा अश्क का तार न हो ॥ १ ॥
हिज्र की तलख़ी नहीं है जिस में तलख़ ज़िन्दगानी वह है।
जोश नहीं है, सरासर बस सरगरदानी वह है।
सुलझे रहना इस के जाल से निरी परेशानी वह है॥
जीना क्या है? अगर इस जां में नहीं जानी वह है।
है ज़िन्दा दर गोर व जिस को मरने का आज़ार न हो।
फूटें आंखें वे, जिन में बंधा अश्क का तार न हो ॥ २ ॥
बे महबूब मज़ेदारी गर हुई तबीअत में तो क्या।
झूठी है सब शायरी, अगर नहीं दिल कहीं फ़िदा॥
नाहक़ दीदारी है सारी, गर न इश्क़ का तीर लगा।
दुनियांदारी भी है, इक बोझ सिर्फ़ उलफ़त के बिना॥
बेचारा है वही जो ज़ुल्फ़े दिलबर से लाचार न हो।
फूटें आंखें वे, जिन में बंधा अश्क का तार न हो ॥ ३ ॥
मिले जहन्नुम में वह बातें जिस का कुछ भी उसूल न हो।
क्यों वह क़ाबिल है बनता? जिस में वह मक़बूल न हो॥
सिजदा है या मर का मारना जिसमें कुछ भी हुसूल न हो।
फ़ाज़िल है वह बना क्यों? दुनिया में जो फ़ुज़ूल न हो॥
क्यों माला फेरे है? वह गुल जिस के गले का हार न हो।
फूटें आखें वे, जिस में बंधा अश्क का तार न हो ॥ ४ ॥
क्यों वह दौलतमन्द है? जिस के पास हुई बेकसी नहीं।
क्या आज़ादी है उस को? जिस को अक़्ल ज़ुल्फ फंसी नहीं।
बग़ैर उस के वस्ल के सब रंडरोना है यह हंसी नहीं।
उजड़ा है वह, मोहनी छबि जिस दिल में बसी नहीं॥

हरीचन्द सब अभी खाक में मिलें जिस में वह यार न हो।
फूटें आखें वे, जिस में बंधा अश्क का तार न हो ॥ ५ ॥

"जैनकुतूहल"—१८७३ ई० के फ़रवरी महीने में यह पदसमूह पहिले "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" में छपा फिर पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। हरिश्चन्द्र एक बार किसी जैनमन्दिर में गये थे। उसी पर लोग इन की निन्दा करने लगे थे कि यह नास्तिक हो गये। उसी समय इन्हीं ने इस पदात्मक पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक देखने योग्य है। जो लोग यथार्थ धर्म-तत्त्व को न जान कर किसी अन्यधर्मग्रन्थ के पाठ करने या अन्य संप्रदाय के मन्दिरों में जाने ही से किसी को धर्मभ्रष्ट और पापी मान बैठते हैं उन्हीं को समझाने के लिये कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है।

सन् १८७३ ई० में "प्रेमाम्बुवर्षण" एक कीर्तन की पुस्तक रची गई। इस में श्रीकृष्णविषयक प्रेम का वर्णन है। संयोग वियोग दोनों प्रकार के पद इस में लिखे गये हैं। कवि ने वर्षाकाल की छटा सर्वत्र दिखलाई है। अच्छी २ उपमा नूतन रीति से वर्णित हुई हैं। यथा:—

"झुकि रहे रंग २ के बादर मनु सुखदें बहु चीर"

"सखीरी सांझ सहायक आई। मेट्यो भय बैरी प्रकास को सबकछु दीन दुराई॥ अवनि अकास एक भयो मारग काहु नहिं परत दिखाई। सूने भए सबै थल ब्रज जन घर में रहे दुराई॥ गरजि बुलावत तोहि चंचला चमकत राह दिखाई। औरन को चकचौंधा लावत तेरी करत सहाई॥"

और देखिये यह काव्यरचना कैसी ललित है:—

"आज तन आनन्दसरिता बाढ़ी। निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीत तरंगनि काढ़ी॥ लोक वेद दोउ कूल तरोवर गिरे न रहे सम्हारे। हाव भाव के भरे सरोवर बहे होइ के नारे॥ बुझे दवानल परम बिरह के प्रेम प्रवल भो भारो। मीन बानि के जे प्रेमी जन जल लहि भए सुखारो॥ भई

अपार न छोर दिखावै नीत नाव नहिं चालो। हरीचंद बल्लभ-पद बल तें अवगाहत सोइ आली ॥"

इसी साल "हरिश्चन्द्रमेगज़ीन" में एक उपालम्भ काव्य "उरहना" प्रकाशित हुआ।

इसी १८७२ ई० में "प्रेमफुलवारी" नाम की एक अपूर्व आनन्ददायिनी पुस्तक की अवतारणा हुई। पहिले "कविवचन सुधा" में यह कई मास तक थोड़ी २ कर के क्रमशः छपती रही, फिर पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। इस का कई एक संस्करण हुआ। १८८३ ई० में भी एक संस्करण हुआ था और १८९० ई० में खड्गविलास प्रेस में इस की एक आवृत्ति हुई। कवि ने इस को प्रेमफुलवारी की भूमि, प्रेमफुलवारी का वृक्ष, तथा प्रेमफुलवारी का फल इन तीन भागों में विभक्त किया है। इस के विषय में एक महाशय ने "कवि-वचनसुधा" में जो पत्र लिखा था वह देखने योग्य है। अतएव वह यहां पर उद्धृत किया जाता है।

"आप के पत्र में परम प्रेमनिधि श्री बाबू हरिश्चन्द्र की कविता जो प्रकाश होती है तो उस में बहुत लोग उस का आनन्द ग्रहण करने के बदले इतना ही कहते हैं कि हां कविता तो अच्छी है परन्तु सूरदासादिकों की चोरी है। हा! अरे उलूकव्रती! क्या उस अलौकिक मनुष्य की प्रवृत्ति अपनी कविता शक्ति के दरसाने की है? कदापि नहीं। वह उस के अनेक प्रकार की प्रतिज्ञा-पूर्वक कठिन और विचित्र समस्यापूर्ति से प्रगट है। परन्तु यह निश्चय रखो कि प्रेमफुलवारी इत्यादि ग्रन्थ उस ने संसार में केवल प्रेममार्ग के स्थापन के निमित्त और अनेक प्रकार के विचित्र धर्मों से दुखी जीवों को इस शुद्ध पवित्र प्रेममार्ग में प्रवृत्त करने के हेतु रचा है, न कि तुम को प्रसन्न करने को, क्योंकि तुम प्रसन्न हो कर उस पर स्वर्ण वृष्टि नहीं करोगे और जो करो भी तो उस को तुम्हारी क्या परवाह है। और जो कहो, कि अमुक कवि की छाया है तो उस में बात यह है कि लक्ष्य सब का एक है। सौ सयाने एक मत। एक ही रोना सभी रोते हैं ईश्वर से 'हम को संसार से छोड़ाओ, अपनी परम प्रेममय भक्ति दो, और अपने प्रेमपात्र से मिलो, वियोग का दुख मत दो।' इस के अतिरिक्त कोई क्या कहेगा? हां! नई बात तो तब हो जब ईश्वर से कहैं 'हे ईश्वर! तुम मुरग़ी के अंडा से, चार कोस के चौड़े फ़रासी सन्दूक से तुम्हारे हाथ हैं। हे ईश्वर! हम को चिलम पीने की इच्छा है, जल्दो

लेई पकाश्रो। ' हां! ये बातें तो नई हैं। अपूर्व्व दृष्टि श्रुत है। परन्तु हे दीनानाथ! हे दीनबन्धू! हे आरतिनाशन! ये बातें तो अवश्य पुरानी हैं। पर यही पुरानी बातें अनेक कवियों के मुख से निकलने से नई होती हैं क्योंकि केशवदास जी की प्रतिज्ञा है 'बाप गादे चार मुख, बेटा गाये पांच मुख, नाती गाये खट मुख, अजहुं नई नई'। यह पत्र मैंने इसी हेतु लिखा है कि आप के पत्र के ग्राहक और 'प्रेमफुलवारी' के भंवरे लोग जान जायं कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन फूलों को देख कर कहते हैं कि फूल तो अच्छे हैं पर मोम के बने न होवे तो बहुत अच्छे होते।

प्रेम फुलवारी का भ्रमर"

"प्रेमसरोवर"—१८७४ ई० के अक्तूबर के "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" में "प्रेम-सरोवर" एक छोटी पुस्तक दोहाछन्दों में प्रकाशित हुई। पीछे अलग छापी गई। अक्षय तृतीया को जिस दिन जल दान का बहुत माहात्म्य है यह प्रेमस-रोवर निर्म्माण हो कर ईश्वर को समर्पण किया गया था। इस की भूमिका बड़ी ही हृदय-वेधनेवाली है। लिखा है कि "सब छोड़ि अहो हम पायो तुम्हें, हमें छोड़ि कहो तुम पायो कहा?" इस छोटी सी पुस्तक में सच्चे स्वच्छ अनुराग का अच्छा स्वरूप दिखलाया गया है।

"प्रेम सरोवर नीर है, यह मत कीजै ख्याल।
पड़े रहै प्यासे मरै, उलटी ह्यां की चाल॥
लोक लाज की गांठरी, पहिले देहु डुबाय।
प्रेमसरोवर पंथ में, पाछे राखो पाय"॥

तभी तो गोपीजन, प्रेम-पथ-पथिक, परम प्रवीण प्रेमियों की शिरोमणि मानी जाती हैं।

"जग में सब कथनीय है, सब कछु जान्यो जात।
पै श्रीहरि अरु प्रेम यह, उभय अकथ अलखात॥"

सच है। इसी से कहा है "God is love, and love is God"

प्रेमसरोवर के दोहे बड़े बांके हैं, और कवि को प्रकृत कवि सिद्ध करते हैं।

१८७४ ही ई० में 'प्रेमतरंग' की रचना हुई जिस में प्रेमपूर्ण नाना प्रकार के कीर्तन के पद हैं। इसी में इन की बनाई अपने की कविता तथा बंगभाषा की कविता प्रकाशित हुई है जिनमें कईएक उपयुक्त स्थानमें उद्धृत कीजायंगी।

इसी साल "हरिश्चन्द्रमेगज़ीन" में "दानलीला" "तन्मयलीला" तथा "रानीछद्मलीला" ये सब कविताएं छपी थीं।

१८८० ई० में "मधुमुकुलमाला" की सुगन्ध ने रसिकों के मन को आमोदित किया। इस माला को ईश्वर के चरणों में समर्पित करते हुए कवि ने लिखा है कि "इस में अनेक प्रकार की कलियां हैं, कोई स्फुटित, कोई अस्फुटित, कोई अत्यन्त सुगन्धमय, कोई छिपी हुई सुगन्ध लिये, किन्तु प्रेम सुबास के अतिरिक्त और किसी गन्ध का लेश नहीं......तुम्हारे बाग के फूल तुम्हें छोड़ और कौन अङ्गीकार कर सकता है, इस से तुम्ही को समर्पित है" अर्थात् श्रीवृन्दावनबिहारी का गुप्त तथा प्रगट प्रेमरहस्य इस में वर्णन किया गया है। बसंत तथा होली से यह ग्रन्थ पूर्ण है। "होलीलीला" भी जो पहिले नवम्बर १८७४ ई० के "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" में छपी थी इसी के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है। उस में कवि ने सुअवसर पाकर ब्रज की प्राकृतिक शोभा भी दरसाई है और श्रीराधाकृष्ण की नखशिख छबि भी वर्णन की है और नवीन तथा प्राचीन उक्ति युक्ति से रञ्जित करके कविता का अपूर्व लालित्य तथा बुद्धि की चमत्कारी दिखलाई है। यथाः—

"तापैं कलित किंकिनी कूजति, मनु रसना कवि गन की।
बन्दनवार काममन्दिर की, बिजय घोस रतिरन की॥"

निस्सन्देह इस में नई पुरानी उक्ति मिश्रित है।

"सबजगमूल नाभि सर सोहत, रूप गांठ मनु बांधी।
ता पर रमति रसिक रोमावलि, रस सरिता सर साधी"॥

"नाभिसर" सब-जग-मूल ही नहीं है, बरन अनेक दर्शन और पुराणों का मूल कहा जा सकता है। नेत्रों की छबि अनेक प्रकार से वर्णन कर के कवि ने लिखा है:—

"खञ्जन मीन कमल नरगिस मृग, सीप भँवर सर सांधे।
मनु इन के गुन एकति कर कै, अञ्जनगुन दै बांधे॥
जहं जहं परत दृष्टि इन की बन, गलियां अलियां मोहैं।
मानिक नील हीर से बरसत, खिलत कंज से सोहैं॥
मनु इन प्रेम बदि राख्यो ब्रज मैं, कहर चहूं दिसि डारी।

जहां परैं कलराम करैं तित, सब नवजोवनवारी ॥"

उपमा प्राचीन हो सही, परन्तु कवि ने नवीनता का कैसा अच्छा रंग चढ़ाया है। इस नखशिख के वर्णन में अनुप्रास तथा यमक की भी पूरी छटा झलकती है। इस "मधुमुकुलमाला" पुस्तक में संस्कृत भाषा का भी एक बसंत है जो नीचे उद्धृत किया जाता है।

संस्कृत राग बसन्त।

हरिरिह विलसति सखि ऋतुराजे। मदनमहोत्सव वेशविभूषित बल्लवरमणिसमाजे ॥ प्रकटितवर्णावधिहृदयाश्रितयुवतिसहस्र-विकारे। स्वावेशाव्रतमत्तीकृतनरलोकभयापस्मारे ॥ मुकुलि-ताम्रमुकुलितपाटलगणसोभितोपवनदेशे। शकुनपंडुरीकृत-सुविवाहार्थितसिद्धार्थकवेशे ॥ त्रिविधपवनपूरितपरागपटलान्ध-मधुपभङ्कारे। आम्रमञ्जरीवेशविभूषितरतिसहचरीविहारे ॥ कूजितकोकावलकलकण्ठप्रतिध्वनिपूरिततीरे। प्रकटितहृदय-गतानुरागकमलच्छलयमुनानीरे ॥ पथिकवधूवधप्रायस्थित्ता-नलतनुदग्धपलाशे। कान्तविरहपीतिमापीतवासन्तीकुसुम-विकाशे ॥ रूपगर्व्वभरहसितमालतीदर्शितदन्तकदम्बे। काम-विकाराश्रितलतिकाकृतवरसहकारालम्बे ॥ मृगमदकश्मीरा-गरुचंदनचर्चितयुवतिसमूहे। सुरललनावांछितविहारलोकचय सुकृतिदुरूहे ॥ श्रीवृषभानुनन्दिनीमोदविनोदामोदविताने। कविवरगिरिधरदासतनूभवहरिश्चन्द्रकृतगाने ॥ ८० ॥

१८८४ ई० में "रागसंग्रह" जिस में भिन्न २ रागों के कीर्तन के पद हैं प्रकाशित हुआ। संग्रह शब्द से कोई ऐसा न समझें कि अन्य विरचित पदों को इन्हों ने संग्रहीत किया है, बरन इस में इन्ही के स्वरचित पदसमूह संग्रहीत हुए हैं। इस में नृसिंहचतुर्दशी, विजयदशमी, गणेशचतुर्दशी, एकादशी, बामनद्वादशी, मकरसंक्रान्ति, ग्रीष्मऋतु इत्यादि समय के गान के सुन्दर पद पाये जाते हैं। श्रीराधाकृष्ण की जन्म, बाललीला, दीनता, विरह,

संयोगादि के, एवं श्रीवल्लभाचार्य्य, गोविन्दराय, श्रीगिरिधर महाराज इत्यादि के सुयश कथन के स्वच्छ प्रेमोत्पादक पदसमूह इस ग्रन्थ में संकलित हुए हैं।

कार्त्तिकस्नान—इसी १८८४ ई० में अस्वस्थ होने के कारण यह कार्त्तिक-स्नान नहीं कर सके, किन्तु प्रति दिन एक २ पद की रचना करते गये थे। उन्हीं पदों के संग्रह का नाम "कार्त्तिकस्नान" रक्खा गया। इस में २५ भजन हैं जिस से अनुमान होता है कि केवल २५ दिन यह स्नान करने के योग्य नहीं थे। इस पुस्तिका के आदि में कई एक सुन्दर भावपूर्ण दोहे भी हैं। यथा:—

"साधक गन सों तुम सदा, छिपत फिरत बृजराय।
अति अंधियारो मम हियो, तहां छिपत किन आय॥
वेद कहत जग विरचि हरि, व्यापि रहत ता मांहि।
मम हिय जग बाहर कहा, जो इत व्यापत नाहिं॥
तुम्हहिं रिझावन हित सज्यो, लख चौरासी रूप।
रीझ देहु गति खीझ कै, बरजहु मोहि बृज भूप॥"

आहा! इन दोहों में कैसी फ़िलासफ़ी, कैसी करुणा, और कैसा ज्ञान विज्ञान छिपा हुआ है और नीचे के दोहे में कैसी निष्काम भक्ति दृढ़ाई है

नर्क स्वर्ग कै ब्रह्मपद, कै चौरासी माहिं।
जहां रहों निज कर्मबस, छुटै कृष्णरति नाहिं॥

और कर्म का अवश्यफलदायक होना भी इसी में साथ ही साथ दिखलाया है।

"प्रेममालिका"—इस में तीन भांति के कीर्तन हैं। एक लीलासम्बंधी, दूसरे दैन्यभाव के, और तीसरे परम प्रेममय पवित्र अनुभव के। कवि ने लिखा है कि इन पदों के छपवाने का प्रयोजन नहीं था क्योंकि "एक तो संसार में प्रायः अनधिकारी लोग हैं, दूसरे इस के द्वारा लोगों में अपनी प्रसिद्धि की इच्छा नहीं, तथापि परम प्रीति से यह प्रेमपुष्प-ग्रथित मालिका उसी के श्रीकंठ में समर्पित है जो इस में गाया गया है"। इस से स्पष्ट बोध होता है कि कवि ने इसे श्रीकृष्ण को अर्पण किया है, किन्तु अंगरेज़ी में समर्पण Love अर्थात् प्रेमदेव को लिखा हुआ है। तो इस में कुछ हर्ज नहीं। हम ऊपर ही कह आये हैं कि प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। कवि के प्रेमदेव कृष्ण ही थे इस में सन्देह नहीं।

इस ग्रन्थ में कवि ने अपने प्रेम की दशा श्रीराधे के मुख से इस चरण में प्रगट की है " कोउ मोहि हंसत करत कोउ निन्दा, नहिं समुझत कोउ प्रेम परेखे। मेरे लेखे जगत बावरो, मैं बावरो जगत के लेखे "। निस्सन्देह यह प्रेमदशा सब लोग समझने के योग्य नहीं हैं। इसी से कवि ने प्रायः लोगों को इस का अनधिकारी लिखा है। ऐसे ही प्रेमियों को " कछु न सुहात धाम धन पति सुत मातु पिता परिवार। बसति एक हिय में उन की छवि नैननि वही निहार॥ " पूर्वानुराग इसी का नाम हैं, चाहे कोई हंसे वा निन्दा करे। तभी तो कवि अपने प्रेमदेव से विह्वल हो कर पूछता है कि :—

" अहो हरि वेहू दिन कब ऐहैं। जा दिन में तजि और संग सब हम ब्रजवास बसैहैं॥ संग करत नित हरि-भक्तन को हम नेकहु न अघैहैं। सुनत श्रवन हरिकथा सुधारस महा मत्त ह्वै जैहैं॥ कब इन दोउ नैनन सों निस दिन नीर निरंतर बहिहैं। हरीचन्द श्रीराधे राधे, कृष्ण कृष्ण कब कहिहैं॥ "

और फिर अधीर हो कर कहता है :—

" अहो हरि वह दिन बेग दिखाओ। दै अनुराग चरन-पंकज को सुत पितु मोह मिटाओ॥ प्रेममत्त ह्वै डोलत चहुं दिसि तन की सुधि बिसराओ। निस दिन मेरे जुगल नयन सों प्रेमप्रवाह बहाओ "॥

ऐसा पक्का प्रेमी होने ही से कवि ममतायुत कहता है कि :—

" आजु हम देखत हैं को हारत। हम अघ करत कि तुम मोहि तारत को निज बान बिसारत॥ होड़ पड़ी है तुम सों हम सों देखैं को प्रन पारत। हरीचन्द अब जात नरक मैं कै तुम धाइ उबारत॥"

ऐसा पक्का प्रेमपथिक कभी हार सकता है? चाहे कोई ऐसे प्रेमी को किसी दृष्टि से क्यों न देखे।

इस पुस्तक में कवि ने कई अन्य भाषा की कविता भी की है।

"प्रेमप्रलाप"—प्रेमोन्मत्त हो कर कवि ने इस में अपने प्रेममय हृदय को दशा प्रगट की है। कर्मजाल को निःसार समझ कर कवि कहता है:—

" बेदन उलटी सबहि कहो। स्वर्ग लोभ दे जगहि भुलायो दुनियां भूलि रही ॥ सुद्ध प्रेम तुव कबहुं न गायो जो श्रुति सार सही। हरीचन्द इन के फन्दन परि तुव छवि जिय न गही ॥ "

और कदाचित यही समझ कर कवि ने " लोक वेद दोउन सों न्यारी हम निज रीति निकारी " ऐसा भी कहा है। कवि अति विह्वल हृदय हो कर, " कहत पुकार नाथ तव रूठें कहुं न निवाह हमारी। " कवि को एक ही का भरोसा है और यही अनन्यता है।

इस ग्रन्थ के सभी पद अत्यन्त मर्मभेदी और प्रकृत कविता के सांचे में ढले हुए हैं।

इस ग्रंथ के अंत में कवि ने नित्य की साधारण वस्तु को दिखला २ कर लोगों पर संसार की अनित्यता प्रगट करनेमें प्रकृत कवि का गुण दिखलाया है।

" सांझ सवेरे पंछी सब, क्या कहते हैं कुछ तेरा है। हम सब इक दिन उड़ जाएंगे, यह दिन चार बसेरा है ॥ आंधी चल कर इधर उधर से, तुझ को यह समझाती है। चेतचेत ज़िन्दगी हवा सी, उड़ी तुम्हारी जाती है ॥ पत्ते सब हिल हिल कर पानी, हर हर करके बहता है। हर के सिवा कौन तू है बे, यह परदे में कहता है ॥ दिया सामने खड़ा तुम्हारी, करनी पर सिर धुनता है। इक दिन मेरी तरह बुझोगे, कहता तू नहिं सुनता है ॥ इत्यादि।

प्रकृत कवि ही साधारण वस्तुओं से शिक्षा निकालने के समर्थ होता है। यह दूसरे का काम नहीं है।

" विनय प्रेम पचासा "—" रोमियो जूलियट " नामक नाटक में शेक्सपियर ने कहा है "Had I been glove to rest on those cheeks" अर्थात् हम दस्ताना होते तो उन कपोलों को स्पर्श करते। और यहां कवि अपने प्रेमपात्र प्रति कहता है कि :—

"बसन होय लिपटो प्रति अंगन, भूषन ह्वै तन बांधो।
सोंधो ह्वै मिलि जाव रोम प्रति, अहो प्रानपति माधो॥
फूलमाल ह्वै कंठ लगो मम, निज सुबास मन मोहो।
ह्वै सुहागसेन्दुर सिर बिलसो, अधरराग ह्वै सोहो॥
श्रवनन पूरो होइ मधुरसुर, अंजन ह्वै दोउ नैन।
होय कामना जागहु हिय में, करहु नींद बनि सैन॥"

जो लोग शेक्सपियर के उस वाक्य पर आनन्दित होते हैं क्या वे हमारे चरित्रनायक की इस कविता पर उस से अधिक आनन्दित नहीं होंगे?

इस में प्रेममय विनय की अच्छी कविताएं हैं जिन में से कई एक अन्यत्र उद्धृत भी की जायंगी।

"देवी छद्मलीला"—इस में श्री राधाजी का वृन्दावन देवी का स्वरूप धारण कर के श्री कृष्ण के छलने की कथा वर्णन की गई है। इसी के साथ "प्रातः स्मरण मंगल पाठ *" "भीष्मस्तवराज", "श्रीनाथ स्तुति *", अपवर्ग पंचक *", तथा "सीतावल्लभ स्तोत्र†" प्रकाशित हुआ है।

"कृष्णचरित्र", "वेणुगीत", "होली", तथा "वर्षाविनोद" के वर्णित विषय इन ग्रन्थों के नाम ही से प्रगट हैं। इसी से इन की सविशेष समालोचना नहीं की जाती। सबों में श्री कृष्ण-लीला-सम्बन्धी कीर्तन के छंद हैं। "वर्षाविनोद" में दो एक संस्कृत भाषा की लावनियां एवं कई एक जातीय संगीत भी हैं।

"प्रातःस्मरण स्तोत्र", "स्वरूपचिन्तन" "प्रबोधिनी"—ये सब छोटीर कविताएं हैं। "प्रबोधिनी" के धर्मसम्बन्धी कविता होने पर भी कवि ने उस के अन्त में देशदशाविषयक कई एक कविताएं लिखी हैं।

"प्रातसमीरन" वंग छन्द में लिखा गया है। इस में प्रातःकाल के वायु तथा प्रातःकाल की शोभा का सुन्दर चित्र खींचा हुआ है। पढ़ने में मन आह्लादित हो कर प्रकृत कविता का स्वाद मिलता है।

"गीतगोविन्द"—श्री जयदेव जी कृत गीतगोविन्द का छन्दोबद्ध भाषानुवाद ‡ पहिले "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" में नवम्बर १८७७ ई० से छपने लगा था।

---

* ये सब छप्पै छन्दों में हैं। † यह संस्कृत भाषा में है।

‡ भाषा में इस के दो और अनुवाद हैं। प्रथम राजा शिवप्रसाद के पिता

पीछे पुस्तकाकार छपा। जयदेव जी की कविता ऐसी मधुर है कि भक्त जन इस के पद पद पर आनन्दरस एवं हरिप्रेम में गोता खाने लगते हैं। देशीय विदेशीय सभी संस्कृत जाननेवाले जयदेव की काव्यमाधुरी के प्रेमी हैं। दक्षिण देश में इस का प्रेमपूर्वक गान किया जाता है। वंग देश में भी इस का बहुत मान है। वैष्णवमंडली में तो गीतगोविन्द तथा इस के रचयिता जयदेव जी प्राण के समान आदरणीय हैं। कवि ने इस अनुवाद के आरम्भ में लिखा है कि:—

"रसिकराज बुधवर बिदित, प्रेमी प्रियपद सेव।
राधागुन गायक सदा, मधुवच जय जयदेव* ॥

---

मह राजा डालचंद की आज्ञा से रायचन्द्र नागर कृत छन्दोबद्ध अनुवाद, और दूसरा अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरि दास कृत।

द्राविड़ और कर्णाटादि भाषाओं में भी इस का अनुवाद हुआ है।

अंगरेज़ी गद्य में सर विलियम जोन्स ( Sir William Jonse ), पद्य में आरनाल्ड (Arnold), लेटिन भाषा में लासेन ( Lassen ), और जर्मन भाषा में रुकोर्ट साहिब ने गीतगोविन्द का अनुवाद किया है।

इस की टीकाएं भी अनेक हुई हैं। यथा उदयनकृत, जो गोवर्द्धनाचार्य्य के शिष्य थे और जिन्हों ने जयदेव जी से भी कुछ पढ़ा था। यह टीका जयदेव जी ही के समय में बनी थी। पीछे से अनेक टीकायें बनीं।

* ज़िला बीरभूमि के मुख्य नगर सूरी से प्रायः नौ कोस दक्षिण भागीरथी ( गंगा ) के करद अजयानद के उत्तर किन्दुबिल्व गांव में इन्हों ने जन्मग्रहण किया था। इन के पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रामा वा वामादेवी था। इन का समय बंगला के ग्रंथों में ईस्वी १३ वीं वा १४वीं शताब्दी लिखा है। अंगरेज़ी अनुवादकों ने ११५० ई० लिखा है। परन्तु हमारे चरित्र-नायक हरिश्चन्द्र ने सप्रमाण १२ वीं शताब्दी निश्चय किया है। जयदेवजी का विवाह पद्मावती से हुआ था। कहते हैं कि स्वप्न में जगन्नाथ जी की आज्ञा पाने से उक्त कन्या के पिता ने उस को ले जा कर इन को समर्प्पण किया था। कदाचित् पहिले इन का एक और भी विवाह हुआ था। विवाह होने पर जीविका उपार्जनार्थ तथा तीर्थाटन एवं धर्मोपदेश की इच्छा से यह घर से विदेश निकले, किन्तु अन्त में अपनी जन्मभूमि में लौट कर इन्हों ने अपना शरीर वहीं त्याग किया। इन के जीवनकालही में पद्मावती का स्वर्गवास हो गयाथा। गीतगोविन्द के अतिरिक्त इन की और कविता नहीं मिलती। प्रसन्नराघव,

कहं कविवर जयदेव वच, कहं मम मति अति हीन।
पै दोउ हरिगुन गायिनी, एहि हित यह सम कीन॥
रसिकराज जयदेव की, कविता को अनुवाद।
कियो सबन पै नहिं लह्यो, तिन में तौन सवाद॥
मेटन सो निज जिय खटक, उर धरि पिय नंदनन्द।
तिन हीं के पदबल रच्यो, यह प्रबन्ध हरिचन्द॥
जिमि बनिता के चित्र में, नहि कछु हास विलास।
पै जेहि सो प्रिय सो लहत, वाहू में सुखरास॥
तैसहि गीतगोविन्द अति, सरस निरस मम गीत।
पै जिन कह प्रिय तौन ते, करिहैं यासों प्रीत॥"

यद्यपि बाबू साहिब ने ऐसा लिखा है तथापि इस अनुवाद के सरस और मधुर होने में कोई कसर नहीं पाई जाती। जैसा मूल उत्तम है वैसा ही अनुवाद भी है। यहां पर कई एक मूलपद भाषानुवाद सहित पाठकों के आनन्दार्थ उद्धृत किये जाते हैं।

मूलः—"मेघैर्मेदुरमंबरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्नक्तं भी-

---

पक्षधरो, चन्द्रालोक, और सीताविरह काव्य विदर्भनगर-निवासी अन्य जयदेव का है जिन का उपनाम काव्य में पीयूषवर्ष और न्याय में पक्षधर था।

जयदेव जी के स्मरण के हेतु केन्दुली गांव में अब तक प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति को एक बड़ा भारी मेला होता है जिस में साठ सत्तर वैष्णव एकत्र हो कर इन की समाधि के चारों ओर आनन्दोन्मत्त हो कर गगनभेदी कीर्तन करते हैं।

जयदेव जी का सविस्तर चरित्र बाबू रजनीकान्त गुप्त ने बंगभाषा में एवं बाबू हरिश्चन्द्र ने स्वरचित "चरितावली" नामक ग्रंथ में अति मनोहर रीति से वर्णन किया है। बाबू रमेशचन्द्रदत्त ने भी "लिटरेचर औफ़ बंगाल" नामक पुस्तक में अंगरेज़ी भाषा में इन का हाल लिखा है।

बाबू रजनीकांतगुप्त लिखित "जयदेवचरित्र" हिन्दी में भी अनुवादित हो कर खड्गविलास यंत्रालय में मुद्रित हो चुका है।

हरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥ इत्थं नंदनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमं राधामाधवयोर्जयंति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥

अनुवाद—मेघन सों नभ छाइ रहे बनभूमि तमालन सों भई कारो। सांझ भई डरिहैं घर याहि दया करि कै पहुंचावहु प्यारी ॥ यों सुनि नन्दनिदेस चले दोउ कुंजन में हरि भानुदुलारी। सोई कलिन्दी की कूल इकंत को केलि हरै भवभीत हमारी ॥

संस्कृत—वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते वलिं छलयते चत्रचयं कुर्वते ॥ पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान्मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

अनुवादित—वेदउधारन मंदरधारन भूमिउधारन ह्वै वनचारी। दैतविनासो बलो कै छली छयकारक छत्रिन के असुरारी ॥ रावनमारन त्यों हलधारन वेदनिवारन म्लेच्छ विदारी। यों दसरूप विधायक कृष्णहिं कोटिन्ह कोटि प्रनाम हमारी ॥

पूर्वोक्त ग्रंथों के अतिरिक्त इन के रचे हुए और अनेक काव्य और कीर्तन की पुस्तकें हैं। सबों की समालोचना अनावश्यक है। इन की कीर्तन की पुस्तकों में विशेषता यह है कि उन में आज काल ऐसी ठुमरी टप्पे का दर्शन नहीं होता। वे केवल ईश्वरानुरागवर्द्धक पदों से ही भूषित हैं। हां! कहीं २ देशदशा का रंग अवश्य झलकता है। हास्य और व्यंग की बहार निश्चन्देह देखी जाती है।

ऐसे काव्य तो प्रायः सब ही कवियों के सरस और मधुर होते हैं तथापि जिन पदरचयिताओं का ईश्वरपद में निर्विकार और सदा प्रेम स्वाभाविक होता है उन के पदों का कहना ही क्या है? क्योंकि रस की परिपक्वता ही कविता है, और कवि निज अन्तःकरण-

पूरित रसों ही की कविता द्वारा जगत पर प्रगट करके लोगों को मोहित करता है। इस से जिस कवि की जिस रस की कविता में मर्म्मस्पर्शी गुण अधिक हो उसी में उस की परिपक्कता जाननी चाहिए। सूरदास जी के पद-समूह और श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के विनय इस कथन के प्रमाण हैं। सच्चे हरिभक्तों का पद सहज में चित्त को ईश्वरप्रेम की ओर खींच ले जाता है। हरिश्चन्द्र की कविता पाठ करने से चित्त पर ऐसाही प्रभाव होता है।

यद्यपि इन की सब रसों की कविता में आकर्षणशक्ति पाई जाती है और इन की सब रसों की कविता श्रोतगण के हृदय में उन रसों को जाग्रत कराने की विलक्षण शक्ति रखती है तथापि प्रेम भक्ति की कविता कहीं बढ़ी चढ़ी है। कारण यह है, कि एक तो यह प्रकृत कवि, दूसरे बाल्यावस्था ही से इस रंग में रंगे हुए थे।

पूर्वोक्त ग्रंथों के अतिरिक्त इन के रचे बहुत से धर्मसम्बन्धी ग्रन्थ भी छन्दो-बद्ध हैं, और राजभक्तिसम्बन्धिनी पुस्तकें वीररस की कविता से पूर्ण हैं, जिन का विशेष वर्णन उपयुक्त स्थान में किया जायगा।

बाबू हरिश्चन्द्र खड़ी बोली की भी कविता करते थे, किन्तु इन का कथन था कि ब्रजभाषा में जैसी कविता मधुर होती है दूसरी भाषा में नहीं। इन्हों ने इस बात को स्वरचित "हिन्दीभाषा" नामक ग्रन्थ में लिखा है, परंतु वहां पर यह भी लिखा है कि "यह बात कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व नहीं था क्योंकि मुहम्मद मलिक जाइसी और चन्द की कविता विलक्षण ही है। वैसे ही तुलसीदास जी ने भी ब्रजभाषा का नियम भंग कर दिया है"। इन्हों ने एक पत्र में जो १ सेप्टेम्बर १८८१ ई० के "भारतमित्र" में प्रकाशित हुआ था लिखा है कि "प्रचलित साधुभाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इस में क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जायगा। तीन भिन्न २ छन्दों में यह अनुभव करने ही के लिये कि किस छन्द में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है। मेरा चित्त इस से सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इस के लिखने में दूना परिश्रम हुआ। इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घमात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुबिधा होती है। मैंने कहीं २ सौकर्य्य के हेतु दीर्घ मात्राओं को भी लघु कर के पढ़ने की चाल रक्खी है।

लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूंगा"। देखिये इस लेख से हरिश्चन्द्र का सरल स्वभाव प्रगट है। जिस विषय में अपने में कुछ कसर पायी उसे स्वयं स्पष्ट कह दिया।

यह हम भी कहेंगे कि ब्रजभाषा के समान खड़ी बोली में कविता मधुर नहीं होती। खड़ी बोली की कविता का ढंग प्रायः उर्दू फ़ारसी ऐसा हो जाता है। बहुतेरे लोगों का छंद भी ठीक नहीं उतरता, परन्तु यह रचयिता ही का दोष कहा जायगा। जो हो, हम अब यहां पर बाबू साहिब रचित पूर्वोक्त खड़ी बोली की कविता का कुछ पद उल्लेख करते हैं जिस से विदित होगा कि इन की लेखनी इस ओर चलनेमें भी असमर्था नहीं थी। हां! कहीं त्रुटि हो तो यह स्वाभाविक है। ऐसा होना कवि ने स्वयं भी स्वीकार किया है।

वर्षा ऋतुः—बरसा सिर पर आगई, हरी हुई सब भूमि।
बागों में झूले पड़े, रहे भ्रमरगण झूमि॥
बीरबहूटी मख़मली, बूटी सी अति लाल।
हरे गलीचे पै फिरैं, सोभा बड़ी रसाल॥
करके याद कुटुम्ब की, फिरे बिदेसी लोग।
बिछड़े प्रीतमवालियों, के सिर छाया सोग॥
छोड़ २ मरजाद निज, बढ़े नदी नद नाल।
लगे नाचने मोर बन, बोलै कीर मराल॥
खोल खोल छाता चले, लोग सड़क के बीच।
कीचड़ में जूते फंसे, जैसे अघ में नीच॥

बसन्त ऋतुः—गरमी के आगम दिखलाये, रात लगी घटने।
कुहू कुहू कोयल पेंड़ों पर, बैठ लगी रटने॥
ठण्ढा पानी लगा सुहाने, आजम फ़िर आई।
सरस सुगन्धी सिरिस फूल की, कोसों तक छाई॥
उपवन में कचनार बनों में, टेसू हैं फूले।
मदमाते भौंरे फूलों पर, फिरते हैं भूले॥ इत्यादि

महाराज दशरथ के अन्तकाल के वर्णन में :—

कहां हो हे हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़ कर मुझ को सिधारे॥
बुढ़ापे में मुझे यह देखना था।
इसी के भोगने को मैं बचा था॥
छिपाई है कहां सुन्दर वह मूरत।
दिखा दो सांवली सी मुझ को सूरत॥
छिपे हो कौन से परदे में बेटा।
निकल आओ कि मरता है यह बुड्ढा॥ इत्यादि

इन छन्दों के पढ़ने से पाठकवृन्द स्वयं समझ सकते हैं कि ये सब शुद्ध उर्दू के छन्दों के समान हैं और इस में व्रजभाषा की मधुरता नहीं पाई जाती।

हरिश्चन्द्र केवल संस्कृत तथा हिन्दी ही भाषा में कविता नहीं करते थे वरन भारतवर्ष में यावत् भाषा प्रचलित हैं प्रायः उन सभों में कविता करने की इन्हें सामर्थ्य थी परन्तु ऊपर कहे हुए कारणों से यह भाषाकविता के आचार्य्य माने जाते थे। अनेक भाषाओं की कविता जो हम को हस्तगत हुई हैं वे सब एक पृथक् परिच्छेद में प्रकाशित की गई हैं।

---

# अष्टम परिच्छेद ।

## नाटक ।

अब नाटककियारी की लहलहाती हुई छटा देखिए। हिन्दी साहित्य-वाटिका की इस कियारी को सुसज्जित करनेवालों में हरिश्चन्द्र ही आदि और मुख्य कहे जायंगे। यद्यपि इन के पूर्व भी दो एक साहित्यमालियों ने इस कियारी में दो एक पेड़ रोपे थे परन्तु इस से इस की श्रीवृद्धि नहीं हो सकी। इन्हों ने इस में ऐसे २ अनेक सुहावने वृक्षों को आरोपित कर के इस की शोभा बढ़ाई है कि जिस के दृश्य अतीव मनोहर और अपूर्व फलदायक हैं। भिन्न २ रसों के सुखद स्वाद मिलने से मन सन्तुष्ट हो कर अकथ आनन्द प्राप्त करता है।

इस परिच्छेद में उसी की कुछ छवि दिखलाने को लेखनी चरचराती है; परन्तु पाठकवृन्द इसी पर सन्तोष न करें। इन नाटकों को स्वयं अवलोकन किये बिना कोई यथार्थ आनन्द लाभ नहीं कर सकता है। इस के अक्षर २ तथा पद २ अमूल्य हैं और ये कवि की कल्पना तथा कविताशक्ति के पूर्ण परिचय देनेवाले हैं।

नाटक क्या वस्तु है यहां पर यह जानना भी बहुत आवश्यक है। नाटक शब्द का अर्थ नट लोगों की क्रिया है और नट उस को कहते हैं जो विद्याबल से निज अथवा किसी अन्य पदार्थ के स्वरूप को बदल दे वा दृष्टिरोचन के हेतु फिर जाय। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्त्तन कर के राजादिक का स्वरूप धारण करते हैं वा वेषविन्यास के पश्चात् रंगभूमि में स्वकीय कार्य्य साधन के हेतु फिरते हैं। इसी से उन की संज्ञा नट है।

नाटक भी काव्य का एक रूपान्तर है। इसे "दृश्यकाव्य" कहते हैं, जो कवि की वाणी को उस के हृदयंगत आशय और हावभाव के सहित प्रत्यक्ष प्रगट कर देता है। काव्य के दूसरे भेद अर्थात् श्रव्यकाव्य के द्वारा जो हावभाव का वर्णन सुन कर वा पढ़ कर आनन्द लाभ होता है यदि उसी बात का प्रत्यक्ष अनुभव हो तो निस्सन्देह उस से अनेक गुणा अधिक आनन्द प्राप्त हो सकता है। यह बातें दृश्यकाव्य ही में पाई जाती हैं। दृश्यकाव्य को रूपक भी कहते हैं; और रूपकों में नाटक ही प्रधान है। अतएव रूपक मात्र का नाम नाटक हो गया है। इसी विद्या का नाम कुशीलवशास्त्र भी है। आर्य्यों के अनुसार ब्रह्मा, शिव, भरत, नारद, व्यास, हनुमान वाल्मीकि, लवकुश, श्रीकृष्ण,

अर्जुन, पार्वती, सरस्वती आदि इस के आचार्य्य हैं। इन लोगों में भरत मुनि इस शास्त्र के मुख्य प्रवर्त्तक हुए हैं।*

इस में सन्देह नहीं कि सब से पहिले भारतवर्ष ही में नाटक का प्रचार हुआ। इस बात को हमारे चरित्रनायक ने स्वरचित "नाटक" ग्रन्थ में सप्रमाण सिद्ध किया है, वरञ्च इन्हों ने यह भी लिखा है कि सर्वदा नट लोगों ही के द्वारा ये नाटक नहीं अभिनय होते थे। आर्य्य राजकुमार और राजकुमारिगण भी इस को सीखते थे। जब प्रद्युम्न आदिक वीर वज्रनाभ देश में गये थे तो भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने कुमारों को नाटक करने की आज्ञा देकर भेजा था और उन लोगों ने पहिले दिन रामजन्म, दूसरे दिन रम्भाभिसार नाटक खेला था।†

यद्यपि विल्सन साहिब ने लिखा है कि संस्कृत नाटक अभिनय के समय नाट्यशाला में "प्रतिकृति (Scenes) अर्थात् चित्रपट परिवर्तन का व्यवहार नहीं होता था § परन्तु हमारे चरित्रनायक ने सिद्ध किया है कि नाट्यशालादि निर्माण किये जाते थे, परदे भी उठाये और गिराये जाते थे और परदे के भीतर/समय समय पर गान भी हुआ करता था।ए

संस्कृत में नाटक के कई भेद हैं और संस्कृत नाटककर्त्ता भी अनेक हुए हैं। कवि ने नाटक नामक पुस्तक में इन बातों का सविस्तर वर्णन किया है। हिन्दी भाषा में नाटक लिखने की चाल बहुत कम थी। बरन हम कह सकते हैं कि हिन्दी नाटक का जन्म इन ही के घर में हुआ। इन्हों ने स्वयं लिखा है कि "विशुद्ध नाटक रीति से पात्र प्रवेशादि नियमरक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण कविवर गिरिधर दास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द) का है।" वह "नहुष नाटक" है। जब हरिश्चन्द्र की अवस्था ७ वर्ष की थी तो इन के पिता जी ने उस की रचना की थी, किन्तु इन के

---

* हरिश्चन्द्रकृत "नाटक" पृ० १

† हरिश्चन्द्र कृत "नाटक" पृ० २६।

§ Where every thing was left to the imagination, one site was as easily conceivable as another; and the scene might be fancied, one while a garden, and another a palace, as well as it could be imagined to be either. H. H. Wilson, Hindu Theatre, Intro., p. 25.

ए "नाटक" पृ० ७, ८ और २६।

लेखानुसार वह पुस्तक ब्रजभाषा मिश्रित है। हिन्दी भाषा में दूसरा वास्तविक नाटक राजा लक्ष्मणसिंह-कृत कवि कालिदास विरचित "शकुन्तला" * का अनुवाद है।

यह विचार कर कि जिस भांति की पुस्तकें हिन्दी भाषा में बननी चाहियें वैसी पुस्तकें तब तक बहुत कम बनी थीं और पूर्वोक्त दो नाटकों के अतिरिक्त और कोई ऐसा नाटक नहीं था जिस के पढ़ने वा अभिनय से आनन्द लाभ एवं हिन्दी भाषा का बल प्रगट हो, हमारे चरित्रनायक ने नाटक रचना की ओर ध्यान दिया।

सब से पहिले अर्थात् १८६८ ई० के पूर्व ही इन्हों ने "प्रवास" नाटक लिखना आरम्भ किया था जिस का हस्त लिखित केवल एक ही पृष्ठ हम को मिला है

१८६८ ई० में यह विचार कर कि शकुन्तला के अतिरिक्त सब नाटकों में श्रीहर्ष कवि † कृत "रत्नावली नाटिका" बहुत उत्तम और पाठकों को आनंद-

---

* सौ वर्ष का समय व्यतीत हुआ कि सर विलयम जोन्स ने इस का अंगरेज़ी भाषा में अनुवाद किया था जिस को देख कर जर्मनदेशीय कवि गोइथो ने पद्य गद्य दोनों में उस की बड़ी प्रशंसा की थी। और "आगस्टसश्लेजिल" ने शकुंतला के विषय में यह लिखा है:—

It presents through its oriental brilliancy of coloring, so strikinge a resemblance.........to our romantic drama, that it might be suspected that the love of Shakspeare had influenced the translator, were it not that other Orientalists bore testimony to his fidelity. Sakuntala; edited by Monier Williams, Preface.

† कहते हैं कि उज्जैन के राजा द्वितीय "शिलादित्य" ही का नाम श्रीहर्ष था। उन्हीं की राजसभा में "कादम्बरी" के रचयिता बाणभट्ट रहते थे। लोगों का अनुमान है कि भट्ट ही ने "रत्नावली" की रचना कर के निज स्वामी के नाम से उसे प्रकाशित किया था। जो हो, श्रीहर्ष विद्यानुरागी थे। विलसन साहिब लिखते हैं कि श्रीहर्ष कविगण तथा नर्तक और नाटकवालों को इतना धन दिया करते थे कि अन्त में देवताओं के मन्दिरों के सोना चांदी के बर्तन बेंचने की बारी आ गई जिस कारण से राजविद्रोह हुआ और वह उसी में परलोक सिधारे।

दायिका है, इन्हों ने उस का भाषानुवाद करना आरम्भ किया। उस का कुछ अंश "कविवचनसुधा" के प्रथम भाग में छपा था परन्तु पूरा * प्रकाशित नहीं हुआ।

## विद्यासुन्दर।

इस के अनन्तर १८६८वीं ई० में इन्हों ने "विद्यासुन्दर" नाटक की रचना की। हिन्दीभाषा में यह द्वितीय नाटक कहा जायगा, जिस का कारण कवि ने स्वयं इस नाटक के उपक्रम में लिख दिया है। इस नाटक की आख्यायिका का मूलसूत्र "चोरकवि" कृत "चोरपंचाशिका" है। बंगदेशीय प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय ने † उस कहानी को मनोहर कविता में वर्णन किया

"रत्नावली" देखने से उस समय के सामाजिक गठन एवं नाटक रचना प्रणाली में परिवर्तन पाया जाता है। संस्कृत सहज सरल और सुन्दर है। जैसी ललित उस की प्राकृतभाषा है वह लालित्य और किसी संस्कृतनाटक में नहीं पाया जाता। विल्सन साहिब लिखते हैं कि "प्राचीन एवं नवीन प्रणाली के संलग्न करनेवाली यह एक शृंखला है और मध्य-कालीन-विरचित ग्रन्थों में से यह एक रोचक ग्रन्थ है जिस समय कि संस्कृत कविता उच्च स्थान से खिसक कर अतिशयोक्ति की अवस्था में आ गई थी।" Vide H. H. Wilson, Hindu, Theater Vol: II No 25.

* रत्नावली का पूरा हिन्दी अनुवाद भारतमित्र के सम्पादक बाबू बाल-मुकुन्द गुप्त ने प्रकाशित किया है, और बरेली कालिज के संस्कृत प्रोफ़ेसर पं० देवदत्तजी ने बाबू हरिश्चन्द्र ही के समय में किया था।

† राजा नरेन्द्रनारायण राय वर्द्धमान के ज़मीन्दार के यह चतुर्थ पुत्र थे। पांडुवा परगना भुरसुट में इन का निवासस्थान था। कीर्तिचन्द्र राय राजा वर्द्ध-मान ने इन के पिता से रुष्ट होकर इन के इलाक़ों का सर्वनाश कर दिया। भारतचन्द्र नवपाड़ा में अपने मामा के घर भाग गये। वहीं कुछ पढ़ कर १४ वर्ष की अवस्था में घर आ कर शारदा ग्राम की एक कन्या से विवाह किया। उस विवाह को लोगों के अयोग्य बताने से यह मनमलीन होकर ज़िला हुगली देवनन्दपुर में मुन्शी रामचन्द्र कायस्थ के यहां चले गये और वहीं फ़ारसी पढ़ा। २० वर्ष की अवस्था में फिर घर पर आकर भाइयों की ओर से मुख़तार बन कर वर्द्धमान के राजदरबार में गये और कार्य्यसाधन के बदले इन को कारागार देखना पड़ा। वहां से घूस देकर निकल भागे और कटक के मरहट्टा सूबेदार शिवभट्ट के पास गये। अन्त में फ़रांसीसी गवर्नमेंट के दीवान इन्द्रदेव-

है। बंगदेशीय आबाल वृद्ध वनिता को विद्यासुन्दर की कहानी अवगत है। श्रीमन्महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलम्बन कर के बंगभाषा में विद्यासुन्दर नाटक बनाया। उसी की छाया ले कर हरिश्चन्द्र ने हिन्दी भाषा में इस पुस्तक की रचना की।

वर्द्धमान के राजा वीर सिंह की कन्या "विद्या" बड़ी ही सुन्दरी एवं पंडिता थी। उस ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति उस को शास्त्रार्थ में परास्त करेगा उसी से वह विवाह करेगी। बहुत से राजकुमार आते गये परन्तु विद्या के प्रश्नों का उत्तर कोई न दे सके। अन्त में कांचीपुरी के गुणसिंधु राजा का पुत्र सुन्दर वर्द्धमान आया। एक मालिन के द्वारा चोरी से सुरंग खोद कर राजमहल में प्रवेश कर के उस ने विद्या से भेंट की औ बात चीतही में उसे परास्त कर दिया। अंत में पकड़े जाने पर कारागारवासी हुआ। किन्तु जब यह बात प्रकट हुई, कि वह गुणसिंधु राजा का सर्वगुणाकर पंडितवर सुन्दर नामक राजकुमार है तब राजा ने अपनी कन्या से उस का विवाह कर दिया।

प्रथम अंक में, राजा और मन्त्री राज भवन में आते हैं और राजा चिन्ता सहित कहता है कि "इतने राजपुत्र आये पर उन में मनुष्य एक भी नहीं

---

नारायण की सहायता से राजा कृष्णचन्द्र के दरबार में सम्मानित हुए और वहीं "गुणाकर" की पदवी प्राप्त की। कहते हैं कि १५ वर्ष की अवस्था में इन को सत्यनारायण की कथा बांचने को कही गई थी। इन्हों ने पुरानी कथा को छोड़ स्वरचित त्रिपदी सुनाई, और दो चार दिन बाद ऐसे ही अवसर में इन्हों ने चतुष्पदी में कथा रचना कर के पाठ किया। तभी से इन का नाम प्रसिद्ध हुआ। राजा कृष्णचन्द्र ही के कहने से इन्हों ने "विद्यासुन्दर" काव्य की रचना की और कदाचित् पुराना वैर चुकाने ही के लिये इन्हों ने उस में वर्द्धमान राज्य के घर की निन्दा की है। इन की काव्यशक्ति बड़ी प्रबल थी, परन्तु इन की कविता में अश्लीलता बहुत पाई जाती है।

इन के पूर्व दो मनुष्यों ने और इन के पीछे भी प्राणराम नामक एक महाशय ने विद्यासुन्दर काव्य की रचना की है और उन्हो ने लिखा है:—

বিদ্যাসুন্দরের এই প্রথম বিকাশ। বিরচিলে কৃষ্ণরাম নিমতা যার বাস॥
তাঁহার রচিত পুঁথি আছে ঠাঁই ঠাঁই। রামপ্রসাদের কৃত আর দেখা পাই॥
পরেতে ভারতচন্দ্রের অন্নদামঙ্গলে। রচিলেন উপাখ্যান প্রসঙ্গের ছলে॥

देखो, दिनेश बाबू कृत "बंगभाषा और साहित्य" पृ० ३४४.

आया, इन सबों का केवल राजवंश में जन्म तो है पर वास्तव में ये पशु हैं, जो मैं ऐसा जानता तो अपनी कन्या को ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा नहीं करने देता।" इसी अंक में कांचीपुरी के राजा गुणसिंधु के अत्यंत सुन्दर और पंडितवर पुत्र सुन्दर के बुलाने को गंगा भाट भेजागया है।

दूसरे गर्भाङ्क में, गंगा भाट के कांचीपुरी पहुंचने के पूर्व ही, सुन्दर वर्द्धमान आकर उस की अनन्त शोभा वर्णन करते हुए कहता है कि "वाह यह उद्यान भी कैसा मनोहर है। इस के वृक्ष सब कैसे फले फूले हैं और यह सरोवर कैसा निर्मल जल से भरा हुआ है मानों सब वृक्षों ने अपने २ रंग की शोभा देखने को इस उद्यान के बीच में एक सुन्दर आरसी बना दी है। और पक्षी भी कैसे सुन्दर रव से बोल रहे हैं मानों पुकारते हैं कि इस से सुन्दर संसार में और कोई उद्यान नहीं है।"

चौथे गर्भांक में, सुन्दर ने एक पुष्पमाला गूंथकर हीरा मालिन के हाथ विद्या के पास भेजी है। विद्या ने मालिन के द्वारा यह जानकर कि सुन्दर वर्द्धमान में आया है और माला उसी की बनाई हुई है, उस के रूप रंग का हाल पूछा है और उत्तर में हीरा ने यह कहा है:—

"कहै को चन्द्रवदन की शोभा। जाको देखत नगर नारि को सहजहि तें मन लोभा॥ मनु चन्दा आकास छोड़ि कै भूमि लखन को आयो। कैधौं काम बाम के कारन अपुनो रूप छिपायो॥ इत्यादि।

दूसरे अंक में, विद्या सखियों के सहित निज भवन में बैठी वियोगजनित दुःख की बातें कर रही है उसी अवसर में सुन्दर चुपके वहां पहुंचता है और विद्या से साक्षात् और आलाप होता है।

तीसरे अंक में, सुन्दर पकड़ा जाता है। इस के दूसरे गर्भाङ्क में, विद्या सुन्दर के बन्दी होने का समाचार पाकर अत्यन्त दुःखित होकर कहती है:—

"धिक है वह देह औ गेह सखी जिह के बस नेह को टूटनो है। उन प्रान पियारे बिना यह जीवहि राखि कहा सुख लूटनो है॥ हरिचन्द जू बात ठनी जिय में नित की

कुलकानि तें छूटनो है। तजि और उपाय अनेक सखी अब तो हम को विष घूंटनो है॥"

फिर गंगाभाट के प्रत्यागत होने पर जब यह बात ज्ञात हुई है कि कांचीपुरी के राजा का पुत्र सुन्दर हो बन्दीघर में रक्खा गया है तो बीरसिंह ने उसे बन्दीगृह से बुलवा कर सादर निकट बैठाया है और उसे विद्या को समर्पण किया है जिस पर गंगाभाट ने यह कविता पढ़ी है।

"आज अनन्द भयो अलिहौं विपदा सब को दुरि दूरि नसाई। मोद बढ्यो परजागन को दुख को कहुँ नाम न नेकु लखाई॥ मंगल छाइ रह्यो चहुं ओर असीसत हैं सब लोग लुगाई। जोरो जियो दुलहा दुलही को बधाई बधाई बधाई बधाई॥"

१८८४ ई० में इस का द्वितीय संस्करण हुआ और फिर कई एक संस्करण हुआ। पश्चिमोत्तर देश की गवर्नमेंट ने इस की १०० प्रतियां खरीद कर ग्रंथ का मान एवं ग्रन्थकर्ता का उत्साह बढ़ाया था।

## पाखंडबिडम्बन।

सन् १८७२ ई० में "पाखंडबिड़म्बन" की रचना हुई। यह कविकृष्ण मिश्रकृत "प्रबोधचन्द्रोदय" * नाटक के तीसरे अंक का अनुवाद है। इस में यही दिखलाया गया है कि संसार में अनेक पाखंड मत प्रचलित होने से सात्विकश्रद्धा-युक्त ईश्वर की भक्ति नहीं की जाती। किसी ने मद्यमांस की, और किसी ने स्त्री ही को प्रधानता अपने मत में घुसा रक्खी है जिस से चित्त

* १८११ ई० में बम्बई प्रदेश के डाक्टर जे० टेलर ने इस संस्कृत नाटक का खोज कर आविष्कार किया और इस को सुन्दर कविता के गुणों से भूषित पाकर उन्हों ने इस का अङ्गरेज़ी भाषा में अनुवाद किया। १८८४ ई० में कोनिग्सबर्ग निवासी प्रोफ़ेसर राज़ेनक्रैंज़ ( Rosenkranz ) ने जर्मन भाषा में इस का अनुवाद कराया। ईस्वी सन की १२ वीं शताब्दी में कदाचित् कृष्ण मिश्र भारत को सुशोभित करते थे। सम्भवत: यह रामानुज स्वामी के सम्प्रदाय के वैष्णव थे। Mrs. Manning's Ancient and Mediæval India, Vol. II, p. 24.

को यथार्थ शान्ति नहीं होती। शान्ति सात्विकश्रद्धा से वियोग के कारण व्यग्र हो रही है और सात्विक श्रद्धा तथा धर्म ईश्वर के चरणों में इन पाखंडियों के भय से शरणापन्न हुए हैं। तात्पर्य्य यह कि सत श्रद्धायुत धर्म्म एवं हरिभक्ति करने से जीव का कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।

पहिले शान्ति और करुणा आती है। शान्ति ससोच निज माता सात्विक श्रद्धा को खोजती है और कहती है :—

''जोबन मैं सरितान की तीर जहां बहै सीतल पौन सुहाई।
देवन के घर मैं ऋषि के घर मैं जिन आपुनि आयु बिताई॥
सज्जन के चित मैं जो रही हिय में जिन पुन्य की बेलि बढ़ाई।
सो परि जाय पखंडिन के कर गाय ज्यौं बांधि कै राखै कसाई॥''

करुणा उस को समझाती है। इतने में करालरूप धारण किये दिगम्बर सिद्धान्त आता है और कहता है :—

'' अरे सुगौरे सरावग्रियो सुगौः : अरे,
या मलरूपी देह मां, कसो जलारी सुद्धि।
आतम बिमल स्वभाव है यह रिषिग्रारी बुद्धि॥ ''

फिर एक बुद्ध भिक्षुक ताड़ सा लम्बा गेरुआ काछे सिर मुड़ाये आता है और कहता है :—

''लहने को भिक्षा बल कुन्दलछो अलु भोअन को मिली कुंदल नालो। लड्डु अनेअन भोजन कों मिए छेन के एत ए छेज कुखाली॥ के छलधा जुअती छव अंगन लाओत तेअ फुएआ कुवाली। दै गल में बहूयां कुख को दूमि बोअत है नित लात उजाली॥

फिर कापालिक आता है और निजधर्म्म का इस प्रकार से वर्णन करता है।

नित सीस कै काटि लहू सों भरे चरबी लगी मांस को होम करें। पुनि खोपड़ी ब्राह्मण जात की लाइ कै पारन के हित मद्य भरें॥ अरु काटि कै कंठ कठोर तुरन्त की रक्तन

कुंभ भराइ धरैं। मम देवता भैरवनाथ जू हैं जिन्हें पूजत लोग अनेक तरैं॥

कापालिक इन्द्रियजनित सुखों का बहु प्रकार से वर्णन करते २ दिगम्बर और भिक्षुक को अपने वश में कर लेता है और कापालिनी का जूठा मद्य उन दोनों को पिलवाता है।

फिर सब सात्विक श्रद्धा को पकड़ कर महामोह राजा के पास ले जाने को खोजते हैं और दिगम्बर के यह कहने पर कि :—

"नहिं जल थल पाताल में, गिरवर हूं में नाहिं।
कृष्ण भक्ति के संग वह, बसत साधु चित माहिं॥"

कापालिक हताश होता है और महामोह के बुरे दिन उपस्थित होने का भय कर के शोक प्रकाश करता है। तथापि वह प्रण करता है कि प्राण रहते तक स्वामी के कार्य्यसाधन की चेष्टा करेंगे।

इस अनुवाद को कवि ने ईश्वर को समर्प्पण किया है और उसी में लिखा है कि " यह शंका न करना कि मैं ने किसी मत को निन्दा के हेतु यह अनुवाद किया है क्योंकि सब तुम्हारे हैं इस नाते तो सभी अच्छे हैं और तुम से किसी को सम्बन्ध नहीं इस से सभी बुरे हैं। "

## वैदिकीहिंसाहिंसानभवति।

१७८३ ई० में " वैदिकी हिंसा हिंसा नभवति " प्रहसन * की अवतारणा हुई। यह किसी ग्रंथ का अनुवाद नहीं है और न कोई कहानी वा ऐतिहासिक घटना की छाया लेकर इस की रचना हुई है। कवि की काल्पनिक शक्ति ही से इस का जन्म हुआ है। इस में यह दिखलाया गया है कि वैदिक रीति से पशुहिंसा करना वा बलि देना भी पाप ही है। इस प्रहसन में कवि ने मद्यपी लोगों का भी तमाशा दिखलाया है। प्रबन्ध बहुत सुन्दर है और जिस भाव का समावेश किया है उस का पूरा चित्र खड़ा कर दिया है।

आरम्भ में नान्दी कहता है:—

---

* यह हास्यरस का मुख्य खेल है। इस में नायक राजा, धनी, ब्राह्मण, वा कोई धूर्त होता है। इस में अनेक पात्रों का समावेश होता है। प्राचीन काल में प्रहसन में एक ही अंक होता था, अब कई दृश्य दिये जाते हैं।

"बहु बकरा बलि हित कटैं, जाके बिना प्रमान।
सो हरि की माया करै, सब जग को कल्यान॥"

नटी के यह प्रश्न करने पर कि "आज कौन लीला कीजायगी" सूत्रधार कहता है "हां, जो लोग मांसलीला करते हैं उन की लीला करेंगे।"

प्रथम अंक में नेपथ्य में पहिले यह सुनाई पड़ता है "बढ़े जाइयो! कोटिन लवा बटेर के नाशक, वेद-धर्म-प्रकाशक, मंत्र से शुद्ध कर के बकरा खानेवाले, दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ानेवाले, सहित सकल समाज, श्रीगृद्ध्रराज महाराजधिराज!" और गृद्ध्रराज, चोबदार, पुरोहित और मंत्री आते हैं।

राजा मछली खा कर आया है और कहता है कि "मछली कैसी स्वादिष्ट बनी थी"। पुरोहित जी उत्तर देते हैं कि "मानो अमृत में डुबोई थी"। राजा के इस कहने पर कि "एँ, तुम साचात ऋषि के वंश में हो कर ऐसा कहते हो" पुरोहित कहते हैं "हां हां! हम कहते हैं और वेद, शास्त्र, पुराण, तन्त्र, सब कहता है"। मंत्री भी इस का समर्थन करता है। तब राजा आज्ञा करता है कि "कल हम बड़ी पूजा करेंगे एक लाख बकरा और बहुत से पची मंगवा रखना"।

इसी अंक में बिधवाविवाह के प्रचारक एक बंगाली बाबू भी राजसभा में बिधवाविवाह का प्रकरण उठाते हैं और पुरोहित जी भी उस का समर्थन करते हैं।

द्वितीय अंक में, राजा, मंत्री, पुरोहित और भट्टाचार्य्य बंगाली बैठे हैं। इतने में विदूषक आता है और कहता है "हे ब्राह्मण लोगो! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंससहित वास करे और उस की पूँछ मुख में न अटके, हे पुरोहित नित्य देवी के सामने मराया करो और प्रसाद खाया करो।"

यह कहता हुआ बीच में मुंह फेर कर बैठता है। इसी समय एक वेदान्ती से और बंगाली बाबू से जो अपने को वैष्णव कहते हैं छेड़छाड़ होती है। इतने में एक शैव और एक वैष्णव को ले कर चोबदार आता है और दोनों कहते हैं कि :—

"शंख कपाल लिये कर में कर दूसरे चक्र त्रिशूल सुधारे।
माल बनी मनि अस्थि की कंठ में तेज दसो दिस मांझ पसारे॥
राधिका पारवती दिसि बाम सबै जग पालन नाशन वारे।
चंदन भस्म को लेप किये हरि ईस हरैं सब दुःख तुम्हारे॥"

बंगाली बाबू बोलते हैं कि "महाराज शैव और वैष्णव ये दोनों मत वेद के बाहर हैं"। महाराज के पूछने पर शैव उत्तर देते हैं कि "महाराज वैष्णव तो मांस नहीं खाते और शैवों को भी नहीं खाना चाहिये परन्तु अब के नष्टबुद्धिवाले खाते हैं"।

तृतीय अंक में, पुरोहित गले में माला पहने टीका किये, बोतल लिये उन्मत्त सा राजपथ में घूमते पूजा की शोभा वर्णन करते हैं कि "एक ओर ब्राह्मणों का वेद पढ़ना, दूसरी ओर बलिदानवालों का कूद २ कर बकरा काटना ... तीसरी ओर बकरों का तड़फड़ाना और चिल्लाना, चौथी ओर मदिरा के घड़ों की शोभा और बीच में होम का कुण्ड, उस में मांस का चटाचट कर जलना और उस में से चिरांहिन की सुगंध का निकलना, वैसाही लोहू का चारो ओर फैलना और मदिरा की छलक ··· ऐसा कौन देवता है जो मांस बिनाही प्रसन्न हो जाता है···ऐसा कौन है जो मांस नहीं खाता? क्या छिपा के क्या खुले खुले, अंगौछा में मांस और पोथी के चोंगे में मदिरा छिपाई जाती है, उन में जिन हिन्दुओं ने थोड़ी भी अंगरेज़ी पढ़ी है वा जिन के घर में मुसलमानी स्त्री है उन की तो कुछ बात ही नहीं, आज़ाद हैं।" ऐसा कहते नाच २ कर मछली की प्रशंसा और भक्तों की निन्दा में गीत गाते हैं।

राजा तथा मन्त्री सब की यही दशा है। राजा कहता है:—

"मदिरा को तो अन्त अरु, आदि राम को नाम।
ता सों ता मैं दोष कछु, नहिं यह बुद्धि ललाम॥
× × × × × × ×
मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पीके नाश सब, करत शंभु भगवान॥
विष्णु वारुनी पोर्ट , पुरुषोत्तम मद्य मुरारि।
शाम्पिन शिव गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि॥

मन्त्री भी वैसा ही राग अलापता है। कवि ने मन्त्री के मुख से निःशंक रूप से कहलवाया है कि कैसे २ उत्तम कुल के आर्य्यगण आधुनिक काल में किस २ गुप्त और प्रगट रीति से मद्यपान कर के अपने कुलधर्म में धब्बा लगाते हैं; और उन लोगों की अवस्था का सच्चा चित्र खींचा है।

चतुर्थ अंक में, यमपुरी में यमदूतगण, राजा, पुरोहित, मंत्री तथा

गेडकीदाम को धौल मारते, कान ऐंठते ले जाते हैं। शैव तथा वैष्णव भी जाते हैं। यमराज शैव और वैष्णव को उन की अकृत्रिम भक्ति से कैलाश और बैकुंठ में वास देते हैं। और शेष को यथायोग्य नरक में भेजते हैं। यमराज के सामने सब अपना २ पक्ष समर्थन करने की चेष्टा करते हैं। कोई वेदशास्त्र की दोहाई देता है, कोई ज्ञान कथन करता है, बंगाली बाबू एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में बाबू राजेन्द्रलाल मित्र का लेख सबूत में पेश करते हैं। इत्यादि।

श्रीचित्रगुप्त को अपना कुटुम्बी कहते हुए मंत्री जी घूस देने की इच्छा करते हैं। परन्तु उस निष्पक्षपात विचारालय में किसी की कुछ नहीं बनआई।

इस प्रहसन में कवि ने कैसे २ लोगों पर व्यंग किया है यह वृत्त इस के देखने ही से विदित होगी। औरों को कौन कहे अपने मित्रों को भी इन्हों ने नहीं छोड़ा है। स्वामी दयानन्द, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र सबों पर जो इन के परम मित्र थे इन्हों ने कटाक्ष किया है; और सबों की सम्मति की विचित्र ढंग से समालोचना भी की है। इस से जो शिक्षा निकलती है वह तो स्पष्ट ही है। इस के विषय में एक पत्र ने लिखा था कि "इस के प्रति अक्षर और पद से हास्य और करुणारस टपकता है और यह पुस्तक हिंसा की निवृत्ति के निमित्त एक पूरा साधन है"।

यह प्रहसन पहिले १८७३ ई० में छपा और १८८४ ई० में इस का दूसरा, तथा १८८७ ई० में तीसरा संस्करण हुआ। कानपुर, प्रयाग, बलिया और काशी आदि स्थानों में यह खेला भी गया था।

## धनंजयविजय।

"धनंजयविजय"—कवि कांचनकृत संस्कृत नाटक का यह छन्दोबद्ध अनुवाद है। पांडवों के विराटदेश के राजा के पास अज्ञातवास के अनन्तर कौरवों ने जो विराटराज्य पर आक्रमण कर के गोहरण किया था और अर्जुन ने राजा के पुत्र को रथारूढ़ कर सारथी बन कौरवों के साथ जो युद्ध किया था; वही कथा इस में वर्णित है। इस के पढ़ने से हृदय में वीररस का उद्भाव तथा प्राचीन आर्य्यों का युद्धकौशल प्रगट होता है। नाटकभेद से "धनंजयविजय" एक व्यायोग * है।

* "व्यायोग" रूपक में युद्ध का वर्णन रहता है। स्त्रीपात्र नहीं होती। एक ही दिन की कथा वर्णन कीजाती है। नायक कोई अवतार वा वीर माना जाता है।

१८७४ ई० में यह अनुवाद प्रथमवार प्रकाशित हुआ, सन् १८८३ ई० में इस का द्वितीय, एवं १८८७ ई० में तृतीय संस्करण हुआ।

## प्रेमयोगिनी।

१८७५ ई० में इस नाटक का लिखना आरम्भ हुआ था। इस का केवल प्रथम अङ्क प्रकाशित हो कर रह गया। यदि यह नाटक पूरा लिखा जाता तो इस से कवि का भी निज वृत्तान्त एवं इन के सम्बन्ध में जैसा २ लोगों का भला बुरा विचार अथवा बर्ताव था सो सब बातें प्रगट हो जातीं और इस से दूसरे लोगों का भी बहुत कुछ हाल मालूम हो सकता।

इस की प्रस्तावना में नान्दी यह दोहा पढ़ता है :—

" जिन तृनसम किय जानि जिय, कठिन जगत जंजाल।
जयतु सदा सो ग्रन्थकवि, प्रेमयोगिनी बाल॥

इस में सूत्रधार इन की प्रशंसा करता है और इन के कष्टों को स्मरण करके खेद प्रकाशित करता है।

पहिले गर्भाङ्क में बहुत से बनारसी एक मन्दिर में एकत्र होते हैं और बाबू रामचन्द्र ( अर्थात् हरिश्चन्द्र ) के आचरण की आलोचना करते हैं एवं आपस में नाना भांति की बातें कहते हैं जिन से उन लोगों का निज रहस्य भी स्वयं प्रगट होता है।

दूसरे गर्भाङ्क में, दलाल, गङ्गापुत्र, दूकानदार, भंडेरिये आदि बनारसी ढंग की बातें कर रहे हैं। इतने में एक परदेशी आता है और बनारसियों का रङ्ग ढंग देख कर गाता है :—

"देखी तुमरी कासी लोगो देखी तुमरी कासी।
जहां विराजैं विश्वनाथ विश्वेश्वर जी अविनासी॥
आधी कासी भांड़ भंडेरिया ब्राह्मण औ संन्यासी।
आधी कासी रंडी मुंडी रांड खानगी खासी॥
लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बेबिसवासी।
महा आलसी झूठे शुहदे बेफिकरे बदमासी॥
आप काम कछु कभी करें नहिं कोरे रहैं उपासी।

और करै तो हंसैं बनावैं उस को सत्यानासी ॥

× × + × × × ×

घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं देइ गलांसी ।

करैं घाटिया बस्तरमोचन देदै कै सब झांसी ॥

राह चलत भिखमंगे नोचैं बात करैं दाता सी ।

मंदिर बीच भंडरिये नोचैं करैं धरम की गांसी ॥

सौदा लेत दलाली नोचैं दै कर लासा लासी ।

माल लिये पर दुकनदार नोचैं कपड़ा दै बासी ॥

फिरैं उचक्का देदै धक्का लूटैं माल मवासी ।

कैद भये की लाज तनिक नहिं बेसरमी नंगा सी ॥

× × × × × × × × ×

घर की जोड़ू लड़के भूखे बने दास और दासी ।

दालकीमंडी रंडी पूजैं मानो इन को मासी ॥" इत्यादि ।

काशी का यह सच्चा दृश्य है वा नहीं यह तो वही जानते होंगे जिन्हें काशी में रहने का वा वहां का रंग ढंग देखने का अवसर मिला है ।

तीसरे गर्भाङ्क में, मिठाई खिलौने इत्यादि बेचनेवाले घूमते हैं और सुधाकर, एक विदेशीय पंडित, और दलाल बैठे हैं। पण्डित, के इस पूछने पर कि काशी कैसा नगर है सुधाकर काशी की तथा काशी के महात्मा, साधु, तथा महाजनों और प्रसिद्ध स्थानों की प्रशंसा करता है ।

काशी का भला बुरा दोनों चिह्न दिखलाने में भी कवि ने सिद्ध कर दिया है कि उत्कृष्ट तथा निकृष्ट दोनों रंग की वस्तुओं की छवि दरसाने में उन की लेखनी कैसी समर्था थी। दोनों प्रकार के चित्र दिखलाने ही से बहुत से लोग इस ग्रन्थ को " काशी की छाया " कहते हैं ! इस में कवि ने मन्दिरों तथा तीर्थवासी आदि के रहस्यों का भी पूरी रीति से उद्घाटन किया है,

इस के चौथे गर्भाङ्क में, विशेषतः महाराष्ट्री भाषा लिखी गई है। और इस ग्रन्थ से भी कवि का कुछ वृत्तान्त ज्ञात होता है ।

## सत्यहरिश्चन्द्र ।

पुराणवर्णित अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र के सत्यपालन की कथा इस दृश्यकाव्य में वर्णन की गई है, जिन्हों ने विश्वामित्र को सारी पृथ्वी स्वप्न में दान कर के उस को दक्षिणा चुकाने के निमित्त काशी में स्वपत्नी तथा प्रियपुत्र को एक ब्रह्मचारी के हाथ और अपने को एक डोम के हाथ बेंच कर और श्मशान में मुर्दों को कफ़न लेने की वृत्ति स्वीकार कर के दृढ़तापूर्वक धर्म का पालन किया था।

बाबू साहिब के मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी० ए० ने बालकों के उपयोगी कोई नाटक बनाने के लिये इन को परामर्श दिया था। उन्हीं के कहने से इन्हों ने "सत्यहरिश्चन्द्र" की रचना की।

सूत्रधार के नटी से यह कहने पर कि आज नाटक तुम्हारी ही रुचि के अनुसार खेला जायगा, नटी कहती है कि कवि हरिश्चन्द्रकृत "सत्यहरिश्चन्द्र" खेलो, जिन के विषय में काशी के पण्डितों ने कहा है:—

"सब सज्जन के मान को, कारन इक हरिचन्द ।
जिमि सुभाव दिन रैन को, कारन नित हरिचन्द ॥"

सूत्रधार भी कहता है ठीक है,

"जो गुन नृप हरिचंद में, जगहित सुनियत कान ।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥"

इतने में नेपथ्य से यह सुनाई पड़ता है।

"यहां सत्य भय एक कें, कांपत सब सुरलोक ।
यह दूजो हरिचन्द को, करन इन्द्र उर सोक ॥"

सूत्रधार और नटी दोनों के चले जाने पर प्रस्तावना समाप्त होती है।

उक्त कई दोहों में कवि ने निज सुन्दर गुणों को दूसरे के मुख से जगत पर प्रगट कराया है, अर्थात् सज्जन और गुणियों का मान करना, परहितसाधन में उद्यत रहना, एवं सत्य पर दृढ़ रहना, जिन बातों का प्रमाण पाठकों को इसी प्रबन्ध में मिलेगा। कवि ने अन्यत्र निज दोषों को भी औरों के मुख से कहलवा दिया है।

प्रथम अंक में, राजा इन्द्र निज देवसभा में "यहां सत्यभय एक के"

इत्यादि कहते इधर उधर घूमते हैं। इतने में वहां नारद जी आते हैं और प्रसंगानुसार राजा हरिश्चन्द्र की सत्यता की प्रशंसा करते हैं। राजा इन्द्र के उस विषय में उत्तरोत्तर प्रश्न करने पर वह कहते हैं कि राजा हरिश्चन्द्र ऐसा धार्मिक है कि:—

"चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्यविचार॥"

उसी समय विश्वामित्र इन्द्र के पास आते हैं और नारद विदा मांग कर चले जाते हैं। विश्वामित्र ने यह सुन कर कि नारद हरिश्चन्द्र की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे और इन्द्र के छेड़ने पर कुछ रुष्ट से हो गये, यह कहा है कि "अभी देखता हूँ न, जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं," और सक्रोध चलना चाहते हैं।

दूसरे अंक में, नेपथ्य में वैतालिक राजा का यश यों गान करता है :—

"प्रगटहु रबिकुलरबि निसि बीती प्रजाकमलगन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जनभयतम उनमूले॥
नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कलरोर मचायो॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियां।
अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अंगुरिन चट अलियां॥
भए धरम में थित सब द्विजगन प्रजा काज निज लागे।
रिपु जुबती मुखकुमुद मन्द जन चक्रवाक अनुरागे॥
अरघ सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिन कहं तोखो।
न्याव कृपा सों ऊंच नीच सम समुझि परसि कर पोखो॥

इस कविता में कवि ने व्याजोक्ति द्वारा प्रातःकाल की छवि का भी वर्णन किया है।

इसी अंक में राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को स्वराज्य अर्पण किया है। ऋषि ने उस दान की दक्षिणा सहस्र स्वर्णमुद्रा मांगी है और एक महीना के भीतर न पाने से ब्रह्मदण्ड देने का भय दिखलाया है।

दूसरे अंक के अंकावतार में, भैरवनाथ श्रीमहादेव जी की आज्ञा से हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करने को उद्यत होते हैं और हरिश्चन्द्र को देख कर पाप चिल्लाता हुआ भागता है।

तीसरे अंक में, हरिश्चन्द्र काशी के घाट किनारे की सड़क पर घूमते हैं, एवं काशी का माहात्म्य और गंगाजी की शोभा वर्णन करते हैं।

"नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच २ छहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि मोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन बिबिधि मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥" इत्यादि।

इसी दृश्य में बटु के सहित एक उपाध्याय आकर रानी और बालक को मोल लेते हैं। यहां पर कवि ने बालक की तोतरी बातों में अद्भुतकरुणा भरी है।

इसी में धर्म्म चाण्डाल का भेष धारण करके राजा को मोल लेने आता है और विश्वामित्र की आज्ञा से हरिश्चन्द्र डोम के हाथ इस नियम पर बिक कर दक्षिणा चुकाते हैं कि:—

"भीख असन कम्मल बसन, रखिहैं दूर निवास।
जो प्रभुअज्ञा होइहै, करिहैं सब ह्वै दास॥"

और चाण्डाल से अपना मूल्य लेकर और मन में यह कहते हुए कि:—

"रटण छूट्यो पूरो वचन, द्विजहु न दीनो शाप।
सत्यपाल चंडाल हूँ, होइ आज मोहि दाप॥"

राजा हरिश्चन्द्र एक सहस्र स्वर्णमुद्रा विश्वामित्र को दक्षिणा देते हैं और विश्वामित्र आशीर्वाद देते हुए चले जाते हैं।

चौथे अंक में, राजा हरिश्चन्द्र चांडाल के किंकर बन कर श्मशान में घूमते हैं और उस स्थान की अद्भुत शोभा का इस भांति वर्णन करते हैं।

यथा सन्ध्यामिस श्मशान का वर्णन।

सूरज धूम बिना की चिता सोइ अन्त में लै जल मांह बहाई।

बोलैं घने तरु बैठे बिहंगम रोवत सो मनो लोग लुगाई ॥
धूम अंधार कपाल निसाकर हाड़न छत्र लहू * सों ललाई ।
आनन्दहेतु निसाचर के यह काल मसान सो सांझ बनाई ॥

श्मशान में पिशाच डाकिनीगण आमोद प्रमोद करते नाच गा रहे हैं। इन का विचित्र आलाप भी जानने योग्य है ।

हरिश्चन्द्र वर्षाकाल में श्मशान में घूमते हुए वर्षा और श्मशान दोनों की समता वर्णन कर रहे हैं। इसी अवसर में धर्म्म कापालिक का वेष धारण करके, एवं महाविद्या तथा ऋद्धि सिद्धि आकर हरिश्चन्द्र को लालच दे कर धर्म्मभ्रष्ट करना चाहती हैं और जब वे सब इन को धर्म्म से नहीं डिगा सकीं तब इन्द्र ने तक्षक को भेज कर राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र को डँसवाया है।

जब उन की स्त्री पुत्र के शव को अपनी सारी के टुकरे में लपेट कर श्मशान में ले गई है और निज डोम स्वामी की आज्ञापालनार्थ राजा ने अपनी स्त्री से कफ़न का टुकड़ा मांगा है, उस अवसर पर राजा और रानी के सम्भाषण में कवि ने अपने ग्रन्थ में जिस करुणारस को दर्शाया है उस को पढ़ कर कौन ऐसा पाषाणहृदय होगा जिस के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित न हो। उस करुणारसपूर्ण आवेश में भी राजा ने निज पत्नी को धर्म्म पर आरूढ़ रख कर कफ़न का टुकड़ा देने के लिये उद्यत किया है। उस समय समस्त देवगण ने श्मशान में प्रकट हो कर राजा के सत्यपालन की बड़ी प्रशंसा की है। वह पुत्र जीवित हुआ है, और विश्वामित्र ने अपनी ओर से राजा को राज्य भी फेर दिया है। उन की सत्य की कथा त्रैलोक्य में व्याप्त हो गई है और आज तक उस का गान किया जाता है ।

इस नाटक के उपक्रम के अन्त में कवि ने लिखा है कि पाठकगण यदि यह समझ कर कि वे लोग भी भारतवर्ष के निवासी हैं और उन्हीं लोगों के पूर्वजों में महाराज हरिश्चन्द्र भी थे निज चरित्र कुछ भी सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सफल होगा ।

"सत्य हरिश्चन्द्र" १८७५ ई० के फ़रवरी मास से १८७६ ई० के अगस्त मास तक थोड़ा २ करके क्रमशः "काशीपत्रिका" में छपा था। पीछे पुस्तकार छपा। इस की भी पांच छः आवृत्तियां हो चुकी हैं ।

---

* प्रचीन काल में राज के अपराधी लोग श्मशान पर गला काट कर मारे जाते थे, इसी से यहां श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

"इण्डियन मेगज़ीन" नामक विलायती पत्र में इस की अच्छी प्रशंसा पाई जाती है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में "सत्यहरिश्चन्द्र" कई वर्ष तक एंट्रेंस-परीक्षा में कोर्स था।

इस पुस्तक में कवि ने केवल राजा हरिश्चन्द्र की धर्मनिष्ठता एवं सत्यता ही को प्रतिपादित नहीं किया है वरन रानी शैव्या का पातिव्रत्यधर्म भी गुप्त भाव से सर्वोत्तम रीति से सिद्ध किया है। पति के सर्वस्व राज्य ब्राह्मण को दान कर देने में तनिक भी बाधक न होना और केवल इतनाही कहना कि "नाथ क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा" और इतना कहने के लिये भी क्षमा मांगनी, स्वामी के बिकने के पूर्व ही उन के हितसाधनार्थ अपने को निरे गोद के बालक के साथ बेंच देना, पति की आज्ञा भंग और उन का सत्यव्रत भ्रष्ट न हो केवल इस अभिप्राय से अंचल के जिस टुकड़े में प्रिय पुत्र का शव बांध कर ले गई थीं उस का भी आधा फाड़ कर देने पर उद्यत हो जाना क्या शैव्या को एक परमपूजनीय पतिव्रता नारी सिद्ध नहीं करता है? कवि ने राजा रानी दोनों को आदर्श धर्मात्मा दिखलाया है। वैसे ही इन्द्र की परद्रोहिता तथा विश्वामित्र के क्रोध का काले रंग का अच्छा चित्र खींचा है, परन्तु उस में भी सुरंग की कुछ छीटें देदी हैं अर्थात् उत्तम अधम प्रत्येक पात्र और स्थान का सच्चा चित्र खींचा है और विषय के वर्णन में विलक्षण कविताशक्ति दिखलाई है। क्रोध, भयानक, शान्त, करुण आदि कई रसों को उद्भव कराया है।

बलिया, कानपुर, प्रयाग, काशी, डुमरांव इत्यादि अनेक स्थानों में इस का अभिनय हुआ था। पारसी तथा बंगला नाटकमंडलीवाले भी सत्य-हरिश्चन्द्र की कहानी का अभिनय करते हैं परन्तु बाबू साहब रचित सत्यहरि-श्चन्द्र में जो रस है उस से भेंट कहां?

हमारे एक परमस्नेही सहपाठी गया ज़िला निवासी बाबू महेन्द्रकिशोर बी० एल० हम से एक बार कहते थे कि "भाई शेक्सपीयर के कई नाटक पढ़ने में आये पर आंख से आंसू बहानेवाली शक्ति हम ने इसी 'सत्यहरिश्चन्द्र' में पाई।"

## कर्पूरमंजरी।

कर्पूरमंजरी—राजशेखर कवि ने यह सट्टक शुद्ध प्राकृत भाषा में बनाया था। उसी की छाया ले कर हरिश्चन्द्र ने अप्रैल १८७६ ई० में "कर्पूरमंजरी"

की रचना की। इस में राजकुमार चन्द्रपाल और कुन्तल देशान्तर्गत विदर्भ नगर (बीदर) के वल्लभ राजा की कन्या के विचित्र विवाह का हाल वर्णन किया गया है।

पहिले अंक में, राजभवन में राजा, रानी, विदूषक और दरबारी लोग बैठे हैं और वैतालिक गाता है।

" मन्द मन्द लै सिरिस सुगंधहि सरस पवन बह आवै।
करि संचार मलयपर्वत पै बिरहिन ताप बढ़ावै॥
कामिनि जन के वस्त्र उड़ावत कामध्वजा फहरावै।
जोवन प्रान दान सो ज़िलवत बायु सघन मन भावै॥
देखहु सखि रितुराजहिं उपवन फूली चारु चमेली।
लपटि रही सहकारन सों बहु मधुर माधवी बेली॥
फूले वर बसन्त बन बन में कहुं मालती नवेली।
ता पे मदमाते से मधुकर गूंजत मधुरस रेली॥"

राजा रानी परस्पर वार्तालाप करते हैं। इतने में विदूषक कहता है:—

" अरे कोई मुझ को भी पूछो, मैं भी बड़ा पंडित हूँ। जब मैं ने अपना संस्कार [illegible] था तो हजारों गदहों पर लाद लाद कर पोथियां नेव में भर-वाई गई थीं। और [illegible] जन्म भर हमारे यहां पोथों की होली २ मरे।" और यह सुन कर विचक्षणा नामक एक दासी उस को हंसी बनाती है और राजा के कहने से विदूषक यह गाता है:—

" आयो २ बसंत, आयो २ बसन्त ;
बन में महुआ टेसू फुलंत॥
नाचत है मोर अनेक भांति, मनु भैंसा या पड़वा फूल फालि।
बेला फूले बन बीच २, मानो दही जमायो सींच सींच॥
बहि चलत भयो है मन्द पौन। मनु गदहा को छान्यो पैर॥
गेंदा फूलै जैसे पकौड़ि। लड्डू से फलें फल बौरि २।
खेतन में फूलै भात दाल। घर में फूलें हम कुल के लाल॥"

इस पर सब हंसते हैं और रानी के कहने से दासी यह कविता पढ़ती है:—

"फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर कोकिल कुहूकि कल सबद सुनावैगो। त्यौंही सखी लोक सबै गावैगो धमार धीर हरन अबीर बीर सबही उड़ावैगो॥ सावधान होहु रे बियोगिनी सम्हारि तन अतन तनक ही मैं तापन तें तावैगो। धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम कहर मचावत बसन्त अब आवैगो॥"

रानी की सखी विचक्षणा और विदूषक का परस्पर वार्तालाप बड़ा ही आमोदप्रद है। बहुत प्रकार से छेड़ छाड़ होने के बाद विदूषक कहता है "जा तुझे सर्वदा वही फांकना पड़े जो महादेव जी अंग में पोतते हैं और तेरे हाथ सदा वही लगे जिस में धर्म्म बंधता है"। विचक्षणा कहती है "तेरे इस बोलने पर तो यह जी चाहता है कि पान के बदले चरनदास जी से तेरा मुंह लाल कर दूँ।"

इस पर विदूषक रुष्ट हो कर जाता है और बीच ही से घबड़ाया हुआ "आसन आसन" कहता आता है। तत्कालीन बड़े प्रसिद्ध सिद्ध भैरवानन्द आते हैं और पूछते हैं कि क्या आश्चर्य दिखावें?

"सूरज बांधूँ चन्दर बांधूँ बांधूँ अगिन पताल।
सेस समुन्दर इन्दर बांधूँ औ बांधूँ जम काल॥
जच्छ रच्छ देवन की कन्या बल से लाऊं बांध।
राजा इन्दर का राज डुलाऊं तो मैं सच्चा साध॥
नहीं तो जोगड़ा।"

राजा के मन की बात जान कर भैरवानन्द योगबल से बिदर्भनगर की राजकुमारी को वहां बुलाता है और उस कन्या के परिचय के पूछने से ज्ञात होता है कि वह रानी की मौसेरी बहिन है। कर्पूरमंजरी को रानी गले लगा कर मिलती है और भैरवानन्द से निवेदन कर के उस को पन्द्रह दिन के लिये अपने पास रखती है।

दूसरे अंक में, राजा और प्रतिहारी आते हैं और दोनों में बसन्त ऋतु की छबि का वर्णन होता है। इतने में विचक्षणा और विदूषक आते हैं और केवड़े के पत्ते पर कस्तूरी से लिखित कर्पूरमंजरी का एक पत्र विचक्षणा राजा को देती है जिस में लिखा है कि:—

"जिमि कपूर के हंस सों, हंसिनि धोखा खाय।
तिमि हम तुम सों नेह करि, रही हाय पछताय॥"

राजा विचक्षणा से उस का सब हाल पूछता है। विचक्षणा जैसेर कर्पूर-मञ्जरी के शृंगार की प्रत्येक वस्तु का वर्णन करती है राजा उस की सुन्दर उपमा कहता जाता है। यह सम्भाषण पढ़नेही योग्य है। फिर राजा और विदूषक केले के कुंज में ऊंचे चबूतरे पर बैठ कर वहीं से रानी और कर्पूरमंजरी को झूला झूलते देखते हैं।

तीसरे अङ्क में, राजा की गुप्त रीति से कर्पूरमञ्जरी से भेंट होती है। राजा, विदूषक, विचक्षणा, और कर्पूरमञ्जरी के साथ कोठे की छत पर बैठते हैं। कुछ देर के अनन्तर रानी के आने की आहट सुन कर कर्पूरमञ्जरी आदि सुरङ्ग की राह से महल में चली जाती हैं।

चौथे अङ्क में, राजा से विदूषक कहता है कि रानी ने कर्पूरमञ्जरी पर गाढ़ा पहरा बैठाया है। इसी अवसर में सारंगिका सखी आकर राजा से कह जाती है कि "महारानी ने निवेदन किया है कि आज बटसावित्री का उत्सव होगा महाराज छत पर से देखें।" और फिर आकर बोलती है कि "महारानी कहती हैं कि हम सांझ को महाराज का व्याह करेंगे" यही विवाह कर्पूरमञ्जरी के संग भैरवानन्द के उद्योग से हुआ है। कपिंजल ब्राह्मण अर्थात् विदूषक ने विवाह कराया है और दक्षिणा में सौ गांव पाया है।

यह सट्टक प्राचीन काल के राजाओं के व्यवहार का एक आदर्शस्वरूप है। इस की भाषा अत्यन्त सरल है। कहानी अति मनोहर और शृंगाररस-पूर्ण है। इस से अधिक सरल भाषा और किसी हिन्दी किताब में कम मिलेगी।

१८८२ ई० में इस का तृतीय और १८८७ ई० में इस का चतुर्थ संस्करण हुआ। द्वितीय संस्करण का समय ज्ञात नहीं हुआ।

"कर्पूरमञ्जरी" से हरिश्चन्द्र के प्राकृत भाषा के पूर्ण ज्ञाता होने का पूरा प्रमाण मिलता है।

## विषस्यविषमौषधं।

"विषस्यविषमौषधं"—यह "भाण" १८७७ ई० में लिखा गया था। भाण नाटक का एक विशेष भेद है। इस में एकही अंक होता है। नट

ऊपर देख देख कर जैसे किसी से बातें करता हो आपही आप सारी कहानी कहता जाता है। बीच २ में हंसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आपही आप दिखलाता है। इस का उद्देश्य हंसी और शिक्षा है।

श्रीमहाराजमल्हार राव गायकवाड़ बड़ोदाधीश ने अपने किसी अत्यन्त असंगत और कुत्सित व्यभिचार के प्रकट हो जाने पर रुष्ट हो कर रेज़ीडेंट के साथ अयोग्य बर्ताव किया था। उसी को सरकार ने कमीशन द्वारा अनुसन्धान करा के महाराज को राज्यच्युत करने की आज्ञा दी थी। वही विषय इस भाण में वर्णन किया गया है। इस में कवि ने सरकार की कारखाई की बड़ी प्रशंसा की है। यह उपदेशमय भाण पढ़ने योग्य है। इस से बड़ोदा का संक्षिप्त पुरावृत्त भी ज्ञात हो जाता है। इस के आदि में यह दोहा है :—

" परतियरत रावन बध्यो, परधनरत तिमि कंस।
राम कृष्ण जय सूर ससि, कारन मोहध्वध्वंस ॥ "

इस में कवि ने भण्डाचार्य्य के मुख से सब कुछ कहवाया है। वह कहता है कि "हमारी दशा भी अब रावण की हुआ चाहती है, तो क्या हुआ, होय।

"रावन के दस सिर दियो, जनकनन्दनी काज।
जो मेरो इक सिर गयो, तो या में कह लाज ॥

"देखो परस्त्रीसंग से चन्द्रमा यद्यपि कलंकित है तौ भी जगत को आनन्द देता है वैसेही (मोछों पर हाथ फेर कर) हम बड़े कलंकित रहो, पर हमी इस नगर की शोभा हैं। भला दुष्ट बाबाभट्ट! क्या हुआ तुम ने हमारा सब भेद खोल दिया, इस भेद खुलने पर भी हम ने तुम्हें और कृष्णाबाई दोनों को न छकाया तो मेरा नाम भण्डाचार्य्य नहीं।"

फिर भण्डाचार्य्य ऊपर देखते और दुराचार की कहानी कहते २ यह कह उठता है कि "अहा स्त्री वस्तु भी ऐसी ही है :—

पुरुषजनन के मोहन को बिधि यन्त्र विचित्र बनायो है।
काम अनल लावन्य सुजल बल ताको बिरंचि चलायो है।
कमर कमानी बार तार सों सुन्दर ताहि सजायो है।
धरमधड़ी अरु रेलहु सों बढ़ि यह सब के मन भायो है ॥

यह तो काल की अर्थ में हुआ अब हिन्दुस्तानी तन्त्र के यन्त्र का वर्णन सुनिये।

पुरुषजनन के मोहन को यह मंगल यंत्र बनायो है।
कामदेव के बीज मंत्र सों अंकित सब मन भायो है॥
ग्रहन दिवारी कारी चौदस सारी रात जगायो है।
सिद्ध भयो सब को मन मोहत नारी नाम धरायो है॥"

"इसी यन्त्र के अनुष्ठान का यह फल है ··· ··· स्त्री और बिजली जिसे छु गई वह गया ······ महाराज गद्दी से उतारे गये"।

फिर ऊपर देख २ कर बड़ोदा गायकवाड़ का समुच्चय पुरावृत्त वर्णन करता है।

बहुत सी और बातें जो अवश्य पढ़ने ही योग्य हैं भण्डाचार्य्य के मुख से कहलवा कर कवि अन्त में कहता है कि "कोई हमारे सरकार के विरुद्ध जो कुछ कहे वह झख मारे। यदि लोगों को उचित दंड न हो तो ये लोग न जाने क्या अनर्थ करें··· धन्य सरकार···दूध का दूध पानी का पानी।"

## चन्द्रावली नाटिका।

यह नाटिका १८७६ ई० में लिखी गई। १४ भाद्र कृष्ण १९३३ सं० का इस का समर्पण लिखा हुआ पाया जाता है। इस में श्रीकृष्ण के चरणों में चन्द्रावली के शुद्ध अनन्य प्रेम का वर्णन है। यह संयोगान्त नाटिका है। और यद्यपि यह प्रेमरसपूर्ण है तथापि शृंगाररस के नाटकों में इस की गणना नहीं हो सकती। इस को एक धर्मसम्बन्धी नाटक कहना चाहिए। इस को अद्योपान्त पढ़ने पर हृदय में शृंगाररस के बदले भक्तिरस उदय होता है। चन्द्रावली का कहीं ब्रजभाषा में और कहीं खड़ी बोली में आलाप करना उस की दशा के अनुसार है और इस से कवि ने कवियों का स्वेच्छाचार भी प्रत्यक्ष दिखला दिया है।

बाबू साहिब के परम स्नेही भरतपुर के महाराज श्री रावकृष्णदेवशरण जी ने पूरी २ ब्रजभाषा में एवं पण्डित गोपाल शास्त्री उदासनी ने संस्कृत भाषा में इस का अनुवाद किया था।

हमारे चरित्रनायक को इस के अभिनय कराने की बड़ी अभिलाषा थी, परन्तु "मन के मन ही मांझ मनोरथ वृद्ध भयो"। देह स्वयं अपने जीवननाटक

का अन्तिम पटाक्षेप कर के इस जगत्‌रूपी नाट्यशाला से अदृश्य हो गये। खेले कौन, और खलावे कौन ?

इस के आदि में ब्राह्मण आशीर्वाद करता है।

"भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अलौकिक घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥"

सूत्रधार के मुख से यह सुन कर कि हरिश्चन्द्र का नाटक खेला जायगा पारिपार्श्विक मुंह बिचका कर कहता है कि "वह क्या नाटक बनाना जाने"। इस पर सूत्रधार उत्तर देता है कि तुम उन को नहीं जानते हो उन का गुण सुनो:—

"परमप्रेमनिधि रसिकवर, अति उदार गुनखान।
जगजनरञ्जन आशुकवि, को हरिचन्द समान॥"

कवि के निज विषय में जैसा लोगों का भला बुरा विचार था उस को कवि ने कुछ यहां भी पारिपार्श्विक और सूत्रधार के मुख से कहला दिया है।

शुकदेव जी डगमगी चाल से आते हैं और आप ही आप प्रेम भक्ति का वर्णन करते हैं। इतने में वीणा का शब्द सुन कर नारद जी का आगमन अनुमान करके वीणा की शोभा यों वर्णन करना आरम्भ करते हैं:—

"युगतुंबन की बीन परम सोभित मन भाई।
लय अरु सुर की मनहु युगल गठरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के कै है फल सोहैं।
कै कोमल अरु तीव्र सुरभरे जग मन मोहैं॥
कै श्री राधा अरु कृष्ण के अगनित गुनगन के प्रगट।
यह अमल खजाने है भरे नित खरचत तौ हूं अघट॥
मनु तीरथमय कृष्णचरित की कांवरि लीने।
कै भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने॥
जग बुधि तौलन हेत मनहु यह तुला बनाई।
भक्ति मुक्ति की युगल पिटारी कै लटकाई॥

मनु गोवन सौं श्रीराग की, बीना हूं फलती भई ।
कै रागसिंधु के तरन हित, यह दोऊ तूंबो लई ॥

प्रथम अङ्क में चन्द्रावली और ललिता से कथोपकथन होता है। चन्द्रावली निज प्रेम छिपाती है और ललिता उस से वही बात पूछती जाती है और कहती है कि :—

"हम भेद न जानिहैं जो पै कछू औ दुराव सखी हम मैं परिहै। कहि कौन मिलैहैं पियारे पिये पुनि कारज का सों सबै सरिहै॥ बिन मो सों कहे न उपाय कछू यह बेदना दूसरी को हरिहै। नहिं रोगी बताइहै रोगहि जो सखि बापुरो बैद कहा करिहै॥"

अन्त में चन्द्रावली मन की बात कहती है। इतने ही में दासी बुलाने आती है और तीनों चली जाती हैं।

दूसरे अंक में संध्या के समय जब नभ मेघाच्छादित हो रहा है चन्द्रावली वियोगिनी की दशा में कदलीवन में जाकर आपही आप कहती है "वाह प्यारे! वाह! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हैं। और निश्चय बिना तुम्हारी कृपा के इस का भेद कोई नहीं जानता; जाने कैसे? सभी उस के अधिकारी भी तो नहीं हैं, जिस ने जो समझा है उस ने वैसाही मान रक्खा है।" इत्यादि—

ऐसे ही प्रेमप्रलाप करती हुई कहती है कि:—

"बिछुरे पिय के जग सूनो भयो अब का करिए कहि पेखिए का। सुख छाड़ि के संगम को तुम्हरे इन तुच्छन को अब लेखिए का॥ हरिचन्द जू हीरन को व्यवहार कै कांचन को लै परेखिए का। जिन आंखिन में तुव रूप बस्यो उन आंखिन सों अब देखिए का॥"

यह कह कर अंचल से नेत्रों को छिपा लेती है।

इतने में वनदेवी, सन्ध्या और वर्षा चन्द्रावली के पास आती हैं उन से उस उन्मत्त सी ने सिर पैर की बातें करते करते कृष्ण को दौड़ २ कर खोजती

है और भिन्न २ पक्षी एवं वायु और सूर्य्यादि को सम्बोधन कर के श्रीकृष्ण चन्द्र का पता पूछती है। कवि ने यहां पर भी विचित्र कविताशक्ति प्रदर्शित की है।

इसी प्रकार बकती बकती गिरा चाहती है कि बनदेवी आदि आ कर उसे सम्हालती हैं। निस्सन्देह यही स्वच्छ सच्चा प्रेम है। प्रेमपात्र की सुधि में आत्म-विस्मृति होना ही यथार्थ में प्रेम का मुख्य लक्षण है। इस अंक में कवि ने प्रेम-विमूढ़ व्यक्ति का अच्छा चित्र खड़ा कर दिया है।

दूसरे अंक के अंकावतार में चन्द्रावली का पत्र संध्या लिये जाती है। उस को एक गाय खेदती है। दौड़ कर भागने में वह पत्र कंचुकी के भीतर से गिर जाता है। चंपकलता उसे पा कर पढ़ती है और उस पत्र से चन्द्रावली की वियोगदशा जान कर उसे कृष्ण को देने और उन से चन्द्रावली पर कृपा करने के लिये निवेदन करने जाती है।

तीसरे अंक में तालाब के पास एक बगीचे में झूला पड़ा है। वहां पर अनेक सखियों के सहित चन्द्रावली उपस्थित है। कोई घूमती हैं, कोई बातें करती हैं। चन्द्रावली आप ही आप "हाय प्यारे! हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते। प्यारे! फिर२ यह शरीर कहां और हम तुम कहां" इत्यादि बहुत सी प्रेमपूर्ण बातें कहते कहते रोती है। इसी अंक में सब सखियां कृष्ण को चन्द्रावली से मिलाने का उपाय रचती हैं।

चौथे अंक में चन्द्रावली के बैठक की खिड़की से यमुना जी दिखाई पड़ती हैं। श्री कृष्ण योगिनी का भेष धारण किये "अलख अलख" करते आते हैं। बैठक सूना देख कर वहीं बैठ कर योगिनी गीत गाती है और पैजनी का शब्द सुन कर छिप जाती है। ललिता आकर आश्चर्य करती है कि "अब तक चन्द्रावली नहीं आई। सांझ हो गई, न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर चकार चला आवे तो क्या हो।" और यमुना की शोभा देख कर उस के वर्णन में कविता पढ़ती है जो निस्सन्देह पढ़ने ही के योग्य है। इस कविता के रचने में कवि ने अपूर्व कविताशक्ति प्रदर्शित की है।

इतने में चन्द्रावली आकर कहती है कि "वाह वाह री बेहना! आज तो बड़ी कविता करी।" और ललिता के यह कहने पर कि "भलो भलो बीर तोहि कविता सुनिबे की सुधि तो आई हमारो इतनोई बहुत

है" चन्द्रावली फिर कृष्ण की सुधि में बेसुध हो जाती है और कृत्रिम योगिनी "अलख अलख" कहते सामने आती है। दोनों सखियां उसे सादर बैठाती हैं और योगिनी सारंगी छेड़ कर यह गाती है :—

"पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिरधारी।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
बिरहागिन धूनी चारों ओर लगाई।
बंसी धुनि की मुद्रा कानो पहिराई॥
अंसुअन की सेली गल में लगत सुहाई।
तन धूर जमी सोइ अंग भभूत रमाई॥
लट उरझि रहीं सोइ लटकाई लटधारी।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥" इत्यादि।

योगिनी के बहुत कहने से चन्द्रावली भी गाती है:—

"मन की का सों पीर सुनाऊं।
बकनो वृथा और पत खोनो सबै चवाई गांऊं॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहैं धरिहैं उलटो नाऊं।
यह तो जो जाने सोइ जाने क्यों करि प्रगट जनाऊं॥
+ + + + + +
मरमिन सखिन बियोग दुखिन क्यों कहि निज दसा रोआऊं।
हरीचन्द पिय मिलै तो पग परि गहि पटुका समुझाऊं॥"

यही गाते २ चन्द्रावली बेसुध हो कर गिरा चाहती कि एक बिजली सी चमक होती है और श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रावली को अंक में लगाते हैं।

इस अपूर्व नाटक को आद्योपान्त पढ़ कर कौन ऐसा कवितारसज्ञ होगा जो अकथनीय आनन्द न लाभ करे और इस के रचयिता को एक असामान्य कवि न स्वीकार करे। हम मुक्तकंठ से कह सकते हैं कि ऐसी अनोखी उपमा की धारा प्रवाहित करनेवाली लेखनी बहुत ही कम देखी गई; निर्दिष्ट में

भी एक ही वस्तु की अनेक उपमा की झड़ी बांधनेवाले कम दृष्टिगोचर होते हैं। लोग इन्हें आशुकवि कालिदास बहुत ही ठीक कहते थे। इतनी सरल भाषा यह असाधरण उक्ति, और ऐसी चोखी उपमा एक ही साथ भला और किस में पाई जा सकती है ?

यद्यपि कवि ने इस में सखियों की सहायता ही से चन्द्रावलीजी को श्री कृष्णचन्द्र का दर्शन कराया है तथापि विद्यासुन्दर और कर्पूरमंजरी की नीति अनुसरण न कर के निष्कलङ्कित भाव से शुद्ध प्रेममय रहस्य जाननेवाली सहेलियों के द्वारा युगल प्रेमियों का सम्मिलन कराया गया है।

अन्तर क्यों न हो ? स्मरण रखने की बात है कि "विद्यासुन्दर" बंगभाषा ग्रन्थ की छाया लेकर लिखा गया। और "कर्पूरमंजरी" प्राकृत भाषा से अनुवादित हुई, जब कि "चन्द्रावली" कवि शिरोमणि के निर्मल आन्तरिक प्रेम और भक्ति की वासना से लिखी गई है।

## नीलदेवी।

"नीलदेवी" यह एक ऐतिहासिक नाटक है। एक मुसलमान सेनापति अब्दुश्शरीफ़ ने सनमुख युद्ध करने में असमर्थ हो कर पंजाब के सरदार सूर्य्यदेव को धोखे से पकड़ कर मार डाला है। अन्त में घातक अबदुश्शरीफ़ का सूर्य्यदेव की धर्म्मपत्नी महारानी नीलदेवी के हाथ से वध हुआ है। यही कथा इस में वर्णित है।

प्रथम दृश्य में अप्सरागण गाती हैं।

"धन धन भारत की छतरानी।
वीर कन्यका वीरप्रसविनी वीरबधू जगजानी।
सतीसिरोमनी धर्म्मधुरन्धर बुधि बल धीरज खानी।
इन के जस की तिहूंलोक में अमल धुजा फहरानी॥"

दूसरे दृश्य में एक शामियाने में अमीर अबदुश्शरीफ़ मुसाहिबों के साथ बैठा हुआ बातें कर रहा है और पंजाब के सरदार सूर्य्यदेव से सनमुख युद्ध करने में अपने को असमर्थ जान कर उस को धोखे से पकड़ने और वध करने का विचार कर अपनी सेना को यों सावधान करता है:—

"इस राजपूत से रहो हुशियार ख़बरदार।
ग़फ़लत न ज़रा भी हो ख़बरदार ख़बरदार॥
ईमां की क़सम दुश्मनेजानी है हमारा।
काफ़िर है यह पंजाब का सरदार ख़बरदार॥
अज़दर है, भभूका है, जहन्नुम है, बला है।
बिजली है, गज़ब इस की है तलवार ख़बरदार॥
दरबार में वह तेग़ शररबार न चमके।
घरबार से बाहर से भी हर बार ख़बरदार॥
इस दुश्मनेईमां को है धोखे से फँसाना।
लड़ना न मोक़ाबिल कभी ज़िनहार ख़बरदार॥"

तीसरे दृश्य में राजा सूर्य्यदेव, रानी नीलदेवी और चार राजपूत सरदार बैठे हुए आपस में मुसलमानों के उपद्रव की बात चीत कर रहे हैं। और सूर्य्यदेव अपनी सेना को सावधान रहने के लिये उत्तेजित करते हुए अंत में कहता है कि:—

"सावधान सब लोग रहहु सब भांति सदाहीं।
जागत ही सब रहैं रैनहुं सोवहिं नाहीं॥
कसे रहैं कटि रात दिवस सब बीर हमारे।
अस्व पीठ सों होंहि चारिजामे जिन न्यारे॥
तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बन्दूकन।
रहै खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरे छिन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर।
आवहिं तो चढ़ि सनमुख कायर क्रूर सबै तुर॥
देहैं रन को स्वाद तुरंतहि तिनहिं चखाई।
जो पै इक छिन हूँ सनमुख ह्वै करहिं लराई॥"

चौथे दृश्य में भठियारिन, चपरगट्ट और पीकदान की मनोरंजक बात

चीत है जिस में कवि ने कुचरित्र मुफ़्तख़ोरों का अच्छा चित्र खींचा है।

पांचवें दृश्य में देवा सिंह सिपाही पहरा देता हुआ घूमता है और नेपथ्य में यह गान होता है।

राग कलिंगड़ा—"सोओ सुखनिंदिया प्यारे ललन। नैनन के तारे दुलारे मेरे वारे सोओ सुखनिंदिया प्यारे ललन॥ भई आधी रात वन सनसनात, पथ पंछी कोउ आवत न जात, जन प्रकृति भई मनु थिर लखात, पातहु नहिं पावत तरुन हलन। झलमलत दीप सिर धुनत आय, मनु पिय पतंग हित करत हाय, सतरात अंग आलस जनाय, सनसन लगी सीरी पवन चलन॥ सोए जग के सब नींद घोर, जागत कामी, चिंतित चकोर, बिरहिन बिरही पाहरू चोर, इन कहँ छन रैनहुं हाय कल न॥"

इस कलिंगड़ा में कवि ने रात्रि के सन्नाटेपन की छवि दिखाई है। प्रसिद्ध अंगरेज़ी कवि शेक्सपियर ने स्वरचित "मैकबेथ्" नामक नाटक में "डनकन" के वध के समय जो रात के सन्नाटेपन का वर्णन किया है वह छंद भी अनुवाद सहित प्रकाशित किया जाता है जिस में पाठकगण विवेचनापूर्वक दोनों की तुलना कर सकें।

" Now ov'r the one half world
Nature seems dead, and wicked dreams abuse
The curtain'd sleep; now witchcraft celebrates
Pale Hecate's offerings; and wither'd murder
Alarmed by his sentinel, the wolf,
Whose howl's his watch, thus with his stealthy space,
With Tarquin's ravishing strides, towards his design
Moves like a ghost." [ Macbeth.

अनुवाद—अरध जग थिर प्रकृति लखात,
सुखद नींद को बिबिध कुसपना तोड़त उर धड़कात

डाइन पूजहिं बिकट कालिका, घातक जन कृशगात-
बीक शब्द जो पहरु ठनक डूब, सुनिर चौंकत जात-
चुपचुप चलत, निशब्द डेगधरि, पगजनु मखमल*बांध
करन कुकाज मनहि जो राख्यो मनु कोउ प्रेत असाध,

अकस्मात् कतिपय यवन "अल्लाह अकबर" कहते सूर्य्यदेव के डेरे में प्रवेश करते हैं। देवा सिंह युद्ध में काम आता है।

छठें दृश्य में सूर्य्यदेव के पकड़े जाने से मुसलमान लोग आनन्दित होते हैं और क़ाज़ी के आदेशानुसार उन के साथ नमाज़ पढ़ते हैं।

सातवें में सूर्य्यदेव लोहे के पिंजड़े में बन्द मूर्च्छित पड़े हैं और एक देव उन के सनमुख खड़ा इस रीत से गाता है :—

"सब भांति दैव प्रतिकूल होइ सब नासा
अब तजहु बीरबर भारत की सब आसा॥
इत कलह बिरोध सबन के हिय घर करिहैं।
मूरखता को तम चारहुं ओर पसरिहैं॥
बीरता एकता ममता दूर सिधरिहैं।
तजि उद्यम सब ही दासवृत्ति अनुसरिहैं॥
ह्वै जैहैं चारहु बर्न शूद्र ह्वै दासा। अब तजहु०" इत्यादि

इस भविष्यत देववाणी के मिस से कवि ने वर्त्तमान काल का सामाजिक तथा देशदशा का चित्र नेत्रों के सामने खड़ा कर दिया है।

राजा यह देववाणी सुन कर चैतन्य होता है, फिर आपही आप बोलते, सोचते और यह कहते हुए कि "हा! मैं यह सुन कर क्यों नहीं मरा कि आर्य्यकुल की जय हुई" मूर्च्छित हो जाता है।

आठवें दृश्य में एक राजपूत पागल बन कर और एक राजपूत यवनभेष धारण करके मुसलमानी सेना के चारो ओर आस पास घूमते हैं। फिर दोनों में साक्षात होने पर पागल उसे मारने और पकड़ने दौड़ता है और वह

---

* "टारिकुइंस" जिस समय किसी स्त्री का सतीत्व नष्ट करने चला था अपने पैरों में बहुत सा कपड़ा लपेट लिया था जिस में पैर का शब्द न हो।

भागता आता है। इसी ढंग से एक निर्जन स्थल में जा कर पागल उस मुसलमान भेषधारी राजपूत से राजा के सुरलोक पयान करने का समाचार सुन कर रानी और कुमार सोमदेव को खबर देता है, और मुसलमान भेषधारी राजपूत उसी स्थान में बैठ कर एक अति करुणापूर्ण बिहाग गाना आरम्भ करता है।

नवें दृश्य में रानी विलाप करती है जिस के सुनते ही हृदय विदीर्ण हो जाता है।

राजपूत गण परस्पर विवेचना करते हैं और कुमार सोमदेव वीर भावपूर्ण वाक्य कह कर राजपूतों को उत्तेजित करता है। राजपूतगण युद्ध करने को उद्यत होते हैं। इतने में रानी आती है और कुमार को एकान्त में ले जा कर कुछ मंत्रणा करती है।

दसवें दृश्य में अबदुश्शरीफ़ के खीमे में जयोत्सव का नाचगान होता है। रानी भी वीरों के साथ चंडिका नाम की गायिका के भेष में वहां जा कर गाती है। गान से मुग्ध हो कर जब मुसलमान सरदार नशे में चूर मद का प्याला गायिका (रानी) के आगे बढ़ा कर कहता है "लो जानसाहिब" उसी समय नीलदेवी चोली से कटार निकाल कर अमीर का काम तमाम करती है और समाजी सब साज फेंक फेंक शस्त्र लेकर मुसाहिबों को बधते हैं। नीलदेवी कहती है कि "ले चंडाल पापी! मुझ को जान साहिब कहने का फल ले...मेरी यही इच्छा थी कि इस चंडाल को अपने हाथ से बध करूं। इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका था सो इच्छा पूरी हुई।" इतने में तम्बू फाड़ कर कुमार सोमदेव और राजपूत गण शस्त्र खींचे हुए आते हैं और मुसलमानी सेना का मार काट करते हैं और जय २ की ध्वनि होती है।

इस नाटक में कवि ने प्रत्येक पात्र के मुख में उपयुक्त भाषा रखी है और वीर, करुण, हास्य इत्यादि सब रसों का भाव बहुत उत्तम रीति से झलकाया है। कौन ऐसा व्यक्ति है जिसे पागल का बरबराना और देवता का करुणापूर्ण गाना पढ़ कर हंसी और रुलाई न आवे। इस की रचना १८८१ ई० में हुई और भूमिका क्रिसमस के दिन लिखी गई थी। इस में ग्रंथकर्त्ता ने लिखा है कि आर्य्यगण मात्र को विश्वास है कि हमारे यहां स्त्रीगण सर्व्वदा इसी अवस्था में थीं इस भ्रम को दूर करने ही के हेतु इस की रचना हुई है, जिस में हमारे देश की स्त्रियां अपने समय को कलह झगड़े

में न खोकर अपनी हीनावस्था की उन्नति करें जिस में चतुरतापूर्वक सावधानी और निपुणता से सब काम काज कर सकें। कवि ने यह भी लिखा है कि "इस से यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूं कि गौरांगी युवती समूह की भांति हमारी कुललक्ष्मीगण भी लज्जा को तिलांजली...देवें।"

१८८४ ई० में इस की द्वितीय और १८८७ में ई० तृतीय आवृत्ति हुई। प्रथम बार छपने का समय निश्चय नहीं हो सका। यह किसी पत्र में नहीं छपा था।

नीलदेवी का भी बलिया, कानपुर आगरा, काशी इत्यादि अनेक स्थानों में अभिनय हुआ है।

## भारतदुर्दशा।

"भारत दुर्दशा"—यह रूपक न किसी का अनुवाद है, न किसी अन्य ग्रंथ की छाया लेकर रचा गया है, और न कोई धार्मिक वा ऐतिहासिक घटना ही के आधार पर बनाया गया है। केवल कवि की कल्पना मात्र से इस की उत्पत्ति हुई है। है तो यह एक हास्यरस का रूपक परन्तु बड़ा ही उत्तम है। इस के पढ़ने और खेलने से देशदशा का चित्र आंखों के आगे खड़ा हो जाता है। इस के साथ ही हृदय में करुणा का आवेग होता है।

प्रथम दृश्य में एक जोगी भारत की दशा पर करुणापूर्ण एक ब्रजभाषा की लावनी गाता है।

दूसरे दृश्य में भारत आता है और कहता है कि "यहां की योग्यता विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहां गए। अरे पामर जयचन्द्र! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूबा जाता था?" इत्यादि। इतने में यह कहता हुआ कि "अब भी तुझ को अपने नाथ का भरोसा है? खड़ा तो रह अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं" भारत दुर्दैव आता है। उस को देख कर "भारत" डरता कांपता और यह कहता हुआ कि "हाय! परमेश्वर बैकुण्ठ में, और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी? हाय! अब मेरे प्राण कौन बचावेंगे?" मूर्छा खा कर गिरता है और निर्लज्जता तथा आशा चैतन्य करने के लिये उसे उठा कर ले जाती हैं।

तीसरे दृश्य में भारत दुर्दैव आकर कहता है कि "कहां गया भारत मूर्ख! जिस को अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है, देखो तो अभी इस की क्या २ दुर्दशा होती है" यह कहता हुआ नाचता और यह गाता है :—

काल भी लाऊं महंगी लाऊं, और बुलाऊं रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊं, छाऊं जग में सोग॥
फूट बैर औ कलह बुलाऊं ल्याऊं सुस्ती जोर।
घर घर में आलस फैलाऊं, छाऊं दुख घन घोर॥" इत्यादि

फिर भारतदुर्दैव के बुलाने पर उस का सेनापति "सत्यानाश" आकर नाचता हुआ अपनी प्रशंसा कीर्तन करता है; और धर्म्म ने भारत की क्या दशा की, सन्तोष ने कैसा काम किया; अपव्यय, अदालत, फैशन आदि भारत के धन की सेना को कैसे चौपट किए; फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ इत्यादि ने छिपे २ कैसा नाश किया; और लाही, कीड़े, टिड्डी, पाला इत्यादिक सिपाही और अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि नामक सेना ने भारत के शस्य नामक फ़ौजदार का कैसा बल चूर्ण कर दिया ये सब बातें भारतदुर्दैव के सम्मुख सविस्तर वर्णन करता है।

चौथे दृश्य में भारत दुर्दैव कमरे में बैठा है; और रोग, आलस्य, मदिरा, अन्धकार इत्यादि क्रमशः आकर और स्वपरिचय देदे कर भारत की दुर्दशा करने को प्रस्तुत होते हैं।

रोग आकर कहता है:—

जगत सब मानत मेरी आन।
मेरे ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान॥
मृत्यु कलंक मिटावत हम ही मो सम और न आन।
परम पिता हम हीं वैद्न के अत्तारन के प्रान॥" इत्यादि

आलस्य और बातों के साथ यह भी कहता है कि "धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे। उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा"।

मदिरा आकर इस रीति से निज प्रशंसा करती है:—

"भगवान सोम की मैं कन्या हूं। प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे

आदर दिया, फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई...हिन्दू, बौद्ध, मुसल्मान, और क्रिस्तान इन चारों में मेरी चार पवित्र प्रति मूर्त्ति विराजमान है। सोमपान, वीराचमन, शराबुन्तहूरा, और बेपटाइज़िंग वाइन। भला कोई कहे तो इन को अशुद्ध।" यह कह कर नाचती गाती है।

यहां पर भी कवि ने कई एक छन्दों में मदिरास्तुति के मिस मद्यपियों पर बड़ा ही व्यंग किया है जो पढ़ने ही योग्य है। इसी प्रकार ग्रेप सेनापति भी आते और अपनी प्रशंसा करते हैं।

पांचवें दृश्य में एक पुस्तकालय में एक एडिटर, एक बंगाली बाबू, एक कवि, दो देशी, और एक सभापति भारत की दशा सुधारने के लिये कमेटी करते हैं। इतने में डिसलाइलटी नामक एक पुलिस का अफसर आकर उन लोगों को पकड़ ले जाता है।

छठें दृश्य में भारतसौभाग्य भारत को चैतन्य करने की चेष्टा करता है और उस के न जागने पर निज हृदय में कटारी मार कर मर जाता है।

यह पुस्तक बाल वृद्ध स्त्री पुरुष सब के पढ़ने के योग्य है। इस में हंसना रोना, गाना, सब ही है। इस को पढ़ कर लोग चाहें तो बहुत सी कुरीतियां सुधार सकते हैं। समाचार पत्रों में इस ग्रंथ की अच्छी समालोचना देखी गई है।

यह रूपक पहिले "कविवचन सुधा" में छपा था। इस की पहिले दो आवृत्तियां हुई थीं और खड्गविलास में तीसरी आवृत्ति हुई। यह भी प्रयाग, कानपुर, काशी आदि स्थानों में खेला गया था।

## अन्धेरनगरी।

"अन्धेरनगरी"—पारसी और महाराष्ट्री नाटकवाले अन्धेरनगरी प्रहसन प्रायः खेला करते हैं, किन्तु उन लोगों की भाषा और प्रक्रिया सब असम्बन्ध होती हैं। बनारस दशाश्वमेध घाट पर बंगाली तथा पश्चिमोत्तर देशीयों ने एक "नेशनल थियेटर" स्थापित किया था। हमारे चरित्रनायक उस के परम सहायक थे। जब एक बार उस नाटक वालों ने इन से "अन्धेरनगरी" के अभिनय करने की इच्छा प्रगट की * तो इन्हों ने यह विचार कर कि किसी काव्य

* एक सज्जन मुझ से कहते थे कि बिहार प्रान्त के किसी राजा की असावधानता देख कर उन के सुधारने के लिये कवि ने इस की रचना की थी।

कल्पना बिना वा सदुपदेश निकले बिना यदि कोई नाटक खेला गया तो वह सर्वथा व्यर्थ है, इस पुस्तक को एक दिन में रचना की। देखने में यह छोटी है परन्तु गुण बहुत भारी है। इस का प्रति अक्षर शिक्षापूर्ण है। हंसी ही हंसी में बहुत सी सामाजिक कुरीतियों का उद्घाटन किया गया है। बड़े २ लोगों पर भी व्यंग है। इस को पढ़ कर या इस का अभिनय देख कर यदि लोग लज्जित हों तो अनेक कुसंस्कार दूर हो सकते हैं।

प्रथम दृश्य में एक महन्तजी नारायण दास और गोवर्द्धनदास नाम के दो चेलों के साथ "राम भजो राम भजो राम भजो भाई" गाते हुए अन्धेर-पुर नगरी में आते हैं। महन्त जी के आज्ञानुसार गोवर्धन दास पश्चिम और नारायणदास पूर्व की ओर भिक्षाटन करने जाते हैं।

दूसरे दृश्य में कबाबवाला, चनावाला, नारंगीवाली, हलवाई, मुग़ल, पाचकवाला, मछलीवाली, जात बेचने वाला ब्राह्मण, और बनिया एक२ कर के आते और पुकार पुकार कर अपना २ सौदा टके सेर बेचते हैं। पाचक-वाला चूर्ण लिये घूमता और कहता है :—

"मेरा चूरन जो कोइ खाय, मुझ को छोड़ कहीं नहि जाय।

\+ + + + + + + + +

चूरन अमले सब जो खावैं, दूनी रुशवत तुरत पचावैं।
चूरन नाटकवाले खाते, इस की नकल पचाकर लाते।
चूरन सभी महाजन खाते, जिस से जमा हजम कर जाते॥
चूरन खावैं एडिटर जात, जिन के पेट पचै नहिं बात॥
चूरन पूलिसवाले खाते, सब क़ानून हज़म कर जाते॥" इत्यादि

जात बेचनेवाला (ब्राह्मण) कहता है "जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो हम अभी अपनी जात बेंचते हैं, टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायं और टके के वास्ते धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें, टके के वास्ते झूठ को सच करें, टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रस्तान, टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें, टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें, वेद, धर्म, कुल, मर्य्यादा, सचाई, बड़ाई सब टके सेर, लुटा दिया अनमोल माल टके सेर"।

तीसरे दृश्य में इस नगरी की दशा देख सुन कर गुरुजी एक चेला को ले कर तो चले जाते हैं और गुरुजी के यह कहने पर भी कि:—

"सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास ।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजै बास ॥
बसिए ऐसे देस नहिं, कनकवृष्टि जो होय ।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय ॥"

उन का दूसरा चेला उन की आज्ञा भंग करके वहीं रह जाता है ।

चौथे दृश्य में, राजा मंत्री इत्यादि के सभास्थित होने पर कल्लू बनिया दीवार गिरने से अपनी बकरी के दब कर मरजाने का अभियोग उपस्थित करता है । बड़े अन्वेषण के अनन्तर बुद्धिसागर चौपट राजा किसी मोटे आदमी को फांसी देने की आज्ञा देते हैं ।

पांचवें दृश्य में गोबर्द्धन दास यह गीत गाते आते हैं ।

"अन्धेरनगरी अनबूझ राजा ।
टका सेर भाजी टका सेर खाजा ॥
नीच ऊंच सब एकहि ऐसे ।
जैसे भड़ुए पंडित तैसे ॥
कुल मरजाद न जात बड़ाई ।
सबै एक से लोग लुगाई ॥
बेश्या जोरू एक समाना ।
बकरी गऊ एक से माना ॥
सांचे मारे मारे डोलैं ।
छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं ॥
प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी ।
सोई राजसभा बल भारी ॥
छलियन के एका के आगे ।
लाख कहो एकहु नहिं लागे ॥

इतने में राजा के प्यादे आकर उन को मोटा देखकर फांसी देने को ले जाते हैं। गोबर्द्धन दास गुरु जी का पुकारते हैं और गुरुजी आकर ऐसा यत्न करते हैं कि अन्धेरपुर नगरी का चौपट राजा सहर्ष स्वयं शूली पर चढ़कर फांसी का आनन्द भोग करता है।

इस में कवि ने बहुत से लोगों पर व्यंग किया है। हम इस का एक व्यंगमय प्रहसन कह सकते हैं।

इस की कई आवृत्तियां हुईं, परन्तु किसी का समय ज्ञात न हुआ। डुमरांव, काशी, प्रयाग, कानपुर आदि कई स्थानों में इस का भी अभिनय हुआ था। यह पुस्तक बंगला अक्षर में भी छपी हुई पाई गई है, जो साधारण रुचि का प्रमाण है।

## मुद्राराक्षस।

विशाखदत्तकृत * संस्कृत नाटक का यह भाषानुवाद है। राजा शिवप्रसाद सितारहिन्द के प्रोत्साहित करने से भारतेन्दु ने इस का अनुवाद कर के उन्हीं को समर्पित किया था। कवि के विरचित वा अनुवादित नाटकों में यह सब से बड़ा है।

संस्कृत नाटकों की समालोचना में "मिस्ट्रेस मैनिंग" ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "कालिदास एवं भवभूति कृत नाटकों से मुद्राराक्षस में अन्तर है। इस में प्रणयकहानी वा ज्ञानसम्बन्धी बातें नहीं हैं; और न इस में पुष्पलतादि वा प्राकृतिक छवि का वर्णन है। तत्कालीन राजनैतिक कौशल, राजपारिषदों का छल बल, राजकर्मचारी और राजदूतों की अटल प्रभुभक्ति, मित्रों का अटल प्रेमजनित विश्वास इत्यादि यहीसब बातें इस से जानी जाती हैं"†।

इस नाटक में मगधदेशीय नरेश नवनन्दों के चाणक्य के रोषाग्नि में भस्म होने तथा चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र (वर्त्तमान् पटना) के राज्यसिंहासन प्राप्त करने की कथा वर्णित हुई है। नन्दवंश का प्राचीन एवं विश्वासी मन्त्री राक्षस इस घटना से अत्यन्त क्रुद्ध हो कर दूर २ देश के राजाओं को चन्द्रगुप्त पर चढ़ा लाया है, परन्तु चाणक्य के चातुर्य्य एवं धूर्त्तता के आगे राक्षस का सब उद्योग विफल होता गया है। अन्त में राक्षस ने हार मानी है। तब चाणक्य

* इन का कुछ हाल ज्ञात नहीं होता।

† देखो Mrs Manning's "Ancient and Mediæval India" p. 220.

ने सम्मानपूर्वक उस की भक्ति स्वीकार की है और चन्द्रगुप्त से उस को सादर प्रणाम करवा कर राजमंत्री का खङ्ग उसी को समर्पित कराके उसे पैदक अमात्यपद पर नियुक्त कराया है।

प्रस्तावना में सूत्रधार अपने घर आता है और कहता है कि "आज मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है क्योंकि घरवाले सब अपने २ काम में चूर हो रहे हैं।"

"पीसत कोउ सुगंध कोउ जल भरि कै ल्यावत।
कोउ बैठ के रंग रंग की माल बनावत॥
कहुं तिय गन हुंकार सहित अति श्रवन सुहावत।
होत मुशल को शब्द सुखद जिय को सुनि भावत॥

"जो हो घर से स्त्री को बुला कर पूछ लेता हूं।"

"री गुनवारी सब उपाय की जाननवारी।
घर के राखनवारी सब कुछ साधनवारी॥
मो गृह नीति सरूप काज सब करन संवारी।
बेगि आव री नटी बिलम्ब न कर सुन प्यारी॥"

नटी आकर कहती है कि चन्द्रग्रहण होने के कारण उस ने ब्राह्मणों का नेवता किया है। सूत्रधार को चन्द्रग्रहण होने में सन्देह होता है और कहता है कि:—

"चन्द्रबिम्ब पूरण भए क्रूर केतु हठ दाप
बल सों करि हैं ग्रास कह:—"

इतने में चाणक्य शिखा खोले सक्रोध आता है और कहता है,:—

"नव नन्दन कौं मूल सहित खोद्यो छन भर में।
चन्द्रगुप्त में श्री राख्यो नलिनी ज्यों सर में॥
क्रोध प्रीति सों एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रगट सबन फल लै दिखलायो॥

"अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नन्दों के मारने से क्या!"

फिर प्राचीन मंत्री राक्षस की प्रभुभक्ति की प्रशंसा करते हुए कहता है कि " तुम चन्द्रगुप्त के मंत्री बन जाओ। " फिर लोगों पर कुछ निज प्रबंध प्रगट करता है। इसी अंक में इस के भेजे हुए गुप्तचर सब सावधानी से राक्षस के प्रबन्धों को विफल करने का यत्न करते हैं।

दूसरे अङ्क में, एक मदारी राक्षस के सामने कुछ खेल दिखलाने के निमित्त सेवक द्वारा निवेदन करता है और राक्षस के अस्वीकार करने पर कहला भेजता है कि मैं " केवल संपेरा ही नहीं हूं भाषा का कवि भी हूं "। और एक पत्र भेजता है जिस से ज्ञात होता है कि वह राक्षस का भेजा हुआ गुप्तचर विराधगुप्त है तब राक्षस उस को बुला कर एकान्त में पुष्पपुर का सब वृत्तान्त उस से पूछता है और यह सुन कर कि उस का सब गुप्त प्रबन्ध कुटिल चाणक्य की चतुराई से विफल होता जाता है राक्षस को बड़ाही खेद होता है। फिर राक्षस पुष्पपुर के एक मन्त्री के पास कहला भेजता है कि वह ऐसी २ कविता कहा करे जिस से चन्द्रगुप्त को निश्चय हो जाय कि चाणक्य उस का निरादर करता है।

तीसरे अंक में राजगृह की छवि का वर्णन है। चन्द्रगुप्त कोठे पर चढ़ कर रात्रि की छवि वर्णन करता है। इसी अवसर में राजा को ज्ञात होता है कि चाणक्य ने चन्द्रिकोत्सव होने का निषेध कर दिया है। इस से क्रुद्ध होकर चाणक्य को बुलवाता है। दोनों में परस्पर सक्रोध बातें होने पर चाणक्य कहता है:—

" खुली सिखाहूं बांधिवे, चञ्चल भे पुनि हाथ।
घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ॥
नन्दनसे से निडज ह्वै, तू फूल्यो गरबाय।
सो अभिमान मिटाइहौं, तुरत हि तोहि गिराय॥ "

और कृत्रिम क्रोध से शस्त्र फेंक कर कहता है कि " जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दो। "

चौथे अंक में राक्षस अपने घर में शिर पीड़ा से दुःखित बैठा है। नन्दवंशीय मलयकेतु जिस को राजगद्दी पर बैठाने के लिये राक्षस उद्योग कर रहा था उस से मिलने गया है और वहां अनेक प्रकार की बातें होती हैं।

अन्तिम अर्थात् सप्तम अंक में, चाणक्य के नीतिकौशल्य का यह फल

होता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री नियुक्त किया जाता है और चाणक्य स्वयं अमात्यपद त्याग करता है।

इस अनुवाद की प्रशंसा सर्वत्र हुई थी। इस की २०० प्रतियां पश्चिमोत्तर देश के शिक्षाविभाग में खरीद की गई थीं। इटावे के एजुकेशन कमीटी ने भी कुछ पुस्तकें मोल ली थीं। श्रीमान् काशीनरेश ने भी कुछ कापियां क्रय कर के कर्त्ता का उत्साहवर्द्धन किया था। ग्रिफिथ * साहिब ने भी स्कूल के उच्च शिक्षा के कोर्स बनाने तथा इस के प्रचार करने का उद्योग किया था। बिहार प्रान्त के स्कूल इन्सपेक्टर पोप साहिब ने एक पत्र में लिखा था कि "यह पुस्तक बहुत उत्तम है और पटना नार्मल स्कूल में पढ़ाई † जायगी।"

एक अंगरेज़ी समाचारपत्र में लिखा था कि "प्रसिद्ध कवि बाबू हरिश्चन्द्र-कृत पुस्तकों में, जो अलभ्य ग्रन्थावली से हिन्दीसाहित्य का भंडार पूर्ण कर रहे हैं, यह सद्यःप्रकाशित ग्रन्थ अत्युत्तम एवं बड़ा उपयोगी है केवल इसी कारण से नहीं कि इस का अनुवाद बहुत सावधानी और मुहावरे से किया गया है किन्तु इस कारण से कि अनुवादक ने मुख्य विषय की स्पष्ट व्याख्या के निमित्त बहुत सी बातें खोज २ कर एकत्रित की हैं और नोट में लिखा है। यूरोपदेशीय प्राचीन ग्रन्थों से भी सामग्री एकत्रित की गई है। बाबू हरिश्चन्द्र निस्सन्देह एक प्रबल लेखक, पण्डित, एवं सुजन पुरुष हैं। इन के देशीय भाषा में पूर्ण बल तथा असीम जानकारी ही के कारण यह पुस्तक इन सब गुणों से सम्पन्न हुई है। इस ग्रन्थ को जिस कवि ने संस्कृत में रचा था उस ने तो इस को चिरस्थायी किया ही था किन्तु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपूर्व ढंग से इस का अनुवाद कर के इस में नई जान डाली है।"

विलायत के "होमवर्ड्स मेल" तथा "ओफीशियल गज़ट" में भी इस अनुवाद की बड़ी प्रशंसा हुई थी।

यह अनुवाद फागुन १८७५ ई० से १८७७ ई० तक थोड़ा२ कर के क्रमशः पहिले "बालाबोधिनी पत्रिका" में प्रकाशित होता रहा और पीछे पुस्तकाकार निकला।

---

* यह बनारस क्वीन्स् कालेज के प्रिंसपुल थे। बाल्मीकीय रामायण का इन्हीं ने पद्यबद्ध अनुवाद किया है।

† "क्षत्रियपत्रिका" और "हरिश्चन्द्रकला" के सम्पादक स्वर्गीय बाबू रामदीन सिंह जी के एक नोट से विदित होता है कि पटना कालेज के तत्कालीन प्रसिद्ध संस्कृत प्रोफेसर काशीनिवासी पं० वर छोटूराम तिवारी

## दुर्लभबन्धु ।

"दुर्लभबन्धु" अर्थात् वंशपुर का महाजन—अंगरेज़ी भाषा के जगद्विख्यात नाटककर्ता शेक्सपियर कृत "मर्चेंट आव वेनिस" का भाषानुवाद है। निज मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद तथा पं० रामशंकर व्यास जी की सहायता से हरिश्चन्द्र ने इस का अनुवाद करना आरम्भ किया था। सुनते हैं कि इस का जो कुछ अंश शेष रह गया था उस को पं० रामशंकर जी ने इन के स्वर्गवास के अनन्तर पूरा किया। पहिले यह अनुवाद कुछ "हरिश्चन्द्रमैगज़ीन" में छपा था, फिर "हरिश्चन्द्रकला" में पूरा प्रकाशित हुआ। इस अनुवाद में कवि ने पात्रों तथा स्थानों के अंगरेज़ी नामों का भी इस भांति से भाषानुवाद * कर दिया है कि पढ़नेवाला यह नहीं समझ सकता कि यह किसी अङ्गरेज़ी ग्रंथ का उलथा है।

शेक्सपियर ने दो देहाती कहानियों के आधार पर इस प्रसिद्ध संयोगान्त नाटक की रचना की है। इस में सच्ची मित्रता का आदर्श दिखलाया गया है। बसंत (बसेनियो) नामक एक निर्धन व्यक्ति एक मातृपितृहीन धनाढ्य युवती से विवाह करने के हेतु अपने एक मित्र अनन्त (अन्टोनियो) से जो वंश-नगर (वेनिस) का सौदागर था द्रव्य की सहायता मांगो। अपने पास रुपया न रहने के कारण अनंत ने एक जैन (जियुज़) से इस प्रतिज्ञा पर कि यदि तीन महीने में ऋण परिशोध न हो तो महाजन उस के हृदयदेश का आध सेर मांस काट ले, छः हज़ार रुपया लेकर बसन्त की सहायता की। बसन्त का विवाह हुआ परन्तु अनंत के जहाज़ पर कुछ आपत्ति आने से समय पर ऋण नहीं चुकाया गया। महाजन ने जब न्यायशाला में अभियोग उपस्थित किया तो वही स्त्री जिस से बसन्त का विवाह हुआ था बारिस्टर के वेष में उपस्थित होकर अपने पति के मित्र की जान बचानेवाली हुई।

---

ने स्कूलबुककमेटी में पोप साहिब से कहा था कि "यदि भाषा सुधारने की इच्छा है तो बाबू हरिश्चन्द्रकृत मुद्राराक्षस तथा सत्यहरिश्चन्द्र इत्यादि पुस्तकें पढ़ाई जायं।" बाबू कालीकुमार मित्र नार्मल स्कूल के हेड मास्टर ने भी उस का अनुमोदन किया था, और यह पुस्तक नार्मल स्कूल में जारी हो कर हाल तक पढ़ाई जाती थी। फिर संस्कृतसंजीवन की प्रथमपरीक्षा में हिन्दीकोर्स नियत हुई थी।

* हम ने कोष्ठ में अंगरेज़ी नामों को लिख दिया है। उन के पहिले बाईं ओर जो नाम लिखे गए हैं वे ही सब उन नामों के हिन्दी अनुवाद हैं।

पहिले अंक के प्रथम दृश्य में, वंशनगर की सड़क पर अनन्त (अन्टोनियो), सरल (सलेरिनो) तथा सलोने (सलेनियो) आते हैं। कुछ काल वार्तालाप के अनन्तर वसन्त अपनी दुःखावस्था वर्णन करके निज मित्र अनन्त से द्रव्य की सहायता चाहता है जिस में कि वह विल्वमठ (वेल्मान्ट) को माता पिता हीन पुरश्री (प्रोरशिया) नामक कुमारी के समक्ष जाकर उस से विवाह का प्रार्थी हो सके जिस से धनप्राप्ति की सम्भावना है। अनन्त उत्तर देता है कि उस को सारी लक्ष्मी समुद्र में अर्थात् जहाज़ पर है तो भी यदि उस के नाम वा ज़मानत पर किसी अन्य से रुपया मिल सके तो उस को किसी बात में सोच विचार न होगा।

पुरश्री के बाप ने तीन सन्दूकें रक्खी थीं। उन में से एक में पुरश्री का चित्र था; और पिता की यह प्रतिज्ञा थी कि जो पुरुष उस चित्रवाली मंजूषा को चुनेगा उसी से उस का विवाह होगा।

दूसरे दृश्य में पुरश्री से नरश्री (नेरिस) उन लोगों के विषय में पूछती है जो लोग पुरश्री से विवाह की इच्छा से गये थे और कहती है "कि यदि आप अपने बाप के आज्ञानुसार मंजूषा के चुनने ही पर अपना निश्चय रक्खेंगी ......तो ये सब के सब चले जायंगे।" पुरश्री उन सबों के सम्बन्ध में निरादर-वाक्य कहती है और पिता की प्रतिज्ञा भंग करनी नहीं चाहती है।

तीसरे दृश्य में वसन्त शैलाक्ष (शाइलाक) एक जैनी (जियुज़) महाजन से अनन्त की ज़ामनी पर छः हज़ार रुपया ऋण लेने की बातचीत करता है। इतने में अनन्त भी वहां पहुंच जाता है। महाजन और अनन्त से पुराने मन-मोटाव के कारण (क्योंकि अनन्त लोगों को बिना ब्याज ही रुपया दे दिया करता था) पहिले कुछ कटु सम्भाषण होता है, अनन्तर महाजन इस प्रतिज्ञा पर रुपया देना स्वीकार करता है कि यदि तीन महीने में ऋण का परिशोध नहीं होगा तो वह अनन्त के हृदयदेश का आध सेर मांस काट लेगा और वसन्त व्यवस्थापक के घर दस्तावेज़ लिखाने जाता है।

दूसरे अङ्क के दूसरे दृश्य में शैलाक्ष का एक नौकर गोप (लानसिलाट गोबो) अपने पिता के साथ अनन्त के पास आकर उस के यहां नौकरी स्वीकार करता है और गिरीश (ग्रेशियनो) वसन्त के पास आकर उस के साथ विल्वमठ जाने की प्रार्थना करता है।

चौथे दृश्य में लवंग (लारेन्ज़ो), गिरीश, सालारन तथा सलोनो बात चीत करते हैं। इतने में गोप हाथ में एक पत्र लिये आता है और उन लोगों को ज्ञात होता

है कि वह शैलाक्ष को अनन्त के घर भोजन करने के लिये नेवता देने जाता है। उस के द्वारा लवंग शैलाक्ष की लड़की यशोदा ( जेसिका ) के पास यह कहला भेजता है कि "कभी अन्तर नहीं पड़ेगा"। पूर्वोक्त पत्र यशोदा ने लवंग को लिखा था।

पांचवें दृश्य में शैलाक्ष अपनी कन्या को अपने धन धाम से सावधान रहने के लिये बहुतकुछ शिक्षा देकर गोप के संग अनन्त के घर भोजन करने जाता है। उस के जाते समय उस की कन्या कहती है :—

"गर बर आई आर्जूं मेरी तो रुख़सत आप को।
आप ने बेटी को खोया और मैं ने बाप को * ॥

छठें दृश्य में लवंग आदि जाकर शैलाक्ष की कन्या यशोदा को बहुत धन रत्न के साथ उस के घर से निकाल ले जाते हैं।

तीसरे अङ्क के पहिले दृश्य में सलोनो और सलारन अनन्त के जहाज़ डूबने की बातचीत करते हैं। इतने में शैलाक्ष महाजन भी आता है। उस से भी लोग जहाज़ डूबने का समाचार पूछते हैं और यह भी जिज्ञासा करते हैं कि यदि अनन्त समय पर ऋण न चुका सके तो क्या वह सचमुच मांस काट लेगा ? इतने में अनन्त का एक नौकर उन लोगों को बुलाने आता है। सलोने तथा सलारन उस के साथ जाते हैं और उसी अवसर पर दुबैल (टिबुवल) एक अन्य जैनी आता है। उस से शैलाक्ष अपनी भागी हुई कन्या तथा अनन्त के जहाज़ के विषय में वार्तालाप आरम्भ करता है।

दूसरे दृश्य में बिल्वमठ में बसन्त मंजूषा चुनने आता है। उस समय इस गीत का गान होता है।

"अहो यह भ्रम उपजत कित आय।
जिय में कै सिर में जनमत है बढ़त कहां सुख पाय।
ताको उत्तर, यह जिय उपजत बढ़त दृष्टि में धाय॥
पै यह अचरज जित यह जनमत तितहीं जाय नसाय।
+ + + + + + + +
तासों टनटन बजै कहो अब घंटाहु घहराय॥"

---

* If my fortune be not crost,
I have a father, you, a daughter lost.

सौभाग्यवश बसन्त वही मंजूषा चुनता है जिस में पुरश्री का चित्र था और पुरश्री से उस का विवाह होता है। इन नव दम्पति के आज्ञानुसार नरश्री का भी विवाह गिरीश से किया जाता है। इतने में लवंग, यशोदा, और सलोने पहुंचते हैं। सबों को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। इतने में सलोने बसन्त को अनन्त का एक पत्र देता है। इसी पत्र द्वारा ज्ञात होता है कि बसन्त के सब जहाज़ नष्ट हो गये। सलोने से यह भी मालूम होता है कि प्रतिज्ञाभंग होने के कारण रुपया के प्रबन्ध होने पर भी शैलाक्ष महाजन नक़द नहीं लेगा परन्तु उस का मांसही काटेगा। यह खेदजनक समाचार सुन कर पुरश्री बसन्त को अनन्त के पास यह कह कर शीघ्र भेजती है कि जितना रुपया देने से छुटकारा हो उस का प्रबन्ध किया जाय और ऐसा कदापि न होने पावे कि उस के कारण उस के ऐसे अनुपम मित्र का एक रोम भी बांका हो जाय।

चौथे अंक के प्रथम दृश्य में राजदरबार में मंडलेश्वर (ड्यूक) शैलाक्ष महाजन को दया दिखाने के निमित्त बहुत कुछ समझाते हैं, परन्तु वह मांस ही काटने का हठ करता है। इतने में पुरश्री बारिस्टर के वेष में और नरश्री उस के किरानी के वेष में आती हैं। बारिस्टर भी बहुत समझाता है और अन्त में कहता है कि निस्सन्देह आईन के अनुसार शैलाक्ष को मांस काटने का अधिकार है। वह मांस काट ले, परन्तु आध सेर से न्यूनाधिक न हो और न एक बिन्दु रुधिर गिरने पावे क्योंकि तमस्सुक में ऐसा नहीं लिखा हुआ है। यह सुन कर महाजन अपना रुपया ही लेना स्वीकार करता है। परन्तु वह भी उस को न मिलता। वंशनगर की आईन के अनुसार उस धन का अर्द्धभाग राज्य को और शेष अनन्त को मिलता है। किन्तु अनन्त अपनी ओर से वह धन शैलाक्ष को इस प्रतिज्ञा पर लौटा देता है कि उस महाजन की मृत्यु के अनन्तर वह सब धन उस की कन्या यशोदा को मिले। बारिस्टर पुरस्कार में बसन्त की स्त्री की दी हुई अंगूठी ले कर और उन के क्लार्क गिरीश की अंगूठी ले कर बिदा होते हैं।

पांचवें अंक में सब के सब आगे पीछे बिल्वमठ में पहुंचते हैं। वहीं यह बात खुलती है कि पुरश्री ही बारिस्टर बन कर गई थी। जहाज़ बचने का एक पत्र भी पुरश्री के द्वारा अनन्त को मिलता है। और सब काम सानन्द समाप्त होता है।

बी० ए० क्लास में "मर्चेन्ट औव वेनिस" पढ़नेवाले छात्रों को उक्त पुस्तक को अच्छी रीति से समझ जाने के लिये यह अनुवाद बहुत उपयोगी है। कितने छात्रों ने इस को पढ़ कर लाभ भी उठाया है।

सतरह अठारह वर्ष हुए कि हम ने इस नाटक का एक और हिन्दी अनुवाद तथा यह अनुवाद असल अंगरेज़ी नाटक के साथ मिला कर पढ़ा था, और इस अनुवाद को बहुत ही शुद्ध और उत्तम पाया। दूसरे अनुवादक ने तो कई एक स्थानों में शेक्सपियर के आशय को भी नहीं समझा है।

## सतीप्रताप।

"सतीप्रताप"—इन के अधूरे नाटकों में सब से अन्तिम यही नाटक है। इस में इन्हों ने सावित्रीचरित्र वर्णन करना आरम्भ किया था। यदि यह पूरा हो जाता तो ललनागण के पढ़ने के लिये यह एक उपदेशमय उत्तम नाटक होता। इस का केवल चारही दृश्य यह लिखने पाये थे।

पहिले दृश्य में तीन अप्सरा बैठी हुई हैं और प्रत्येक क्रमशः एक २ सुन्दर गीत गाती हैं।

दूसरे दृश्य में सत्यवान तपोवन में बैठा हुआ मधुरस्वर से एक ललित गीत का गान कर सोच में डूब जाता है। अपनी अवस्था पर शोक करते हुए कहता है कि "हाय हमारे माता पिता बुढ़ापे से सामर्थ्यहीन तो थे ही ऊपर से दैव ने उन्हें अन्धा बनाया। हाय! अभागे सत्यवान को कभी माता पिता की सेवा न बन पड़ी··· जनमते ही तपस्या करनी हुई।"

इतने में सखीवृन्द के साथ विविध भांति की बातें करती और वनशोभा देखती सावित्री फूल बीनने आती है और तपोवन में भ्रमण करते २ सत्यवान की ओर उस की दृष्टि जाती है और सखियों से कहती है :—

"लखो सखि भूतल चन्द खस्यो।
राहु केतु भय छोड़ि रोहिनिहि या बन आइ बस्यो॥
कै सिवजयहित करत तपस्या मनसिज इत निवस्यो॥
कै कोउ बनदेव कुंज में बनबिहार बिलस्यो॥"

मधुकरी सखी के अनुरोधपूर्वक जिज्ञासा करने से ज्ञात होता है कि वह

तपस्वी मध्यदेश के द्युमत्सेन का पुत्र सत्यवान है। वह भी सावित्री का परिचय पा कर उन सभों की आतिथ्यसेवा करना चाहते हैं। परन्तु सावित्री सखी द्वारा यह कहला कर कि "माता पिता की आज्ञा लेकर हम आवेंगी तब आतिथ्य स्वीकार करेंगी" क्योंकि आर्य्यकुल की ललनागण किसी अवस्था में स्वतंत्र नहीं हैं, सखियों के साथ घर चली जाती हैं। परन्तु सत्यवान और सावित्री दोनों के मन में परस्पर गूढ़ प्रेम उसी क्षण उत्पन्न होता है।

तीसरे दृश्य में योगिन वेष धारण किये सावित्री ध्यानावस्थित है जिस भेष की अपूर्व शोभा कवि ने दो वैतालिकों के मुख से बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन कराई है।

फिर सावित्री आपही आप कहती है कि "मन वच कर्म से हमारी भक्ति पति के चरणारविन्द में है तो वह हम को अवश्य मिलेंगे। अथवा न भी मिले तो इस जन्म में तो दूसरा पति हो ही नहीं सकता। स्त्रीधर्म्म बड़ा कठिन है। जिस को एक बेर मन से पति कह कर वरण किया उस को छोड़ कर स्त्रीशरीर की अब इस जगत् में कौन गति है। पिता माता बड़े धार्म्मिक हैं सखियों के मुख से यह सम्वाद सुन कर वे अवश्य उचित ही करेंगे।" इतने में सखियां आती हैं। लवंगी कहती है कि बालावस्था में कठिन व्रत करना उचित नहीं यह तो खाने खेलने का समय है। मधुकरी कहती है कि माता पिता को अधिकार है चाहे जिसे दान कर दें। सुर-बाला कहती हैं:—

"सखि! औरहु राजकुमार बहुत जग माहीं।
विद्या बुद्धि गुन बल रूप समूह लखाहीं॥
चिरजीवी प्रेमी धनी अनेक सुनाहीं।
का उन सम कोऊ और जगत महं नाहीं॥
जा के हित तुम तजि राजभेष सुख भीनो।
यह जोगभेष निज कोमल अंग पर लीनो॥

सावित्री कुछ क्रोधयुत उत्तर देती हैं:—

"बस बस! रसना रोको, ऐसी मति भाखो।
कछु धर्म्म हु को भय अपने जिय में राखो॥

कुलकामिनि ह्वै गनिकाधर्म्म हि अभिलाखो।
तजि अमृतफल क्यों विषमय विषयहिं चाखो॥
सब समुझि बूझि क्यों निन्दहु मूरख तीनो।
यह जोगभेष जो कोमल अँग पर लीनो॥"

इसी रीति से सखियां सावित्री के संग बातें कर के और उस के आन्तरिक प्रेम का थाह ले कर सावित्रीसहित उस की माता के पास जाती हैं।

चौथे दृश्य में द्युमत्सेन तपोवन में ऋषियों के निकट बैठे अपनी निर्धनता एवं नेत्रहीन होने से कुछ दुःखितचित्त होते हैं और पूछने पर इसी अवस्था में नेत्रहीन होने का कारण कहते हैं कि "गणक लोगों ने यह कह कर कि तुम्हारा पुत्र अल्पायु है मेरा चित्त और तोड़ रखा है। इसी से मैं ऐसा घर ऐसी लक्ष्मी सी वधू पाकर भी अभी विवाह सम्बन्ध नहीं स्थिर करता।" इत ने में नारद जी आते हैं और उन के समझाने बुझाने पर द्युमत्सेन सत्यवान का विवाह सावित्री से करने पर उद्यत होते हैं।

पहिले पहल यह नाटक १८८५ ई० में अधूरा छपा, पीछे से बाबू राधाकृष्ण ने पूरा किया और दोनों ही हरिश्चन्द्रकला में छपे।

पाठक यहां भी सावित्री की तुलना विद्या से कर के देखें। सावित्री सत्यवान को मन दे कर दूसरे की ओर उलट कर नहीं देखने तक की प्रतिज्ञा करते हुये अपनी धार्म्मिक माता पिता की आज्ञा ही पर निज मनोरथ का साफल्य निर्भर करती है। इस से सतीत्व की पराकाष्ठा क्या हो सकती है? आर्य्यमहिलाओं का सा पातिव्रत्य कहीं और स्थल में सुनाई नहीं देता।

## भारतजननी।

"भारतजननी" १८७७ ई० के दिसम्बर में छपी थी। सब लोग यही जानते और कहते हैं कि यह पुस्तक बाबू साहिब की लिखी हुई है। औरों की कौन कहे बाबू राधाकृष्णजी भी ऐसा ही मानते हैं। परन्तु निम्नप्रकाशित विज्ञापन * से विदित होता है कि यह किसी अन्य व्यक्ति की लिखी हुई है जिसे हमारे चरित्रनायक ने केवल शोधा था। इसी से यहां पर इस का सविस्तर वर्णन नहीं किया जाता।

---

* "भारतजननी" रूपक जो गत नवम्बर से छपता है उस के ऊपर मेरा नाम

# माधुरी।

"माधुरी"—यह नाटक हरिश्चन्द्र जी के नाम से प्रकाशित हुआ है, परन्तु बाबू राधाकृष्ण जी लिखते हैं कि यह बाबू हरिश्चन्द्ररचित नहीं है। प्रकाशक ने धोखे से इन का नाम दिया है। यह बात कदाचित उन को ज्ञात हो, परन्तु उन्हों ने इस का कुछ प्रमाण नहीं दिया है। इस नाटक के विषय में सन्देह होने के कारण इस की भी पूरी समालोचना नहीं की जाती, और यह भी सोचा गया कि जितने नाटकों का ऊपर वर्णन हुआ है वही सब कवि की विलक्षणबुद्धि तथा कल्पनाशक्ति का परिचय देने के लिये अलम् हैं।

सत्यहरिश्चन्द्र, नीलदेवी, भारतदुर्दशा, अन्धेरनगरी, वैदिकहिंसा हिंसानभवति, और भारतजननी का अभिनय बनारस, कानपुर, प्रयाग, बलिया, डुमरांव इत्यादि अनेक स्थानों में होना ऊपर लिखा जा चुका है। उस के अतिरिक्त इस प्रबन्ध के लेखक ने भी निज बन्धु और मित्रों के साथ अपने नियत किये हुए अमेच्यूर नाटक मंडली में "भारतजननी" के अतिरिक्त पूर्वोक्त सब नाटकों का दो एक बार अभिनय किया था।

नाटक के अभिनय से जगत का भारी उपकार होता है। क्योंकि इस के द्वारा सामाजिक, व्यावहारिक, धार्म्मिक, तथा राजनैतिक कुसंस्कारों का संशोधन हो सकता है। कोई महान् धनवान् वा विद्वान् पुरुष किसी बुरे काम में लिप्त हो तो हम लोग सभा में उस के सुधार का शिक्षा प्रकाशरूप से करने में समर्थ नहीं हो सकते, किन्तु नाट्यशाला में उन बुराइयों को उपयुक्त पात्र द्वारा सबों के सामने प्रगट कराने से दृढ़ विश्वास है कि बुरे लोग लज्जित हो कर अपने ऐसे दुष्कर्मों से बच सकते हैं। भांड़ और इन्द्रसभा आदि भ्रष्ट

---

लिखा है। वह रूपक मेरा बनाया नहीं है। बंग भाषा में "भारतमाता" नामक जो एक रूपक है वह उसी का अनुवाद है जो मेरे एक मित्र ने किया है जिन्हों ने अपना नाम प्रकाश करने को मना किया है। मैं ने उस को शोधा है और जो अंश कुछ भी अयोग्य था उस को बदल दिया है। कवि की कीर्ति का लोप नहीं करना। अतएव यह प्रकाश करना मुझ पर आवश्यक हुआ। यह सन् १८७० ई० के दिसम्बर की "चन्द्रिका" में छपा था उसी से० "क० व० सुधा" में पुनर्मुद्रित होता है

२६—११—१८७८ हरिश्चन्द्र।"

नाटकों की बात छोड़ दीजिये। उन से तो लाभ के बदले दर्शकों को उलटी हानि ही पहुंचती है।

## नाटक।

सन् १८८३ई० में हमारे चरित्रनायक ने "नाटक" नामक एक ग्रन्थ बनाया था। उस के उपक्रम में इन्हों ने लिखा है कि "मुद्राराक्षस का जब मैं ने अनुवाद किया तब यह इच्छा थी कि नाटकों के वर्णन का विषय भी इस के साथ दिया जाय किन्तु···मित्रों के अनुरोध से यह विषय स्वतन्त्र पुस्तकाकार मुद्रित हुआ। इस के लिखित विषय दशरूपक, भारतीय नाट्य शास्त्र, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, विलसन्स हिन्दू थियेटर्स, लाइफ़ आव दी एमिनेन्ट परसन्स, ड्रामेटिकस ऐण्ड नाबेलिस्ट्स, हिस्ट्रिगे डि इटालिका थियेटर्स, और धार्य्यदर्शन से लिये गये हैं। आशा है कि हिन्दी भाषा में नाटक बनाने वालों को यह ग्रंथ बहुत उपयोगी हो।"

उस पुस्तक में कवि ने पहिले नाटक शब्द का अर्थ किया है। फिर काव्यमिश्र, शुद्धकौतुक, और भ्रष्टनाटक, इन का वर्णन है। प्राचीन समय में अभिनय के नाट्य, नृत्य, नृत्त, तांडव, और लास्य जो पांच भेद थे उन का एवं नाट्य, रूपक, और उपरूपक का पूर्ण वर्णन हुआ है। फिर रूपक का दशों भेद—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन—उदाहरण के साथ वर्णित हुआ है। फिर उपरूपक के अट्ठारहो भेद—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित (श्रीरासिका), शिल्पक विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, और भाणिका का वर्णन कियागया है। नाटकरचना की प्रणाली और नियम, आधुनिक एवं पुराचीन नाटकों में सामयिक रुचि के परिवर्तन से प्रभेद, नाटक का प्राचीन इतिहास, अन्य देशों में नाटक प्रचार का वर्णन, ये सब बातें उस में बहुत अच्छी रीति से दिखलाई गई हैं। उस में नाटक खेलने का बहुत लाभ भी वर्णन किया गयाहै। १६० संस्कृत नाटकों का नाम एवं उन के रचयिता का नाम भी उस में लिखे हैं। और उन में जो २ इन का पढ़ा हुआ था उन सबों पर विशेष चिन्ह दिया हुआ है। अन्त में विलायती नाटककर्त्ताओं की एक तालिका भी प्रकाशित हुई है। यह ग्रंथ कवि ने रुग्णावस्था में लिखा था। ग्रंथ को कवि ने ईश्वर

को समर्पण किया है और उस में लिखा है कि "यद्यपि संसार के कुरोग से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही किन्तु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा, हरिश्चन्द्र"।

इस ग्रंथ की "इन्डियन मेगज़ीन" नामक एक विलायती पत्र में अच्छी समालोचना हुई है। जो नीचे उद्धृत की जाती है।

Part I opens with Baboo Harish Chander's disquistion on the dramatic literature of India, in which he describes the various forms assumed by plays in both ancient and modern times bringing his account down to those written quite recently under European influence. This treatise contains a description of the machinery of the drama as known to India, and gives occasion for the Baboo to cite Sanskrit authorities on early Indian dancing. He tells his countrymen that the sooner they overcome this modern dislike of this recreation, the better it will be for their health and happiness. A list of Sanskrit and Hindi plays is given; and a sketch of theatricals as practised in Europe. *The India Magazine Vol. XIX*, P. *205*, *Jany. 1888.*

# नवम परिच्छेद।

## धर्म्मग्रंथ।

कवि ने इस कियारी को धर्म्मपुस्तक रूपी पवित्र वृक्षों से सुशोभित किया है। इधर आने ही से रसिक भक्तों को धर्म्म कर्म्म का सरस मधुर फल प्राप्त होता है। इस कियारी के सींचने में भी कवि ने बड़ा ही परिश्रम किया है, जिस का प्रत्यक्ष प्रमाण आगे मिलेगा।

बाल्यावस्थाही से धर्म्म तत्वानुसन्धान में कवि की विशेष रुचि थी *। सब कार्य्य करते हुए धर्म्म तथा प्रेमभक्ति का यह पूरा ध्यान रखते थे। "तन ते काम करो विधि नाना। मन राखो जहं कृपानिधाना" यह बात इन पर पूरी घटती थी। यह केवल आप ही धर्म का ध्यान नहीं रखते थे वरञ्च सर्वसाधारण का भी धर्म्मसम्बन्धी कल्याण चाहते थे। कुछ तो अपने चित्त की शान्ति के निमित्त और कुछ परोपकार के विचार से इन्हों ने अनेक धर्म्म-पुस्तकों की रचना की।

१८६८ ई० में "कार्तिक-कर्म्म-विधि" पुस्तक लिखी गई। इस में अनेक पुराणों के अनुसार कार्त्तिक महीने की नित्यक्रियाएं वर्णित हुई हैं। सन् १८७२ ई० में "कार्त्तिक नैमित्तिक कृत्य" की रचना हुई, जिस में यावत् नैमित्तिक धर्म्म वर्णन किये गये हैं। इन पुस्तकों में नाना पुराणों के वाक्य भी बहुत उद्धृत हुए हैं।

"तहकीकात पुरी की तहकीकात"—इस पुस्तक की अवतारणा की यह कथा है कि ११ वर्ष की अवस्था में जब यह सपरिवार के संग श्री जग-

---

* एक दिन इन के पिता तर्पण कर रहे थे। यह चट पूछ बैठे "बाबू जी पानी में पानी डालने से क्या लाभ है।" इन के धर्म्मप्रिय पिता माथा ठोक कर बोले "जान पड़ता है कि तू मेरा कुल बोरैगा"। पिता की यह शंका कहां तक ठीक हुई पाठक वृन्द स्वयं विचारेंगे। हम इतना ही कहैंगे कि लोगों का यह कथन कि अपने घर का धन परोपकार तथा अन्य बातों में व्यय कर के इन के स्वयं धनहीन हो जाने से इन के पिता का वह कहना फलीभूत हुआ मेरे जानते ठीक नहीं। यदि यह धर्म्मपथ से विचलित होते तो निस्सन्देह ऐसा कथन ठीक माना जाता।

नाथ जी के दर्शनार्थ गये थे तो वहां पर देखा कि चिरकाल से भोग के समय श्री जगन्नाथ जी के सिंहासन पर भैरव की मूर्ति बैठाने की चाल प्रचलित थी। पंडों का यह विश्वास था कि विना इस के यथार्थ पूजासांग हो ही नहीं सकती। बालक हरिश्चन्द्र की बुद्धि में यह रीति बुरी प्रतीत हुई। इन्हों ने निर्भयरूप से नाना प्रमाण द्वारा उस का विरोध किया और अन्ततः लोगों को वहां से भैरवमूर्ति हटानी ही पड़ी।

१८७१ ई० अग्रहायण क्र० ८ को इन्हों ने भैरवमूर्ति के विषय में सब प्रतिष्ठित लोगों के पास पत्र * भेज कर उन की अनुमति की प्रार्थना की थी। उसी समय किसी पंडित महाशय ने "तहक़ीक़ात पुरी" नामक एक पुस्तक लिखी थी। उसी के खंडन में इन्हों ने "तहक़ीक़ात पुरी की तहक़ीक़ात" ग्रंथ बना कर यह सिद्ध किया कि वह रीति अयोग्य थी और श्री जगदीश पूर्ण-पुरुषोत्तमपीठ वैष्णवस्थान है। यह पुस्तक उसी साल प्रकाशित हुई। इस के अवलोकन मात्र से विदित होता है कि इन्हों ने सब पुराणों तथा धर्मग्रन्थों का मथन कर के इस की रचना की है।

"वैशाखमाहात्म्य"—में वैशाख महीने का माहात्म्य वर्णन हुआ है। "पुरुषोत्तम मास विधान" में मलमास महीने का माहात्म्य लिखा गया है जिस के अंत में इन्हों ने श्री पुरुषोत्तम कृष्णचन्द्र के गुणानुवाद में "पुरुषोत्तम-पंचक" कीर्तन का पद भी लिखा है। पूर्वोक्त दोनों पुस्तकें १८७२ ई०में लिखी गई थीं। प्रथम पुस्तक दोहा छन्दों में है। दूसरी गद्यात्मक पुस्तक है जिस में कहीं २ पुराणों के वाक्य भी उद्धृत हुए हैं।

श्री वल्लभाचार्यकृत "चतुश्श्लोकी" का अनुवाद १८८३ ई०में "हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन" में छपा था।

"भक्तिसूत्रवैजयन्ती"—नवम्बर १८७३ ई०में यह पुस्तक लिखी गई। इस में शाण्डिल्यशतसूत्री भाषा भाष्यसहित प्रकाशित हुई है। भाष्य निस्संदेह बड़ा ही उत्तम और लाभदायक है। १८८३ ई० में इस का द्वितीय, एवं १८८८ ई० में तृतीय संस्करण हुआ।

---

* "श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में श्रीजगन्नाथजी के रत्नसिंहासन पर भैरव बैठने में आप की क्या सम्मति है। भैरव से देवता का श्रीजगन्नाथजी के बराबर बैठना योग्य है वा अयोग्य, कृपा कर के लिखियेगा।

आप का दासानुदास

हरिश्चन्द्र"।

"तदीयसर्वस्व"—यह पुस्तक १८७४ ई० में लिखी गई। यह नारदभक्तिसूत्र का एक अत्युत्तम हिन्दी भाष्य है। पहिले कवि ने सूत्रों का केवल भाषानुवाद किया था। पश्चात् उन सबों का हिन्दी भाष्य किया। इस के अवलोकन मात्र से हृदय में भक्ति का पूर्ण संचार होता है। इस के बारंबार पाठ करने से निस्सन्देह मनुष्य ईश्वरभक्ति में दृढ़ हो सकता है। इस के उपक्रम में लिखा है कि "केवल प्रेम ही परमेश्वर का दिव्यमार्ग है। यद्यपि यह ग्रंथ वैष्णवों की शैली पर लिखा गया है किन्तु परमेश्वर के भक्तमात्र के लिए यह उपयोगी है। क्रिस्तान आदि विदेशीय धर्म्मप्रेमीजन समझें कि कृष्ण उन के निर्गुण परमेश्वर का नाम है।...शैव समझें कि विष्णु शिव ही का नामान्तर है। ब्राह्म समझें कि हरि ब्रह्म ही को कहते हैं। उपासना और आर्य्यसमाज इसे अपना ही तत्व मानें, और सिक्ख इस में गुरु का पथ देखें"।

"पुराणोपक्रमणिका"—इस के देखने से लोग जान जायंगे कि चार लाख श्लोक समूह के अट्ठारह टुकड़ों में अर्थात् अष्टादश पुराणों में क्या क्या विषय सन्निवेशित है। अट्ठारहों पुराणों का पढ़ना उन के विषयों को चुनना, और सब लोगों के लिये उन को हस्तामलक बनाना यह थोड़े परिश्रम का काम नहीं है। यह पुस्तक १८७५ ई० में लिखी गई।

"उत्तरार्द्धभक्तमाल"—श्रीनाभाजी ने निज कृत भक्तमाल में प्राचीन हरिभक्तों का चरित्र वर्णन किया है। इस "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में उन भक्तों का चरित्र लिखा गया है जो नाभाजी के पश्चात हुए वा जिन का नाम उन के ग्रन्थ में छूट गया है। यह ग्रन्थ छप्पै छन्दों में लिखा गया है। अक्तूबर १८७६ ई० में इस की अवतारणा हुई। इसी के उपक्रम में कवि ने दोहा छन्दों में निज कुल का परिचय दिया है।

"युगलसर्वस्व"—यह भी १८७६ई०में लिखा गया। इस में श्रीराधाकृष्ण के सखी सखा, दास दासी इत्यादि एवं कतिपय अलौकिक बातों का वर्णन है। इस के उपसंहार में कवि ने लिखा है कि "जो लोग संसार में जल कमल की भांति रहते हैं उन्हीं के कहने सुनने योग्य" यह रहस्य है "क्योंकि सिंगार भावना सिंहनी का दूध है या तो सिंह के बच्चों के मुंह में ठहरे या स्वर्ण के पात्र में"।

यह गद्य और पद्य मिश्रित पुस्तक है और कृष्णभक्तों के बड़े काम की है।

"गोमहिमा"—इन्हीं ने सब पुराणों को मथकरके इस ग्रन्थ में गो महिमा का वर्णन किया है। गोदान करने से शास्त्रानुसार कितना पुण्य होता

है इस का प्रमाण, पुराणों का वचन, और उस का हिन्दी में अनुवाद दिया है। इस पुस्तक की अवतारणा का मुख्य उद्देश इस की भूमिका से प्रकटित है जिस में यह भी लिखा है कि "बड़ी २ गौशालाएं कीजिये, बहुत सी गऊ खरीदिये, मुसलमानों को हाथ जोड़िये, समझाइये" इत्यादि रीतियों से गोरक्षा कीजिये।

सम्भवतः यह पुस्तक १८८१ ई० में प्रकाशित हुई क्योंकि उसी साल के समाचारपत्रों में इस की समालोचना देखी जाती है।

"वैष्णवता और भारतवर्ष"—वर्त्तमान तथा प्राचीन समय की वैष्णवता में क्या भेद है, और भविष्यत में इस की दशा परिवृत्ति होने की कैसी सम्भावना है, यही सब बातें इस में दिखलाई गई हैं। वैष्णवता की प्राचीनता सिद्ध करते हुए कवि ने पुस्तक के अन्त में हिन्दूमात्र को एक लाभदायक उपदेश दिया है और देश काल की अवस्था दिखला कर कहा है कि "वैष्णव, शैव, ब्राह्म, आर्य्यसमाजी, सब अलग अलग पतली पतली डोरी हो रहे हैं इसी से ऐश्वर्य रूपी मस्त हाथी उन से नहीं बंधता। इन सब डोरी को एक में बांध कर मोटा रस्सा बनाओ तब यह हाथी दिग् दिगंत भागने से रुकेगा अर्थात् अब वह काल नहीं है कि हम लोग भिन्न २ अपनी २ खिचड़ी अलग पकाया करें......हिन्दू नामधारी वेद से लेकर तंत्र, वरंच भाषा ग्रंथ माननेवाले तक सब एक हो कर अब अपना परम धर्म यह रक्खें कि आर्य्य जाति में एका हो। इसी में धर्म्म की रक्षा है। भीतर चाहे तुम्हारा जो भाव और जैसी उपासना हो पर ऊपर से सब आर्य्य मात्र एक रहो।"

"उत्सवावली"—इस में साल भर के उत्सवों की तालिका, एवं व्रत तथा सेवा शृंगार आदि का वर्णन है। अन्त में एकादशी, द्वादशी, जन्माष्टमी, रामनवमी, तथा विजयदशमी का संक्षिप्त निर्णय लिखा गया है।

"भक्त सर्वस्व"—इस में कवि ने श्री राधाकृष्ण के चरणकमलों के प्रत्येक चिन्ह का अनेक भाव दोहा छन्दों में वर्णन कर के भक्तों के लिये आनन्दरस की वर्षा की है। इस के पढ़ने से मन में भक्तिरस का संचार होता है और कवि की अनोखी उक्ति युक्ति का परिचय मिलता है।

यहां पर कमल चिन्ह का भाव आदर्श स्वरूप उद्धृत किया जाता है:—

"सजल नयन अरु हृदय में, यह पद रहिबे जोग।
या हित रेखा कमल की, धरत कृष्ण पद भोग॥

श्री लक्ष्मी को वास है, याही चरणन तीर।
या हित रेखा कमल की, धारत पद बलबीर॥
बिधि सो जग बिधि कमल सों, सो हरि सों प्रगटाय।
राधावर पद कमल में, या हित कमल लखाय॥
फूलत सात्विक दिन लखि, सकुचत लखि तम रात।
या हित श्री गोपाल पद, जलजचिन्ह दरसात॥
श्री गोपी जन मन भ्रमर, के ठहरन की ठौर।
या हित जलसुतचिन्ह श्री, हरि पद जन सिर मौर॥
काठ ज्ञान वैराग्य में, बंध्यौ बेध उड़ जान।
याहि न बेधत मन भ्रमर, या हित कमल लखात॥

इसी प्रकार से कवि ने प्रत्येक चिन्ह का अनूठा भाव दिखाया है।

"मार्गशीर्ष महिमा*"—हरिश्चन्द्र जी ने जो "कार्तिक—कर्मविधि" नामक ग्रंथ लिखा था उसे इन के एक मित्र ने प्रसन्नतापूर्वक अंगीकार किया था। इसी से इन को यह इच्छा हुई कि उसी भांति लोकोपकारार्थ "मार्गशीर्ष" अर्थात् अगहन महीने की भी विधि वर्णन किया जाय क्योंकि इस परम पवित्र मास का माहात्म्य बहुत कम लोग जानते हैं और यह महीना श्रीभगवान का स्वरूप है यह बात भगवद्गीता तथा भागवत से सिद्ध है। अगहन महीने में स्नानादि की विधि इस ग्रन्थ में लिखी गई है।

---

* इस के विषय में इन्हों ने निम्नप्रकाशित विज्ञापन भी वितरण किया था। "चतुर्वर्ग को मोक्षादिक पाने का बहुत सहज उपाय :—हम लोग माघ, वैशाख, कार्तिकादि महीने को अति पवित्र जान कर स्नानादि करते हैं, परन्तु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना जो इन सबों से महापुनीत और थोड़े साधन में बहुत फल का देनवाला है, बच गया है और उस में हम लोग कुछ स्नानादि नहीं करते जिस की प्रसिद्धि के वास्ते हम बड़े आनन्द से यह इश्तिहार देते हैं।

"वह गोप्य मास जिस का माहात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा गया है मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन का महीना है, जिस के गुण गान करने

एक लेख मे ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हों ने "श्रावण मासक्षत्य" की भो कोई पुस्तक लिखी थी परन्तु वह हम को कहीं देखने में नहीं आई।

पूर्वोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्हों ने "वैष्णवसर्वस्व" जिस में वैष्णव सम्प्रदाय परम्परा तथा स्वल्प पुरावृत्त वर्णित है, "श्रीवल्लभीयसर्वस्व" अर्थात् वल्लभाचार्य्य के धर्म्मप्रचार का संक्षिप्त वृत्तान्त, "रासलीला (गद्य पद्यात्मक), "श्रुतिरहस्य", "श्रीभागवतस्थिति" इत्यादि अनेक धर्म्मसम्बन्धी ग्रन्थ तथा प्रबन्ध लिखा है।

यह केवल धर्म्मसम्बन्धीयग्रन्थ वा प्रबन्ध ही नहीं प्रकाशित करते थे किन्तु आवश्यकीय धर्म्मसम्बन्धी बातों पर यथासमय अपनी सम्मति भी प्रकाश करते थे और इन विषयों में लोग प्रायः इन की सम्मति भी लेते थे और इसी से इन के स्वर्गवास होने पर पण्डित लोग यह कह कर रोते थे कि "क्या वैश्यकुल

---

से महात्मा लोग उत्पन्न नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है जैसा कि आप ने श्रीमद्भागवद्गीता में और श्री भागवत एकादश स्कंध में आज्ञा की है। और श्री कुमारिकागणों ने इसी के स्नान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कन्दपुराण में इस की बड़ी स्तुति लिखी है यथा 'सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं, सर्वतीर्थेषु यत्फलं॥ सहस्राप्नोति तत्सर्वंमार्गशीर्षे कृते सुत ॥१॥यज्ञाध्ययनदानाद्यैस्सर्व्वतीर्थावगाहनैः। सन्यासेन च योगेन नाहम्वश्यो भवामि च॥२॥ स्नानेन दानेन च पूजनेन होमे विधाने तप आदितश्च। वश्यो यथा मार्गशिरे स्वमासि तथा न चान्येषुहि गर्भमुक्त॥३॥ मार्गशीर्षंन्न कुर्वन्तिये नराः पापमोहिताः। पापरूपा हि ते ज्ञेयाः कलिकाले विशेषतः ॥४॥ माघाच्छतगुणम्पुण्यम्वै माखे मासि लभ्यते। तस्माल्लक्षगुणितन्तुलासंस्थे दिवाकरे ॥५॥ तस्माच्च कोटिगुणितं वृश्चिकस्थे दिवाकरे। मार्गशीर्षोऽधिकस्तस्मात्सर्व्वदा मम वल्लभः॥ ६ ॥ और भी बहुत सा माहात्म्य है कहां तक लिखें अर्थात् इस महीने में प्रातःस्नान तुलसी और कदम्बपूजन से बढ़ कर मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है और कदम्बपूजन की इस में मुख्यता विशेष है। यथा। पूजयेत्संस्थरेषस्तु कदम्बं-सर्व्वकामदं। सर्व्वान् कामानवाप्नोति इहामुत्र न संशयः॥ इस वास्ते आप लोग इस में जहां तक बन पड़े स्नान दानादि कीजिए और दूसरे लोगों को भी इस का उपदेश कीजिए किमधिकम्, इति।

चौखम्भा बनारस।

हरिश्चन्द्र,

में कोई ऐसा जनमेगा जिस से हम लोग धर्मशास्त्र की व्यवस्था पर सलाह लेने जायंगी "।

एक बार मार्च १८७८ ई० में चन्द्रग्रहण के अवसर पर सूतक के विषय में इन्हों ने जो कुछ लिखा था इस बात के प्रमाण में नीचे उद्धृत कर दिया जाता है।

"इस वर्ष में जो चन्द्रमा का ग्रस्तोदय ग्रहण हुआ था उस में ज्योतिष के अनुसार तीसरे पहर से लोगों ने सूतक माना और हम लोगों के श्री श्री वल्लभीय सम्प्रदाय की रीति के अनुसार श्री ठाकुरजी भी उसी समय से अलग विराजे, किन्तु ऐसा निश्चय होता है कि शास्त्रमान से सूतक मानने की आवश्यकता नहीं। व्यर्थ ठाकुरजी को इतने पहिले कष्ट दिया, क्योंकि ग्रहण का सूतक ग्रहण के देखे बिना नहीं होता यथा 'सर्व्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहु दर्शने'; 'स्नानं दानं तपः श्राद्ध मनन्तं राहुदर्शने', 'दत्तं जप्तं हुतं स्नातमनन्तं राहुदर्शने' इत्यादि वाक्यों में जो दर्शन शब्द है और 'देखे गहन, सुने सूतक' इस लोक कहावत से गहन जब तक लोक के दृष्टिगोचर न हो तब तक उस के सूतक का आरम्भ नहीं होता। अतएव 'सूर्य्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा। तत्र स्नानं न कर्तव्यं दद्याद्दानं च न क्वचित्' विधान किया है। जो कहो ग्रस्तास्त में शास्त्ररीति से जब तक उग्रह न हो तब तक सूतक क्यों मानते हैं? तो इस से उस से भेद है। उस में दर्शन हो कर सूतक लग चुका है, इस की निवृत्ति शास्त्र रीति से उग्रह मान कर करना और यहां सूतक का प्रारम्भ ही नहीं हुआ है। जो कहो कि ऐसा मान कर फिर पहर दिन चढ़ने के भीतर भोजन करना क्योंकि चन्द्रग्रहण के पहिले केवल तीन पहर निषेध है सो नहीं। इस भोजन के हेतु एक विशेष वाक्य है यथा 'सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ। दिवा तत्र न भोक्तव्य रात्रौ नैव कदाचन।'

इन के ग्रंथों के अवलोकन से विदित होता है कि धर्मविषयक जानकारी इन की अगाध थी। यह एक बार स्वयं कहते थे कि "यदि कोई उपयुक्त श्रोता हो तो मैं भारतवर्षीय धर्म्म पर दो वर्ष पर्य्यन्त अनवरत व्याख्यान दे सकता हूं।" इन के सुहृदय बाबू राधाकृष्ण जी लिखते हैं कि "सब धर्मों की नामावली तथा उन की शाखा प्रशाखा का वृक्ष एवं सब दर्शनों के और सब सम्प्रदायों के ब्रह्म, ईश्वर, सृष्टि, मोक्ष, परलोक, आदि मुख्य २ बातों पर

यह मतामत का एक चक्र बनाते थे जो अधूरा और अप्रकाशित रह गया।"

"दूषण मालिका" नामक एक पुस्तिका में इन्हों ने ५५ प्रश्न लिख कर स्वामी दयानन्द जी के पास उन से शास्त्रार्थ करने के निमित्त भेजा था और उस की भूमिका में लिखा है:—

"उन को उचित है कि इन प्रश्नों का प्रति पद उत्तर दें और इसी प्रकार से बराबर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ हो......इन प्रश्नों के प्रति शब्द का उत्तर न देने से परास्त समझे जायंगे और प्रश्नोत्तर करते २ जो थक जाय और जिस की बुद्धि में उत्तर की युक्ति न आवे वह हारा समझा जायगा"।

उन प्रश्नों के उत्तर देने के लिये दयानन्द जी को एक बार भी लेखनी उठाने का साहस नहीं हुआ।

———

# दशम परिच्छेद ।

## इतिहास ।

इन कियारी में कवि ने वटवृक्षों के समान इतिहासों का ऐसा २ अमाठ पड़ रोपा है कि जिन का पुरातमहत्त रूपी सोरसमूह भूतकाल की भूमि में बहुत दूर तक चला गया है और जिन में इधर उधर और देश विदेश की मनोरंजक कहानियां बरोह की छवि दिखला रही हैं। आशय यह है कि हरिश्चन्द्र के इतिहास में अब इन की ऐतिहासिक जानकारी का वर्णन किया जाता है। इन्हों ने १२ ऐतिहासिक पुस्तकों की रचना की है, जिन के अवलोकन मात्र से ज्ञात होता है कि इन को ऐतिहासिक अनुभव भी बहुत था और ऐसी पुस्तकों के लिखने में साधारण बातों की ओर ध्यान न देकर पुरावृत्तानुसन्धान पर यह विशेष लक्ष्य रखते थे। इतिहास में काश्मीर-कुसुम, बादशाहदर्पण, उदयपुरोदय, पुरावृत्तसंग्रह, चरितावली, पंच पवित्रात्मा, तथा दिल्ली-दरबार-दर्प्पण ये सब प्रधान पुस्तकें हैं और इन का सविस्तर वर्णन पाठकों को अरोचक नहीं होगा।

"काश्मीरकुसुम"—यह ग्रंथ १८८४ ई० में प्रकाशित हुआ। इस में काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास, राजाओं की नामावली, समय का सविस्तर चक्र, राजतरंगिणी की समालोचना, औरंगजेब तथा वर्तमान काल के राजवंश का सामान्य वर्णन है। भारतवर्षान्तर्गत केवल काश्मीर ही का शृंखलाबद्ध पुरावृत्त "राजतरंगिणी" में पाया जाता है। "राज-तरंगिणी" के लिखे जाने के अनन्तर काश्मीर का कोई ऐसा इतिहास देखने में नहीं आता जो उस के रचे जाने के पीछे नियमित रूप से श्रेणीबद्ध हुआ हो। "राजतरंगिणी" के पश्चात् की सारी ऐतिहासिक घटनाओं को इस "काश्मीरकुसुम" में इन्हों ने पक्षपातरहित हो कर वर्णन किया है। अब राजतरंगिणी और काश्मीरकुसुम दोनों के देखने से काश्मीर देश का शृंखलाबद्ध पूरा इतिहास प्राप्त हो सकता है।

"बादशाहदर्पण"—इस में मुसलमान राजाओं का वृत्तान्त वर्णन किया गया है। इस में बहुत सी बातें ऐसी पाई जाती हैं कि जिन का अन्य इतिहासों में कहीं वर्णन नहीं है। इस में तैमूर से बहादुरशाह पर्य्यन्त प्रत्येक बादशाह के माता पिता का नाम, राज्याभिषेक का स्थान, राज पाने

के समय बादशाहों की अवस्था, सिक्का विवरण, समाधिस्थान, फ़ारसी में राज्याभिषेक एवं मृत्यु की तिथि (तारीख़) इत्यादि अनेक बातें लिखी गई हैं। जहांगीर तथा शाहजहां के बीच में "मिरज़ा बुलाकी" का गद्दी पर बैठना, एवं पृथ्वीराज का शहाबुद्दीनगोरी के भाई को शब्दभेदी बाण से मारना और फिर उन का और उन के कवि चन्द का मारा जाना इत्यादि बातें क्या पाठकों को नई नहीं प्रतीत होंगी? इन सब बातों के जानने के लिये इन को एक यह सुभीता थी कि इन के प्रमातामह राय गिरधर लाल फ़ारसी के बड़े पण्डित और काश्मीरस्थ दिल्ली के शाहज़ादों के मुख्य दीवान थे। उन की इच्छा से दिल्ली के प्रसिद्ध विद्वान् सय्यद अहमद ने एक ऐसा चक्र बनाया था जिस से तैमूर से शाहआलम तक के सब बादशाहों का हाल प्रगट हो, और इन के मातामह राय खिरोधर लाल ने बहादुरशाह के काल के आरम्भ तक सब वृत्त संग्रह किया था। अकबर ने काश्मीर के एक मन्दिर का जीर्णोद्धार करा कर उस पर जो एक आज्ञा खुदवाई थी उस को भी इन्हों ने इस ग्रन्थ के अन्त में प्रकाशित कर दी है।

इस की भूमिका में इन्हों ने लिखा है कि "लोगों ने जो भारतवर्ष का इतिहास लिखा है उस में आर्य्यकीर्ति का लोप करते गये हैं।" कोई भाई का लाल ऐसा भी होता जो बहुत सा परिश्रम स्वीकार कर के एक बार अपने बाप दादे का पूरा इतिहास लिख कर उन की कीर्ति चिरस्थाई करता" इस की भूमिका अवश्य विशेष द्रष्टव्य है। यह ग्रन्थ भी १८८४ ई० में पहिली बार प्रकाशित हुआ था।

"उदयपुरोदय"—मेवाड़ देश का पुरावृत्त संबंध है। इस की टिप्पणी देखने से मालूम होता है कि इन्हों ने बहुत परिश्रम करके इस की रचना की है। इस के पढ़ने ही से बहुत सी अपूर्व बातें अवगत होती हैं।

"पुरावृत्तसंग्रह"—इस में इन्हों ने बहुत से प्राचीन काल की प्रशस्तियां दानपत्र, एवं प्रत्येक का अनुवाद और कहीं २ सारांश और आवश्यकीय टिप्पणी भी लिखी है।

"पंचपवित्रात्मा"—इस में महात्मा महम्मद, आदरणीय अली, बीबी फ़ातिमा, इमाम हसन, एवं इमाम हुसेन का जीवन चरित्रवर्णन किया गया है। यह भी १८८४ ई० में लिखा गया है क्योंकि ६ मई १८८४ ई० के एक पत्र में जो इन्हों ने किसी अपने मित्र नवाब साहिब के पास भेजा था यह लिखा है

कि " हिन्दी ज़बान में यह पहिली किताब तसनीफ़ और शाया हुई है जिस में कि बुज़ुर्गान अहले इसलाम का तज़किरा है और जो पढ़नेवालों के दिल पर उन लोगों की सच्ची बुज़ुर्गी का असर पैदा करनेवाली है।"

" दिल्ली दरबारदर्पण "—इस में १८७७ ई० के दरबार का पूरा मनोहर विवरण है। कुछ काल विगत होने पर यह भी एक उत्तम पुस्तक मानी जायगी और इस से उस समय की बहुत सी बातें लोग जान सकेंगे।

" चरितावली "—इस में विक्रम, कालिदास, रामानुजस्वामी, श्रीशंकराचार्य्य, पुष्टिमार्गाचार्य्य, श्रीवल्लभाचार्य्य, सूरदास, सुकरात, नेपोलियन, जान स्टुअर्ट मिल, राजाराम शास्त्री, लार्ड लारेंस, तथा जयदेव जी प्रभृति अनेक प्राचीन तथा ऐहकालिक महानुभावों का जीवनचरित्र लिखा गया है। आश्चर्य तो यह है कि न जाने इन्हों ने कहां से फ्रांसदेशीय राजा प्रथम फ्रेनसिस तथा नेपोलियन की, एवं जर्मनदेशीय राजा पंचम चार्लस और फ्रेडरिकविलियम पंचम की, टीपू सुलतान, सिकन्दर, तथा रावणादि की जन्मकुंडलियां हस्तगत कर के उन सबों को इस में प्रकाशित किया है।

इसी ग्रन्थ को देख कर हिन्दी के परमरसिक डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन साहिब महोदय ने लिखा है कि " इन के समान पश्चिमोत्तरदेश में अब तक कोई प्रसिद्ध समालोचक नहीं हुआ * "।

इन बड़ी २ ऐतिहासिक पुस्तकों के अतिरिक्त इन्हों ने १८७१ ई० में अग्रवालों † की उत्पत्ति नाम की एक छोटी पुस्तिका लिखी थी।

---

* One of his latest works was a series of excellent lives of great men—European and Indian—entitled "Parsidh Mahátma ka Jiwan charitra." He was certainly the best critic which Northern India has yet produced. G. A. Grierson's "The Modern Literary History of Hindustan" p. 124.

† एम० ए० शेरिंग साहिब ने Hindu Tribe and caste नामक ग्रंथ की रचना में इन की हस्तलिखित " अग्रवालों की उत्पत्ति " से बहुत सहायता ली है। उन्हों ने अपने ग्रन्थ में इस का वर्णन किया है और इन को सहायता के लिये एक पत्र में धन्यवाद भी दिया है। हम अनुमान करते हैं कि इन्हों ने यह प्रबन्ध शेरिंग साहिब ही के कहने से लिखा था और पीछे इसे पुस्तकाकार छपवा दिया।

१८७८ ई० में " खत्रियों की उत्पत्ति का भी एक विवरण लिखा था और १८८० ई० में " बूंदीराज्यवंश " तथा " महाराष्ट्र देश का इतिहास " की रचना की थी।

इन्हों ने " रामायण का समय " जो लिखा है वह भी बहुत उत्तम है। उस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह अवश्य पुरातत्ववेत्ता थे। प्राचीन काल में भारतवर्ष में बहुत सी ऐसी बातों का होना उस में सिद्ध किया गया है जिन के होने में बहुत से लोग सन्देह करते थे।

इन्हों ने एक कालचक्र बनाया था जिस में सृष्टि के आरम्भ से इन के काल तक जो प्रसिद्ध घटनाएं इस भारतवर्ष में होती गईं वे सब तथा उन की तिथियां लिखी गई हैं। परंतु यह पुस्तिका उन के समय में नहीं छपी थी। पीछे बाबू राधाकृष्ण ने उस को पूरा कर के खड्गविलास यंत्रालय द्वारा प्रकाशित कराया है।

इतिहास विषयक इस संक्षिप्त विवरण से ज्ञात होगा कि पुरातत्वानुसन्धान की ओर इन का कैसा ध्यान रहता था। जो विषय यह लिखते थे उस को पूरे अनुसन्धान एवं परिश्रम से लिखते थे।

कितने ही इन के आविष्कृत लेख "एशियाटिक सोसाइटी" के जर्नल तथा प्रोसीडिंग में छपा करते थे और उस सहायता के पुरस्कार में गवर्मेंट द्वारा प्रकाशित संस्कृत ग्रंथों की सूची तथा पुरातत्वसम्बन्धी पुस्तकें इन्हें बराबर मिला करती थीं।

इन्हों ने काशीनिवासी पंडित शीतलाप्रसाद जी के साथ छः सात महीने में काशी के सब मन्दिरों और घाटादिकों को निरीक्षण कर के सब पुरानी प्रशस्तियों को पढ़ा था; और घाटों का फोटो, प्रशस्तियों की लिपि, और उन सबों का इतिहास एकत्र किया था। काशी का एक वृहत् इतिहास लिखने का इन का विचार था, परन्तु अल्पकाल ही में स्वर्गवास हो जाने के कारण यह कार्य्य सम्पन्न न हो सका। तथापि इन्हों ने "काशी" शीर्षक जो एक प्रबन्ध लिखा है उस के पढ़ने से काशी के सम्बन्ध की बहुतेरी प्राचीन बातें जानी जा सकती हैं।

इन्हों ने प्राचीन काल के सिक्कों तथा स्टाम्प आदि का भी अच्छा संग्रह किया था जिस का वर्णन अन्य परिच्छेद में होगा।

# एकादश परिच्छेद।

## परिहास और व्यंग।

अब नेक इस कियारी की ओर दृष्टि कीजिये। देखिये हास्य परिहास के कैसे २ गुलाब खिले हुए हैं और उन के व्यङ्ग के कांटे भी कैसे मर्मवेधी हैं।

हास्य और कौतुकप्रिय होने के कारण यों तो इन्हों ने स्वरचित सब ग्रन्थों को हास्यरस से इस ढङ्ग में रञ्जित किया है कि विषय का गौरव भी नष्ट न हो और हंसी का भी आनन्द मिले, तथापि परिहास विषयक इन की स्वतन्त्र पुस्तकें और लेख भी पाये जाते हैं। प्रहसनपंचक में "जातिविवेकिनी सभा" "स्वर्गसभा" "सबै जाति गोपाल की" "बसंतपूजा" और "रंड भंड सम्वाद" ये पांच लेख हैं जिन में प्रथम तीनों बड़े ही उत्तम और हास्यजनक हैं।

"जातिविवेकिनी" में विपिनरामशास्त्री ने पंडितों की सभा कर के एक गड़ेरिये को क्षत्रीवर्ण होने की व्यवस्था दी है और उस पर अन्य सभास्थ पंडितों का हस्ताक्षर बनवाया है। क्षत्री होने के अनेक प्रमाण में यह भी एक प्रमाण दिखलाया है कि गड़ेरिया "गढ़ारिया" गढ़ारि का अपभ्रंश है अर्थात् गढ़ का अरि (क्षत्री) वा गांडार्य्य गरुड़ के वंशीय इत्यादि। अंत में क्षत्री वर्ण होने की व्यवस्था पाने से गड़ेरिया ने उन की बहुत पूजा की है और अपनी सहित नाच २ कर यह गीत गाया है।

> "आव मेरी जानी सकल रसखानी।
> धरि कांधबहियां नाचु मनमानी॥
> मैं भैलौं छतरी तु धन छतरानी।
> अब सब छुट गैरे कुल कैरे कानी॥
> धन २ बम्हनाले पोथिया पुरानी।
> जिन दियो छत्री बनाय जग जानी॥

"सबै जाति गोपाल" में एक ब्राह्मण दक्षिणा लेते गये हैं और ऊंची जाति को नीच एवं नीच को ऊंच होने की व्यवस्था देते गये हैं। यहां तक कि धोबी चमार को भी ब्राह्मण बना दिया है।

यह दोनों लेख ऐसे पण्डितों पर व्यङ्ग के हैं जो केवल धन की लालच से

जैसी चाहिये वैसी व्यवस्था देने में सङ्कुचित नहीं होते । इन दोनों प्रबन्धों में कथोपकथन और उस की उक्ति युक्ति बड़ी ही हास्यजनक है।

"स्वर्ग में विचारसभा"—यह लेख स्वामी दयानन्द एवं केशवचन्द्र सेन के प्रलोकगमन पर लिखा गया था। यह ऐसा उत्तम लेख है कि "क्रानिकल" समाचार पत्र में हमारे माननीय स्वर्गीय बाबू गोविन्दचन्द्र एम० ए०, बी० एल० ने इस का अंग्रेज़ी में अनुवाद भी प्रकाशित किया था। इस लेख में इस बात का विचार कराया है कि पूर्वोक्त दोनों महाशय स्वर्ग में स्थान पाने के अधिकारी हैं वा नहीं। स्वर्ग में स्वर्गीय लोगों का कान्सर्वेटिव और लिबरल दो दल नियत कराया है। पहिले का लीडर (अग्रसर) देवताओं के अतिरिक्त याज्ञवल्क्यादि को बनाया है और दूसरे का अग्रसर चैतन्य, दादू, गुरुनानक, कबीर इत्यादि को माना है। फिर सिलेक्ट कमेटी हुई है जिस में राजा राय मोहन राय, व्यासदेव आदि सभासद हुए हैं। मुसल्मानों के एक इमाम, क्रस्तानी से लूथर, जैनी से पारसनाथ, बौद्धों से नागार्जुन, अफ़रिका से सिटोवायो के बाप "एक्स ओफ़िशियो" मेम्बर बने हैं। रोम के हरक्यूलिस, पारसियों के ज़रदुश्त, आदि कारेसपांडिंग आनरेरी मेम्बर बनाये गये हैं। इन लोगों से एक रिपोर्ट ईश्वर के पास भेजवाया है और लिखा है कि इस रिपोर्ट पर "क्या आज्ञा हुई और वे लोग कहीं भेजे गये यह जब हम भी वहां जायंगे और फिर लौट कर आ सकेंगे तो पाठक लोगों को बतलावेंगे, या आप लोग कुछ दिन पीछे आप ही जानेंगे"।

इसी से बाबू साहिब के स्वर्गवास के अनन्तर किसी पत्र में लिखा था कि "अब बाबू साहिब तार द्वारा हम लोगों को सूचित करेंगे कि पूर्वोक्त रिपोर्ट पर क्या आज्ञा हुई"। यह लेख हास्यजनक और आनन्दप्रद होने के अतिरिक्त इन की बड़ी जानकारी का भी परिचय देता है।

"परिहासिनी" पुस्तक में अन्य हंसी की बातों के अतिरिक्त "पांचवां पैग़म्बर" बड़ा ही हास्यजनक लेख है। हम पाठकों से उस को तथा पूर्वोक्त लेखों को स्वयं पढ़ने का अनुरोध करेंगे। "पांचवां पैग़म्बर" का कुछ हाल ८१ पृष्ठ में लिखा गया है।

परिहासमय कई २ गद्यात्मक लेख के सिवाय इन की व्यङ्गोक्ति की कविता और शेर भी बहुत पाये जाते हैं।

आलसियों पर व्यंग है :—

"सिजदा से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए।
दोज़ख़ ही सही सिर का झुकाना नहो अच्छा॥"

फिर जो लोग रुपया ही को सर्वस्व समझ कर कोई कुकर्म करने में संकोच नहीं करते उन पर भी व्यङ्ग है।

"ज़र दीन है ईमान् है कुरआं है नबी है।
ज़र ही मेरा अल्लाह है, ज़र राम हमारा॥"

फिर कुचाली अमीरों पर व्यङ्ग है :—

"आंखों में हिमाक़त का कँवल जब से खिला है।
आते हैं नज़र कूचः ओ बाज़ार बसन्ती॥
अफ़यून मदक चर्स ओ चन्डू की बदौलत।
यारों के सदा रहते हैं रुख़सार बसन्ती॥
तहबील जो ख़ाली हो तो कुछ कर्ज़ मँगा लो।
जोड़ा हो परीजान का तय्यार बसन्ती * "॥

किसी अकाल के समय तोंदैल बनियों पर एक बनारसी लाला साहिब के मुंह से किसी मशायरा में व्यङ्ग कहलवाया है।

"ग़ल्ला कटै लगा है कि भैया जो है सो है।
बनिया को ग़म भवा है कि भैया जो है सो है॥
कुप्पा भये हैं फूल के बनिया वफ़ूर्ते माल।
पेट उन का दमकला है कि भैया जो है सो है॥"

नीचे लिखे हुए छन्दों को देखिये और विचारिये कि एक स्त्री के मुख से कवि ने किस पर व्यंग कराया है। मेरी समझ में तो एक ही पर नहीं किन्तु कई ढंग के लोगों पर व्यङ्ग है :—

---

* बन्दरसभा में शुतुर्मुर्ग़ परी ने जो ग़ज़ल गाई है उसी से यह कई शेर उद्धृत हुए हैं। इन्दरसभा की नक़ल में यह कोई बन्दरसभा लिखते थे। उस के सब कीर्तन की वस्तुओं के अन्त में इन्होंने उस्ताद अमानत के स्थान उस्ताद ख़यानत लिखा है। परन्तु पूरी प्रकाशित "बन्दरसभा" हम को अभी तक देखने में नहीं आई है। इस का कुछ अंश "मधुमुकुल माला" में देखा है।

"लिखाय नाहीं देत्यो पढ़ाय नाहीं देत्यो।
सैयां फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो॥
लहंगा दुपट्टा नीको ना लागै।
मेमन का गौन मंगाय नाहीं देत्यो॥
सरसों का उबटन हम ना लगैबै।
साबुन से देहिया मलाय नाहीं देत्यो॥
डोली मियाना प कब लगि डोलौं।
घोड़वा प काठी कसाय नाहीं देत्यो॥
बहुत दिना लगि खटिया तोड़िन।
हिन्दुन का काहे जगाय नाहीं देत्यो॥

नवीन सभ्यता तथा उस की दशा पर इन छन्दों में भी कैसा व्यंग है :—

"का भवा आया है हे राम ज़माना कैसा।
कैसी मेहरारू है ई हाय ज़नाना कैसा॥
लोग क्रिस्तान भये जाथैं बनथैं साहिब।
कैसा अब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा॥
धोय के लाज सरम पी गये सब लड़कन लोग।
काहे के बाप मतारी रहैं नाना कैसा॥
पगड़ी जामा गवा अब कोट औ पतलून रही।
जब चुरुट है तो इलैची का है खाना कैसा॥

न देखिये इन छन्दों में कितने लोगों पर व्यङ्ग है —

"सब गुरजन को बुरो बतावै, अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्त्व न झूठो तेज़ी, ए सखि सज्जन? नहि अंगरेज़ी॥
तीन बुलाए तेरह आवैं, निज २ विपता रोइ सुनावैं।
आंखों फूटे भरै न पेट, सखि सज्जन? नहि ग्रैजूएट॥
मतलब ही की बोलै बात, राखै सदा काम की घात।

डोलै पहिरे सुन्दर शमला, क्यों सखि सज्जन ? नहिं सखि अमला
रूप दिखावत सर्बस लूटै, फन्दे में जो पड़ै न छूटै।
कपट कटारी हियमें हूलिस, क्यों सखि सज्जन? नहिं सखि पूलिस
इन को उन को खिदमत करो, रुपया देते देते मरो।
तब आवै मोहि करन खराब, क्यों सखि सज्जन ? नहीं खिताब ॥'

सुअवसर आने ही से कवि ने व्यङ्ग और हास्य की छटा दिखलाई है। व्यङ्ग की वहार भारतदुर्दशा, अन्धेरनगरी आदि में विशेष देखी जाती है।

अंगरेज़ स्तोत्र, कंकड़ स्तोत्र आदि लेख भी देखने ही के योग्य हैं। सबों की समालोचना का अवकाश नहीं।

---

# द्वादश परिच्छेद ।

## विविध प्रबन्ध ।

इस कियारी में विविध प्रबन्ध के विविध रंग रूप और वास के अद्भुत पुष्प विकसित हो रहे हैं जिन के अवलोकन से मन सन्तुष्ट होता है ।

इन के लिखे अनेक ललित प्रबन्ध हैं कि जिन में प्रत्येक को एक एक स्वतन्त्र पुस्तक कहना अनुचित नहीं ।

इन के प्रबन्धों में भारतवर्ष के सुधार का क्या उपाय है (How India can be reformed), ईश्वर का वर्तमान होना, भक्तिज्ञानादि से क्यों बड़ी है, हम मूर्ति पूजक हैं, श्रुतिरहस्य, मित्रता, खुशी, अपव्यय, इङ्गलेन्ड और भारतवर्ष, ईशूख्रीष्ट और ईशू कृष्ण, भूकम्प, त्यौहार, होली, अंकमय जगत, भगवत्-स्तुति, सूर्योदय इत्यादि बहुत उपयोगी प्रबन्ध हैं। इन के लिखे छोटे २ प्रबन्धों की गणना हो नहीं हो सकती और न बड़े वा छोटे प्रबन्धों की सविस्तर समालोचना की जा सकती है, तथापि कई एक के विषय में कुछ कहने की चेष्टा की जाती है।

"खुशी"—यह प्रबन्ध शुद्ध और सहज उर्दू भाषा में लिखा गया है, अक्षर हिन्दी के हैं। खुशी क्या वस्तु है, कौन से सामान सच्ची खुशी के हैं, भारत-वासी हिन्दुओं को सच्ची खुशी क्यों नसीब नहीं—इन सब बातों को अपने ख़याल के अनुसार कवि ने अच्छी रीति से लिखा है। बातें ठीक हैं वा नहीं यह तो पुस्तक देखने ही से कोई जान सकता है।

"इङ्गलेन्ड और भारतवर्ष"—इस में इन्हों ने ईसवी सन के ५५ वर्ष पूर्व से अर्थात् रोम देशाधिपति "ज्यूलियस सीज़र" के समय से इङ्गलैंड तथा भारतवर्ष की तुलना करते हुए दोनों देशों की वर्तमान अवस्था तथा उस का कारण अच्छी रीति से वर्णन किया है।

"ईशू ख्रीष्ट और ईश कृष्ण"—इस प्रबंध के आदि में कवि ने कहा है कि "भारतभिक्षा में 'भारत भुज बलि लहि जग रक्षित, भारतशिक्षा लहि जग शिक्षित' लिखा है आगे उसी का हम प्रमाण देना चाहते हैं।" इस प्रबन्ध में इन्हों ने यह दिखलाया है कि संसार के धर्म्माचार्य्य मात्र ने भारतवर्ष की छाया लेकर अपने २ ईश्वर, देवता, धर्म्मपुस्तक, धर्म्म, नीति,

और चरित्र निर्माण किये हैं। जितने धर्म्म प्रचलित थे या हैं, वे सब वैदिकों का अनुगमन है वा बौद्धों का। इसी में इन्हीं ने यह भी दिखलाया है कि ईश्वरवाची शब्द गाड ( God ) भी इसी भारतवर्ष का है क्योंकि उत्तरीय देशों में गौतम को गाडमा कहते हैं। इसी प्रकार बुद्ध से बुत, हर्म्य से हरम, शम्भु से सनम, निकला है और फिरिश्ता पार्षद का एवं गैब्रिल ( जिबराइल ) गरुड़ का अपभ्रंश है। और हिन्दूधर्म्म तथा विदेशीय धर्म्माख्यायिकाओं की समालोचना कर के यह भी दिखलाया है कि योरुप की प्राचीन देवी मिनर्वा हम लोगों की भगवती दुर्गा, अपोलो कृष्ण, और जुपिटर इन्द्र के प्रति मूर्ति हैं। इन सभों की तुलना में इन्हीं ने अपूर्व चमत्कारी दिखलाई है जो पुस्तक ही देखने से ज्ञात होती है।

"भूकम्प"—इस में भूकम्प के पुराणोक्त कारण का समर्थन विज्ञान ( साइन्स ) द्वारा किया गया है।

"त्योहार"—इस में सलोनों, विजयदशमी, दीपावली और होली का वर्णन करते हुए कवि ने इन त्योहारों के लाभदायक गुणों को विज्ञान और स्वास्थ्यरक्षा ( Sanitation ) के अनुकूल होना सिद्ध और इन के प्रचार करने में ऋषियों की बुद्धि की चमत्कारी का प्रतिपादन किया है।

"होली"—इस में बसन्तपंचमी और होली में पीले वस्त्रादि के पहिनने, सम्वत् जलाने, एवं हंसी तफ़रीह करने के लाभ को भी साइंस और वैद्यक से सिद्ध किया है।

"अंकमयजगत"—यह एक अति क्षुद्र लेख है, परन्तु इस में एक अपूर्व ढंग से इन्हों ने २ से करोड़ तक को लिया है और अन्त में लिखा है "अपने २ लाखों में सब बहक रहा है, लोगों को इस गोरखधन्धा जानने की अभिलाषा हो कहां? कुछ ध्यान में न आया। अनेक करोड़ किया उस एक की महिमा का अन्त न पाया।"

"भगवतस्तुति"—इस में छव छोटी २ स्तुतियां हैं, किन्तु इन प्रत्येक की रचना में कवि ने कुछ विचित्रता दिखलाई है। पहिले में ऐसे अनुविलोम शब्द हैं जो उलट कर अपने स्वरूप ही में रहें, दूसरे में एसे अनुलोम विलोम शब्द हैं जो बदल कर दूसरे शब्द हो जायं, तीसरे में ऐसे शब्द हैं जो आदि के अक्षरों को एक नियत रीति पर बदलने से दूसरा अर्थ दें, चौथे में ऐसे शब्द हैं जिन के ल को स करने से विपरीत अर्थ हो, पांचवें में विना मात्रा के सब शब्द हैं, और छठें में सब शब्द ह्रस्व मात्रा के हैं।

"सूर्य्योदय"—इस में कवि ने उदयकाल के सूर्य्य की शोभा वर्णन में उपमा की लड़ी बांध दी है। एक ही वस्तु की सैकड़ों उपमा दी है। गद्य में पद्य की छटा दिखलाई है। पाठकों के अवलोकनार्थ उस का कुछ अंश यहां उद्धृत कर दिया जाता है।

"देखो सूर्य्य का उदय हो गया। अहा! इस की शोभा इस समय ऐसी दिखाई पड़ती है मानों अन्धकार को जीतने को दिन ने यह गोला मारा है ...वा आकाश का यह कोई बड़ा लाल कमल खिला है..., वा काल के निर्लेप होने की सौगन्ध खाने को यह तपाया हुआ लोहे का गोला है, वा उस बड़े आतिशबाज़ का जिस ने रात को अद्भुत गंज सितारा छोड़ा या यह दिन का गुब्बारा है...या रात को सुख पाने वाली दिन की वियोगिनी होने वाली स्त्रियों की वियोगाग्नि का कुंड है,...वा काल खिलाड़ी का यह लाल पतंग है, वा समय रेल की आगमनसूचक यह आगे की लाल लालटेन है... वा समयरूपी चालान की पेटी पर यह लाह की मोहर है, वा आकाशरूपी दिगम्बर का भीख मांगने का यह तांबे का कटोरा है..., वा अंधेरे से लड़ने वाले चन्द्रमावीर की यह खून लगी ढाल है, वा दिशकामिनी का यह सोने का कर्णफूल है,...वा उस हठीले बालक के खेल की यह चकई है जो उस की आशारूप डोर पर ऊंची नीची हुआ करती है,...वा उस दरबार के नज़र देने का यह घंटा है..., वा सूर्य्यवंशियों के अभिमान की गठरी है" इत्यादि। जिस को इस उपमावली की बहार देखनी हो वह स्वयं इस प्रबन्ध का पाठ करे।

ज़हीरफ़ारयाबी ने एक क़सीदा में जो दूज के चन्द्रमा का वर्णन किया है वह नोट * में उल्लेख किया गया है। यह क़सीदा भी निसंदेह उत्तम है,

---

* چون بر زمین طلیعه شب گشت اشکار * افاق ساخت کسوت عباسیان شعار
پیدا شد از کنارۂ میدان اسمان * شکل هلال چون سر چوگان شهریار
دیدم ززر پخته برین لوح لاجورد * نونے که گوئیا بقلم کرد زرنگار
روے فلک چولجۂ دریا و ماه نو * مانند کشتي که ز دریا کند گذار
یا همچو یونس امد بیرون زبطن حوت * افتاده بر کنارہ دریا نحیف و زار
یا بر مثال ماهي یونس [میان] اب * اهنگ در کشیدن او کرده در کنار
من با خود به حجره خلوت شتافتیم * گفتم که اے نتیجه الطاف کردگار

किन्तु चन्द्रमा की उपमा बाबू साहिब वर्णित सूर्य्य की उपमा का शतांश भी नहीं कहा जा सकता।

"सरस्वती" पत्र में भी जो पद्यवद्ध चन्द्रमा की कविता छपी है वह भी इस सूर्य्योदय लेख को नहीं पहुंच सकती।

---

ان شاهد از کجاست که این چرخ شوخ چشم * از گوش او برون کند این نغز گوشوار

باز این چه شکل بوالعجب و نقش نادرست * کز کارگاه غیب همی گرد و آشکار

گردون زبا زوي که کشودست این طراز * گیتي رساعد که ربودست این سوار

گر جرم کوکب است چرا شد چنین دوتا * ور پیکر مه ست چرا شد چنین نزار

اعل سمند شاه جهان ست کاسمال * هرماه بر سرش نهد از بهر افتخار

# त्रयोदश परिच्छेद ।

## अन्य भाषा की कविता ।

इस कियारी की ओर देखने से हमारे साहित्य माली की और भी प्रवीणता प्रगट होती है । हम देखते हैं कि इन्हों ने भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों की साहित्यवाटिका के फूल पौधों से भी अपनी साहित्यवाटिका को सुशोभित किया है। अर्थात् यह केवल हिन्दी तथा संस्कृत भाषा ही के कवि और पंडित नहीं थे, वरंच तैलंग तथा तामीली छोड़ कर भारतवर्षीय यावन्मात्र भाषाओं के ज्ञाता और कवि थे । परन्तु हिन्दी भाषा की काव्यरचना में अपने समय के अद्वितीय माने जाते, तथा "नागरी के नाह" कहलाते थे । और विलक्षणता यह, कि हिन्दी की उन्नति के लिये तन मन धन सर्वस्व अर्पण करने पर भी अरबी फ़ारसी के परमानुरागी थे ।

इन्हों ने "कुरानशरीफ़" का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया था और उस को समुच्चय प्रकाशित करने के निमित्त "कविवचनसुधा" में सूचना भी दी थी । कदाचित् चाहक ग्राहक के अभाव से वह अनुवाद मुद्रित नहीं हुआ और यदि हुआ भी हो तो हम को दृष्टिगोचर नहीं हुआ । हां " कुरानशरीफ़ " और "कुरानदर्शन चक्र" अवश्य देखने में आया है जिस में इन्हों ने कुरानशरीफ़ का स्वल्प अनुवाद तथा कुरान के सर्व पर्व और उस के विषय और आयतों की संख्या आदि का एक चक्र प्रकाशित किया है ।

इन्हों ने एक मशायरा ( उर्दूकवि समाज ) भी संस्थापित किया था और स्वयं भी उर्दू भाषा की कविता किया करते थे। उर्दू की कविता में " रसा " इन का तखल्लुस ( उपनाम ) था। इन्हों ने अच्छी ग़ज़लों को संग्रह कर के " गुलज़ारे पुर बहार " नामक पुस्तक छपवाई थी जिस में इन की बनाई हुई भी कई एक ग़ज़लें हैं, और जिस की तीसरी आवृत्ति सं० १८४० में हुई थी। इन की नीचे लिखी हुई ग़ज़ल कानपुर से प्रकाशित " बहारगुलशन " नामक पुस्तक में पाई गई।

" दिल मेरा तीरे सितमगर का निशाना हो गया ।

आफ़ते जां इश्क़ में मेरे दिल लगाना हो गया ॥

फ़सले गुल में भी न कुछ सूरत रिहाई की हुई ।

क़ैद में सय्याद मुझ को इक ज़माना हो गया ॥
पास रुसवाई से देखो पास आ सक्ते नहीं।
रात आई नींद का तुम को बहाना हो गया ॥
ख़्वाब ग़फ़लत से ज़रा देखो तो कब चौंके थे हम।
क़ाफ़िला मुल्के अदम को जब रवाना हो गया ॥
ख़ाकसारी ने दिखाया बाद मुर्दन भी उरूज।
आसमां तुर्बत प मेरे शामियाना हो गया ॥
बाद मरने की ख़बर को कौन आता है 'रसा'।
ख़त्म बस कुंजे लहद तक दोस्ताना हो गया ॥

और भी इन की कई ग़ज़लें और अशआर नीचे लिखे जाते हैं।

कई दिन से ख़याले गेसूए जानान् रहता है।
परीशां रात दिन यारब दिले दीवाना रहता है ॥
बरंगे चश्मे नरगिस दीदए मस्ताना रहता है।
हमेशा साक़िया गरदिश में यां पैमाना रहता है ॥
फंसायेगा दिले वहशी को शायद दाम गेसू में।
कि बेढब आजकल दस्ते सनम में शाना रहता है ॥
हमेशा रहते हैं कब आशिक़ ओ माशूक़ हमसुहबत।
मगर इस इश्क़ का दुनिया में इक अफ़साना रहता है ॥
शरीके वक़्त बद देखा न हम ने ऐ "रसा" कोई।
यगाना जो है वह भी सूरते बेगाना रहता है ॥

---

अजब जोबन है गुल पर आमदे फ़स्ले बहारी है।
शिताब आ साक़िया गुलरू कि तेरी इन्तज़ारी है ॥
रिहा करता है सैयादे सितमगर मौसिमे गुल में।
असीराने क़फ़स लो तुम से अब रुख़्सत हमारी है ॥

किसी पहलू नहीं आराम आता तेरे आशिक़ को।
दिले मुज़तिर तड़पता है निहायत बेक़रारी है॥
सफ़ाई देखते ही दम फड़क जाता है बिस्मिल का।
अरे जल्लाद तेरी तेग़ में यह आबदारी है॥
दिला अब तो फ़िराक़े यार में यह हाल है अपना।
कि सर ज़ानू प है औ खून दिल आंखों से जारी है॥
इलाही खै़र कीजो कुछ अभी से दिल धड़कता है।
सुना है मंज़िले औवल की पहिली रात भारी है॥
"रसा" महवे फ़साहत दोस्त क्या दुश्मन भी हैं सारे।
ज़माने में तेरे तरज़े सुख़न की यादगारी है॥

---

आगई सिर पर क़ज़ा लो सारा सामां रह गया।
ए फ़लक क्या क्या हमारे दिल में अरमां रह गया॥
बाग़बां है चार दिन की बाग़ आलम में बहार।
फूल सब मुरझा गए ख़ाली बयाबां रह गया॥
इतना एहसां और कर लिल्लाह ऐ दस्ते जनूं।
बाक़ि गरदन में फ़क़त तारे गिरेबां रह गया॥
याद आई जब तुम्हारे रूए रौशन की चमक।
मैं सरासर सूरते आईना हैरां रह गया॥
ले चले दो फूल भी इस बाग़ आलम से न हम।
वक़्त रहलत हैफ़ है ख़ाली ही दामां रह गया॥
मर गए हम पर न आए तुम ख़बर को ए सनम।
हौसिला सब दिल का दिल ही में मेरी जां रह गया॥

नातवानो ने दिखाया ज़ोर अपना ए 'रसा'।
सूरते नक़्शे क़दम मैं बस नुमायां रह गया॥

---

फिर मुझे लिखना जो वस्फ़े रूए जाना हो गया।
वाजिब इस जा पर क़लम को सिर झुकाना हो गया॥
ए अजल जलदी रहाई दे न अब ताख़ीर कर।
ख़ानए तन भी मुझे अब क़ैदख़ाना हो गया॥
तौसने उमरे रवां दम भर नहीं रुकता 'रसा'।
हर नफ़स गोया इसे इक ताज़ियाना हो गया॥

---

दख़्ल पैमाई का गर क़स्द मुकर्रर होगा।
हर सरेख़ार मए आबलः नश्तर होगा॥
इलक़ए चश्म सनम लिखके यह कहता है क़लम।
बस के सरकज़ से क़दम अपना न बाहर होगा॥
दिल न देना कभी इन संगदिलों को यारो।
चूर होवेगा जो शीशा तहे पत्थर होगा॥
ए 'रसा' जैसा है बरगश्ता ज़माना हम से।
ऐसा बरगश्ता किसी का न मोक़द्दर होगा॥

---

जहां देखा वहां मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है।
उसी का सब है जलवा जो जहां में आशकारा है॥
तेरा दम भरते हैं हिन्दू अगर नाक़ूस बजता है।
तुम्हीं को शेख़ ने प्यारे अज़ां देकर पुकारा है॥
न होते जलवःगर तुम तो य गिरजा कब का गिरजाता।
नसारा को भी तो आख़िर तुम्हारा ही सहारा है॥

तुम्हारा नूर है हर शै में कह से कोह तक प्यारे ।
इसी से कहके हरहर तुम को हिन्दू ने पुकारा है ॥
गुनह बख़शो रसाई दो 'रसा' को अपने क़दमों तक ।
बुरा है या भला है जैसा है प्यारे तुम्हारा है ॥

---

अजीबो रङ्ग अबरू पर नहीं उस के नुमायां है ।
अजीबो म्यान में है मगरबी तलवार शोखी में ॥

---

हूं बलागर कि दमे नज़ए मेरी बालीं पर ।
मौत भी आई तो अंगुश्त बदन्दां आई ॥

इन्हों ने सन् १८८३ ई० में "क़ानून ताज़ीरात शौहर" उर्दू भाषा में लिखा जिस की तारीख़ का क़िता यह है :—

چو گردد این ظرافت نامه تصنیف * که باشد حرف حرفش در و گوهر
زروی آبرو شد عیسوی سال * نکو قانون تعزیرات شوهر

इस की समालोचना में "हिन्दुस्तानी लखनऊ" नामक समाचारपत्र ने लिखा था कि "मुसन्निफ़ ने एक ज़राफ़त के पैराए में वहमी औरतों का पूरा नक़शा खींच दिया है। यह दिल बहलाने का निहायत उमदा नुसखा है। हम बाबू साहिब से सिफ़ारिश करते हैं कि वह एक "क़ानून औरत" का भी बना दें। जुर्माना और क़ैद दोनों शौहर के वास्ते बाबू साहिब ने निहायत उमदा तजवीज़ किया है। बाबू साहिब की तसनीफ़ात और तालीफ़ात हिन्दी ज़बान में कसरत से हैं बल्कि अगर सच कहा जाय तो हिन्दी की तरक़्क़ी आप ही से ख़याल करना चाहिये। अगर बाबू साहिब तकलीफ़ गवारा कर के अपनी कुल तसनीफ़ात उर्दू में तर्जुमा कर दें तो बिला शक एक बड़ा इहसान् उर्दू पढ़े हुए पब्लिक पर उन का होगा। उर्दू ज़बान बिलकुल नाटकों से ख़ाली है। लेकिन हम को उमीद है कि अगर ऐसे ही दो चार लायक़ फ़ायक़ शख़्स अपने क़ीमती वक़्त को इधर सर्फ़ करेंगे तो बहुत कुछ दावा इस ज़बान को होगा। जिस वक़्त हम बाबू साहिब को "नीलदेवी" या "सत्य हरिश्चन्द्र" वग़ैरह नाटकों को देखते हैं तो एक क़िस्म का अफ़सोस होता है और हमारे अफ़सोस की यही वजह है"

हरिश्चन्द्र विरचित एक गुजराती भाषा की कविता भी देखने में आई है जो यहां पर उद्धृत की जाती है।

"आवो आवो भारत राज, भारत जोवाने।
दई दरसन दुख एनूं, जनम जनमनो खोवाने॥
ज्यम चन्द्रोदय जोई, चकोर जिय राचे रे।
ज्यम नव घन भातां, लखी मोर बन नाचे रे॥
तेहूं भारतवासी जनो, तवागम चाहे जी।
लखि मुख ससि राजकुमार, मुदित मन माहे जी॥
आवो आवो प्यारा राजकुमार, नई दऊं जावा ने।
वाला भारत मां सुख बसो, सनेह बधावा ने॥
नई भियूं प्रानप्रिय आजे, अरज करूं बोली ने।
देऊं आज लखाड़ी तमने, हिरदो खोली ने॥
म्हारा भारतवासी अनाथ, नाथ बने नाथे जी।
तेथी कोंवर बिराजो अहूंज, अम्हारे साथे जी॥
ज्यारे जवन जलधि जले, पृथीराज रवि नास्यौ रे।
आजे त्यार थकी नहीं भारत, तेज प्रकास्यौ रे॥
ते तुव पद नख ससि किरणे, आयो आयो जी।
फरी फस्यो भाग्य भारत नां, आनन्द छायो जी॥
वाला दीठड्यौ नव मुखचंद, कामगगारा नैणा थे।
वारो श्रवण पड्या श्रवणे, तव अमृत वैणा वे॥
आजे उमग्यो आनन्द रस सुख, चारे पासे छायो छे।
तेथो तव जस परम पवित्र, कवि ये गायो छे॥

पंजाबी भाषा की कविता :—

तैंडा छोरी खेल मैंडे जीउन भांवदा। तू वारी कोई दी सरम न करंदा बुरीवे गालियां गांवदा॥ पाय पवीर नैण बिच

माडे वंसो निलज बजांवदा ॥ हरीचन्द मैनू लगी लड़ तेंड़ो तू नहिं आसपुरांवदा।

वेदरदो वे लड़वे लगी तेंड़ें नाल। वेपरवाहो वारीओ तू मेरा साहबा असी हुयों विरह विहाला। चाहन वाले दी फिकर न तुझ नू गल्लों दा ख्याव न ख्याल। हरीचन्द तदबीर न सुझदी आशक वैतलमाल।

माड़वारी भाषा की कविता—धमार देश :—

साडूला म्हारो भीजे न डारो रंग ॥ ध्रु० ॥ मतिनाखो गुलाल आंखिन में सौखा छौकिन रौढ़ ॥ १ ॥ नाम लेकू म्हारो मति गावो गारी संग वजाडू कै चंग। हरीचन्द मद माल्यो मोहन मति लागो म्हारे संग ॥ २ ॥

वेगा आवो प्यारा बनवारो म्हारो ओर। दोन वचन सुनतां उठि धावो केकन करहु अवार ॥ १ ॥ कृपासिंधु छाड़ो निठुराई अपनो विरद सम्भारो। थाने जग दोन दयाल कहै छै क्यों म्हारी सुरति बिसारी ॥ २ ॥ प्राणदान दीजै मोहि प्यारा छौंकूँ दासी थारी। क्यों नहि दोन वैण सुनो लालन कौन चूक छे म्हारी। तलफैं प्रान रहैं नहिं तन मै विरह विथा वढ़ी भारो। हरीचन्द गहि बांह उवारो तुम तो चतुर विहारी ॥ ३ ॥

स्यामाजी देखो आवे छै थारो रसियो। कछु गातो कछु सैन बतातो कछु लखि कै हंसियो ॥ मोर मकुट वाके सीस सोहणों पीताम्बर कटि कसियो। हरीचन्द पिय प्रेम रंगीलो थांके मन वसियो ॥

अब हरिश्चन्द्र विरचित बंगभाषा की कुछ कविता नीचे लिखी जाती है:—

प्राननाथ कि बले छिले। ए दारुण ज्वाला हृदे दिन गो दिले॥ हृदय माझेते राखिब तोमाय। सतत बलिते नाथ हे आमाय॥ से सब कथन रहिल कोथाय। भेबे देख प्रान कि करि ले॥

हेरिब सतत सखी कालई बरन। मने पड़े जेन सदा से नील रतन॥ मृगमद दिब सिरे कज्जल नयन तोरे। नित्य नील वर्ण चीरे आच्छादिब तन॥ हरिश्चन्द्र मुख सदा कृष्ण नामे आछे साधा। से प्रेमे अंतर बांधा कृष्ण पदे आछे मन॥

आमाय भाला बेसे आर तोमार काज नाई। तुमि अन्य प्रानज्वले आमाय भालो बास कोले॥ सदा भासि आंखि जले हृदे नाना दुःख पाई॥ बिदाय दाओ गुनमनी सजब एबे संन्यासिनी। हब नाथ बिदेशिनी सुख पथे दिया छाई॥ हरिश्चन्द्र प्रानधन चन्द्रिकार निवेदन। बासना एमन मन बिदेशेते प्रान जाइ॥

निभृत निशीथे सई ओ बांशी बाजिल॥ पूरित करिया बन भेदिया गगन घन। जको पाईया समीरन मधुर रवे गाजिल। स्तम्भित प्रवाह नीर ताड़ित मयूर कीर। झंका-रिया तरुगण एक तान साजिल॥ हरिश्चन्द्र श्यामबांशी स्वर कामदेव फांसी कूलबधू सुनियाइ आर्यपथ त्याजिल॥

# चतुर्दश परिच्छेद।

## अन्यविरचित ग्रंथों का प्रकाश।

हरिश्चन्द्र ऐसे माली नहीं थे जिन्हें केवल अपनी ही लगाई हुई साहित्य-वाटिका के पुष्प, पौधे तथा वृक्षादि के फले फूले रहने का ध्यान रहा हो; वरन प्राचीन तथा समकालीन अन्य साहित्यरसिकों के लगाए वृक्षादि के सुपल्लवित और पुष्पित रखने का भी इन्हें बड़ा ही ध्यान रहता था। सदा उन सबों को स्नेहजल से सिंचित रखने की चेष्टा करते थे। तात्पर्य यह कि अनेक प्राचीन तथा नवीन कवियों के उत्तम ग्रन्थों को निज व्यय से मुद्रित एवं प्रकाशित कर के रसिकों को आनन्द देते थे। यह बात ऊपर ही कही जा चुकी है कि "कविवचनसुधा" तथा "हरिश्चन्द्रमैगज़ीन" में इन्हों ने अनेक महापुरुषों के ग्रन्थ और प्रबन्धों को प्रकाशित किया था। उस के सिवाय सब से पहिले इन्हों ने निज पूज्य पिता विरचित "भारतीभूषण" ग्रन्थ शिला-यन्त्र में छपवाया था। यह एक अलङ्कार ( Rhetoric ) का ग्रन्थ है। जी० ए० ग्रियर्सन साहिब ने १८८६ ई० में जो "लालचन्द्रिका" का एक संस्करण कराया है उस में इस ग्रन्थ से सहायता ली है।*

१८६८ ई० में इन्हों ने "पावस कविता संग्रह" छपवाया था जिस में का अधिकांश इन के पिता ही की पावसऋतु की कविता संगृहीत हुई है।

इन्हों ने सन् १८७० ई० में कवि आनन्दघन कृत "सुजानशतक" प्रकाशित किया था जिस में कविकृत १०० उत्तम २ कविताएं मुद्रित हुई हैं।

१८७२ ई० में "सुन्दरीतिलक" सवैयों का एक छोटा सा संग्रह छपवाया था। इस का कईएक संस्करण हुआ। इस ग्रन्थ के प्रकाशित करने में भारतेन्दु ने कुछ कविताएं स्वयं संगृहीत की थीं और कुछ हनुमान कवि से संगृहीत कराई थी। पहिली बार इस में ४६ प्राचीन तथा नवीन कवियों की २६६ सवैया संगृहीत हुई थीं। फिर इन्हों ने इसे कुछ बढ़ा कर छपवाया। जब यह ग्रन्थ शिवसिंह को मिला था तब इस में ६७ कवियों की कविता

---

* I have also consulted other modern works on Rhetoric, more specially *Rasik Mohana* of Raghoonath Bhatt (1745 A. D.), the *Bharthi Bhushan* of Girdhar Dass ( 1875 A. D. ) &c.

थी, परन्तु इस के सब से अन्तिम संस्करण में तो कोई सवा सौ कवियों की १४५५ सवैया देखो जाती हैं। इस ग्रन्थ को हमारे चरित्रनायक की आज्ञा बिना भी लोगों ने छापना और बेचना आरम्भ कर दिया था, यहां तक कि टाइटलपेज पर भी इन का नाम देना छोड़ दिया। पं० मन्नालाल जी ने तो यह भी लिख दिया था "पहिले मैं किन्ह्यो रह्यो, तिलकसुन्दरी ख्यात। भूप प्रताप विनोद हित, अब सुन्दरि सर्वस्व॥" इसी कारण से भारतेन्दु से और उन से कुछ दिन मनमोटाव भी हो गया था और भारतेन्दु ने सब किसी को इस ग्रन्थ के छापने की आज्ञा दे दी थी।

१८७३ ई० में कवि हठीकृत "राधा सुधा शतक" और जनवरी १८७५ ई० में "सुन्दरीसिंदूर" कवि देव कृत कविता संग्रह, एवं रत्नहरिदास कृत "कोश-लेश कवितावली", पण्डित संतोष सिंह कृत "कवि हृदय सुधाकर", कवि आनन्दघन कृत, "सुजानशतक", गुलाब भट्ट कृत "राधा रमण शृङ्गार", सूरदासकृत "साहित्यलहरी" सटीक (अर्थात् सूरदास का कूट टीका सहित), "लालित्यलता" (दत्त कवि कृत अलंकार का ग्रन्थ) इत्यादि भाषा काव्य तथा कवि मुङ्गलभट्ट कृत "रामार्य्य", "भगवत शंका निरासवाद", दामोदर शास्त्री लिखित "बद्रिकाश्रम यात्रा" एवं "प्रतिमा पूजन विचार" संस्कृत के लेख तथा अन्य कई एक ग्रन्थ इन्हों ने छपवाया था।

इन के सिवाय "यमकसंग्रह", "मलार जयन्ती" (कजली आदि), "मला-रावली", "नई बहार" (निज पिता तथा अन्य कवि कृत गाने की चीजें) को भी प्रकाशित किया था।

श्री मन्महाराजाधिराज काशिराज श्री ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह जी के आज्ञानुसार इन्हों ने देवस्वामी अर्थात् काष्ठजिह्वा स्वामी के ग्रन्थों से चेती (घांटो) का भी संग्रह किया था। उस की भूमिका में इन्हों ने लिखा है कि "घांटो" एक स्वतन्त्र रागिनी है, जिस के प्रमाण में उस पुस्तक में इन्हों ने निम्न लिखित घांटो को उद्धृत किया है।

"ए गुनिजन मैं पूछों तोही काहे से रगिनियां ए राम घांटो कहाई। जोगिनी को घंटा से निसरी एहि से रगिनियां ए राम घांटो कहाई॥ पूस मास फागुन हूँ बीते चढ़त चइ-तवा ए राम काहे गाई। चढ़त चइतवा जोगिनी प्रगटी

केकी से चहूत में ए राम रागिनी गाई ॥ रोदन सो या में धुनि काहे निकसी सुरन सें ए राम दून चढ़ाई । घंटा में रोदन की धुनि है एहि सें उदासी ए राम या में आई ॥ रोय रही जो यह तौ काहे देव वल्लभ सो राम सब को भाई ।"

प्रतीत होता है कि इस का कोई पद छपने में छूट गया है क्योंकि अन्तिम प्रश्न का उत्तर नहीं देखा जाता।

हरिश्चन्द्र संगृहीत वा प्रकाशित सब ग्रन्थों और प्रबन्धों का पृथक् २ विवरण लिखना आवश्यक नहीं समझा जाता। जो कुछ ऊपर लिखा गया है वही बहुत है।

यद्यपि इन्होंने स्वयं अगणित पुस्तकों की रचना की थी और अन्यविरचित कतिपय पुस्तकों को प्रकाशित किया था तथापि निजरचित ग्रन्थों में काव्यों में "प्रेमफुलवारी", नाटकों में "सत्यहरिश्चन्द्र" "भारतदुर्दशा" तथा "चन्द्रावली", धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में "तदीयसर्वस्व", [illegible] "काश्मीरकुसुम" ये सब इन को अधिक रुचते थे।

अन्य रचित काव्यों में श्री जयदेवजी, देव कवि, श्री नागरी दास, श्री सूरदास, और आनन्दघन की कविता इन्हें अधिक प्रिय थी। उर्दू में वज़ीर तथा अनीस की कविता विशेष पसन्द करते थे। उन में भी यह अनीस को अच्छा कवि समझते थे।

---

# पञ्चदश परिच्छेद।

## उपन्यास।

इस साहित्यवाटिका की छवि वर्णन में उपन्यासकियारी का कुछ हाल अब तक न सुन कर पाठकों के मन में आश्चर्य होता होगा। वे सोचते होंगे कि जिस हरिश्चन्द्र ने निज साहित्यवाटिका को नाटकादिक उत्तम २ रसाल वृक्षों से सुशोभित किया, कवितालता से लहलहा दिया, विविध प्रबन्धों के फूलों से इस की छवि बढ़ाई, कोई उपन्यासकियारी इस में क्यों नहीं बनाई? आज प्राय: लोगों के मन में उपन्यास का चाव और हाथों में उपन्यास की पोथी पाते हैं। गली कूचों में उपन्यास ही उड़ रहा है। समाचारपत्रों में उपन्यास ही का इश्तिहार है, सर्वत्र उपन्यास ही का बाज़ार गर्म है। तो फिर हरिश्चन्द्र के समान साहित्य माली ने इस ओर ध्यान क्यों नहीं दिया? बात यह है, कि इन को साहित्यवाटिका में उपन्यास का सर्वथा अभाव नहीं है। इस में भी दो एक पेड़ लगे हुए हैं। उपन्यास की ओर इन का ध्यान पीछे गया था इसी से इस की बहुतायत नहीं है। परन्तु हिन्दी में उपन्यास लिखने के लिये लोगों के हृदय में अंकुर जमानेवाले यही हुए। यह बात निम्नप्रकाशित पत्र से जो इन्हों ने पण्डित संतोष सिंह जी को लिखा था पूरी प्रमाणित होती है।

"प्रियवर पण्डित संतोष सिंह जी!

निवेदन। जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गए हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ वा गोस्वामी राधाचरण जी कोई भी उपन्यास लिखें तो उत्तम है। यदि ऐसी इच्छा हो तो 'दीपनिर्वाण' नामक उपन्यास का अनुवाद हो। यह उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं है, भारतवर्ष से इस से एक बड़ा सम्बन्ध है।"

यह पत्र लिखे जाने के बाद ही लोगों की इधर रुचि हुई और कई एक उपन्यास बंगभाषा से अनुवादित हुए और नये भी लिखे गए। श्री गोस्वामी राधाचरण जी ने "सरोजिनी" और "दीपनिर्वाण" उपन्यास का अनुवाद किया। बाबू गदाधर सिंह ने "कादम्बरी" तथा "दुर्गेशनन्दिनी" का, पण्डित रामशंकर जी ने "मधुमती" का, और बाबू राधाकृष्ण जी ने "स्वर्णलता" आदि का अनुवाद किया।

"पूर्णप्रकाश व चन्द्रप्रभा" अनुवाद द्वारा के हरिश्चन्द्र ने स्वयं शोधा था; और

"राजसिंह" का पहिला परिच्छेद नवीन लिखा था और आगे का अंश केवल शुद्ध कर के प्रकाशित किया था।

इन्हों ने स्वयं एक नवीन उपन्यास "एक कहानी कुछ आप बीती और कुछ जग बीती" लिखना आरम्भ किया था और "कविवचनसुधा" में उस का कुछ अंश प्रकाशित भी हुआ था। उस में यह निज वृत्तान्त लिखना चाहते थे। परन्तु वह पूरा नहीं हुआ। "हम्मीरहठ" का प्रथम परिच्छेद लिखा था। आगे लिखने की बारी नहीं आई क्योंकि इन का स्वर्गवास हो गया। इन के बाद पं० वर प्रतापनारायण मिश्र ने उस को पूरा करने का विचार किया था पर यह भी बिना पूरा किए शिवलोक चल दिये।

सारांश यह, कि यदि इन्हों ने स्वयं कोई पूरा उपन्यास नहीं लिखा, परन्तु इस ओर लोगों की रुचि दिलाने के यही मुख्य कारण हुए। यदि यह कुछ दिन जीवित रहते तो अवश्य उत्तम २ उपन्यासों से हिन्दी का भंडार भर देते। आज प्रायः कौड़ी का तीन उपन्यास हिन्दीभण्डार में नहीं देखा जाता। नाटकों के समान उपन्यास रचना का भी यही तात्पर्य्य है कि उस से देश की कुरीतियों का सुधार हो, उस से दैशिक तथा सामाजिक गुण दोष का परिचय हो, किसी विशेष समय की पूरी अवस्था प्रकटित हो, एवं देश की रीति व्यवहार का ज्ञान हो, जैसा बङ्गभाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि के उपन्यासों में कुछ पाया जाता है जिन के हिन्दी अनुवाद करने का अधिकार बाबू महाशय ने हमारे चरित्रनायक की योग्यता देख कर इन्हीं को दिया था। परन्तु इस प्रकार का उपन्यास हम को हिन्दी में बहुत कम दृष्टिगोचर हुआ। सब से अधिक प्रचार "चन्द्रकान्ता" उपन्यास का हुआ और उस के रचयिता ने उस से बहुत कुछ लाभ भी उठाया इस में किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं, परन्तु हमारे जानते वह उर्दू का फ़िसानेअजाएब या अलिफ़लैला ही कहा जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा। हम आशा करते हैं कि उपन्यासलेखक महाशयगण उत्तम २ उपन्यासों से देश तथा हिन्दीभाषा का उपकार करेंगे। केवल प्रणय कहानी से युवक हिन्दी रसिकों का मन नहीं लुभावेंगे, और उन्हें सत्यानाश नहीं करेंगे। गूढ़ाशयपूर्ण उपन्यासों में यदि कुछ प्रणयकहानी भी हो तो कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु लेखक को इस ढंग से रचना करनी चाहिए कि पाठक के चित्त पर मुख्य बात ही का प्रभाव जमने पावे और प्रणयकथा अपना रङ्ग न जमा सके।

# षोडश परिच्छेद ।

## लेखनरीति ।

पूर्वोक्त कई एक परिच्छेदों में पाठकों को हरिश्चन्द्र की विद्वत्ता, बहुज्ञता तथा सत्कविता का पूरा परिचय और इन की रचनाशक्ति का हाल भी विदित हो गया होगा। अब इन की पुस्तक इत्यादि लिखने की रीति का वर्णन करना उचित है।

किसी लेख को लिख कर यह उस को फिर दूसरी बार नहीं देखते थे वही हस्तलिपि छपने को भेजी जाया करती थी। प्रूफ़शीट को कापी से नहीं मिलाते थे। इन का लिखने का काम प्रायः समय ही पर हुआ करता था, तौ भी उस में त्रुटि कभी नहीं पाई जाती थी। "अन्धेरनगरी" और 'बलियावाला लेकचर' एक २ दिन में लिखा गया था। " विजयिनी विजय वैजयन्ती " की कविता सभा होने के दिन रची गई थी।

लेखनी ऐसी द्रुतगामिनी थी कि उर्दू और अंगरेज़ी के लेखक भी तेज़ लिखने में इन से टक्कर नहीं खा सकते थे। केवल हिन्दी ही इतनी शीघ्र नहीं लिखते थे बरन फ़ारसी, महाजनी, गुजराती इत्यादि सब भाषा अद्भुत शीघ्रता से लिख लेते थे। लोगों से बातें करते जाते और लेखनी बेधड़क चलती जाती थी। उस की चाल में कभी रुकावट नहीं होती थी। इस पर भी अक्षर बड़ाही सुन्दर होता था। इन की यह लीला देख कर डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने इन को Writing Machine अर्थात् लिखने की कल कहा था।

इन के समय का अधिकांश भाग लिखने पढ़ने ही में व्यतीत होता था। कदाचित् ऐसा कोई काल न रहा होगा कि इन के पास लिखने की सामग्री न रक्खी रही करती हो। दिन में लिखने को कौन कहे प्रायः रात को भी उठ २ कर लिखा करते थे। जब कोई नई बात सूझी तभी उस को कलम कागज़ के हवाले किया। बाबू राधाकृष्ण जी लिखते हैं कि " कई बार ऐसा हुआ कि रात को नींद टूटी और कुछ कविता लिखनी हुई, कलम दावात नहीं मिली तो कोयले वा ठीकरे से दीवार पर लिख दिया करते थे सबेरे हम लोग उस की नकल कर लेते थे।"

लिखने की अच्छी सामग्री की विशेष आवश्यकता नहीं रहा करती थी। कैसा ही कलम, कागज़, रोशनाई हो, कोई चिन्ता नहीं। कलम न मिलने पर

तिनका ही से काम लिया जाता था। कभी २ स्वप्न में भी कविता की ओर मन दौड़ जाता था और स्वप्न ही में कविता की रचना हो जाती थी। इन की स्वप्न की बनाई हुई कई एक लावनियां "प्रेमतरङ्ग" में प्रकाशित हुई हैं। उन लावनियों को विचारपूर्वक देख कर स्वप्नावस्था और जाग्रतअवस्था की पूर्ति से मिलान करने पर इन का गुण और भी स्पष्ट प्रगट होता है।

सपने में बनाई हुई लावनियों का कुछ अंश यहां लिख देते हैं। :—

"मोहि छोड़ि प्रान पिय कहूँ अनत अनुरागे। अब उन बिन छिन २ मैंन दहन दुख लागे॥ रहे एक दिन वै जो हरि ही के संग जाते। वृन्दावन कुञ्जन, रमत फिरत मदमाते॥ दिन रैन श्याम सुख मेरे ही संग पाते। मुझे देखे बिन इक छन प्यारे अकुलाते॥ सोई गोपीपति कुबरी के रस पागे। अब उन बिनु छिन ॥१॥ कहां गई श्याम की वे मनहरनी बातें। वह हंसि २ कंठ लगावनि करि रस घातें॥ वह जमुनातट नव कुञ्ज २ द्रुमपातें। सपने सी भई अब वे विहरन की रातें॥ सहि सकत न कठिन वियोग अगिन तन दागे। अब उन बिनु छिन० ॥२॥' इत्यादि।

पुन: × × × × ×

"मतलब की दुनिया है कोइ काम नहीं कुछ आता है। अपने हित को, मुहब्बत सब से सभी बढ़ाता है॥ कोई आज औ कल कोई सब छोड़ के आख़िर जाता है। ग़रज़ कि अपनी, ग़रज़ को सभी मोह फैलाता है॥ जब तक इसे जमा समझे थे तब तक थे सब कुछ खोए। मुंह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए ॥२॥" इत्यादि।

अन्य:—पिय प्राननाथ मनमोहन सुन्दर प्यारे। छिन

हूँ मत मेरे छोडु इन सों न्यारे॥ घनश्याम गोप गोपीपति गोकुलराई। निज प्रेमीजन हित नित २ नव सुखदाई॥ वृन्दावनरक्षक ब्रजसरवस बलभाई। प्रानहुं ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई॥ श्री राधानायक यसुदानन्द दुलारे। छिनहूँ० ॥ इत्यादि ॥

हरिश्चन्द्र केवल विख्यात कवि और ग्रंथकर्त्ता ही नहीं वरन बड़े समालोचक भी थे। इस बात को कुछ हम ही नहीं कहते। डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन साहिब महोदय ने भी "दी माडर्न लिटरेरी हिस्ट्री आव हिन्दुस्तान" ( The modern Literary History of Hindustan ) में यह बात स्पष्ट लिखी है।

एक पत्र से ज्ञात होता है कि श्रीमान्महाराज मांडा नरेश ने भी स्वरचित "अक्षिविलास" ग्रंथ इन के पास भेज कर इन से सम्मति मांगी थी और लिखवा भेजा था कि "ऐसी बातों में आप की सम्मति एक भारी प्रमाण है।"

डुमरांवराज्य का इतिहास लिखने के लिए दीवान जयप्रकाश लाल साहिब ने इन से सामग्री प्रस्तुत करने की प्रार्थना की थी और लिखा था कि "यह पुस्तक आप की सम्मति से लिखी जायगी और इस में आप को साहाय्य प्रदान करना होगा।"

---

# सप्तदश परिच्छेद ।

## समाजसुधार ।

हिन्दी भाषा एवं अन्य विद्याओं के प्रचार के साथ २ समाजसुधार की ओर भी इन की पूर्णदृष्टि थी । इन के ग्रन्थ तथा लेखों के अवलोकन से स्पष्ट भान होता है कि बड़े २ अग्रसर समाजसंशोधकों में इन की गणना होनी चाहिए । इन को निश्चय था कि देशोन्नति समाजसुधार ही पर निर्भर है, और यह भली भांति समझते थे कि इस का सुधार ऋषिवंशधरों की सहायता बिना सर्वथा असम्भव है ; क्योंकि सब का मूल कारण धर्म्म है और धर्म्म की उन्नति बिना कुछ नहीं हो सकता और इस के मुख्य सहायक यही लोग ठहरे।

देशवासियों की निरुद्यमता एवं निरुत्साहिता पर यों तो अनेक स्थानों में व्यङ्गोक्ति की ही है, किन्तु बलिया के व्याख्यान में इन्हीं ने स्पष्ट रूप से कहा था कि "यह समय ऐसा है कि मानो उन्नति की घुड़दौड़ हो रही है । अमेरिकन अङ्गरेज़, फ़्रान्सीस, तुर्की, ताज़ी, सब सर्पट दौड़ जाते हैं, उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े २ टाप से मिट्टी खोदते हैं । औरों को जाने दीजिए, जापानी * टट्टुओं को भी हांफते हुए दौड़ते देख कर भी लाज नहीं आती । ब्राह्मणों ही के ज़िम्मे यह काम था कि देश में नाना प्रकार की विद्या और कला फैलावें । अब भी यह लोग चाहें तो हिन्दुस्तान प्रतिदिन कौन कहे, प्रतिक्षण बढ़े । पर इन्हीं लोगों को सारे संसार के निकम्मे पने ने घेर रक्खा है " इत्यादि ।

इन्हीं ने यह वाक्य ब्राह्मण तथा अन्य भारतवासियों के उत्तेजित करने ही के निमित्त कहा था । समाज में यह क्या २ सुधार चाहते थे इस को इन के ग्रन्थों ही से देखना आवश्यक है । इन्हीं ने प्रथम तो कहा है कि "तुम्हारे यहां धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाजगठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं···सो इन बातों को अब एक ऐर आंख खोल कर देख और समझ लीजिए कि फ़लानी बात उन बुद्धिमान ऋषियों ने क्यों बनाई और उन में देश और काल के जो अनुकूल और उपकारी हों उन को ग्रहण कीजिए । ···वैष्णव

---

* यदि आज हरिश्चन्द्र जीवित होते तो जापानियों के सब प्रकार की उन्नति देख कर कैसा आह्लादित होते और साथ ही उस के भारत की दुरवस्था पर और भी कैसा आंसू बहाते ?

ब्राह्म इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का बैर छोड़ दें। यह समय इन झगड़ों का नहीं है। हिन्दू, जैन, मुसल्मान सब आपस में मिलिए; जाति में कोई चाहे ऊंचा हो चाहे नीचा हो सब का आदर कीजिए; जो जिस योग्य हो उस को वैसा ही मानिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार कर के उन का जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।" इन का आशय यह था कि काल के अनुसार जिस विषय में सुधार आवश्यक हो उस को सुधारना चाहिए।

इन का यह सुविचार था कि लड़कों को बालकपन में कुसंगति से निवारण कर के उन को अच्छी शिक्षा दी जाय। मुसलमानों के प्रति इन्हीं ने कहा है कि "लड़कों को सत्यानाश मत करो। होश सम्हाला नहीं कि पट्टी पारली, चुस्त कपड़ा पहिना और लगी ग़ज़ल गुन गुनाने 'शौक़ तिफ़्ली से मुझे गुल के जो दीदार था। न किया हम ने गुलिस्तां का सबक़ याद कभी"। परन्तु यह वाक्य मुसलमानों ही के लिये नहीं था। सच पूछिए तो सबों के लिए था।

बालविवाह के भी यह विरोधी थे। "भारतदुर्दशा" में लिखा है "बालकपन में व्याहि पिरीत बल नास कियो सब।"।

विधवा विवाह में इन की क्या सम्मति थी हम निश्चय नहीं कह सकते क्योंकि एक स्थान में लिखा है "विधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचार्यो।" और "भ्रूणहत्या" * नामक ग्रन्थ भी लिखा है। एवं एक स्थान में विद्यासागर पर व्यंगोक्ति से लिखा है कि "सुन्दर बानी कह समझावें, विधवा गन से नेह बढावें। दयानिधान परम गुन आगर, सखि सज्जन नहिं विद्यासागर", और "विषस्यविषमौषधम्" में लिखा है कि "विधवाविवाह सब कराया चाहते हैं, इस ने सौभागवती विवाह निकाला। वाह!"

स्त्रीशिक्षा के बड़े ही पक्षपाती थे और उस के निमित्त यत्नवान् भी रहते थे। मिस् मेरी कारपेन्टर के स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी उद्योग में प्रधान सहायक थे। जब २ बंगाल, बम्बई और मंदराज प्रान्त में स्त्रियां परीक्षोत्तीर्ण होती थीं तब२ उन का उत्साह बढ़ाने के लिये उन सबों को बनारसी साड़ी आदि भेजा करते थे। कलकत्ता बिथूनकालेज की लड़कियों के लिए एक बार जो साड़ियां भेजी गई थीं उन को श्री मती लेडी रिपन ने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथ से बांटी थीं। बंगाल के डाइरेक्टर अल्फ़रेडक्राफ़् साहिब ने इन्हें आन्तरिक धन्यावाद देकर लिखा था कि जिस समय इन का उपहार बांटा गया आनन्द की

---

* यह ग्रंथ १८७५ ई० में लिखा गया।

करतलध्वनि से सभास्थल गूंज उठा था * । किन्तु स्त्रीशिक्षा के वर्त्तमान प्रणाली को पसन्द नहीं करते थे क्योंकि इन्हों ने कहा है "लड़कियो को भी पढ़ाइए, किन्तु उस चाल से नहीं जैसे आज कल पढ़ाई जाती हैं जिस से उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उन्हें शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुलधर्म सीखें, पति की भक्ति करें, और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।" इन्हों ने स्त्रियों को उपयोगी कईएक पुस्तकें भी बनाई हैं।

इन के पिताजी भी स्त्रीशिक्षा के पक्षपाती थे। टामसन् साहिब लफ्टन्ट-गवर्नर के समय जब बनारस में पहिले पहल लड़कियों का स्कूल खुला तो उन्हों ने इन की बड़ी बहिन † को प्रकाश रीति से वहां पढ़ने को भेज दिया था।

विवाह में अपव्यय करना यह बहुत बुरा समझते थे और इन्हों ने इस के रोकने की चेष्टा भी की थी। जिस समय श्री युत सर विलयम्स म्योर साहिब पश्चिमोत्तर देश के लाट थे, श्री सन्महाराज ईजानगर ने सब अगरवालों के मुख्य लोगों को बुलाकर विवाह में अल्पव्यय करने का अनुरोध किया था। उस के पश्चात बाबू साहब के उद्योग से आश्विन सं० १९३६ ( १८७९ ई० ) में भी इस बात के लिये नन्हे बाबू की धर्म्मशाला में एक सभा होकर बहुत कुछ प्रबन्ध हुआ था।

यह विवाह आदि में बुरे गीतों का गाना पसन्द नहीं करते थे, वरन मई १८८० ई० में जब इन की कन्या का विवाह हुआ तो उस समय इन्हों ने अपने घर वालो का गाना बन्द कर दिया था। जब "कविवचनसुधा" के सम्पादक ने आनन्दपूर्वक यह बात प्रकाशित की तो इन के मित्र ठाकुर जाहर सिंह ने आगरे से इन को यह पत्र लिखा था।

"मित्रवर! मैं आप को इस बात का धन्यवाद देता हूं कि आपने यह अच्छा प्रबन्ध किया कि विवाह में जो स्त्री बुरा२ गीत गाती थीं तिस की रीति उठा दी। ईश्वर सदा आप को ऐसे ही शुभ कार्य्यों की ओर रक्खे।

भाई मेरी भी मनसा है कि हमारी भी जाति में यह रीति हो जाय तो

---

* The announcement of your benefaction was received with cheers, ... ... ... Allow me to thank you sincerely on behalf of your ladies.

† इन्हीं का विवाह बनारस के बाबू जानकीदास के पुत्र बाबू माधवीर प्रसाद से हुआ था जिन के पांच पुत्र वर्तमान हैं।

अच्छा है। पर क्या करें ? समय का गीत किसी का याद नहीं क्योंकि बहुत दिन से जो इस रीति का बर्त्ताव है सो कोई अच्छा गीत आदि को स्त्री जानती भी नहीं कि किस समय क्या गाना चाहिए। इस से मेरी आप से यह प्रार्थना है कि कोई पुस्तक ऐसी बने जिस में हर समय के गीत अच्छे २ और सरल भाषा के हों य जो स्त्रियां उन को पढ़कर बुरी चाल के गीत आदि को छोड़ दें। सो यह काम सिवाय आप के हो नहीं सकता है। कृपा कर यह परोपकार का भार अपने ऊपर लेकर कोई पुस्तक रचिए। इस से देश का लाभ है और आप का यश है।"

बाबू साहिब ने अपने मित्र की इच्छानुसार कोई पुस्तक की रचना की वा नहीं यह हम को ज्ञात नहीं है, परन्तु "रामलीला" नामक पुस्तक में जो इन्हों ने एक जिवनार लिखा है वह निस्सन्देह इसी प्रकार का पाया जाता है। उस से उपदेश तथा गाली दोनों का भाव प्रगट होता है जिस के कई पद नीचे लिख दिए जाते हैं।

"सुन्दर स्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजै जू।
अगुन सगुन के अनगन गुनगन कैसे कै गनि लीजै जू॥
मायापति मायाप्रगटावन कहत प्रगट श्रुति चारी।
जो पति पितु सिसु सब में व्यापत ताहि लगे का गारी।
मातु पिता को होत न निर्नय जाति न जानी जाई।
जाको जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई॥" इत्यादि

विलायत जाने के रुकावट से यह बड़ी हानि मानते थे और "भारतदुर्दशा" में कहा भी है कि "रोकि विलायत गमन कूपमण्डूक बनायो। औरन को संसर्ग छोड़ाय प्रचार घटायो॥"

इस लिखने के सिवाय अक्तूबर १८८४ ई० में जब इलाहाबाद के किसी समाज ने एक सारस्वत ब्राह्मण और एक कायस्थ को इस प्रबन्ध से विलायत भेजा था कि वे लोग अपने धर्म से वहां रहें और परीक्षोत्तीर्ण हो कर प्रत्यागत करें, उस समय जब डिपुटी कलक्टर मु० ज्वालाप्रसाद साहिब तथा हाईकोर्ट के वकील मु० काशीप्रसाद साहिब ने इन के पास उन विलायतगामियों की सहायता के लिए लिखा था तो इन्हों ने उत्साहपूर्वक अपने इष्टमित्रों के पास

इस कार्य्य के सम्बन्ध में उर्दू में एक नोटिस घुमवाई थी और उस में लिखा था कि "इस काम में सब से जल्द और सब से ज्यादा मदद पहुंचाने की ज़रूरत है क्योंकि आज तक सिर्फ़ ज़बानी फ़ायदे के बहुत काम हुए मगर यह काम ऐसा है जिस का नतीजा कुछ दिन बाद आंखों से देखने में आवेगा और जिस का असर खास हम लोगों के मुल्क और क़ौम पर होगा।" इत्यादि

यह तो हम पूर्व परिच्छेद ही में कह आए हैं कि मांस मदिरा का प्रचार रोकने के निमित्त इन्हों ने उस समय सभा स्थापित की थी जब इस देश में कोई Abstinence Society ( मदिरा प्रचार निवारिणी सभा) का नाम भी नहीं जानता था और इस के लिए निज लेख द्वारा बहुत उद्योग भी करते थे। मांस मदिरा में लिप्त लोगों की "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" नाटक में बड़ी दुर्गति भी कराई है।

इस के अतिरिक्त, फ़ैशन, अदालत में मोक़द्दमाबाज़ी, सिफ़ारिश ( खुशामद ), फूट, डाह, स्वार्थपरता, पक्षपात, निर्बलता इन सबों को भी इन्हों ने समाजोन्नति का बाधक माना है। सामाजिक तथा अन्य दूषणों का वर्णन इन के नाटकों में विशेष कर के पाया जाता है, जिस में नाटकों के अभिनय द्वारा वे सब कुरीतियां सब लोगों पर प्रगट हों और उन के बुरे फलों को देख और समझ कर जो लोग उन दूषणों में लिप्त हैं निज चरित्र सुधारने की चेष्टा करें और अन्य व्यक्ति भी सदोपदेश पावें।

इस के सिवाय "जातीयसंगीत" ( National songs ) का प्रचार भी देशसुधार तथा देश की उन्नति के निमित्त यह एक उत्तम उपाय समझते थे, क्योंकि बड़े २ लेख वा काव्य, नाटकादि सर्वसाधारण को दृष्टिगोचर नहीं होता और छोटे २ ग्रामगीतों का प्रचार शीघ्र होता है और उसे सब लोग समझ भी सकते हैं। इसी अभिप्राय से जातीयसंगीत के प्रचार के उद्योग के निमित्त इन्हों ने मई १८७९ ई० में "क० व० सुधा में" एक विज्ञापन भी प्रकाशित किया था जो यहां पर उद्धृत कर दिया जाता है। इस से इन के मन का बहुत सा भाव स्पष्ट प्रगट होता है।

### जातीय संगीत।

"भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आज कल सोच रहे हैं उन में एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किन्तु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर

नहीं होते । इस के हेतु मैं ने यह सोचा है कि जातीयसंगीत की छोटी छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गांव गांव, में साधारण लोगों में प्रचार की जायं । यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सर्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुन कर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इस से साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है । इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे २ गीतों को संग्रह करूं और उन को छोटी २ पुस्तकों में मुद्रित करूं । इस विषय में मैं, जिन को जिन को कुछ भी रचनाशक्ति है, उन से सहायता चाहता हूं कि वे लोग भी इस विषय पर गीत वा छंद बना कर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उन को प्रकाश करूंगा और सब लोग अपनी अपनी मंडली में गाने वालों को यह पुस्तकें दें । जो लोग धनिक हैं वह नियम करें कि जो गुणी इन गीतों को गावेगा उसी का वे लोग गाना सुनैंगे । स्त्रियों को भी ऐसे ही गीतों पर रुचि बढ़ाई जाय और उन को ऐसे गीतों के गाने को अभिनन्दन किया जाय । ऐसी पुस्तकें या बिना मूल्य वितरण की जायं या इन का मूल्य अति स्वल्प रक्खा जाय । जिन लोगों को ग्रामीणों से सम्बन्ध है वे गांव में ऐसी पुस्तकें भेज दें । जहां कहीं ऐसे गीत सुनें उस का अभिनन्दन करें । इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बनैं, बरंच गवांरी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों । कजली, ठुमरी, खेमटा, कँहरवा, अद्धा, चैती, होली, सांझी, लंबे, लावनी, जांते के गीत, बिरहा, चनैनी, ग़ज़ल, इत्यादि ग्राम गीतों में इन का प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो, अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी, ऐसे जिन देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनैं । उत्साही लोग इस में जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावें, जो छपवाने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें, और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करैं । मुझ से जहां तक हो सकैगा मैं भी करूंगा । जो गीत मेरे पास आवैंगे उन को मैं यथा शक्ति प्रचार करूंगा । इस से सब लोगों से निवेदन है कि गीतादिक भेज कर मेरी इस विषय में सहायता करें ।

और यह विषय प्रचार के योग्य है कि नहीं और इस का प्रचार सुलभ रीति से कैसे हो सकता है इस विषय में अनुमति प्रकाश करके अनुगृहीत करेंगे। मैंने ऐसी पुस्तकों के हेतु नीचे लिखे हुए विषय चुने हैं। इन में और भी जिन विषयों की आवश्यकता हो लोग लिखें। ऐसे गीतों में रोचक बातें जो स्त्रियों और गँवारों को अच्छी लगें होनी चाहिए और शृङ्गार हास्य आदि रस इस में मिले रहैं जिस में इन का प्रचार सहज में हो जाय।

बाल्यविवाह—इस में स्त्री का बालकपति होने का दुःख, फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उस से अनेक भावी अमंगल, और अप्रीतिजनक परिणाम।

जन्मपत्री की विधि—इस से बिना मन मिले स्त्री पुरुष का विवाह और इस की अशास्त्रता।

बालकों की शिक्षा—इस की आवश्यकता, प्रणाली, शिष्टाचारशिक्षा, व्यवहारशिक्षा आदि।

बालकों से वर्त्ताव—इस में बालकों से योग्य रीति पर वर्त्ताव न करने से इन का नाश होना।

अङ्गरेज़ी फ़ैशन—इस से बिगड़ कर बालकों का मद्यादि सेवन और स्वधर्म विस्मरण।

स्वधर्मचिन्ता—इस की आवश्यकता।

भ्रूणहत्या और शिशुहत्या—इस के प्रचार के कारण, उस के मिटाने के उपाय।

फूट और वैर—इस के दुर्गुण, इस के कारण भारत को क्या क्या हानि हुई इस का वर्णन।

मैत्री और ऐक्य—इस के बढ़ने के उपाय, इस के शुभ फल।

बहु जातित्व और बहु भक्तित्व—के दोष, इस से परस्पर चित्त का न मिलना, इसी से एक का दूसरे के सहाय में असमर्थ होना।

योग्यता—अर्थात् केवल वाणी का विस्तार न कर के सब कामों के करने की योग्यता पहुंचाना और उदाहरण दिखलाने का विषय।

पूर्व्वज आर्यों की स्तुति—इस में उन के शौर्य्य, औदार्य्य, सत्य, चातुर्य्य, विद्यादि गुणों का वर्णन।

जन्मभूमि—इस से स्नेह और इस के सुधारने की आवश्यकता का वर्णन।

आलस्य और सन्तोष—इन की संसार के विषय में निन्दा, और इस से हानि।

व्यापार की उन्नति—इस की आवश्यकता और उपाय।

नशा—इस की निन्दा इत्यादि।

अदालत—इस में रुपया व्यय कर के नाश होना, और आपस में न समझने का परिणाम।

हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दोस्तानियों को व्यवहार करना—इस की आवश्यकता, इस के गुण, इस के न होने से हानि का वर्णन।

भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन—करुणा रस सम्वलित।

ऐसे ही और और विषय जिन में देश की उन्नति की सम्भावना हो लिए जायं। यद्यपि यह एक एक विषय एक एक नाटक उपन्यास वा काव्य आदि के ग्रन्थ बनाने के योग्य हैं और इन पर अलग ग्रन्थ बनें तो बड़ी ही उत्तम बात है, पर यहां तो इन सब विषयों के छोटे छोटे सरल देश भाषा में गीत और छन्दों की आवश्यकता है जो पृथक पुस्तकाकार मुद्रित हो कर साधारण जनों में फैलाए जायंगे। मैं आशा करता हूं कि इस विषय की समालोचना कर के और पत्रों के सम्पादक महोदय गण मेरी अवश्य सहायता करेंगे और उत्साही जन ऐसी पुस्तकों का प्रचार करेंगे।

हरिश्चन्द्र।"

इन्हों ने कई एक जातीय संगीत की रचना भी की है।

---

## अष्टादश परिच्छेद।

### चित्तविनोद वा दिलबहलाव।

बहुत से लोग यह जानने के लिये उत्कंठित होंगे कि लिखने पढ़ने के सिवाय बाबू हरिश्चन्द्र और क्या किया करते थे, इन का विशेष अनुराग दूसरी किन २ बातों में था और कौन २ वस्तु इन को अधिक पसन्द थीं, क्योंकि यह तो सर्व्वथा असम्भव है कि किसी का चित्त अहर्निशि एक ही ढंग के काम में लगे वा कोई सदैव एक ही रीति से अपना समय व्यतीत करे। इन की दिनचर्य्या के देखने से विदित होता है कि न तो यह सर्वदा एक ही स्थान में रहते और न एक ही प्रकार के कार्य्य में लगे रहते थे।

यद्यपि इन को एकान्त पसन्द था और कहीं पर एकान्त मिल जाने से बड़े प्रसन्न होते थे, तथापि ऐसा अवसर इन को बहुत कम हाथ लगता था। लोग सदा घेरे ही रहते थे। और यह इधर उधर भ्रमण भी किया करते थे। पहिले रात को प्रायः बाग़ में रहते थे, फिर दूसरे मकानों में जाते थे। सवेरे कोठी आते थे। भोजन करके दोपहर को फिर निकलते थे। कभी किसी प्रेस में, कभी गोलघर के गोस्वामी कन्हैयालाल * के निकट जाते, कभी राजा भरतपुर † से मिलते, कभी बाबू ऐश्वर्य्यनारायण सिंह ‡ से भेंट करते, किसी आराम वा उद्यान की बहार देखते, अथवा रामनगर जा कर श्री काशीनरेश

---

* इन का असल नाम लालबिहारी जी था। यह राधावल्लभीय गोस्वामी एक सुकवि थे। प्रश्नोत्तरीय रत्नमाला का इन्हों ने संस्कृत से अनुवाद किया था। उस की कविता मनोहर है। राजा शिवप्रसाद ने उस को तथा इन की अन्य कविताओं को अपने नए गुटके में छापा है। इन के यहां पुस्तक का अच्छा संग्रह था। यहां बैठ कर हमारे चरित्रनायक प्रायः कविता करते थे।

† देखो पृष्ठ ४८।

‡ श्री काशिराज के वंश में थे। काशी में इन के वंश का अब भी बड़ा मान्य है। यह बनारस इन्स्टिटियूट के संस्थापक तथा कार्य्याध्यक्ष थे। इन्सटिटियूट का अधिवेशन इन के घर ही पर हुआ करता था। उस में काशिराज, महाराज विजियानगरम्, कमिश्नर आदि सभी आते थे। इन्हों ने कई ग्रंथ भी बनाए थे। बालाबोधिनी में एक छपा भी है।

का दर्शन करते । सन्ध्या को प्रायः बाबू बालेश्वरप्रसाद * के यहां नार्मल स्कूल में जमावड़ा हुआ करता था। परन्तु जहां कहीं जाते वहां पर लिखने पढ़ने की भी कुछ चर्चा अवश्य रहा करती थी

यदि पूछा जाय कि अन्य किन २ बातों में इन का विशेष अनुराग था तो इस का उत्तर यही होगा कि संसार के सौंदर्य्य मात्र से अनुराग था। प्रकृति की सुन्दरता, वस्तुओं की सुन्दरता, कविता की सुन्दरता सभी पर न्यौछावर होते थे। राग, वाद्य, रसिकसमागम, देश २ और काल २ की विचित्र वस्तुएं, पुस्तक, चित्र इत्यादि इन के ख़ास पसन्द की चीज़ें थीं। खेल तमाशा का भी व्यसन था, परन्तु उस में भी कुछ न कुछ उपदेश, कविता और नयापन रहा करता था।

संगीत के प्रेमी होने के कारण इन्हों ने प्रसिद्ध बीणाकार हरीराम वाजपेयी को ५०) मासिक पर बहुत दिन तक अपने साथ रक्खा था। स्वयं भी कीर्तन करते थे। कंठ सुरैला था। ताल और झांझ बहुत अच्छा बजाते थे। सितार, मृदंग और तबला में उतनी दक्षता नहीं थी। इन के इस गान वाद्य पर कोई २ कभी २ चुटकी लिया करते थे जैसा कि "प्रेमयोगिनी" में माखनदास के वाक्य से प्रगट है "हाल जौन है तौन आप जानते हौ, दिन दूना रात चौगुना, अभई कल्हो हम ओ रास्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा।"

गानवाद्य के विषय में औरों का जैसा विचार हो, परन्तु इन्हों ने निज विचार को "संगीतसार" में स्पष्ट प्रगट कर दिया है जिस का वर्णन ऊपर हो चुका है।

---

* काशी के रहने वाले जाति के अग्रवाला हैं। पहिले यह नार्मलस्कूल के हेड मास्टर थे। फिर डिपुटी कलक्टर नियुक्त हुए। अनन्तर काशी नरेश के दीवान बने। अन्त में इलाहाबाद के बोर्ड औफ रेविन्यु के ज्वाइंट सिक्रेटरी रहे। यह पद आज तक किसी हिन्दुस्तानी को नहीं मिला था। हाल में पेन्शन पाई है। यह "काशीपत्रिका" नामक पत्र भी निकालते थे जो शिक्षा विभाग का पत्र था। २०० कापी उक्त विभाग में खरीदी जाती थी। काशी पत्रिका में बाबू हरिश्चन्द्र का भी लेख छपता था। भारतेन्दु इन पर बहुत स्नेह रखते थे। इन्हीं के इच्छानुसार "सत्यहरिश्चन्द्र" की रचना की थी। इन की बनाई हुई कई पुस्तकें भी हैं।

बुढ़वा मंगल के अवसर पर खूब मंगल मनाते थे। ऐसा उचित भी था, क्योंकि इस मेला का एक प्रकार से इन के घर से जन्म हुआ था। इन के पूज्यपाद पितामह एवं पिता के समय में भी इस मेला में भारी आनन्दोत्सव हुआ करता था, जिस का वर्णन पूर्व परिच्छेद में किया गया है।

बुढ़वामंगल के समय निज इष्ट मित्रों को निमन्त्रित कर के अपना कच्छा सजा कर यह आमोद प्रमोद करते थे। उस अवसर में दोनों भाइयों की ओर से मित्रों के पास जैसा न्योता बटता था उस का एक नमूना यहां पर प्रकाशित किया जाता है।

"संवत सुमंगल प्रथम मात्रा शास्त्र मंगल मानिए।
मण्डली मंगल तथा सब जगत मंगल० जानिए॥
अरि मित्र मधुमंगल महीना पाख रितु तिथि मंगली।
मंगल दिवस मंगल बिलोकन आइए मंगल रली॥

---

मंगलमय काशीस * को, लखि सदृष्टि सानन्द।
मंगलमय मंगल कियो, महा मुदित हरिचन्द॥"

---

* बुढ़वामंगल के मेला में श्रीमान् काशीनरेश का भी कच्छा पटता है। स्वयं महाराजाधिराज मेले में पधार कर अपने दर्शन से लोगों को कृतार्थ करते हैं। श्रीठाकुर जी की नाव पर भी नाच आदि का आनन्द होता है। यह मेला अत्यन्त स्वच्छ होता है और चार दिन तक श्रीगंगा जी में रहता है।

जिस साल श्रीमन्महाराज बेतिया का स्वर्गवास हुआ था उस समय काशी-नरेश मेले में पधारे थे तो सही परन्तु उन का कच्छा न पटा था और उस साल बहुत सी गुणी गायिका बनारस में बुढ़वामंगल की आशा से ठहरी थीं। उस समय हरिश्चन्द्र ने यह नोटिस दी थी कि जिन गायकियों का कहीं ठीक न हो इन के नाव पर चली आवैं, उन का यथायोग्य सत्कार किया जायगा जिस में कोई भी काशी से विमुख न जाय। कारण यह, कि इन को सब प्रकार के गुणियों का ध्यान रहता था। इसी अवसर में, "उचितवक्ता पत्र" ने लिखा था कि "यद्यपि महाराज बनारस का कच्छा न पटा था तथापि दरभंगानिवासी बाबू गंगाप्रसाद तथा श्रीमान भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के करने से ( मेला ) उत्तम प्रकार से निभ गया।"

एक स्थान में इन्हों ने जो मंगलोत्सव की छवि वर्णन की है उस का कुछ अंश यहां पर उद्धृत कर देना हमारी समझ में अयोग्य नहीं होगा, क्योंकि यह भी एक उपदेशमय लेख है और इस से भी यह बात सिद्ध होती है कि इन की लेखनी से जो कुछ जिस समय निकलता था उस में सामाजिक एवं राजनैतिक इत्यादि बातें भरी रहती थीं। इस के सिवाय जिन लोगों को बुढ़वामंगल की शोभा देखने में नहीं आई होगी वे लोग इस को पढ़कर उस का कुछ हाल जान सकेंगे और अवश्य आनन्दित होंगे। बुढ़वामंगल की छवि इन्हों ने यों दर्शाई है :—

"गंगा में चहुँ ओर सों, दीपहि दीप लखात।
नावन सों सुरसरि छिप्यो, जल नहि नेक दिखात॥
आनि परत धुनि कान में, मधुर सुरन के संग।
तैसी हीं कहुं बजि उठत, सारंग राग मृदंग॥
तैसी घूमत नाव सब, जल में झोंका खाइ।
मनु हम सों मतवार कोउ, झूमत रंग जमाइ॥
कबहुँ बीच में बजि उठत, नरसिंघा धुनि घोर।
कबहुँ नाव द्वै परसपर, लड़त मचामच सोर॥
कबहुँ जुगोड़ा नाच के, लेत बेसुरी तान।
आप हिलत बाजो हिलत, और हिलत जलजान॥
कबहुं धार जल की छुटत, दारूयंत्र अपार।
कबहुं गुबारे उड़त हैं, नभ में बांधि कतार॥

\+ + + + +

हंसत कोऊ गावत कोऊ, मगन कोऊ कोउ धीर।
कोऊ नाव बंधवावहीं, जहां नाव की भीर॥
मनु बिमान सब देव के, सुरसरि में दरसात।
कै तारन की मंडली, घूमत है या रात॥
मुनशी प्यारे लाल ने, ब्याह खरच किए बन्द।

कछु मदिरा रोकी नहीं, जो तूं सकुचत मंद ॥
इन्सिदादे हुक्करकुशी, करत यहै प्रभु म्राट।
पै कोऊ नहिं ढरकावहीं, तेरी मदिराभाट ॥

+ + + +

ब्रह्मो मैरेज बिल भयो, पास गज़ट के मांहि।
अब तो प्यालो दै अरो, क्यों भाषत है नाहि ॥
मद्य पान कर मत्त ह्वै, हमहूं देहिं असीस।
हे मेरे युवराज तुम, जीओ कोटि बरीस ॥
चित सब में चिन्ता रहित, जुरै अनन्द समाज।
रंक लही निधि तिमि प्रजहि, बढ्यो सकल सुखसाज ॥
जीओ जुग जुग निरुज ह्वै, राजकुअंर सुखकंद।
बढ़ा राज करि नास अरि, जननी सह सानन्द ॥"

इस के अतिरिक्त इन को कबूतर इत्यादि का कौतुक भी प्रिय था। शतरंज, अच्छी खेलते थे। "हरिश्चन्द्रमेगज़ीन" में शतरंज के चमत्कारी नक़शे का छपना इसका प्रमाण है।

अगस्त १८७२ ई० में "कविवचनसुधा" में घोड़े की चाल के विषय में नीचे लिखे हुए तीन छप्पै प्रकाशित हुए थे।

"बीस, तीस, चौबीस, सात, तेरह, उन्निस कहि। चारह, दस, पचीस, बयालिस, सत्तावन लहि ॥ इक्कावन, छत्तिस, इक्किस, एकतिस, सोलह, खट। बारह, द्वै, सतरह, सत्ताइस, तैंतिस, गिन भट ॥ पचास, साठ, तैंतालिस, सैंतिस, चौवन, चौसठ लहिये। सैंतालिस, बासठ, छप्पन, उनतालिस, पैंतालिस कहिये ॥१॥

पैंतिस, एकतालिस, अट्ठावन, बावन को गठ। छियालिस, एकसठ, पचपन, चालिस, तेइस, अठ ॥ चौदह,

उनतिस, चौवालिस, चौतिस, उनचासो। उनसठ, तिरपन, तिरसठ, अड़तालीस प्रकासो॥ अड़तिस, बत्तिस, हरीचन्द सुपांच, पंद्रह, बाइस लहि। अट्ठाइस ग्यारह, छबिस, नव, तीन अठारह, एक कहि॥२॥

चतुर जनन को खेल चारु चतुरंग नाम को। ता में चपल तुरंग चलत है अर्द्ध धाम को॥ जिम कोउ विज्ञ सवार बाजि चढ़ि व्यूह मांह धसि। फेरे तिहि सब ठौर कठिन यद्यपि चाबुक कसि॥ तिम चौसठ हु घर में फिरै वाजि अंक यह सब कहहु। हरिचन्द रसिक जन जान यह नित चित परमानंद लहहु॥३॥"

यह ताश के भी खेलाड़ी थे। वैष्णवी ताश के प्रचार की इच्छा रक्खे थे। पान, चीड़ी, ईंट, तथा हुकुम इन रंगों के स्थान में शंख, चक्र, गदा, पद्म रक्खा था। पादशाह, बीबी, और गुलाम के स्थान में शङ्खरङ्ग में क्रमशः ब्रह्म, शक्ति, तथा जीव; चक्रवाले रंग में कृष्ण, रुक्मिणी, तथा उद्धव; गदा नामक रङ्ग में राम, जानकी, तथा हनुमान; एवं पद्म में नारायण, लक्ष्मी, तथा गरुड़ माना था। इस प्रकार के ताश छपने के लिए पूना चित्रशाला में प्रबन्ध भी किया गया था। ताश के खेल के विषय में इन्हों ने भंडरी भी बनाई थी और उसी भंडरी के छपने के बाद और उसी को देखकर एकजन बाबू दीपनारायण सिंह वर्म्मा ने "अनुपम ताश कौतुक" प्रकाश किया था, पर उस में यह उल्लेख नहीं किया था कि बाबू साहिब लिखित "भंडरी" को देख कर उन्हों ने वह "ताशकौतुक" बनाया था। इस कारण से एक लेखक ने वर्म्मा महाशय पर "उचितवक्ता" समाचार पत्र में कुछ आक्षेप भी किया था।

हमारे परम पूज्य स्वर्गीय मित्रवर अम्बिकादत्तव्यास ने भी यदि उसी भंडरी के छपने के बाद "ताश कौतुक पचीसी" बनाई रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

अङ्गरेजी पढ़नेवाले सभी जानते होंगे कि विलायत में पहिली एप्रिल को लोग होली के समान आनन्द मानते हैं। मित्रों के साथ हंसी दिल्लगी करना,

कोई अनोखी उक्ति से लोगों को मूर्ख बनाना, तथा धोखा में लाना बुद्धिमानी समझी जाती है। हरिश्चन्द्र जी भी कभी२ इस प्रकार की हंसी खेलों से लोगों को लज्जित कर के आनन्द उठाते थे।

एक बार इन्होंने यह नोटिस देदी कि "महाराज विजियानगरम की कोठी में अमुक समय एक योरोपदेशीय विद्वान सूरज और चांद को प्रत्यक्ष भूमितल पर उतार कर दिखला देंगे।" उस समय बहुत से लोग इकट्ठे हुए और जब कुछ नहीं देखा तो अपनी मूर्खता पर सिर नीचे किए बग़ल खुजलाते घर गए।

एकबार यह छाप दिया कि "एक बड़े प्रसिद्ध गवैए का काशी में आगमन हुआ है और हरिश्चन्द्र स्कूल में वह अपना गाना सुना कर लोगों को आनन्दित करेंगे।" एक गुणी का मुफ़्त का गाना सुनने कौन न जाय। हज़ारों मनुष्यों की भीड़ हुई। तब परदा उठा और एक व्यक्ति नाना प्रकार के रङ्गों से अपना मुंह चित्रित किए हुए, Fool's cap (गदहा टोपी) पहिने और उलटा तान पूरा हाथ में लिए नज़र आया और गदहे की भांति "हेंपो हेंपो" करता रेंक उठा। यह रङ्ग देखते ही सब लोग हँसते दौड़ते लजाने से अपने २ घर लौट गए।

इन्हीं की सम्मति से पं॰ रामशङ्कर जी ने एक बेर विज्ञापन दे दिया था कि एक मेम खड़ाऊं पर चढ़कर रामनगर से गङ्गा पार होगी।" फिर क्या पूछना था। गङ्गा के दोनों किनारे दर्शकों की भारी भीड़ लग गई और सब इन्तज़ारी में सन्ध्या तक गङ्गातीर पर जमे रहे कि वह गङ्गा पर भूमि के समान बिचरन करनेवाली अब आती है, अब आती है, पर यहां तो बात ही दूसरी थी, आवे कौन? अन्त में लोगों ने समझा कि वह "एप्रिल फूल" का तमाशा था और सब के सब लजाने से घर लौट चले।

इन्हों ने बादशाहों, आचार्य्यों, विद्वानों आदि के चित्र बड़े परिश्रम से संग्रह कर के एक अल्बम प्रस्तुत किया था। एक दिन एक बहुत बड़े घर के एक मुसल्मान उस की बड़ी प्रशंसा करने लगे। इन्हों ने कहा कि "जो यह इतना पसन्द है तो नज़र है।" बस वह हज़रत उसे ले कर झट तसलीम बजा लाए और चम्पत हुए। वह बाबू साहिब को इतना प्रिय था कि पीछे ५००) दे कर उस को पुनः हस्तगत करना चाहते थे, परन्तु उस चतुर ...मणि से उस का फिर हाथ आना दुष्कर हो गया। यही एक पदार्थ था कि

जिस को देने से इन को पीछे खेद हुआ, नहीं तो संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं थी जिसे देकर इन्हें फिर पश्चात्ताप करते किसी ने कभी देखा हो।

इन्हों ने अत्यन्त परिश्रम से बहुत द्रव्य व्यय कर के पादशाहों के समय की चिट्ठियां * एकत्रित की थीं जो अभी तक खड्गविलास यन्त्रालय में वर्त्तमान हैं। उन चिट्ठियों को अन्य वस्तुओं के साथ इन्हों ने १८८४ ई० की .महाप्रदर्शिनी में कलकत्ता भी भेजी थी।

इन्हों ने प्राचीन सिक्कों तथा अशर्फ़ियों का अमूल्य संग्रह किया था जिस में काश्मीर के प्राचीन काल के भी सब सिक्के थे, परन्तु किसी लोभी ने उन सभों को चुरा लिया। निज सकल सम्पत्ति के गंवाने से इन को जो खेद नहीं हुआ था वह खेद सिक्कों के खो जाने से हुआ।

इन्हों ने अनेक प्राचीन एवं नवीन ग्रंथों को भी खोज २ कर बहुत द्रव्य व्यय कर के एकत्रित किया था। १५०) देकर तो शेरिंग साहिब की कोई पुस्तक खरीद की थी जो बात साहिब के एक पत्र से ज्ञात होती है।

इन्हों ने विलायत से हंगरी देश, सेंटहेलिना द्वीप, इटाली, चीन देश के फ्रान्सीसी भाग का, एवं अमेरिका देश का टिकट अपने मित्र पिन्काटसाहिब के द्वारा संग्रह किया था।

एक पत्र से विदित होता है कि इन्हों ने निज पिता, पितामह, भ्राता का तथा अपना और कई लोगों का बड़ा बड़ा फ़ोटो बनवाने के लिए भी पिन्काटसाहिब से निवेदन किया था। इन को फ़ोटो का बड़ा शौक़ था। यह स्वयं भी अच्छा फ़ोटो खींचते थे।

सारांश यह कि सुन्दर कपड़े, खेलौने, फ़ोटो एवं अपूर्व २ पदार्थों का यह सर्वदा संग्रह तथा आदर करते थे और इस में भी इन का बहुत धन व्यय होता था; पर यही सब इन के दिलबहलाने की चीजें थीं।

---

* ये सब चिट्ठियां सुनहरे अक्षरों से ज़रअफ़शां ( सुनहरे छिड़काव के ) काग़ज़ पर फ़ारसी भाषा में लिखी हुई हैं जो मुसलमान पादशाहों ने निज सम्बन्धी पुरुष वा महिलाओं के पास एवं अन्य पादशाहों वा राजाओं के पास भेजी थी वा उन लोगों से पाई थी। यह वस्तु देखने ही योग्य है।

# ऊनविंश परिच्छेद ।

## राजभक्ति ।

जब विशद शरदचन्द्र की नाईं बाबू हरिश्चन्द्र के अमल यश का चतुर्दिक प्रकाश होने लगा, जब इन की लेखनी से अनवरत पीयूषधारा प्रवाहित हो कर रसिक जनों को तृप्त करने लगी, जब इन के देशोपकारक, कुसंस्कार-संहारक उपदेशों को सुनने और जानने के निमित्त लोग चकोर की भांति सर्वदा इन की ओर देखने लगे, जब नागरी सर्वगुणआगरी सच मुच नागरी बन कर नित्य नूतन अलंकारों से भूषित हो भारतवासियों को क्या अन्यदेशियों को भी मोहित करने लगी, जब इन के आपाहितैषी, देशहितैषी, धर्महितैषी, राजहितैषी होने का डंका बजने लगा, जब ये देशीय विदेशीय राजा प्रजा सब से सम्मानित होने लगे, इस आनन्द निशा में कहीं कहीं कुटिल प्रकृति-वालों के बड़बड़ाने का शब्द भी कर्णगोचर होने लगा जैसा कि "प्रेमयोगिनी" नाटक में इन्हों ने माखनदास तथा छक्कू के संवाद में स्वयं दर्शाया है।

अल्पज्ञ लोगों के ऐसा कहने का कारण यह हुआ कि हरिश्चन्द्र जहां और जिस में किसी दोष के लेश का आभास भी देखते थे उसे सर्व जनों पर निर्भीत भाव से प्रकाशित कर देते थे कि लोग उस के ह्रास के निमित्त यत्नवान हों; और जहां जो गुण देखते उसे ग्रहण करते थे । सामाजिक, धार्मिक, राज-नैतिक, जो २ बातें इन्हें दूषणीय प्रतीत हुईं उन्हें प्रत्यक्ष कहने में यह कभी कुण्ठित नहीं हुए ; और इसी भांति हिन्दूसमाज का गुण गान भी किया, अपने धर्म की यथोचित प्रशंसा भी की । न्यायशाली सरकारी राज्य के सुखों को सदैव वर्णन करते हुए प्रजागण को देशोन्नति के निमित्त एवं कला-कौशल सीखने तथा शिल्प व्यापारादि की ओर ध्यान देने के लिए यह निज कविता द्वारा सर्वदा उत्तेजित और प्रोत्साहित करते रहे, परन्तु खरी बातें इस काल में कितने लोगों को सोहाती हैं यह तो सभी बुद्धिमान सहज में समझ सकते हैं। तब यदि अल्पज्ञ लोगों के मुख से इन की निन्दा होने लगी थी तो इस में आश्चर्य ही क्या था ? हां ! खेद इस बात का अवश्य होता है कि राजा शिवप्रसाद सरीखे महापुरुष भी ईर्षा वश हरिश्चन्द्र को कलङ्कित करने पर उद्यत हो गए थे । राजा साहिब के चरित्रलेखक गोस्वामी किशोरीलाल जी ने लिखा है कि " राजा शिवप्रसाद को पराये के उत्कर्ष को

न सह कर अपने सम्मान को सर्व्वोपरि झलकाने की वासना थी" और " इन का हृदय परोपकारितामुग्ध था। " जिस की ऐसी प्रकृति हो वह एक ऐसे व्यक्ति को उन्नति तथा कीर्त्तिवृद्धि को भला कब देखना पसन्द करेगा जो उस के सामने का बालक हो और जिस को उस ने लिखना पढ़ना सिखलाया हो। वाह रे ईर्षा! तेरी भी महिमा धन्य है। व्यर्थ दो मित्रों में विरोध करा देती है, व्यर्थ एक को दूसरे का वैरी बना देती है। एक तो करेला आपही तीता दूसरे चढ़ा नीम। एक तो राजा साहिब की प्रकृति वैसी दूसरे गुरु चेले में हिन्दी लेखप्रणाली का विरोध उत्पन्न हो गया। राजा साहिब ने अरबी फ़ारसी शब्द मिली हुई खिचड़ी हिन्दी भाषा का प्रचार कराना चाहा और बाबू साहब ने शुद्ध हिन्दी लिखने की परिपाटी निकाली जिस को सभी लोग उत्तम मान कर उसी प्रणाली के अनुगामी हुए।

उसी समय हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए बहुत कुछ यत्न किया जा रहा था। बाबू साहिब चाहते थे कि कचहरी में हिन्दीअक्षर और भाषा का यथासम्भव प्रचार हो, और राजा साहिब का हठ था कि भाषा तो उर्दू रहे केवल अक्षर नागरी के हों। बाबू साहिब हरिश्चन्द्रीहिन्दी और राजा-साहिब अपनी खिचड़ी का प्रचार करना चाहते थे। फल यह हुआ, कि कुछ भी न हो सका।

एज्यूकेशन कमीशन के समय भी इस का बड़ा उद्योग किया था, और प्रयाग हिन्दूसमाज को इस विषय में बड़ी सहायता दी थी। यद्यपि उस समय लोग कृतकार्य्य नहीं हुए तथापि उस काल के बीज बोने का कुछ फल सर एण्टोनी मेकडानल साहिब लाट बहादुर के शासन काल में देखने में आया।

स्कूल इन्स्पेक्टर होने के कारण राजा साहिब के रचे हुए ग्रन्थों का पूर्व में बड़ा ही आदर हुआ, और सर्वत्र स्कूलों में पढ़ाया जाता था। " हरिश्चन्द्री हिन्दी " के प्रचार से उन के नाम में धब्बा लगने की आशंका हुई। बाबू साहिब की लेखप्रणाली को उत्तम जानते हुए भी चेले का अनुगामी होना सहन न कर के अपनी हिन्दी के प्रचार एवं बाबू साहिब की हिन्दी के अप्रचार के निमित्त उन्हों ने शिक्षाविभाग के कर्मचारियों की शरण ली।

उस समय विद्यारसिकशिरोमणि सर विलियम म्यूर साहिब बहादुर पश्चिमोत्तर देश की लाटगिरी की कुर्सी को सुशोभित कर रहे थे। उन्हों

ने हिन्दी में उत्तम २ ग्रन्थ निर्माण किए जाने के लिए पारितोषिक देने की व्यवस्था की जिस पर कई लोगों ने ग्रंथों की रचना भी की; परन्तु श्रीमान् स्वयं क्या कर सकते थे ? जिन ग्रन्थों के विषय में, चाहे वे कैसा ही थे, लोगों ने अच्छी राय दी वही ग्रन्थ उत्तम समझे गए और उन्हीं के कर्त्ताओं को पारितोषिक मिला। वास्तविक उत्तम पुस्तकों की कुछ पूछ न हुई और उन के रचयिता परिश्रम करने पर भी मुंह देखते हुए रह गए जिस का अभाव आज भी है।

उसी समय रत्नावली तथा उत्तररामचरित्र आदि का अनुवाद निकला था जिस की समालोचनाएं भी बाबू साहिब ने स्वरचित "नाटक" ग्रन्थ में की हैं।

हरिश्चन्द्र रहस्यप्रिय तो थे ही, इन सब दशाओं को देख कर इन्हों ने दो चार पद्य लिख मारा। फिर क्या था अग्नि में आहुति देनी थी। राजा साहिब जल उठे। उन्हें भी चेले की चौकड़ी के बन्द करने का अच्छा समय हाथ आया।

कार्तिक सं १९२७ ( १८७० ई० ) में श्रीयुत लार्ड म्यो साहिब बहादुर जब काशी पधारे थे तब यहां पर एक " लेवी " दरबार हुआ था। उस समय उस के सम्बन्ध में "कविवचनसुधा" में " लेवी प्राणलेवी " शीर्षक एक लेख छपवाया था।

उस पर कईएक लोगों ने बाबू साहिब के राजविरोध की इधर उधर चर्चा निकाली। जब इन को यह बात विदित हुई तो इन्हों ने "क० व० सुधा" में उस के प्रतिवाद में दूसरा लेख फिर लिखा जो देखने योग्य है।

लेवी का लेख तो छप ही चुका था, इधर इन्हों ने "मर्सिया" नाम का दूसरा लेख प्रकाशित किया। तब लोगों ने स्पष्ट कहना आरम्भ कर दिया कि उस लेख के लक्ष्य श्रीमान् म्योर साहिब थे। यद्यपि हरिश्चन्द्र ने एक दूसरे लेख में भ्रम दूर करने के लिए उस लेख का अभिप्राय स्पष्ट कर दिया था, परन्तु उस को सुनता वा देखता ही कौन था ? इतने ही पर " कविवचन-सुधा" का शिक्षाविभाग में खरीद होना बन्द कर दिया गया।

यथार्थ जो हो, परन्तु हम इतना कहेंगे कि हरिश्चन्द्र किसी लेख का लक्ष्य म्योर साहिब को नहीं बना सकते थे क्योंकि हम देखते हैं कि यह म्योर साहिब की बड़ी प्रशंसा करते थे। एकबार उन के पास निम्नलिखित कविता

भी भेजी थी जिस पर साहिब बहादुर ने इन्हें धन्यवाद * दिया था।

जो हो, इधर उधर के कहने सुनने से "कविवचनसुधा" की खरीदारी शिक्षाविभाग से बन्द कर दी गई; और इसी भांति एक एक बहाने से "चन्द्रिका" तथा "बालाबोधिनी" भी शिक्षाविभाग से बन्द करा दी गई। "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" में एक यती और वेश्या का सम्वाद छपा था जिस में यती योग ज्ञानादि की बड़ाई करता था और वेश्या भोगविलास की स्तुति करती थी और अन्त में यती की जीत हुई। यह एक प्रकार का उपदेशमय ग्रंथ था। पर इसी के छपने से "चन्द्रिका" की खरीदारी बन्द हुई। "बालाबोधिनी" केवल यही कह कर बन्द की गई कि उस की आवश्यकता नहीं थी।

लोगों ने अपने जानते तो बड़ा काम किया परन्तु इस से हरिश्चन्द्री हिन्दी का प्रचार रोक न सके। जिस पदार्थ में सहज सुन्दर गुण होता है उस को सभी पसन्द करते हैं। "हर कुजा चश्मए बवद शीरीं। मर्दुमो मुर्ग़ो मोर गिर्द आयंद।"—मोठा नीर झरहि झरना जहं। जुरहिं मनुष चींटी चिरियां तहं। आज भी हरिश्चन्द्र जी की हिन्दीप्रणाली का सम्मान है और सर्वदा ऐसा ही रहेगा इस में सन्देह भी नहीं।

शिक्षाविभाग के किसी सम्मानित कर्मचारी के उद्योग से किसी ग्रन्थ वा पत्र की उस विभाग में खरीदारी बन्द हो जानी कोई बड़ी बात नहीं है। यह तो आज भी प्राय: देखने में आता है कि किसी२ की करनी से कभी२ उत्तम ग्रन्थों का यथोचित आदर नहीं होता और जिस की गोड़ी जम जाती है उस का पौबारह है। सिवाय इस के शिक्षाविभाग को पूर्ण अधिकार है कि जिस पुस्तक वा पत्र को वह जब तक उत्तम वा उपयोगी समझे खरीद करे, वा उस का स्कूलों में प्रचार करे, फिर बन्द करदे। इस से उस के माथे कुछ दोष नहीं आ सकता। अतएव यदि केवल इतना ही होता तो कुछ खेद की बात नहीं थी। परन्तु निन्दा का फल यह हुआ कि बहुत से लोग परमराजभक्त हरिश्चन्द्र को राजद्रोही कहने लगे और स्वार्थसाधक लोगों के इधर उधर

---

* देखि भूमि हरित अधिक हरखात गात ईस कृपा जल सों विसेष सुख छाके हो। सब तुम्हें म्यूर कहैं सहज सनेहबस प्रजादुखदलन सहस्र दृग ताके हो॥ आसुतोष ऐसे आसु तोषत सबन तुम याही तें जगत नील-कंठ बने बांके हो। वासत अनेक खल सर्पन सदर्प तुम विलियम म्यूर सुखपूरक प्रजा के हो॥

झूठी सच्ची बातों से कोई २ राज्यकर्मचारी भी इन्हें ऐसा ही समझने लगे थे, किन्तु हरिश्चन्द्र के समान सुविज्ञ व्यक्ति सरकारी राज के सुखदायक लाभों को न समझे यह तो कभी स्वप्न में भी ध्यान में नहीं आता। जिस ने स्पष्ट लिखा है "अङ्गरेजन को राज्य ईस इत थिर करि थापै" वह भला कब राजद्रोही हो सकता है? उस के मन में राजद्रोह कहां प्रवेश करने पावेगा?

हम मुक्त कंठ से कह सकते हैं कि हरिश्चन्द्र अंतःकरण से भारतीय गवर्नमेन्ट के शुभचिन्तक थे। जब २ कोई हर्ष वा शोक का समय आया इन्हों ने यथोचित रीति से आन्तरिक आनन्द वा खेद प्रगट किया। यह जो कुछ करते थे अकृत्रिम करते थे। चक्रवर्तिनी महाराणी भारतेश्वरी के राजकुल तथा शासन विषय में इन का कितना अनुराग था यह सहज ही में निम्न-लिखित बातों से ज्ञात हो सकता है।

सन् १८६८ ई॰ में जब स्वर्गीय श्रीमती भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिया के प्रियपुत्र श्रीमान् ड्यूक आव एडिम्बरा के भारत सन्दर्शनार्थ इस देश में आने का शुभसमाचार ज्ञात हुआ तो सब से पहिले हरिश्चन्द्र ही ने काशी निवासियों से कहा कि उन के शुभागमन में सब लोगों को अवश्य आनन्दो-त्सव करना उचित है। निज मित्र तथा काशी के प्रतिष्ठित पुरुषों के पास पत्र लिख कर "डिबेटिंग क्लब" में सभा की, और यह निश्चय किया कि ड्यूक का स्वागत हिन्दुओं को अपनी ही रीति से करना योग्य है। सभा ने इस को बड़े उत्साह से स्वीकार किया। इन्हीं की सम्मति से बनारस म्यूनिस-पल कमेटी को इस विषय में सहायता देने के लिए पत्र लिखा गया और उस के सहायक कार्य्याध्यक्ष मेकिन्टाश साहिब ने सहर्ष सहायता देने की प्रतिज्ञा की। काशी में ड्यूक के सुशोभित होने पर इन्हों ने ऐसी राजभक्ति प्रगट की कि ड्यूक इन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और जब तक काशी में विराजमान रहे इन पर विशेष स्नेह रक्खा। उस आनन्द के अवसर में इन्हों ने अपने घर की ऐसी सजावट की थी कि लोग आज तक उस की प्रशंसा करते हैं। स्वयं ड्यूक ने उस की बड़ी सराहना की थी। इस आनन्द में इन्हों ने गाने बजाने का जलसा भी किया था। श्रीमान् ड्यूक पर फूल चढ़ाया था। ड्यूक को काशी दिखलाने का भार इन्हीं को सौंपा गया था।

उस समय काशी के पंडितों तथा शिष्टजनों को आमन्त्रित कर के इन्हों

ने अपने घर में एक सभा की थी और लोगों से कविता बनवा कर और उन सबों को चांदी सोने के अक्षरों में छपवा कर "सुमनोञ्जलि" नामक पुस्तक श्रीमान् को समर्पण की थी। ड्यूक के काशीधाम में आगमन के दिन ग्रहन हुआ था इसी से इन्हों ने स्वरचित कविता में चन्द्रमा ही से तुलना कर के ड्यूक की उत्कृष्टता दिखलाई थी। कवित्त यह है :—

"वाको जन्म जल याको रानो कोषसागर तें वह तो कलंकी या में छींट हूं न आई है। वह नित घटै यह बाढ़ै दिन दिन वह बिरही दुखद यह जन सुखदाई है॥ जानि अधिकाई सब भांति राजपुत्र ही को ग्रहन के मिस यह मति उपजाई है। देखि आज उदित प्रकासमान भूमिचन्द नभससि लाज मुख कालिमा लगाई है॥"

इस पुस्तक तथा इनकी राजभक्ति पर रीवांधिपति श्रीमान् रघुराजसिंह जी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और यह कह कर कि पूर्वकाल में तो ऐसी कविता पर बहुत कुछ पारितोषिक दिया जाता था, दो सहस्र मुद्रा प्रेषित किया था। यह रुपया और २५०) जो विजियानगरम् की राजकुमारी ने प्रदान किया था कुल २२५०) बाबू हरिश्चन्द्र के द्वारा उन पंडितों को वितरण किया गया जिन्हों ने कविताओं की रचना की थी। पंडितों ने निज हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करने के निमित्त अपना २ हस्ताक्षर बना कर इन को एक प्रशंसापत्र दिया था जिस से यह भाव स्पष्ट प्रकटित होता है :—

"सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द।
जिमि सुभाव दिन रैन को कारन इक हरिचन्द"॥

प्रशंसापत्र यह है :—

मानपत्रमिदम्।

श्रीयुत बाबूसाहिब हरिश्चन्द्र गुणानाम्॥

सुसेवन्ते सुरा यस्य सुतरां पांसुमग्रिजम्। क्रियात्सुतेन सत्रास्यश्रेयः स्वापाङ्गदृष्टिजम्॥

गीर्वाणमौलिदिव्लसच्चरणद्वयस्य गोपालबाललललनापरिशीलितस्य। श्रीनन्द-नन्दनइतिप्रथितार्थनाम्नः पादारविन्दमकरन्दमिलिन्दवर्यः॥ १॥ तत्परिचर्या-

सद्बुधप्रचुरगुणानां गणेन परिपूर्णः । नाम्ना स हरिश्चन्द्रो कथया चान्द्रो विभा-भिन्द्रः ॥ २ ॥ यस्य प्रथा विजयिन्याः सूनोर्भूकेति विष्णुसाख्यस्य । यात्रोत्सवे सभायां सन्मानसभाजयत्यव्ययम् ॥ ३ ॥ तपने गतवत्यस्तं समुदयति कलानिधौ प्राचि । चित्रा तत्र प्रथितिः समुदयमायाति यद्धरिश्चन्द्रः ॥ ४ ॥ सकलजनरञ्जनै मंदर-सारङ्गैर्गायनैरसौ रसिकमानसान्यनुपलं समाकर्षयत् । तदन्वखिलभूपतिजात-राजकुलोर्गुणाः स्वयं कविमुखात्कृताद्भव वर्यवर्यवादिनः ॥ ५ ॥ ततः सुमनसां जयः सुमनसां गणस्याञ्जलिं सुगृह्य पदयोर्द्वयोर्नृपस्तस्य तस्यार्पयत् । प्रसादमिव तं ददौ बुधनराधिपेभ्यो मुदा लतासुकविता ऽविता ऽधिभुवि तत्र रीविश्वरः ॥ ६ ॥ श्रीरघुराजः प्रादान्मुदा हरिश्चन्द्रसभ्यविद्वद्भ्यः । मुद्रा भूनिधितुल्या कृपाकरस्थे निधाय शतमेवम् ॥ ७ ॥ विद्वज्जनप्रतिष्ठाकारणमेवं हरिश्चन्द्रः । यद्वत्सभावगत्या दिनराजगोर्वा हरिश्चन्द्रः ॥८॥ नाथाम: कमलेशमीशमनिशं शं तत्कुर्यात् शं यस्याग्रे गुणिनः कलानिधिरसौ दोषाकरः प्रोच्यते । पत्रैः पुत्रकलत्रमित्रबन्धुभिर्योऽसौ हृद्दैश्चान्वितो नन्द्यात् श्रीययशोरसैर्मधुरतां जित्वा जगद्वस्तुनः ॥ ९ ॥ कृत्यमे यदमादरपुरस्सरं मानपत्रमिदम् । कामोस्यै विंद्वद्भिः समर्पितेऽङ्गीकरोतु स श्रीमान् ॥ १० ॥

बापूदेवशास्त्रिणा । राजारामशास्त्रिणा । वामनाचार्येण

बालशास्त्रिणा । गोविन्ददेवशास्त्रिणा । धर्माधिकारिदुण्ढिराजशर्मणा ।

श्रीनृसिंहशास्त्रिणा । श्रीगंगाधरशास्त्रिणा । रामकृष्णशास्त्रिणा ।

द्विवेदवस्तीरामशर्मणा । श्री कालीप्रसाद शर्म्मणा । पंडितशीतलाप्रसादेनत्रिपाठिना ।

शागीश्वरपण्डितेन । द्विवेदरमापतिशर्मणा ।

पं॰ बेचनराम त्रिपाठिना । श्री केदारनाथ शर्म्मणा । श्रीश्री पाल शर्म्मणा ।

दशदिग्द्विपमौक्तिकैरिमां विरचय्याखिलविद्वदाज्ञया ।
स्रजमर्पयते विनायकः सुहरिश्चन्द्रविशालवक्षसि ॥ १ ॥

इस "सुमनोऽञ्जलि" को देख कर श्रीमान् महाराज बूंदी ने लिखा था कि "हिन्दुओं के सच्चे प्रतिनिधि आजकल बहुत ही अलभ्य हैं, केवल बाबू हरिश्चन्द्र सरीखे लोगों को आर्य्यवंश का शुभचिन्तक समझना चाहिए।"

१८७१ ई॰ में श्रीमान् प्रिंस आव वेल्स ( वर्तमान भारतेश्वर ) को पीड़ित होने पर उन की आरोग्यकामना से ईश्वर की प्रार्थना में यह निम्नलिखित कई एक छंद बनाए थे।

"जय २ जगदाधार प्रभु, जगव्यापक जगदीस।
जय २ प्रणतारतिहरन, जय सहस्र पद सीस ॥१॥
करुनावरुनालय जयति, जय जय परम कृपाल।
शुद्ध सच्चिदानन्द घन, जय कालहु के काल ॥२॥
सब समर्थ जय जयति प्रभु, पूर्ण ब्रम्ह भगवान।
जयति दयामय दीनप्रिय, क्षमासिंधु जन त्रान ॥३॥
हम हैं भारत की प्रजा, सब बिधि दीन मलीन।
तुम सों यह बिनती करत, दया करहु लखि दीन ॥४॥
हाथ जोरि सिर नाय कै, दांत तरे तृन राखि।
परम नम्र ह्वै कहत हैं, दीन बचन अति भाखि ॥५॥
बिनवत हाथ उठाइ कै, दीजै श्री भगवान।
जुवराजहिं गतरुज करौ, देहु अभय को दान ॥६॥
तिन के दुख सों सब दुखी, नर नारिन के वृन्द।
ता सों तुरत हि रोगहरि, तिन कहँ करहु अनन्द ॥७॥
जिन की माता सब प्रजा- गन की जीवन प्रान।
तिन हि निरोगी कीजिए, यह बिनवों भगवान ॥८॥
बेग सुनै हम कान सों, प्रिन्स भये सानन्द।
परम दीन ह्वै जोरि कर, यह बिनवत हरिचन्द ॥९॥"

श्रीमान् के आरोग्य होने पर इन्हों ने देवपूजन एवं बहुत कुछ दान पुण्य किया था और आनन्द भी मनाया था।

जब श्रीमान् प्रिंस आव वेल्स (वर्तमान भारतेश्वर) भारतवर्ष में पधारने वाले थे तब इन्हों ने यह विज्ञापन प्रकाशित किया था।

"श्री महाराजाधिराजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे। इस के वर्णन में सब भाषा के कवियों की कविता प्रबन्ध संग्रह कर के पुस्तकाकार छापी जायगी। यह सब कविता श्री महाराणी वा कुमार वा उन के वंश की कीर्ति वर्णन में वा उन के आशी-

र्वाद में होंगी । संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, महाराष्ट्री, तामोल,तेलंग इत्यादि सब भाषा की कविता इस में सन्निवेशित हो सकेगी । कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो। यों तो बिना कुछ नमक मिर्च मिलाए कविता होती ही नहीं" इत्यादि।

नवम्बर १८७५ ई० में जब प्रिन्स आव वेल्स का शुभागमन हुआ तब इन्हों ने स्वागतपत्र में लिखा था:—

"जाके दरसन हित सदा, नैना मरत पियास।
सो मुखचन्द बिलोकिहैं, पूरी सब मन साध॥
नैन बिछाए आप हित, आवहु या मग होय।
कमल पांवड़े ये किए, अति कोमल पग जोय॥"

इसी में लिखा था कि "जब तक फूलों में सुगन्ध और चन्द्रमा में प्रकाश है और पद्मिनीनायक जब तक उदयाचल पर उगता है और गंगा यमुना जब तक अमृतधारा बहाती है, तब तक इन के रूप, बल, तेज और राज्य की वृद्धि होय जिस में हम लोग इन के करकल्पवृक्ष की छाया में सब मनोरथ से पूर्ण हो कर सुखपूर्व्वक निवास करें।"

और उन की प्रशंसा में इन्हों ने निम्नलिखित कविता की रचना की थी:—

"जनम लियो है महारानी कूखसागर तें जा में तो कलंक को न लेसहु लखायो है। सुभटसमूह साथ सोहत है तारागन कुमुदहितून हिय हरख बढ़ायो है॥ चाहि रहे चाह सों चकोर ह्वै प्रजा के पुंज बैरी तमनिकर प्रकास सि नसायो है। आनन्द असेस देवे हेत हिंद बीच आज कुंवर प्रतापी नखतेस बनि आयो है॥"

इन्हीं के आशीर्वाद में यह लिखा था:—

"जब लों सुमन सुवास पर, मत्तभंवर संचार।
जब लों कामिनि नैन पर, होंहि रसिक बलिहार॥
जब लों तत्व सदै मिलै, गढ़ै सबै परमानु।

जब लौं ईश्वर-भक्तिता, तब लौं तुम नरभानु ॥
जियो अचल लहि राजसुख, नीरुज बिना बिषाद ।
उदय अस्त लौं मेदिनी, पालहु लहि सुख स्वाद ॥
पक्षरू नहिं कोउ लखि परै, होय अदालत बन्द ।
ऐसो निरुपद्रव करो, राजकुंअर सुखकंद ॥
लोहा गृह के काम में, कलह दम्पती मांहि ।
बाद बुधन ही में सदा, तुव राजहिं रहि जांहि ॥
रसना इक आसा अमित, याहं लौं देहुं असीस ।
रहौ सदा तुम छत्र से, छोड़ हमारे सीस ॥
भ्रात मात सह सुतन युत, प्रिया सहित युवराज ।
जियो जियो जुग जुग जियो, भोगो सब सुखसाज ॥"

भारतवर्ष के सब भाषाओं में जो कविताएं बनी थीं उन को इन्हों ने छपवा कर युवराज को सेवा में "मानसोपायन" भेंट की थी ।

युवराज के काशी आगमन के समय में जो इन्हों ने तयारी की थी उस से पूर्ण राजभक्ति प्रगट होती थी । इन्हों ने अपने सब स्थानों को सजा था, परन्तु सब के अलावे उस का वह भाग जो राजकुमार के मार्ग में पड़ता था बहुत ही सजा हुआ था । ताश का बड़ा निशान और जगमगी की झंडियां बड़ी सुहावनी मालूम होती थीं । ऊपर से "भावीभूप चिरंजीव" बड़े २ दिव्य अक्षरों में लिखा हुआ था और द्वार पर "यतोधर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः" इस श्लोकार्द्ध के साथ चन्द्रमा के चिन्ह का ऊन का निशान लगा हुआ था । "चलितश्चकितश्छन्नः प्रयाणे तव भूपते । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । जीयात् श्रीजयिनीसुतः, विजयते विजयिनीनन्दनः, आनन्दतु लण्डनेश्वरः ।" इत्यादि अनेक वाक्य और स्थानों में लिखे थे । तथा इन के स्थान से गुलाब की पत्ती और कतरे हुए बादले से मिला कर कागज़ की पतली २ चिटें कुमार के समागमन के समय उड़ाई गई थीं जिन पर "God Save the future King, Long live our future Emperor, Forget us not when hold your throne, Welcome, चिरंजीव, चिरंभुक्ष्व,

चिरंपालयमेदिनीं, दिष्टयाभवान् भारतमागतोयत्, स्वागतं ते प्रजाः पाहि सुभ्य'भक्षः सुस्वागतं ते नरनाथपुत्र , चिरंजीव । (خوش رہو جہاں رہو میرے صاحب) (اے آمدنت باعث آبادی ما) इत्यादि वाक्य लिखे हुए थे।

ऐसी तयारी राजभक्तिविहीन पुरुष कभी कर सकता है ?

सन् १८७६ ई० में श्रीविक्टोरिया के ( Empress ) राजराजेश्वरी * पद धारण करने पर १ जनवरी को काशी के परेड पर महाराणी का राजाज्ञा-पत्र सुनने के लिए जो दरबार हुआ था उस समय भी इन की ओर से बड़ी तयारी हुई थी और अन्य महाशयों के साथ इन्हें भी सम्मानसूचक सार्टिफ़िकेट मिली थी। उसी समय इन्हों ने "मनोमुकुलमाला" की रचना कर के भारतेश्वरी को अर्पण किया था। उस में निम्नलिखित तारीखी ग़ज़ल भी है।

اوسکو شاہنشہی ہر بار مبارک ہووے * قیصر ہند کا دربار مبارک ہووے
بعد مدت کے ہیں دہلی کے پھرے دن یارب * تخت طاؤس طلا کار مبارک ہووے
باغباں پھولوں سے آباد رہے صحن چمن * بلبلو گلشن بے خار مبارک ہووے
ایک اسکو رمیں ہیں شیخ و برہمن دونوں * سبحہ انکو اونہیں زنار مبارک ہووے
صوبہ ایدل کہ پھرائی ہے گلستاں میں بہار * میکشو خانہ خمار مبارک ہووے
دوستوں کے لئے شادی ہو عدو کو غم ہو * خار انکو انہیں گلزار مبارک ہووے
زمزموں نے تیرے بس کردئے لب بند رسا * یہہ مبارک تیری گفتار مبارک ہووے

इस ग़ज़ल का इन्हों ने सभा में कोरस की रीति से गान भी कराया था। यह ग़ज़ल बनाने का इन्हों ने एक कारण विशेष लिखा है जो आगे ज्ञात होगा।

इस सम्बन्ध में हम ने एक फ्रान्सीसी प्रोफेसर मोशियो गर्सिन दी तासी का एक लेख फ्रान्सीसी भाषा में देखा। उस का का आशय था यह जानके

---

* "राजराजेश्वरी" शब्द के विषय में "काशीपत्रिका" में यह छपा था। "टाइम्स आव लण्डन ने बड़ी प्रशंसा के साथ'एम्प्रेस आव इण्डिया'का तरजुमा श्री कैसरहिन्द छापा है। कैसरहिन्द एम्प्रेस शब्द का कैसा तरजुमा है इस के विषय में हम अधिक नहीं कहा चाहते...पर अब उस के साथ 'श्री' शब्द लगा देखकर 'टाट का अंगा बाफ़ते की तनी' की मसल याद आती है। कौन ऐसा होगा जो इसे पढ़कर नहीं हंसेगा। भला गंगा और मदार का क्या साथ है ? निःसन्देह 'राजराजेश्वरी' के बराबर कोई दूसरा शब्द सटीक नहीं मिलेगा जिसे बाबू हरिश्चन्द्र जी ने बड़े विचार से निकाला है।"

के लिये हम को बड़ी उत्कंठा और लालसा हुई। उस को अपने एक युवक मित्र सैयद महम्मद फ़ज़लहक़ के द्वारा पटना गवर्नमेंट कालिज के प्रिंसपुल जेम्स साहिब के पास भेजवाया। हम साहिबबहादुर को बहुत धन्यवाद देते हैं कि उन्हों ने अनुग्रहपूर्वक अंगरेज़ीभाषा में उस का अनुवाद करदिया जिस के देखने से ज्ञात हुआ कि वह केवल इसी उर्दू ग़ज़ल का फ़्रान्सीसीभाषा में अनुवाद है।

दिसम्बर, १८८१ ई० में इन्हों ने लार्ड रिपन की सेवा में कई एक कविताएं, ११२ वर्ष की जंत्री, और एक चक्र जिस में सूर्य्य और घड़ी की चाल का सूक्ष्म अन्तर दिखलाया है, प्रेषित किया था जिस के लिए यह श्रीमान वाइसराय के धन्यवाद के भागी हुए थे।

उन कवितओं में से दो कविताएं यहां पर उद्धृत की जाती हैं:—

श्री रिपनाष्टकः—

जय भारत नवउदित रिपन चन्द्रमा मनोहर। शुक्ल कृष्ण सम तेज तदपि जस अपजस विधि कर॥ जसचन्द्रिका विकासि प्रकासयो उन्नति मारग। वाक अमृत बरसाय किए अह्लादित नर जग॥ सासंक बंग बिल सों लसत जनमन कुमुद प्रफुल्लतर। सत्ताइस रैन प्रकास सम सत्ताइस सुभ कर्म्म कर॥

जय तीरथपति रिपन प्रजा अघ शोक विनाशक। गंग जमुन सम मिलत तदपि जान्हवि मरजादक॥ अच्चयवट सम अचल कीर्ति थापक मन पावन। गुप्त सरसवति प्रगट कर्मी-ग्रन मिस दरसावन॥ कलिकालुष प्रजागन भीति कों सब बिधि मैटन नाम रट। जय तारन तरन प्रयाग सम जस चहुँ दिसि सब पै प्रगट॥

मिश्र के युद्ध में भारतीय सेना द्वारा सरकार के जयलाभ करने पर इन्हों ने काशी में १८ सेप्टम्बर सन् १८८२ ई० को एक महती सभा करके "विजयिनी विजय वैजयन्ती" पुस्तक पढ़ कर पूर्णानन्दसहित राजभक्ति प्रकाश की थी और उस विजय की मुबारकबादी उसी काव्य द्वारा सरकार

को तथा सर्वसाधारण को सुनाई थी। उस पुस्तक की रचना एक ही दिन में हुई थी जिस में हिन्दुस्तानी को मिश्रयुद्ध में वीरता प्रदर्शनार्थ उत्तेजित करने के निमित्त एक स्थान में लिखा है :—

"का अरबी को बेग कहा वाको बल भारी।
सिंह जगे कहुं स्वान ठहरिहैं समर मंझारी॥
जिन बिनही अपराध अनेकन कुल संहाखो।
दूत, पादरी, बनिक आदि बिनु दोस हिं माखो॥
प्रथम युद्ध परिहार कियो बिसवास दिवाई।
पुनि धोखा दै एकाएकी करी लराई॥
इन को तुरत हि हतो मिलै रन के घर मांही।
इन छलियन सों पाप किएहूँ पुन्य सदाही॥
उठहु बीर तरवारि खींच मारहु घन संगर।
लोह लेखनी लिखहु आर्य्यबल जवन हृदय पर॥"

इस पुस्तक के विषय में "अलेन्स इन्डियन मेल ( Allen's Indian Mail London)" ने मार्च १८८२ ई० में लिखा था कि "यह एक वीररसात्मक: काव्य है। यह काव्य लार्ड बेकन्सफील्ड ( Lord Beaconsfield ) की नीति की समर्थन करता है। बाबू हरिश्चन्द्र का रचा हुआ है जिन का नाम सब लोग चिरकाल से जानते हैं और जो हिन्दीकवियों में बड़े ही प्रसिद्ध हैं। जो लोग यह कहते हैं कि सत्य देशभक्ति भारतवासियों में नहीं है हम लोग उन से प्रार्थना करते हैं कि इस को अवलोकन करें।"

बाबू साहिब की काव्यप्रणाली प्रदर्शनार्थ उक्तपत्र के सम्पादक ने कई एक छंद उल्लेख भी किया था और लिखा था कि "इङ्गलैंड की उदारता के विषय में कवि ने निम्नलिखित छंद इस पुस्तक में दिया है:—

"सुख सों बसयो खदेव प्रजागन अति सुख पायो।
ब्रटिशक्रोध को फल सबकहं परतच्छ लखायो॥"

यह पुस्तक वाइसराय के पास भेजी गई थी जिस पर कवि को धन्यवाद मिला था।

सन् १८८२ ई० में श्रीमती राजराजेश्वरी के किसी घातुक की गोली से बचने पर इन्हों ने चौकाघाट पर बाबू गोकुलचन्द खत्री के बागीचा में आनन्दोत्सव मनाया था। पहिले इन के स्कूल के बालकों ने एक गीत इस आशय का गाया था कि हे ईश्वर जैसी तू ने इस अवसर पर हमारी भारतेश्वरी की रक्षा की इसी प्रकार सर्वदा रक्षा कर। फिर देशीय भिन्न२ भाषाओं में कविता पढ़ी गई थी। हिन्दीभाषा के एक प्रहसन का अभिनय एवं गानवाद्य का आनन्द हुआ था। श्रीमती ने स्वयं इस की सराहना की थी। गवर्नर जेनरल ने भी इस पर हर्ष प्रगट किया था *। इसी पर एक समाचारपत्र ने लिखा था कि "बनारस में श्रीमान् भैया बाबू सभी लायल सबजेक्ट हैं, परंतु ऐसे अवसरों में जैसा कुछ बाबूसाहिब से बनता है दूसरे को नहीं सूझता।"

श्री महारानी के जन्म एवं राजराजेश्वरी पद धारण करने के दिन यह प्रायः प्रतिवर्ष आनन्द मनाते थे। जन्मगांठ ही के दिन अपने स्कूल में पारितोषिक वितरण किया करते थे।

काबुल में जयलाभ होने पर "विजयवल्लरी" की रचना हुई। अफ़गान में सरकारी सैन्य की चढ़ाई के समय "भारतवीरत्व" नामक लेख में जो इन्हों ने हिन्दू सेना को उत्साहित किया था उस में तो सरकारी राज्य के सुख को प्रत्यक्ष दिखला कर यह कहा है कि ऐसे सुखदराज्य के निमित्त हिन्दूप्रजा क्यों न आनन्दपूर्वक युद्ध करेगी जब कि समय आने पर सर्वकष्टदायक मुसल्मानों की ओर से भी आर्य्यों ने युद्ध किया था?

---

8th April 1882
Government House.

* I have laid before the Viceroy your letter to me of the 19th ultimo, giving an account of a meeting of the Rayises and learned gentry of Benares held, on your invitation, to mark your gratitude for the escape of Her Majesty the Queen Empress from the recent attempt on her life. His Excellency was much interested in the account, and desires me to inform you that he will have much pleasure in communicating it to Her Majesty.

I have &c.,
Sd. H. W. Primrose

Baboo Harishchandra

"जासु राज्य सुख बसमैं सदा भारत भय त्यागी।
जासु बुद्धि नित प्रजा पुंज रंजन महं पागी॥
जो न प्रजातिय देखि सपन हूं चित्त चलावै।
जो न प्रजा के धर्म हि हठ कर कबहुं नसावै॥

× × × × × ×

अभयबांह की छांह सबहि सुख दियो सुहाई।
सब हीं विध हित कियो बिबिध बिध नीति सिखाई॥
जिन के राज अनेक भांति सुख किए सदाहीं।
समर भूमि तिन सों छिपनो कछु उत्तम नाहीं॥
जिन यवनन तुव धरम नारि धन तीन हुं लीनो।
तिन हूं के हित आरजगन निज असु तजि दीनो॥
मानसिंह बंगाल लरे परतापसिंह सुन।
रामसिंह आसाम विजय किय अति उछाह मन॥
छत्रसाल हाड़ा जूझ्यो दारा हित कारी।
नृप सुदास भगवान करी सेना रखवारी॥
तो इन के हित क्यों न उठहि सब बीर बहादुर।
पकरि २ तरवारि करहि बनि युद्ध चक्र धुर॥

सन् १८८३ ई० में विलायत में जातीय-संगीत-सभा (National Anthem Society) इस अभिप्राय से संस्थापित हुई थी कि God save इत्यादि जो अंगरेज़ी गीत हैं वे सब हिन्दुस्तानी २० भाषाओं में अनुवादित होकर विलायती सभाओं में समयानुसार गाया जाया करें।

उस के निमित्त बनारस में भी इन्हों ने पंडितों की सभा कराई थी और उस सभा की ओर से आशिर्वाद भी भेजवाया था।

विलायत से फ्रेडरिक हार्डफ़ोर्ड साहिब ने इन से पूर्वोक्त गीतों का भाषानुवाद करने के लिए प्रार्थना की थी और उन्हों ने एक पत्र में यह भी लिखा था कि "एक दिन जब हम ने लार्ड टेनिसन से इस की चर्चा की थी कि हम

ने आप से हिन्दी अनुवाद करने को प्रार्थना की है तो इस पर लार्ड टेनिसन ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट की।"

इन्होंने उस का दो बार अनुवाद कर के भेजा था। एक बार जब विलायत में सभा हो रही थी जिस में ड्यूक आव् वेस्ट्मिनिस्टर भी थे इन का तार पहुंचा। जुलाई सन् १८८३ ई० के "एलेन्स मेल" में जहां २ से अनुवाद आया था वह लिखा था * और यह भी लिखा था "कि थोड़ी देर के बाद उत्तरीय भारतवर्ष के सुख्यात कविशिरोमणि ( Poet Laureate ) हरिश्चन्द्र का ( जिन का पूरा नाम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र है ) तार पहुंचा जिस में उन्हों ने अपना तथा उन मुख्य १४ पंडितों का जिन की सुनहरी चिट्ठी गत जून मास में आई थी आशिर्वाद भेजा है। तार यह है—'मैं पंडितों के सहित हृदय से राजभक्ति के साथ इस जातीय संगीतसभा की उन्नति चाहता हूं। जब आवश्यकता होगी हमलोग सहायता करने को उद्यत हैं। दूसरे ढंग का अनुवाद जाता है।"

अनुवाद † कर के जब बाबूसाहिब ने विलायत भेजा था तो अपने पत्र में लिखा था कि "विलायत में इस विषय पर ध्यान दिए जाने के अनेक वर्ष पूर्व

---

* हमलोगों को फ़ारस के मिरज़ा महम्मद बाक़र खां से अरबी, हिन्दुस्तानी फ़ारसी और हिब्रू अनुवाद, प्रोफ़ेसर मैक्समूलर तथा राजा सुरेन्द्रमोहन तगोर से संस्कृत अनुवाद, राजा सुरेन्द्रमोहन तगोर से कई बंगाली तथा हिन्दी अनुवाद, महाराजा ट्रैवानकोर से मलायाभाषा में अनुवाद, बम्बई के मिस्टर कैखुसरो एन० कविराजी से गुजरातीभाषा में अनुवाद, पूना के मिस्टर बाजाबा बालाजी नेनी से महरट्टीभाषा में अनुवाद, एच.एल. सेंट बार्ब से बर्मादेशीय-भाषा में अनुवाद, कर्नल होज़ियर से पश्तूभाषा में अनुवाद, ब्राईटन के डेविड विल्व डी० एल० से सिंहाली (लंका की) भाषा में दो अनुवाद मिला है। और बनारस के प्रसिद्ध कवि हरिश्चन्द्र ने हिन्दी अनुवाद भेजने की प्रतिज्ञा की है।

| | |
|---|---|
| † God save our Empress Queen | प्रभु रच्छहु दयाल महरानी. |
| Long live our Gracious Queen: | बहु दिन जिए प्रजा सुखदानी. |
| God save the Queen. | हे प्रभु रच्छहु श्रीमहरानी. |
| Send Her victorious, | सब दिस में तिन की जय होइ. |
| Happy and glorious, | रहै प्रसन्न सकल भय खोइ. |
| Long to reign over us: | राज करै बहु दिन लौं सोई. |
| God save the Queen. | हे प्रभु रच्छहु श्रीमहरानी. |

ही हम ने यह इच्छा की थी कि देशीय सभाओं में राजराजेश्वरी की शुभचिन्तकतासूचक जातीय संगीत का प्रचार किया जाय, बरन इसी अभिप्राय से हम इस ढंग का गीत अपनी पुस्तकों के अंत में प्रायः लिखते गये हैं। १८७७ ई० में जब महारानी ने राजराजेश्वरी का पद धारण किया था तो हमने इसी ढंग की एक ग़ज़ल बना कर सभा में उस का गान कराया था।" पाठकवृन्द ! यह वही ग़ज़ल है जो ऊपर प्रकाशित की गई है।

इस विषय के पत्र सब ऐसे मनोहर हैं कि हम ने उन का अविकल अनुवाद देना चाहा था, परन्तु अवकाशाभाव से ऐसा न कर के कई पत्रों को अन्यत्र प्रकाशित कर दिया है। बाबू साहिब के पूर्वोक्त कार्य्यों को देख कर कौन ऐसा अल्पज्ञ होगा जो कहेगा कि यह अंगरेज़ी राज्य के शुभचिन्तक नहीं थे। यों तो अप्रैल १८८४ ई० में महारानी के चतुर्थ प्रियपुत्र ड्यूक आव अलबनी की अकालमृत्यु पर जब इन्हों ने शोकसभा करने का * उद्योग

| ii | २. |
|---|---|
| O Lord, our God ! arise; | उठहु उठहु प्रभु त्रिभुवनराई; |
| Scatter Her enemies. | तिन के अरिन देहु अकुलाई, |
| And make them fail. | रन महँ तिनहिं गिरावहु मारी। |
| Bid strife and discord cease, | सब दुख दारिद दूर बहाओ |
| Wisdom and arts increase, | विद्या और कला फैलाओ, |
| Filling our homes with peace. | हमरे घर महं शांति बसाओ. |
| Blessing us all. | देहु असीस हमे सुखकारी। |
| iii | ३. |
| Thy choicest gifts in store | प्रभु निज अनगन सुभग असीसा, |
| Still on Victoria pour, | बरसहु सदा विजयनी सीसा, |
| Health, Might and Fame | देहु निरुजता यस अधिकारा, |
| While peasant, Prince and peer, | कृषक, राजसुत, औ अधिकारी, |
| Proudly Her sway revere, | करहिं राज को संभ्रम भारी, |
| Nations, afar and near, | निकट दूर के सब नर नारी, |
| Honor her name. | करहिं नाम आदर विस्तारा। |

* इन्हों ने एक कमेटी कर के उस के आज्ञानुसार अंगरेज़ी, हिन्दी तथा उर्दू भाषा में इस आशय की नोटिस छपवा कर वितरण की थी :— "हम लोगों को राजराजेश्वरी के चतुर्थ पुत्र के अकालमृत्यु पर शोक

किया था उस को भी लोगों ने राजविद्रोह माना था। उस समय सभा करने के लिए मजिस्ट्रेट साहिब से बनारस का टाउन हाल मांगा गया था और उन्हों ने सहर्ष देना स्वीकार कर लिया था, पर लोग कहते हैं कि राजा शिवप्रसाद साहिब के कान फूंक देने पर सभा के दिन साहिब बहादुर ने टाउन हाल नहीं दिया। बिचारे नगर के सब प्रतिष्ठित जन वहां जा जाकर फिर गए। यह बात उन लोगों को बहुत बुरी लगी। दूसरे दिन कई लोगों ने कालिज में एक कमिटी की और निश्चय किया कि कालिज ही में सभा की जाय। साहिब मजिस्ट्रेट एक सज्जन पुरुष थे, परन्तु जब एक प्रतिष्ठित मनुष्य ने उन से जाकर मिथ्या निन्दा कर दी तो उस बात पर विश्वास कर लेना कोई आश्चर्य न था। जब उन को इस अवसर में यथार्थ वृत्तान्त ज्ञात हो गया तो उन्हों ने अपनी भूल स्वीकार की और उन के आग्रह से मंगल वार १५ अप्रैल को टाउन हाल ही में सभा हुई। बाबू प्रमोदादास मित्र सभापति बनाए गए। राजा साहिब भी वहां जा पड़े और उन्हों ने कुछ कहना भी चाहा, परन्तु लोगों ने यह सोच कर कि न जाने क्या कह बैठें, उन को मुंह भी खोलने की आज्ञा न दी। इस बात से क्रुद्ध कर वह काशिराज के निकट गए और वहां अपने अपमानित होने की कथा कह सुनाई। महाराज की ओर से बाबू हरिश्चन्द्र के पास पत्र आया कि "राजासाहिब का क्यों अपमान किया गया? इन का अपमान करना मानो दरबार ही का अपमान करना है।" पत्र पाकर हमारे सुशील चरित्र-नायक ने तत्काल उस का उत्तर कुछ लिख कर तो नहीं दिया पर पत्रवाहक द्वारा यह कहला भेजा कि "काशिराज के लिए जैसे राजा साहिब वैसे हम, हमारे अपमान से महाराज ने अपना अपमान नहीं माना और राजा साहिब के अपमान से अपना अपमान माना तो बेस, अब हम महाराज के दरबार में नहीं आवेंगे।"

इस सभा में बाबू साहिब ने भारतेश्वरी का अनेक गुण तथा उस दया का वर्णन कर के जो महारानी अपनी भारतीय प्रजा पर सर्वदा रखती थीं यह प्रस्ताव किया था कि "एक तार ड्यूक आव केनाट के पास भी भेजा जाय" और उस का अनुमोदन शाह अहमद उल्लाह सदरआला ने किया था।

---

प्रकाश करने को १२ अप्रैल शनिवार की सन्ध्या को ६ बजे टाउन हाल में सर्वसाधारण की सभा होगी। श्री राजराजेश्वरी की सब प्रजा को वहां आना उचित है।"

हरिश्चन्द्र।

उस सभा की ओर से श्री राजराजेश्वरी तथा श्रीमान ड्यूक आव केनाट के पास तार भेजा गया। और ड्यूक की ओर से तथा भारतेश्वरी की आज्ञानुसार वाइसराय की ओर से ( मजिस्ट्रेट साहिब के द्वारा ) काशी-निवासियों के राजभक्तिप्रदर्शन का धन्यवाद * सभापति के नाम आया था।

पाठकवृन्द ! जिस कार्य्य से राजराजेश्वरी एवं राजवंशियों को आनन्द हो और जिस को वे लोग भी प्रशंसा करें व्यर्थ निन्दा कर के उस कार्य्य में बाधा डालने का यत्न करना कैसे मनुष्य का काम है ? इसी से हमारे कविनायक ने " अन्धेर नगरी नाटक " में बहुत ठीक लिखा है:—

---

*Sir,

I am desired by the Duke of Connaught to acknowledge receipt of your telegram conveying sentiments of sympathy and condolence from the inhabitants of Benares on the death of H. R. H. the late much lamented Duke of Albany.

His Royal Highness desires you will have the goodness to offer his best thanks to the good and loyal people of Benares through the public meeting to which your telegram refers, at the same time to assure those gentlemen how much His Royal Highness appreciates the kindly feeling and sentiments of loyalty —towards the Royal Family and himself—which prompted them to send the telegram to which I am replying. Believe me,

Yours faithfully,
Sd. H. MOORE, Col.
*With H. R. H. the Duke of Connaught.*

To

BABU PARMODA DAS MITRA,
*Chairman Public Meeting, Benares.*

---

To

THE MAGISTRATE
BENARES.
Dated Naini Tal, 30th May 1884.

Sir,

I am directed to inform you that His Excellency the Viceroy and Governor General in Council has received the Command of the Queen-Empress, to convey to the Residents of Benares the sincere thanks of Her Majesty for their message of

"मान जोग नहिं होत कोऊ कोरे पद पाये।
मान जोग नर होत सोई जो परहित जाये॥"

ऐसे ही प्रकृति के कारण गुरु गुड़ ही रहे, चेले चीनी हो गए। राजा-साहिब क्या करें? वह अपने स्वभाव से मजबूर थे।

राजा साहिब से हम को न कुछ द्वेषभाव था और न विशेष कोई सम्बन्ध ही था। यह भी हमारे चरित्रनायक के समान हमारे स्वदेशीय थे और उन्हों ने भी बहुत सा काम किया और अपने ढंग की सुख्याति लाभ की। यदि उन की प्रकृति भली होती तो इस में सन्देह नहीं कि वह देश का और भी गौरव बढ़ाते। हम ने उन के विषय में इतना भी प्रसंगवश कह दिया है। ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उन की आत्मा को शान्तिलाभ हो।

हम अपने चरित्रनायक के विषय में अब यही कहैंगे कि पूर्वोक्त कार्य्यों से पूर्णरूप से स्वयंसिद्ध है कि यह राजभक्तिहीन नहीं थे किन्तु इन की राज-भक्ति पराकाष्ठा की थी। केवल कभी २ ऐसा वाक्य कह कर "अंगरेज़राज सुखसाज सजे सब भारी। पै धन विदेश चलि जात यहै अावत है ख्वारी" स्वदेशियों को व्यापारादि कार्य्यों के लिए उत्तेजित करने से यह राज्य के अशुभ-चिन्तक नहीं कहे जा सकते। राजभक्त तथा देशभक्त हरिश्चन्द्र को प्रजा का दुःख राजा के कान तक पहुंचाना एवं अपने प्रेममयी न्यायशाली सरकार से कोई भिक्षा मांगनी जैसा कि "भारतभिक्षा" में किया है, अथवा कोई कर वा टैक्स के निवारणार्थ प्रार्थना करनी उन के परम राजभक्ति का चिह्न है।

---

condolence, on the death of the Duke of Albany.

I have &c.
Sd. J. Stokes,
For Secretary to the Government.
N. W. P. & Oudh.

No. $\frac{10}{\text{XXII:8}}$

Copy of the foregoing is forwarded to Babu Pramoda Das Mitra, Chairmen Condolence Meeting Benares for information of the citizens.

Benares Magistracy. The 5th June 1884.

Sd. F. W. Porter,
Off. Magistrate.

जो बालक पूरा पितृभक्त होता है, माता पिता पर पूर्ण हार्दिक स्नेह रखता है, वही माता पिता से निःशंक अपना या अपने बन्धुवर्ग इत्यादि का दुःख निवेदन कर सकता है, क्योंकि वह माता पिता के हृदय के भाव को पूर्ण रीति से समझ सकता है। उस के दुःख निवेदन करने का ढंग भी निराला ही होता है। हमारे चरित्रनायक को देखिए कि जब प्रथम बार आमदनी पर कर ( Income tax ) लगा था उसी समय एक बार पश्चिमोत्तर देश के लाट सर विलियम म्योर का काशी में शुभागमन हुआ था। उस समय उन के स्वागत में गंगातट पर रोशनी हुई थी। इन्हों ने एक नाव पर " Oh Tax " और दूसरी पर यह दोहा:—

"स्वागत स्वागत धन्य प्रभु, श्री सर विलियम म्योर।
टिकस छोडावहु सबन को, बिनय करत कर जोर॥"

रोशनी में लिखवाया था। इस के उपरान्त टिकस उठ गया था। लोग कहते हैं कि इन्हीं के उस यत्न का वह फल था। चाहे जो हो, इस में सन्देह नहीं कि यह अन्त तक देशहित की चिन्ता करते गए और राजभक्ति को भी सर्व प्रकार से प्रदर्शित करते रहे।

हां, यहां पर यह भी लिख देना अयोग्य नहीं होगा कि श्रीमान् लार्ड नार्थब्रुक के आज्ञानुसार जब इनकम टैक्स लेना उठा दिया गया तो उस समय ४ मई १८७३ ई० को काशी में आनन्द प्रगट करने और धन्यवाद भेजे जाने के निमित्त सभा हुई थी। जो धन्यवादपत्र श्रीमान् की सेवा में भेजा गया उस के भेजने के लिए इन्हों ने एक बहुमूल्य मोती का खरीता बनवाया था।

इन के देहान्त होने के बाद "इण्डियन मेगज़ीन" जनवरी १८८८ ई० नई सीरीज़ न० २० में अन्य बातों के अतिरिक्त इन की राजभक्ति के विषय में जो एक साहिब बहादुर ने लिखा था हम उसी को अनुवाद के सहित उल्लेख कर के इस परिच्छेद को यहीं पर समाप्त करते हैं और इन के राजभक्त होने वा न होने का विचार पाठकों ही पर छोड़ देते हैं।

" There was no more sincere friend of English Raj than Harish Chandra ; and this I know well from numerous private letters received from him during a long series of yeaars. "

अनुवाद—हरिश्चन्द्र से बढ़ कर अंगरेज़ी राज्य का कोई दूसरा शुभचिन्तक नहीं था और यह बात मैं बहुत सी खानगी चिट्ठियों से जानता हूं जो मुझे वर्षों तक इन के यहां से आती रहीं।

---

## षष्ठ परिच्छेद।

### धर्म।

हमारे चरित्रनायक बड़े ही धर्मज्ञ एवं धर्मपरायण थे। इन के ग्रंथ अवलोकन मात्र से विदित होता है कि इन के नस नस में श्रीकृष्ण का प्रेम भरा हुआ था। इन के प्रति पद से निर्विकार चित्त तथा स्वाभाविक प्रेम का भाव प्रगट होता है। जिस व्यक्ति के अन्तःकरण से ऐसे २ भाव और उच्च मनोरथ उच्छलित हों क्या वह महात्मा नहीं कहा जा सकता? इतने सांसारिक कार्य्यों के उलझावे में रहने पर भी धर्म को इस प्रकार के चित्त में स्थान देना कविवर "रसखान"* के इस वाक्य को "रसखान

---

* इन का असल नाम सैय्यद इब्राहीम था। अवधमंडलांतर्गत हरदोई प्रान्त में बिलग्राम से लगभग ३० कोस पर, जहां फैजी के पिता मुबारक, रसलीन (कविवर सैय्यद गुलाम नबी) आदि अनेक मुसल्मान तथा हिन्दू भाषा के सुख्यात कवि हो गए हैं, पिहानी नामक एक स्थान है। वहीं के यह नवाब थे। यह मक्का की यात्रा कर व्रज की राह से रवाने हुए। व्रजदेश में कुछ दिन ठहर गए। वहां प्रतिमाओं के दर्शन द्वारा प्रेमदेव की महिमा जान कर श्रीकृष्णचन्द्र की भक्ति में ऐसे डूबे कि अपने साथियों को यह कह कर बिदा कर दिया कि "जिस के लिए काबः जाते थे वह यहीं मिल गया।" और माला कंठी धारण कर वृन्दावन ही में वास करने लगे और वहीं के रज में मिल गए। जब दिल्लीपति की ओर से कई लोग समझा बुझा कर लौटा ले जाने की मनसा से आए उन की भय और प्रलोभ भरी बातों का इन पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। निम्नलिखित सवैया और दोहा उसी अवसर की दृढ़चित्तता एवं प्रेमनिष्ठता का उद्गार है।

"वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं। आठहुं सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥ रसखान कबौं इन आंखन सौं ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं। कोटिन हूं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥"

"कहा करै रसखान को, कोऊ चुगल लबार।
जो पै राखनहार है, माखन चाखन हार॥"

इन की कविता ललित एवं माधुर्य्य पूर्ण है। इन का वृत्तान्त भक्तमाल

गुविन्दहिं यों भजिए जिमि नागरि को चित गागरि में" सार्थक करता है। यह महापुरुषों ही का काम है, सब से ऐसा नहीं हो सकता।

इन का धर्म्म वैष्णव और इन का सिद्धान्त परमधर्म्म भगवत्प्रेम था। यह गुण इन्हों ने निज परम पूज्य पिता से प्राप्त किया था। इन्हों ने स्वरचित "उत्तर भक्तमाल" में लिखा है:—

"तिन के सुत गोपालससि, प्रगटित गिरधर दास।
कठिन करमगति मेटि जिन, कीनो भक्ति प्रकास॥
मेटि देव देवी सकल, छाड़ि कठिन कुलरीत।
थाप्यो गृह में प्रेम जिन, प्रगटि कृष्ण पद प्रीत॥"

काशी के सुप्रसिद्ध गोस्वामी श्री गिरिधर महाराज की कन्या तथा गोपालमन्दिर की अधिष्ठात्री श्री श्यामाबेटी जी के यह शिष्य हुए थे। यह वल्लभीय सम्प्रदाय के वैष्णव थे। यह बात इन्हों ने स्वयं लिखी है:—

"हम तो श्रीवल्लभ को जानैं। सेवत वल्लभ पद पंकज को वल्लभ ही को ध्यानैं॥ हमरे मातु पिता गुरु वल्लभ और नहीं उर आनैं। हरीचन्द वल्लभपदबल सों इन्द्रहु को नहिं मानैं॥"

यद्यपि इन की निज स्वभावसम्बन्धि एक कविता में ऐसा कहने से "सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के" यह अनुमान हो सकता है कि इन का श्री कृष्णचन्द्र में सख्य भाव था, परन्तु असल में "त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव" यह भाव इन में पाया जाता है और यह अनुमान "माता राधिका पिता हरि" इस वाक्य से तथा निम्नलिखित कविता से दृढ़ प्रमाणित होता है।

"भजौं तो गुपाल ही को सेवौं तो गुपालै एक मेरो मन लाग्यो सब भांति नन्दलाल सों। मेरे देव देवी गुरु

---

में पढ़ने योग्य है। श्री पंडित वर प्रतापनारायण मिश्र ने भी जो इन की कविता का संग्रह प्रकाशित किया है उस में भी इन का कुछ हाल लिखा है।

रसखान का जन्म संवत १६२० में हुआ था।

माता पिता बन्धु इष्ट मित्र सखा हरि नातो एक गोपाल सों ॥ हरीचन्द और सों न मेरो सनबन्ध कछु आसरो सदैव एक लोचनविसाल सों। मांगों तो गुपाल सों न मांगों तो गुपाल ही सों रीझौं तो गुपाल हो पै खीझौं तो गुपाल सों ॥"

यह मत वा धर्म्म को विश्वासमूलक मानते थे, प्रमाणमूलक नहीं। इन का कथन था कि वादानुवाद तथा ईश्वरप्रेम और धर्म्म से क्या सम्बन्ध ? स्वधर्म्म तथा ईश्वर में निष्ठा एवं निश्चल और निष्कल भक्ति करनी ही जीव के लिए कल्याणकारक और भव-भय-भंजक है। युक्ति प्रमाण और ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं।

"युक्ति सों हरि सों का सम्बन्ध। बिना बात ही तरक करै क्यों चारहु दृग के अन्ध ॥ युक्तिन को परमान कहां है ये कबहूँ बढ़ि जात। जा की बात फुरे सो जीते या में कहा लखात ॥ अगम अगोचर रूपहि मूरख युक्तिन में क्यों साने। हरीचन्द कोउ सुनत न मेरो करत जोई मन माने ॥"

किन्तु वैष्णव होने पर भी इन के सिद्धान्त और साधारणमत में बहुत सी बातों का भेद था। ऐसा इन्हीं ने एक याददाश्त पर स्वयं लिखा है। इन्हीं ने ऐसा भी लिखा कि "हम कर्म्ममार्ग को सर्वथा व्यर्थ समझते हैं किन्तु जिस कुल वा जाति में हम उत्पन्न हैं उस के लोगों को दुःख होगा, इस ध्यान से हम यावत् कर्म्म करते हैं।"

यह बाह्याडम्बर को दूर ही से प्रणाम करते थे, क्योंकि जो धर्म्मकार्य्य निमी प्रेमी कहलाने के निमित्त वा वंचकता के हेतु किया जाता है वह सब मिथ्याडम्बर और व्यर्थ ही है। ऐसे धर्म्म के करने से न करना ही उत्तम है। यदि बाह्यविशुद्धता हुई, बाह्यस्वच्छाचरण हुआ और मन में ईश्वर का सच्चा प्रेम न हुआ तो फिर किस काम का ? इन्हीं ने "तदीय सर्व्वस्व" (नारदभक्ति-सूत्र के भाष्य) की भूमिका में लिखा है "...और मूल धर्म्म को छोड़ कर उपधर्म्मों में आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्म्म का लोप कर दिया।...... गौणकर्म्म तो मुख्य हो गए और मुख्य वस्तु गौण हो गई। इसी से सारा भारतवर्ष भगवद्विमुख हो कर छिन्नभिन्न हो गया जो कि इस की अवनति का मूल

कारण हुआ। कभी ईश्वरविमुख कोई देश या जाति की उन्नति हो सकती है ? धर्म हमारा ऐसा निर्बल वा पतला हो गया है कि केवल स्पर्श से वा एक चिल्लू पानी से मर जाता है। कच्चे गले सड़े सूत वा चींटी की दशा हमारे धर्म की हो गई है, हाय !...... हम लोगों में बाह्यवेष बाह्या-डम्बर, आचार, वा परनिन्दादि आग्रह ऐसे समागए हैं कि उन का धर्म किसी काम में नहीं आता। या तो ईश्वरवादी हिन्दूसमाज से सम्पूर्ण बहिष्कृत हो जायंगे या कर्ममार्ग से ऐसे दब जायंगे कि नाममात्र के भक्त रहेंगे।"

यह श्री कृष्णचन्द्र के अनन्य भक्त थे और दूसरे देव को अपना आराध्य नहीं मानते थे। इन्हीं ने इस बात को अनेक स्थानों में डंके की चोट कह दिया है। यथा:—

"पूजि कै कालिहिं सत्रु हतो कोउ लच्छमि पूजि महा धन पाओ। सेइ सरस्वति पंडित होहु गनेसहिं पूजि कै बिघ्न नसाओ॥ त्यौं हरिचंद जू ध्याय शिवै कोउ चारि पदारथ हाथ हिं लाओ। मेरे तो राधिकानायक ही गति लोक दोऊ रहो कै नसि जाओ॥

पुनः—"पूजिहों देवि न देव कोउ किन वेद पुरानन ऊंचे पुकारो॥ काहु सों काम नहीं कछु मोहि सबै अपनो अपनो को सम्हारो। हौं बन्दिहों कि न ताइहों या सों यहै प्रन है हरीचंद हमारो। मानिहों एक गोपालहिं को नहि और के बाप को या में इजारो॥"

किन्तु इन वाक्यों से किसी को यह भ्रम न हो कि इन को और देवता वा अन्य धर्म से घृणा थी। भला जिस व्यक्ति ने धर्मग्रंथों का मथन कर डाला था, पौराणिक विषयों को औरों के लिए हस्तामलक बनाने के अभिप्राय से "पुराणोपक्रमणिका" की रचना की थी और "नारदभक्ति-सूत्र" "शांडिल्यभक्तिसूत्र" प्रभृति अनेक पुस्तकों का भाष्य लिखा था, भला कब सम्भव है कि वह किसी सम्प्रदाय वा धर्म को तिरस्कृत और उस का अनादर करेगा ? इन्हों ने लिखा भी है :—

"अहो तुम बहुविध रूप धरो। जब २ जैसा काम परै तब तैसा भेष करो॥ कहुं ईश्वर कहुं बनत अनीश्वर नाम अनेक धरो। मत पन्थहिं प्रगटावन कारन लै सरूप बिचरो॥ जैन धरम में प्रगट कियो तुम दयाधर्म्म सिगरो। हरीचंद तुम को बिन पाये लरि २ जगत मरो॥

फिर कहा है—

"वेद मारगहि वारो प्यारे जो हूक तुम को पावै।
जगस्वामी जगजीवन फिर क्यों तुमरो नाम कहावै"

यह जान कर और यह कहते हुए भी कब सम्भव था कि यह किसी अन्यदेव वा धर्म्म को तुच्छ समझते रहे हों। पर भक्ति तो अनन्य ही होनी चाहिए। ईश्वर के जितने सच्चे भक्त हुए हैं सभी अपने इष्टदेव की अनन्य भक्ति करते और उन के चरणों में प्रेम रखते आए हैं। कहावत प्रसिद्ध है कि जब गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीकृष्ण जी की मूर्ति देखी तो कहा "तुलसी मस्तक तब नवै, धनुषबान लेहु हाथ" तिस पर भी श्री कृष्णचन्द्र की स्तुति में गोस्वामी जी रचित "कृष्णगीतावली" पाई जाती है। हरिश्चन्द्र जी भी और देवों का निरादर नहीं करते थे वरञ्च स्तुति ही करते थे, किन्तु इन का अनन्य प्रेम श्रीकृष्णचन्द्र ही के पदपंकज में था। अपनी जनकपुर की यात्रा में श्री जनकलली की स्तुति में इन्हों ने कई एक पदों की रचना की थी। उन में एक यह भी है:—

"अरे मन भजिले सियपदकंज।
क्यों इत उत भरमत भव भोगत सहत अनेकन रंज॥
सबहिं छाड़ि मन विषयबासना पथ में मानहु खंज।
युगल प्रेमरसमय समुद्र में ह्वै अनन्द मन मंज॥
छाड़ि अनेक आस बिस्वासा करमजाल सब भंज।
हरीचन्द सीतापदरत कर जौन परमफलगंज॥

इन की बनाई गंगा और यमुना की स्तुति भी पाई जाती है।

अथ गंगास्तुतिः—"गंगा पतितन को आधार। यह कलि-काल कठिन सागर सों तुमहि लगावत पार॥ दरस परस जल पान किए तें तारे लोक हजार। हरिचरनारविन्दम-करन्दो सोहत सुन्दरधार॥ अवगाहत नरदेव सिद्ध मुनि कर अस्तुति बहुबार। हरीचन्द जनतारनि देवी गावत निगम पुकार॥"

अथ यमुनास्तुतिः—"जमुना तुम हरि की अति प्यारी। अधमउधारनि भवरुज वारिनि दरस परस भयहारी॥ ब्रजभुव बसत निरंतर हरि हित श्याम सरूपहिं धारी। हरीचन्द ब्रजचन्द रमन हित भई मनोहर वारी॥"

केवल यही नहीं, यह जैनमन्दिर में भी जाते थे। इसी से ऐसे लोग जो केवल वाह्याडम्बर ही के उपासक हैं और जो बात बात में धर्म्मभ्रष्ट हो जाते हैं और मतमतान्तर के झगड़े ही को धर्म्म माने बैठे हुए हैं इन का उपहास भी करने लगे थे कि यह धर्म्मभ्रष्ट हो गए, किन्तु धर्म्म क्या पदार्थ है इस को हरिश्चन्द्र भली भांति समझते थे। इसी जैनमन्दिर में जाने से जो प्राचीन मंडली में इन की चर्चा एवं इन के आचरण की आलोचना होने लगी तो इन्हों ने "जैनकुतूहल" नामक ग्रंथ की रचना की जिस का वर्णन अन्यत्र किया गया है।

यह जगत को ब्रह्ममय और सत्य मानते थे। इन का यह विचार था कि जब कारण सत्य है तो कार्य्य भी सत्य ही होगा। "जो पै ईश्वर सांचो जान। तो क्यों जग को सगरे मूरख झूठो करत बखान।" जो लोग जगत को मिथ्या माननेवाले हैं वह इन से असन्तुष्टता प्रगट नहीं करेंगे। इन्हों ने केवल अपना सिद्धान्त लिखा है। इन को कोई अपना धर्म्मप्रचार करना अभिप्रेत नहीं था। यदि ऐसी इच्छा होती तो आधुनिक अनेक धर्म्म-प्रचारकों की अपेक्षा यह इस विषय में शीघ्र कृतकार्य्य होते। जो लोग आज नए २ धर्म्म चलाने पर उद्यत हो जाते हैं उन लोगों से यह कहीं उत्तम धर्म्मप्रचार करते।

हां ! निज वाक्य द्वारा ईश्वर में सहज स्नेह अवश्य दृढ़ाया है। और स्पष्ट कहा है कि "विना शुद्ध प्रेम न लोक है न परलोक। जिस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, जिस जाति वा कुटुम्ब से तुम्हारा सम्बन्ध है और जिस देश में तुम हो उस से सहज सरल प्रेम करो और अपने परम पिता परम गुरु परम पूज्य परमात्मा, प्रियतम को केवल प्रेम से ढूंढ़ो बस और कोई साधन नहीं है।" और इन के विचारानुसार धर्म्म जिन दूषणों से आच्छादित हो गया है उस को इन्हों ने निर्भय रीति से प्रत्यक्ष दिखलाया है जो सच्चे कवि का यथार्थ कर्तव्य है।

यह सत्य, अहिंसा, दया, शील नम्रतादि चरित्र को भी धर्म्म मानते थे। यह सब बातें इन के चरित्र से प्रगट हैं। इन्हों ने सर्वत्र हिंसा की निन्दा की है। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" में हिंसकों की बड़ी दुर्गति लिखी है। दुर्गापूजादि के समय जो बलिप्रदान होता है उसी के सम्बन्ध में इन्हों ने बकरीविलाप * लिखा है।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

मानुष जन सों कठिन कोउ, जन्तु नाहिं जगबीच।
विकल छाड़ि मोहि पुत्र लै, हनत हाय सब नीच॥
वृथा जवन को दूसहीं, करि बैदिक अभिमान।
जो हत्यारो सोइ जवन, मेरे एक समान॥
धिक २ ऐसो धरम जो, हिंसा करत बिधान।
धिक २ ऐसो स्वर्ग जो, बध करि मिलत महान॥
शास्त्रन को सिद्धान्त यह, पुण्य सु परउपकार।
परपीड़न सों पाप कछु, बढ़ि कै नहिं संसार॥
जज्ञन में जप जज्ञ बढ़ि, अरु सुभ सात्विक धर्म्म।
सब धर्म्मन सों श्रेष्ठ है, परम अहिंसा धर्म्म॥
पूजा लै काहूँ तुष्ट नहिं, धूप दीप फल अन्न।
जो देवी बकरा बधे, केवल होत प्रसन्न॥

---

* सन १८७४ ई० में इस की रचना हुई थी।

हे बिश्वंभर! जगतपति, जगस्वामी जगदीस।
इम जग के बाहर कहा, जो काटत मम सीस॥
जगमाता जगदम्बिके, जगतजननि जगरानि।
तुव सन्मुख तुव सुतन को, सिर काटत क्या जानि॥
क्यौं न खींच कै खड्ग तुम, सिंहासन तें धाय।
सिर काटत सुतबधिक को, क्रोधित वलि ढिग आय॥
त्राहि २ तुमरो सरन, मैं दुखनो अति अम्ब।
अब लम्बोदरजननि बिनु, मो को नहिं अवलम्ब॥

\+ + + + + +

सुप्रसिद्ध ब्रह्मोधर्म्मप्रचारक बाबू केशवचन्द्र सेन ने इन को ईश्वरभक्ति की बड़ी सराहना करके इन की बनाई हुई भक्ति सम्बन्धी पुस्तकों को बंग-भाषा में अनुवाद करने के अभिप्राय से मंगाया था जो बात बाबू केशवचन्द्र के एक पत्र से ज्ञात होती है।

निस्सन्देह इन के जिस पद को पढ़िए और जिस ग्रन्थ के समर्पण को देखिए उस से इन का स्वच्छ आन्तरिक ईश्वरप्रेम प्रगट होता है। एक बात और भी नोट करने के योग्य है कि सिवाय "मुद्राराक्षस" के इन्हों ने यावत् ग्रन्थ बनाए हैं उन सब को अपने प्रेमदेव ईश्वरही को समर्प्पण किया है।

---

# एकविंश परिच्छेद।

## आकृति प्रकृति।

सुविज्ञ एवं सुप्रसिद्ध एडिसन साहिब ने "स्पेक्टेटर" में लिखा है कि कोई पाठक किसी ग्रंथ को सहर्ष पाठ नहीं करता जब तक उस को यह बात ज्ञात न हो कि उस का रचयिता काला था वा गोरा, उस का स्वभाव उद्धत था वा नम्र, एवं जब तक उस को उस के सम्बन्ध में इसी प्रकार की और बातों की पूरी जानकारी नहीं हो जिस से उस ग्रंथकर्त्ता की रचना के ठीक समझने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। * इसी से भी हम अब अपने चरित्रनायक की आकृति प्रकृति वर्णन की चेष्टा करते हैं।

इन का क़द लम्बा और बदन एकहरा था, नाक सुडौल, आखें छोटी थीं, कान अवश्य बड़े थे, उन्नत ललाट इन के भाग्यवान पुरुष होने की सूचना दे रहा था, घुंघरारे बाल सांवली सलोनी सूरति की छटा बढ़ा रहे थे, वक्षःस्थल भ्रमरावली के सदृश ललित केशों से शोभायमान था। इन की मनभावनी मनोहर मूर्ति लोगों के मन को वैसे ही मोहित किए रहती थी जैसे इन के सद्‌गुण सब को सदा लुभाए रहते थे, और वैसे ही सुन्दर शील स्वभाव लोगों को वशवर्ती बनाए रहा करता था।

जैसी इन की सलोनी मूर्ति थी वैसे ही भोजन में भी इन को नमकीन ही वस्तु अधिक प्रिय थी। पापड़ दालमोट इत्यादि बहुत रुचि से खाते थे।

यह सच है कि मनुष्य की आकृति ही से उस की प्रकृति प्रायः प्रलक्षित होती है। इसी से कहा है कि "Face is the index of the heart" हरिश्चन्द्र जैसे देखने में सोहावन थे वैसे ही इन का हृदय भी सरल और शुभगुणसम्पन्न था। आगे हम इन के इन्हीं गुणों की व्याख्या करेंगे।

## दयालुता।

इन का कलेजा बड़ा ही कोमल था। यह किसी का दुःख नहीं देख सकते थे। पराए का दुःख देख कर यह बहुत कातर हो जाते थे और यथासम्भव

---

* I have observed that a reader seldom peruses a Book with pleasure till he knows whether the writer of it be a black or a fair man, of a mild or cholerick disposition......with other particulars of the like mature that conduce very much to the right understanding of an Author. The Spectator.

उस को सहायता करते थे वरन ऐसे ही अवसर में इन्हें द्रव्याभाव का कुछ खेद भी होता था।

१८७२ ई० के अक्तूबर में दक्षिण देशान्तर्गत खानदेश तथा कई गांवों में ऐसी वर्षा हुई थी कि गांव का गांव बह गया था। सैकड़ों घर गिर पड़े थे। सहस्रों मनुष्य एक संग नाश हो गए थे। अन्न वस्त्र सब वस्तु बह गई थीं। ईश्वर की कृपा से जिन के प्राण बच गए थे वे लोग भी अन्न-वस्त्रविहीन निरवलम्ब अनाथों की भांति क्षुधापीड़ित हो कर कराल काल के मुखगह्वर में प्रविष्ट होते जाते थे। उस समय परम दयालुचित्त हरिश्चन्द्र उन के दुःख को सहन न कर सके। निज कोष से उन लोगों की सहायता करने के अतिरिक्त इन्हों ने हाथ में दरियाई नारियल लेकर काशी नगर में भिक्षाटन द्वारा उन क्षुधापीड़ित मनुष्यों के लिए द्रव्य एकत्रित कर के सहायता की थी।

एक बार जब काशी में ऐसी बाढ़ आई थी कि कच्चे और पक्के मकानों को कौन पूछे पत्थर के घर भी धसे जाते थे, लोग नावों पर चढ़ २ कर जान की रक्षा कर रहे थे, सड़ी२ डेंगियों का किराया दो चार रुपया हो जाने पर भी बहुतेरों को मिलती नहीं थीं, उस समय में इन्हों ने दुःखी नगर निवासियों का क्लेश देख कर काशीनरेश से निवेदन कर के श्री गंगा जी को विनयपत्र दिलवाया और बेघरवालों को नंदेश्वर की कोठरी में स्थान दिलवा कर शरण प्रदान कराया। उस समय के "कविवचनसुधा" समाचार पत्र में लिखा था कि यदि बाबू हरिश्चन्द्र काशिराज से न कहते और श्री महाराज सहायता न करते तो गेहविहीन लोगों का देह भूतल में रहना असम्भव था, सब गंगा माता की गोदही में शयन करते।

एक समय लखनऊ के वाजपेयी खालेवाले पूर्ण वैयाकरण अस्सी वर्ष की अवस्था के बोदल बाबा अपने पौत्र बब्बू बाबा के साथ अपने एक नातेदार फ़तहवादी सुक्कू जी के यहां मिर्ज़ापुर में आए थे। संयोगवश लड़के के आभूषण सहित रुपया का बटुआ गंगातीर से चोरी हो गया। बिचारे अति दुःखावस्था में काशी आए। व्यास गणेशदत्त के साथ बाबू साहब के निकट पहुंचे। इन्हों ने एक मास पर्यन्त उन्हें अपने पास रक्खा और चलते समय द्रव्य की सहायता देकर सादर बिदा किया।

एक दिन जाड़े की रात में एक दरिद्र सड़क पर सोया हुआ था। उस को

देखकर इन्हों ने चट अपना दोशाला उतार कर उसे ओढ़ा दिया और स्वयं उघारे घर चले आए। ऐसा यह प्रायः किया करते थे।

गुप्त दान देना तो इन का सदैव का काम था। कभी किसी के पास लिफ़ाफ़े में नोट रख कर भेज देते, कभी पुड़ियों में रुपया रख कर किसी को दे देते थे।

एक समय यह कहीं से फूलों का एक गजरा पहिने आ रहे थे कि एक चौराहे पर उसे उतार के उस में पांच रुपया लपेट कर एक दुखिया के पास रखकर चले आए जो नौकर साथ में था उस को कुछ सन्देह हुआ। इन को घर पहुंचा कर फिर जाकर देखे तो गजरा ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है और उस में पांच रुपया लपेटा हुआ है।

कितनों को फ़ोटोग्राफ़ का सामान एवं जादू के तमाशे का सामान ख़रीद २ कर दे देते थे कि जिस में बेचारे जीविका कर के सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें। इन को बदौलत आज तक वे सब आनन्द से कालक्षेप करते हुए इन का गुण गान किया करते हैं।

जैसा यह पराए का दुःख देख कर दुःखी होते थे वैसे ही इन्हें पराए का सुख देख कर आनन्द भी होता था। राजा शिवप्रसाद के मैं सरकार से राजा के पद से सम्मानित किए जाने पर इन्हों ने उस की बधाई में एक सभा की थी। उस का विज्ञापन देखने से ज्ञात होता है कि वह सभा बहुत धूम धाम से हुई थी। गाना बजाना, नगर में रोशनी, श्री विश्वेश्वरनाथ का शृंगार आदि उत्साहपूर्वक किया गया था और भारी आनन्दोत्सव मनाया गया था।

एक बार श्री महाराज काशीनरेश को ऐसा नेत्ररोग हो गया था कि वह एक प्रकार से चक्षुजोतिविहीन हो गए थे। उस को आरोग्यता के निमित्त अनेक उपाय होता रहा किन्तु कुछ फलदायक नहीं होता था। जब कलकत्तानिवासी डाकर काली बाबू की चिकित्सा से उस रोग का सर्वनाश *

* इस साल के बुढ़वा मंगल के विषय में एक लेख मिला है जिस में लिखा है कि "कविवरशिरोमणि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने एक अपूर्व साज साजा, जिस को देख कर लोग वाह २ कर सराहते थे। बाबू हरिश्चन्द्र जी ने सोचा कि काशिराज का दर्शन आंख बनने के सबब दुर्लभ है। इस लिए इन्हों ने श्रीमान् का चित्र लगा कर सब काशी वासियों को दर्शन करा के नेत्रसफल कर दिया।"

हुआ तब १८८४ ई॰ में "कारमाइकल लाइब्रेरी" में इन्हीं ने बड़े समारोह से सभा की और बड़ाही आनन्दोत्सव मनाया। उस समय भी बहुत से मनुष्यों ने यह यत्न करने में त्रुटि नहीं की थी कि हरिश्चन्द्र उस में कृतकार्य न हों। यहां तक कि ठीक सभा के समय इन को यह सूचना दी गई कि उस उत्सव में श्रीमान् महाराज का कोई जलूस नहीं आ सकेगा, परन्तु उन लोगों के किए कुछ नहीं हो सका और बड़े आनन्द से उत्सव सम्पन्न हुआ।

उसी अवसर में १५ वर्ष का एक बालक भूदेव कविरत्न ने ५ मिनिट में समयानुसार कई पदों की रचना की और सभा में पढ़ कर लोगों को प्रसन्न कर दिया।

गुणग्राहिता।

यह बड़े गुणग्राही और उदारचित्त थे। ऐसा कोई गुणी इन के पास नहीं आया होगा जिस का इन्हीं ने यथोचित सत्कार न किया हो। यह जहां कोई गुणी पाते थे वहीं उस का सत्कार करते थे। कवि तथा विद्वानों के लिए इन्हें सुरतरु कहना कोई अत्युक्ति न होगी।

सम्बत् १८३४ के पूर्व काशी के पञ्चाङ्ग कुछ ऐसे भ्रष्ट निकलने लगे थे कि दिहात तथा गांवों में भी उन की निन्दा होने लगी थी। तब इन्हीं ने श्री पंडितवर बापूदेव शास्त्री * से निवेदन किया और उन्हीं ने इन के आग्रह से सं १९३४ का नवीन पंचांग निकाला और तब से शास्त्री जी का पंचांग प्रति वर्ष निकला करता है। नवीन पंचांग की रचना पर बाबू साहब ने शास्त्रीजी को एक बहुमूल्य दोशाला पुरस्कार में दिया था।

---

* १८२१ ई॰ में पूना में इन का जन्म हुआ। यह बालावस्थाही में स्कूल में बैठाए गए। १३ वर्ष की अवस्था में इन्हीं ने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। १५ वर्ष के वयस में एक महरट्टी स्कूल में गणित पढ़ने लगे। १८३७ ई॰ में पिता के साथ नागपुर गए और वहां पर बड़े परिश्रम के साथ इन्हीं ने कौमुदी, लीलावती, बीजगणित आदि का अध्ययन किया। इन्हीं ने एक समय पोलिटिकल एजेंट एल॰ विल्किनसन साहिब के नागपुर जाने पर उन से साक्षात किया और वह इन की विद्या से इतने प्रसन्न हुए कि इन के पिता की आज्ञा लेकर इन्हें अपने साथ सिहोर ले गए। वहां पर यह संस्कृत कालिज में श्रीभास्कराचार्य्य से सिद्धान्तशिरोमणि अध्ययन करते, एवं अपरान्ह काल में एक हिन्दी स्कूल में गणित तथा बीजगणित पढ़ते थे। विल्किनसन साहिब बहा-

सायन गणना के अनुसार जैसी श्रीरामचन्द्र आदि की जन्मकुन्डलियां बनाई गई थीं उसी रीति से जब श्रीपंडितवर सुधाकर जी * ने इन की जन्मकुंडली बनाई तो उस के पुरस्कार में इन्हों ने उन को ५००) मुद्रा देकर उन्हें सम्मानित किया।

---

दुर ही की सिफ़ारिश से दो वर्ष पश्चात् यह बनारस संस्कृतकालिज में गणित शास्त्र के अध्यापक ( Professor ) नियुक्त हुए। १८४२ ई० में इन्हों ने गणित एवं ज्योतिष पढ़ाना आरम्भ किया। श्रीयुत टामसनसाहिब पश्चिमोत्तर देश के छोटे लाट के समय हिन्दीभाषा में अंगरेज़ी ढंग पर बीजगणित लिखने के लिए इन्हें २०००) का पारितोषिक मिला। सूर्य्यसिद्धान्त का अंगरेज़ी अनुवाद किया। विल्किनसन साहिब ने सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय का जो अनुवाद किया था इन्हों ने उत्तम नवीन टिप्पणी के साथ उस की पूर्ति लिखी और वह कलकत्ता के बैविलोथिका इन्डिका (Babilothica Indica) में प्रकाशित हुआ, और हिन्दी में बीजगणित का दूसरा भाग बनाया जिस के पुरस्कार में तत्कालीन पश्चिमोत्तर देश के छोटे लाट विलियम म्यूर साहिब बहादुर ने ३०००) मुद्रा और दोशाला देकर इन का मान बढ़ाया।

१८६४ ई० में ग्रेटब्रिटन ( विलायत ) के "रायल एशियाटिक सोसाइटी" के आनरेरी मेम्बर हुए। १८६८ ई० में "बंगाल एशियाटिक सोसाईटी" के भी मेम्बर बने। १८६९ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के "फ़ेलो" बनाए गए, और कुछ दिन बाद सरकार ने इन्हें C. I. E. के पद से आभूषित किया। १८९२ ई० में ७१ वर्ष की अवस्था में इन का स्वर्गवास हुआ। देखो बाबू लोकनाथ घोष कृत "Modern History of Indian Chiefs"।

* १८५० ई० में बाबू तारामोहन आदिक महाशयों ने काशी से "सुधाकर" नाम का पहिला हिन्दी पत्र निकाला था। कहते हैं कि डाकिया ने ज्योंही इन के पैत्र्य को "सुधाकर" पत्र दिया त्योंही गृह से दाई समाचार लाई कि उन के भाई को पुत्र जन्मा। इसी से इन के चचा ने इन का नाम सुधाकर रक्खा। इन का वंश काशी खजुरी के प्रतिष्ठित वंश में है। यह काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। पहिले यह बनारस कालेज में पुस्तकाध्यक्ष थे। महामहोपाध्याय श्री पंडित बापूदेव जी के स्वर्गवास होने पर यह उन के पद पर कालिज में ज्योतिष के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। गवर्नमेंट में इन का बड़ा मान है। यह महामहोपाध्याय के

जब काशी के राजघाट का पुल बनाया जाता था तब बाबू साहिब एक बार पंडित सुधाकर जी के साथ पुल देखने गए थे। वहां पर पंडित जी महाराज ने यह दोहा बनाया था "राजघाट पर पुल बँधत जँह कुलीन के ढेर। आज गए काल देखि कै आज हि लवटे फेर"। इस पर प्रसन्न हो कर इन्हों ने पंडित जी को १००) पुरस्कार दिया था।

यह तो सभी जानते हैं कि हिन्दीभाषा के भंडार में "बिहारीसतसई" एक अमूल्य रत्न है। कहावत प्रसिद्ध है "सतसइया के दोहरे जिमि नावक के तीर। देखन को छोटे लगें,बेधत सकल सरीर॥" कौन काव्यरसिक ऐसा होगा जो इस "सतसई"का आदर न करता हो। इस सतसई को अनेक लोगों * ने भांति२ को टोकाएं को हैं। इसी सतसई के दोहों को जब मथुरानिवासी कवि परमानन्दजी संस्कृत में छन्दबद्ध अनुवाद कर के "शृंगारसप्तशतिका" के नाम से इन के पास लाए तो इन्हों ने उस को देख कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और सहर्ष एक सभा कर के ७००) और बनारसी दुपट्टा पारितोषिक देकर पंडित परमानन्द को परमानन्दपूर्व्वक बिदा किया।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने स्वरचित "बिहारीबिहार" नामक ग्रंथ में "शृंगारसप्तशतिका" के कर्त्ता पंडित परमानन्द के विषय में यों लिखा है:—

"मैं ने दश ग्यारह वर्ष की वय में इन को देखा था। मुझे ठीक स्मरण है कि दशाश्वमेध की सङ्गत में महन्त बाबा सुमेर सिंह शाहज़ादा साहिब के यहां मेरे पिता जी के साथ में बैठा था। साहित्य की कोई बात

---

पद से सम्मानित किए गए हैं। इन्हों ने बहुत से ग्रंथों की रचना की है। हिन्दी के भी अच्छे कवि हैं। गणित शास्त्र के बड़े वेत्ता हैं।

* सूरत मिश्र, चन्द्र, गोपालशरण, कृष्ण (इन्हों ने प्रत्येक दोहा के आशय को कवित्त तथा सवैया छन्द में प्रगट किया है)' कर्ण, अनवरखां, पठान सुल्-तान, जुल्फ़िक़ार, यूसुफ़खां, रघुनाथ, लाला, सरदार, लल्लूलाल (यह लालचन्द्रिका के नाम से ख्यात है), रामबक्स, जोखूदास।

छोटूवैद्य ने इस की वैद्यक टीका की है। एक नमूना देखिए "मेरी भवबाधा हरो राधानागरि सोइ। जा तन की झांई परे स्याम हरित दुति होय।" अर्थ राधा=सोंठ, नागर=नागरमोथा, सोय=सोया (ये औषधि सब) मेरी बाधा (रोग) हरो, भवबाधा ऐसी है जिस की तन पर झांई पड़ने से श्याम और हरित (काली और हरी) दुति हो गई है (शरीर का रंग बदल गया है)।

महंत जी ने पूछी थी, मेरे पिता जी कह रहे थे। इसी समय अकस्मात् बाबू हरिश्चन्द्र जी और उन के साथ पंडित परमानन्द आए। पंडित परमानन्द जी सांवले से थे। लग ढग ३० वर्ष की बय थी, मैली सी धोती पहिने, मैली छींट की दोहरी मिरज़ई पहने, बनाती कन्टोप ओढ़े, एक सड़ी सी दोहर शरीर पर डाले थे। बाबू साहिब ने पिता जी से उन के गुण कहा। सुन के सब उन की ओर देखने लगे। उन्हों ने अपनी हाथ की लिखी हुई पोथी बगल से निकाली और थोड़ी बांच कर अपनी दशा कह सुनाई कि 'मुझे (कन्या विवाह अथवा और कोई कारण कहा ठीक स्मरण नहीं) इस समय कुछ द्रव्य की आवश्यकता है इसी लिये चिर परिश्रम में यह ग्रंथ बनाया कि किसी से व्यर्थ भिक्षा न मांगनी पड़े। अब मैं इस ग्रंथ को लिये कितने ही राजा बाबुओं के यहां घूम चुका। कोई तो कविता के विषय में महादेव के बाहन मिले, कहीं सभापंडित घुसने नहीं देते, कहीं संस्कृत के नाम से चिढ़, कोई रीझे तौभी पचा गये, कोई २ वाह वाह की भरती कर रह गए, और कोई, अति प्रसन्नो दमड़ीं ददाति। अब बाबू साहिब का आश्रय लिया है।' थोड़े ही दिनों के अनन्तर बाबू साहिब ने ५००) मुद्रा और उन के मित्र रघुनाथ पण्डित प्रभृति ने २००) यों दोहा पीछे १) इन की बिदाई की। जो अनेक चंवरछत्रधारी राजा बाबू न कर सके, सो वैश्य बाबू हरिश्चन्द्र ने किया। हा! अब यह आसरा भी कविजन का टूट गया।" *

---

* व्यास जी का यह लिखना कि बाबू साहिब के स्वर्गवास से कविजन का एक भारी आसरा टूट गया बहुत यथार्थ है क्योंकि कविजन इन के पास प्रायः याचना के हेतु आया करते थे और उन की मनकामना भी सफल होती थी। एकबार कलकत्ता मटियाबुर्ज के कोई मिर्ज़ा आबिद ने इन के पास यह क़सीदा लिख कर इन से सहायता की प्रार्थना की थी।

क़सीदा।

बाग़ आलम में मोतदिल है हवा। नख़ले उम्मीद है हरा सब का॥
कुछ ज़माने का रंग फिर बदला। फिर नया तौर कुछ नज़र आया॥
किस की यारब नसीम फ़ैज चली। खिल रहे हैं जो यह गुले राना॥
था इसी फ़िक्र में कि आई निदा। जानता तूं नहीं है उस को क्या॥
के हरिचंद नाम नामी है। मसकन उस का है ख़ास काशी का॥

सुनते हैं कि उस रुपये को बाबू साहिब किसी आवश्यकीय कार्य्य के निमित्त रक्खे हुए थे, परन्तु उस की कुछ भी चिन्ता न कर के साहित्य-सेवा तथा एक सुकवि के सन्मान में उसे अर्पण कर दिया, यद्यपि द्रव्याभाव से उस विशेष कार्य्य के समय पर नहीं होने के कारण इन्हें कुछ कष्ट भी उठाना पड़ा।

सुविख्यात भारतमार्तण्ड गट्टू लाल जी जब भारतेन्दु के पास आए और मार्तण्ड तथा इन्दु का सुयोग हुआ, तो ऐसे अवसर पर बाबू साहिब ने उन के सम्मानसूचनार्थ काशी में एक बड़ी भारी सभा की। अंगरेज़ लोग भी उस सभा में उपस्थित थे। गट्टूलालजी के आश्चर्य्यजनक कार्य्यों को देखकर सबों को बहुतही अचम्भा हुआ था। मार्तण्ड दोनों आंखों के अन्धे थे, किन्तु ज्ञानदृष्टि तो ऐसी थी कि कदाचित्ही किसी में पाई जाय। समस्या-पूर्त्ति बात बात में करते थे। लोग भिन्न २ भाषाओं में भिन्न २ प्रश्न कर जाते थे, और उन के प्रश्नों के समाप्त होने पर आप क्रमानुसार सबों का चमत्-

---

गौहरे बहरे फ़ैज़ो अब्रे करम। समरे नख्ले बाग़ जूदो सख़ा॥
जब निदा कान में यह आई मेरी। शुक्र ख़ालिक़ का मैं बजा लाया॥
किबरिया ख़ल्क़ में भी ऐसा शख़्स। तुम ने अपने करम से ख़ल्क़ किया॥
इल्मो हिल्मो मरव्वतो इख़लाक़। तुझ को ख़ालिक़ ने सब किया है अता॥
वाक़ई जो सख़ी हैं आलम में। नेकनामी उसी का है हिस्सा॥
तेरा जारी रहे य बहरे करम। बहे जब तक जहान में गंगा॥
हर अलूमो फ़नून के माहिर। क़द्रदां अहले फ़न के हो बखुदा॥
दे फ़लातूं को जो सबक़ वह अक़्ल। है अरस्तू भी तेरा ज़िल्लेरोबा॥
इल्म अबदान से भी हो माहिर। इल्म अदवना सब है तुम प खुला॥
नाम हातिम का ख़ल्क़ भूल गई। सुन के शुहरा तेरी सख़ावत का!
हुआ कोई जो माल का ख़्वाहां। उसको क़शमीरी आपने बख़्शा॥
होगया कशमकश में था दिले ज़ार। आप का नाम सुन के कुछ सम्हला॥
क़द्रदां आप है वगरने भला। फ़िक्र से इतनी मुझ को काम था क्या॥
आज की हाज़िरी लिखी मुन्शी। कल्ह सवेरे तो कूंच है अपना॥
मुफ़्लिसी औ मकान को जाना। अर्ज़ को इस लिए है पेश किया॥
ज़ात तेरी ग़रीबपरवर है। मैं भी उम्मीद लुत्फ़ हूं रखता॥
रोज़अफ़ज़ूं हो तेरा जाहो हशम। है यह "आबिद" की जान दिल से दुआ

ज्ञात भाव से उत्तर देते। उत्तर के क्रम में तथा विषयों में कभी गड़बड़ नहीं होती थी।

इन्हों ने एक दाक्षिणात्य के आने पर उन का अष्टावधान कौशल देखने के लिए अपने घरही में कोठे की छत पर सभा कराई थी! उसी समय साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास को इन्हों ने सुकवि की पदवी दी थी। इन की भविष्य वाणी कैसी फलीभूत हुई यह बात जो व्यासजी को जानते होंगे स्वयं समझ सकेंगे।

एक दूसरे दाक्षिणात्य प्रसिद्ध गणितवेत्ता * का जब काशी में आगमन हुआ था तब इन के द्वारा काशी में वह बहुत सन्मानित हुए थे। श्री काशीनरेश के दरबार में भी उन का बहुत आदर हुआ था जिस के कारण हमारे चरित्रनायक ही थे।

एक मंदराजी ब्राह्मण † के आने पर इन्हों ने अपने रामकटोरा के बाग़ में सभा की थी जिस में नगर के सब ही गण्य मान्य तथा बहुत से अंगरेज़ लोग उपस्थित थे। जिस में बनारसकालिज के प्रिंसपुल बाल्मीकीय रामायण के अंगरेज़ी अनुवादक सुप्रसिद्ध गिरिफ़िथ साहिब भी थे।

---

* भारी से भारी हिसाब जो बड़े २ विद्वान् बहुत परिश्रम कर के निकाल सकेंगे उस को यह ५ मिनिट में मन ही में बना कर ठीक उत्तर बता देते थे। उस पर भी तमाशा यह कि उसी समय किसी के साथ ताश, किसी के साथ गंजीफ़ा, किसी के साथ शतरंज इत्यादि खेलते और बात चीत भी करते जाते थे। इन का नाम नारायण मार्तण्ड था।

† इन का वेङ्कट सुपीयाचार्य नाम था। यह अच्छी धनुर्विद्या जानते थे। एक मनुष्य की आंख पर एक तिनका बांध कर उस में मोम से दुअन्नी साट कर और अपनी आंखों में पट्टी बांध कर शब्द पर इन्हों ने बाण मारा था। दुअन्नी उड़ गई और तिन का ज्यों का त्यों रहा। जैसे अर्जुन ने भारत के समय जयद्रथ का सर तीरों से उड़ा कर उस के बाप के हाथ में गिरा दिया था, इन्हों ने भी एक नारंगी को तीरों से उड़ा कर ३०। ४० गज़ दूर जो एक मनुष्य खड़ा था उस के हाथ में गिरा दिया। अंगूठी को कुंए में फेंक कर बीच ही से रहट की तरह तीरों के द्वारा उसे बाहर निकाल लिया। सब साहिब लोग कहने लगे कि "इन की यह सब कार्रवाई देख कर महाभारत में लिखी हुई बातें सब ठीक जान पड़ती हैं।"

इन प्रसिद्ध जनों के गुण का वृत्तान्त नोट में लिखा गया है। ये सब बातें बाबू राधाकृष्ण जी की आंखों की देखी हुई हैं और उन्हीं के लेख का आशय हम ने यहां पर प्रगट किया है। इन लोगों के सन्मान में हरिश्चन्द्र ने केवल सभाएं नहीं कराई थीं वरन इन्हों ने उन लोगों का द्रव्य द्वारा भी सनमान किया था।

एक समय जोधपुर के ओझा तुलसी दत्त ( तुलसी बाबा ) * काशी आए थे। वह कवि तथा पहलवान भी थे। उन का कौतुक देखने के लिए इन्हों ने नार्मल स्कूल में सभा कराई थी।

बाबू साहिब विद्वान् तथा गुणियों का केवल आप ही आदर नहीं करते थे बरन अवसर पड़ने पर औरों के द्वारा भी उन्हें सम्मानित कराते थे जैसे कि नारायणमार्तण्ड आदि का काशीराज के दरबार से सन्मान कराया था।

२८ नवम्बर १८७५ ई० में जब श्रीमान् महाराज काश्मीर का काशी में शुभागमन हुआ था तो उन से बाबू साहिब स्वयं भी सम्मानित हुए थे और श्रीमान् से निवेदन कर के इन्हों ने ५०० विद्वानों की सभा कराई थी जिस में श्रीमान् ने तीन २ गिनी प्रत्येक विद्वान् को प्रदान किया था।

एक दिन मोतियों का एक कंठा पहिन कर यह गोस्वामी श्री जीवनाचार्य्य के दर्शन को गये। उन के यह कहने पर कि "बाबू यह कंठा बहुत सुन्दर है" आप ने चट निज गले से उतार कर उसको उनके चरण में अर्पण कर दिया, बस इस से अधिक और क्या होगा। पूर्वोक्त अनेक दान-शीलता एवं दयालुता के कारण लोग इन्हें वर्त्तमान काल के कर्ण कहा करते थे।

### शील।

इन का शील भी सीमा से बढ़ा हुआ था। कोई इन की कितनी ही हानि क्यों न करता यह उस को ध्यान में नहीं लाते थे, स्वयं कष्ट सह कर रह जाते थे।

---

* हाथी के बांधने का रस्सा पैर के अंगूठे में बांधकर तोड़ देते थे। लोहे के मोटे रथा को मोमबत्तीकी तरह दोहरा कर देते नारियल को जटा सहित सिर पर मार कर तोड़ देते थे। एक कुर्सी पर सिर और एक कुर्सी पर पैर रख कर सोते और छः इंच मोटा पत्थर छाती पर रखवा कर तोड़वा देते थे।

भाई से बांट बखरा होने पर महाराज बेतिया की यहां से इन के हिस्से का ३६०००) रुपया आया था। उस को उन्हों ने अपने एक मुसाहिब के पास रख दिया था। वह भलेमानुस एक दिन रोते कलपते इन के पास आया और बोला कि "रात हमारे घर चोरी हो गई। हम आप का रुपया रख कर अपना भी सर्वस्व गंवा बैठे" और फूट फूट कर रोने लगा। इन्हों ने हंस कर कहा "यह ग़नीमत समझो कि चोर तुम्हें उठा न ले गए। जाने दो, गया सो गया"। इन के इष्ट मित्र कितनाहीं कहते रहे कि आप इस कुटिल को तंग कर के किसी प्रकार अपना रुपया निकालिए। इन्हों ने यही कहा "बिचारा ग़रीब है इसी से कमा खायगा।" सुनते हैं कि उसी रुपये से वह मनुष्य एक दिन लाखपती हो गया। जो हुआ हो, वह ईश्वर के आगे तो सच्चा चोर अवश्य ही पकड़ा गया होगा और सांसारिक चोरों के समान उसे माथे पर पत्थर ढोना और कोल्हू पेरना नहीं पड़ा हो, किन्तु नरक-कुंड में वही सब रुपया कौड़े बन बन कर उसे अवश्य व्यथित कर रहे होंगे।

एक दुष्ट जब अवसर पाता, इन के घर से कुछ न कुछ उठा कर चल देता और इन के कनिष्ठ भ्राता उस का आना जाना बन्द कर देते, परन्तु इन को बाहर से आते देख कर फिर इन के साथ लगा चला आता। एक दिन जब इन के साथ लगा चला आया तो इन्हों ने अपने भाई से कहा "भैया तुम इन की ड्योढ़ी बन्द मत करो। यह शख्स क़दर करने के योग्य है। इस की बेहयाई ऐसी है कि इसे कलकत्ता के अजायबख़ाना में रखना चाहिए और तुम अपने घर में नहीं आने देते" फिर उस का आना जाना कभी बंद नहीं हुआ।

यदि इन का शौल सीमा से अधिक नहीं होता तो इन की ऐसी दुरवस्था भी नहीं होती और लोग इन की आंखों में धूली डाल कर इस रीति से इन के धन से मोटे भी नहीं होते इन्हों ने कुछ दिन विलायती स्टेशनरी यथा अन्य वस्तु कलकत्ता एवं विलायत से मंगा कर घर ही पर बेंचने का प्रबन्ध किया था। "हरिश्चन्द्र ऐंड फ्रेंड्स" के नाम से उस कारबार का विज्ञापन देखने में आया है। परन्तु उस कार्य्य की उन्नति का अवरोधक भी इन का यही शौल हुआ। बहुत से लोग वस्तुओं को ले जाते और मूल्य देने का नाम तक नहीं लेते। कभी मांगा भी गया तो उत्तर दिया कि "बाबू साहिब ने नज़र की थी।" वाह! ऐसे लोगों की नज़र में ज़रा शरम भी नहीं आती थी।

जिस का कलेजा ऐसा कोमल हो, जिस में इतना शीश स्नेह हो, और जो लोगों के दुःख से ऐसा व्यथितचित्त हो जाता हो, उस का हृदय किसी आत्मीय के किसी प्रकार के अनिष्ट और दुःख से क्यों विदीर्ण नहीं होगा ? इसी से जब बाबू राधाकृष्ण * जी को इन के फूफा दश महीने की अवस्था में छोड़ परलोक सिधारे और राधाकृष्ण जी के ज्येष्ठ भ्राता बाबू जीवनदास जी पितृवियोग सहन न कर के अल्पकाल ही में स्वर्ग चल बसे, तब तो

* १५ श्रावण १९२२ में इन का जन्म हुआ। बाबू साहिब इन्हें मकतब तथा स्कूल में शिक्षा दिलवाते थे। परन्तु बचपनही से सर्वदा रोगग्रस्त रहने के कारण यह नियमपूर्वक कभी दो तीन वर्ष नहीं पढ़ सके। बाबू साहिब ने इन को तथा अपनी कन्या श्रीमती विद्यावती को परस्पर चिढ़ाने के लिए कई एक दोहा बना दिए थे। यह उक्त विद्यावती को यह कह कर चिढ़ाते, "विद्या तुमरे नाम पर मूरखता की खानि।" "नाक बहुत मैली रहत नाहीं झारत बार" इत्यादि और वह इन्हें यह कह कर चिढ़ाती थी "कक्का तुम इतने बड़े, ढोढक भए सयान। पै कछु भी अक्किल तुम्हें, आई नहीं सुजान", "हिन्दी की चिन्दी करी अंगरेजी की धूर। लगे पढ़न अब फ़ारसी, आये कछु न सऊर" इत्यादि। कुछ दिन यह कट्टर दयानन्दी हो कर बड़े भारी नास्तिक हो गए थे और उसी समय इन्हों ने विधवा सम्बन्धी "दुःखिनी बाला" नाटक लिखा था, परन्तु अब परम वैष्णव हैं। इन के रचे बहुत से ग्रंथ हैं—निःसहाय हिन्दू, पद्मावतीनाटक, स्वर्णलता, दुर्गेशनन्दनी (बंग भाषा का अनुवाद), रामेश्वर भट्ट, स्वर्ग की सैर, मरता क्या न करता, धर्म्मालाप, आर्य्यचरित्र, रहिमनविलास, हिन्दीभाषा के सामयिकपत्रों का इतिहास, बप्पारावल, नागरीदास, सूरदास, तुलसीदास, ईश्वरचन्द्रविद्यासागर का जीवनचरित्र, महाराणा प्रताप सिंह नाटक, कविवर बिहारीलाल, मेकडानलाष्टक, हिन्दी क्या है, शेक्सपियर के कई नाटकों का उपन्यास रूप में मर्म इत्यादि। इन के सिवाय बाबू हरिश्चन्द्र की अधूरी पुस्तक कालचक्र, प्रशस्तिसंग्रह, राजसिंह, और सतीप्रताप को पूरा कर के खड्गविलास यन्त्रालय द्वारा मुद्रित कराया है। पंडित सुधाकरजी के साथ नया संग्रह बनाया जो जूनियर आफ़िसर का कोर्स हुआ है। ये काशी के सब सभा के सभासद हैं। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मुख्यकर्त्ता धर्त्ता यही हैं।

बाबू साहब बड़े व्यग्रचित्त हो कर निज फूआ तथा राधाकृष्णजी का अलग मकान में रखना पसन्द न कर के उन लोगों को निज गृह में लाकर साथ रक्खा और तब से वे लोग इन्हीं के मकान में अब तक रहते हैं।

यह सदा शान्त एवं प्रसन्नचित्त रहते थे। इन में क्रोध का लेश भी नहीं था, परन्तु यदि दैवात् कभी किसी कारण क्रोध आ गया तो उस का ठिकाना भी नहीं था। वह रोके भी नहीं रुकता था। जिन काशीनरेश के यह स्नेह एवं दयापात्र थे, जिन से यह सदैव द्रव्यसहायता और १००) मासिक पाते थे, उन से भी जब राजा शिवप्रसाद के कारण मन खटका तो फिर उन के दरबार में कुछ दिन जाना आना भी बन्द कर दिया।

सत्यता।

हरिश्चन्द्र बड़े सत्यप्रतिज्ञ थे, सत्य को धर्म्म मानते थे और निज हानि होते हुए भी सत्य से विचलित नहीं होते थे। यह बात इस घटना से प्रमाणित होती है कि:—

एक महाशय ने एक कटर (नाव) और कुछ थोड़ा सा रुपया देकर इन से तीन हज़ार की हुन्डी लिखवा ली और कुछ दिन बाद अदालत में इन पर अभियोग उपस्थित किया। उस समय अलीगढ़ के प्रसिद्ध सर सैयद अहमद साहिब सदरआला थे। उन को उस रुपये का हाल मालूम हो गया था। जैसे वह आप देशहितकर थे वैसे हरिश्चन्द्र भी देशहित व्रतधारी थे। देशहितैषी हरिश्चन्द्र को उस दुःख में देखकर उन का चित्त बहुत व्यथित हुआ। उन की इच्छा हुई कि महाजन ने जितना सचमुच रुपया दिया है उस की डिगरी दी जाय। हरिश्चन्द्र को सादर बोलाकर अपने पास आसन देकर उन्हों ने पूछा कि "आप ने असल में कितना रुपया पाया?" हरिश्चन्द्र ने कहा "पूरा पाया है।" सैयद साहिब ने कहा कि "कटर इन्हों ने लगा दिया वह कितने का है।" यह बोले "जितने का मैं ने लेना स्वीकार कर लिया।" सैयद साहिब ने कहा 'बाबू साहिब! आप भूलते हैं ज़रा बाहर घूम आइए। यह बाहर आए और लोगों ने इन से कहा कि जितना पाया है आप उतनाही कह दीजिए। किन्तु इजलास पर आने से फिर भी इन्हों ने वही उत्तर दिया। सैयद साहिब अफ़सोस करने लगे। तब इन्हों ने कहा "सुनिए सैयद साहिब! मैं अपने धर्म्म और सत्य को साधारण धन के लिए नहीं बिगाड़ने का। मुझ से इस महाजन

ने ज़बरदस्ती हुंडी नहीं लिखवाई और न मैं बच्चा ही था कि समझता न था। जब कि मैं ने अपनी ग़रज़ से उस का असल और नज़राना वग़ैरह स्वीकार कर लिया, तो अब देने के भय से मैं सत्य को कैसे भङ्ग कर दूं ?"

सच है तभी तो यह "सत्यहरिश्चन्द्र" लिखने के योग्य हुए और ऐसा लिखा:—

"चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्यविचार॥"

यह अत्यन्तही नम्र एवं निरभिमानी थे, परन्तु जो इन से अभिमान करता उस का सहन भी नहीं कर सकते और इसी से कहा भी है "हरिश्चन्द नगद दमाद अभिमानी के"।

जिस काम को बड़े उत्साह से उठाते थे उसी में फिर शिथिल हो जाते थे। इसी से इन के बहुत से ग्रन्थ अधूरे रह गए और इन्हों ने "चन्द्रावली नाटिका" में अपने को "आरम्भशूर" कहलवाया है।

काम करने की यह दशा थी कि जब काम न करें बरसों न करें जिस दिन करें शूर की भांति महीने भर का काम एक दिन में कर डालें। विलायती कवि स्काट के समान एक २ बैठकी में एक २ पुस्तक की रचना कर डालते थे।

मसख़रापन तो नस नस में भरा था, जो इन के सब लेख और ग्रन्थों ही से प्रगट है।

इन के नित्य के कार्य्य एवं खेल तमाशे में भी नवीनता और कविता लगी ही रहती थी।

चिट्ठी पत्री लिखने के निमित्त प्रत्येक वार के लिए भिन्न २ रंग के कागज़ पर भिन्न २ शीर्ष छपवा कर काम में लाते थे।

रविवार को गुलाबी कागज़ पर चिट्ठी लिखी जाती थी और उन गुलाबी कागज़ों पर यह शीर्षक छपा रहता था।

"भक्तकमल-दिवाकराय नमः। सूर्य्यवंशविकाशकाय श्रीरामाय नमः"

"मित्रपत्र बिनु हिय लहत, छिनहूं नहिं बिश्राम।
प्रफुलित होत न कमल जिमि, बिनु रविउदय ललाम॥"

सोमवार को श्वेत काग़ज़ काम में लाया जाता था और उस पर यह छपा रहता था।

"श्री कृष्णचन्द्राय नमः" "चन्द्रचूड़ाय नमः" इत्यादि।

"ससिकुलकैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज।
श्रीमुखचन्द्रचकोर श्री, कृष्णचन्द्र महराज॥
बन्धुन के पत्रहि कहत, अर्ध मिलन सब कोय।
आप हु उत्तर भेजहू, पूरो मिलनो होय॥"

मङ्गल को लाल काग़ज़ निम्नलिखित शीर्षक युत काम में लाया जाता था

मंगल मूर्तिर्जयति, श्रीवृन्दावन सार्वभौमाय नमः।

"मङ्गलम् भगवान् विष्णुः मङ्गलं गरुडध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षः मङ्गलायतनं हरिः॥"

बुध को हरा काग़ज़ काम में लाया जाता था और उस पर यह शीर्षक छपा रहता था।

बुधाराधितचरणाय नमः। विबुधश्रेष्ठाय नमः।

"बुधजन दर्पण में लखत, इष्ट वस्तु को चित्र।
मन अनदेखी वस्तु को, यह प्रतिबिम्ब विचित्र।"

गुरुवार को पीला काग़ज़ पर यह छपा रहता था।

"श्रीगुरुगोविन्दाय नमः। श्री गुरवे नमः।"

"आशा अमृत पात्र प्रिय, विरहातप हित छत्र।
बचन चित्र अवलम्ब प्रद, कारज साधक पत्र॥"

शुक्र वार को सफ़ेद काग़ज़ पर यह शीर्षक रहता था।

"कविकीर्तितयशसे नमः।"

"दूर लखत कर लेत आवरन हरत रखि पास।
जानत अन्तर भेद जिय, पत्र अधिक रस रास॥"

عقدہ کشائی حال دل دوستدار ہے * تقریر کی ہے صورت تحریر مین یار ہے

शनिवार को नीचे लिखे शीर्षयुत नीला काग़ज़ काम में लाया जाता था।

"आनन्दानन्दकन्दाय नमः" "श्रीकृष्णाय नमः" श्यामाश्यामाभ्यां नमः"

"और काज सनि लिखन में, होय न लेखनि मन्द ।
मिलै पत्र उत्तर अवसि, यह बिनवत हरिचन्द ॥"

इस के सिवाय और भी प्रेमवाक्य एवं उपदेशवाक्य छपे हुए कागज़ों पर पत्रव्यवहार करते थे । यथा:—

"कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, हिय लगाइ भुज भेंटि ।
लखि पाती पिय कौ लिखी, बांचति धरति समेटि ॥
बांचति धरति समेटि खोलि फिर फिर तेहि बांचै ।
बरन बरन पर प्रान वारि आनँद जिय राचै ॥
उमगि उमगि हरिचन्द पसीजति पुलकति उर धर।
नैन नीर जुग भरें लिपटी रहति सदा कर ॥"

इन का सिद्धान्त वाक्य ( mottos ) ये थे ।

१ "यतो धर्म्मस्ततः कृष्णो, यतः कृष्णस्ततो जयः"

2. "Love is heaven and heaven is love." इत्यादि । *

लिफ़ाफ़ों पर पत्र का आशय प्रगट करने वाले वाक्यों के वेफ़र छपवा कर रखते थे जैसे "शीघ्र," "प्रेम," "जरूरी" इत्यादि और जब जैसा उचित होता लिफ़ाफ़े पर चपका देते ।

इन के सिद्धान्तचिन्ह ( मोनोग्राम ) अन्यत्र छाप दिया गया है ।

निदान इन के प्रत्येक आचार व्यवहार का कहां तक वर्णन किया जाय । चेष्टा करने से पाठकवृन्द बहुत बातें इन के लेखों ही से जान सकेंगे ।

---

* देखो "पत्रबोध" पृष्ठ ८-११, फ़ुटनोट ।

# द्वाविंश परिच्छेद ।

## सम्मान ।

जिस के मस्तिष्क में बुद्धि का विलक्षण विकाश और हृदय में स्वच्छ प्रेम का प्रकाश हो, जिस के नस २ में देशभक्ति, राजभक्ति भरी हुई हो, जो ईश्वर के प्रेम में डूबे रहने पर भी जगत को मिथ्या न जान कर परोपकार में सदैव कटिबद्ध रहै, जिस को औरों के मान प्रतिष्ठा वृद्धि का सर्वदा ध्यान रहे और जिस का हृदय पराए का दुःख देखते ही पिघल जाय, भला ऐसे मनुष्य के सर्वजनप्रिय एवं आदरणीय होने में सन्देह ही क्या है? यद्यपि यह कहावत प्रसिद्ध है कि "क़द्र मरदुम बाद मरदुम" अर्थात् मनुष्य का यथार्थ आदर उस के इस लोक से सिधार जाने पर होता है परन्तु हरिश्चन्द्र जैसे जीवित काल में सम्मानभाजन रहे वैसे ही आज भी इन का नाम सादर स्मरण किया जाता है।

२० ही वर्ष की अवस्था में अर्थात् १८७० ई० में यह आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए थे। जिस पर बंगाल के प्रसिद्ध विद्वद्वर डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र ने इन को बहुत बधाई दी थी। इन्हों ने इस पद को १८७४ ई० तक धारण किया और उसी के लगभग ६ वर्ष तक यह म्युनिसिपल कमिश्नर भी रहे। अपने परोपकारक कार्य्यों में उन्हें कुछ बाधक समझ कर इन्हों ने निज इच्छा से उन कामों को छोड़ दिया जिस पर श्री काशी के प्रसिद्ध रईस बाबू ईश्वरीनारायण सिंह जी ने इन को लिखा था कि "क्या यह सच है कि आप ने इस्तीफ़ा दी? यदि ऐसा है तो आप ने अच्छा न किया। हाकिम लोग आप की तजवीज़ को बहुत ही पसन्द करते हैं और जहां तक मैं जानता हूं कोई आप के विरुद्ध कुछ नहीं कहता। यदि सम्भव हो तो इस्तीफ़ा उठा लीजिए और हम लोगों को आनरेरी मजिस्ट्रेट की कचहरी से अपने समान एक सुजन साथी को न खोने दीजिये"। यह उन का कहना बहुत ही ठीक था, किन्तु अब अधिक अवकाश रहने से इन को देशहितसाधन में अधिक सुविधा हुई।

निज विद्वता तथा पांडित्य के कारण १८७३ ई० से कई वर्ष तक पंजाब विश्वविद्यालय में एफ़० ए० आदि परीक्षाओं में यह संस्कृत भाषा में परीक्षक नियुक्त हुआ करते थे।

१८७५ ई० में रशिया देशान्तर्गत सेंटपिटर्सवर्ग के सिनेट से रेविन्स्की (D. A. Ravinsxy) साहिब एक पत्र लेकर इन के पास आए थे। उस में सिनेट की ओर से लिखा था कि "यह महाशय हिन्दुस्तान, चीन, तथा जापान देश में विज्ञान एवं शिल्प सम्बन्धी बातों के अनुसन्धान के लिए जाते हैं, आप इन को निज जानकारी का लाभ उठाने दीजिएगा एवं इस विषय में इन्हें सहायता प्रदान कीजिएगा।"

नवम्बर १८७५ ई० में जब महाराज काश्मीर काशी में पधारे थे तो उन्हों ने इन का बहुत सम्मान किया था और इन पर विशेष स्नेह प्रदर्शन किया था।

दिसम्बर १८७५ ई० में जब महाराज जिया जी सेंधिया तथा महाराज रीवां काशी में विराजमान हुए थे तो उन लोगों ने इन्हें बुला २ कर आदर-पूर्वक इन से भेंट की थी और इन का सम्मान किया था।

इसी महीने में श्री महाराजा जोधपुर का जब काशी में शुभागमन हुआ था तो श्रीमान् ने इन को स्टेशन ही पर बुला कर भेंट कर के सम्मानित किया था।

१८७७ ई० में काशी पधारने पर श्रीमान् वाइसराय लार्ड लिटन ने काशीनरेश को तथा हमारे चरित्रनायक को स्वयं बुलाकर वार्तालाप का आनन्द उठाया था।

प्रिंस आव वेल्स (वर्त्तमान भारतेश्वर) के शुभागमन के समय इन्हें भी एक मेडल मिला था। और विलायत में कूआ खोदाने पर जब श्रीमान् काशीनरेश को कई एक मेडल आया था तो श्रीमान् ने उन में से एक इन को भी दिया था।

१८८२ ई० में शिक्षाकमीशन के यह एक प्रधान साक्षी चुने गए थे। रुग्ना-वस्था, के कारण यह कमिश्नरों के निकट स्वयं नहीं उपस्थित हो सके, किन्तु इन्हें जो कुछ वक्तव्य था वह लिख कर उन लोगों के पास भेजा था। ११ वें प्रश्न के उत्तर में इन्हों ने एक मनमानी लकीर खींच कर यह दिखलाया था कि उर्दू में वह लग भग दो हजार * रीति से पढ़ा जा सकता है और इस से उर्दभाषा में जालसाज़ी की अधिक सुविधा दिखलाई थी।

---

* उदाहरण के लिए एक चिन्ह ऐसा ب बना दीजिए, और इस को किसी गांव का नाम समझिए। यदि पहला अक्षर को अब हमलोग "व" (ب)

अपनी साक्षी के लेख में आगरा कालेज के सम्बन्ध में डाइटन साहिब के विषय में जो कमीशन के एक मेम्बर भी थे न जाने क्या लिखा था कि जे० ई० वार्ड साहिब ने इन को यह लिख भेजा था कि "आप की साक्षी ऐसी उत्तम है कि मुझे खेद होगा यदि केवल इसी बात के कारण कमिश्नरों को अरुचि उत्पन्न हो। अतएव आप मुझे आज्ञा दीजिए तो मैं इस लेख को उठा दूं।" किन्तु यह जो कुछ लिखते थे उस का पूरा प्रमाण पाने ही से लिखते थे। कुछ काल के अनन्तर वही वार्ड साहिब ने इन के पास फिर लिखा था कि "जो बातें हम को आगरा कालेज के सम्बन्ध में अब ज्ञात हुई हैं यदि हम यह पहिले जानते तो आपने इस विषय में जो कुछ अपनी साक्षी में लिखा था उसे उठा देने के लिये आग्रह नहीं करते।"

इस शिक्षा कमीशन के प्रश्नों का जो इन्हों ने लेखबद्ध उत्तर भेजा था उस सम्बन्ध में अंगरेजी समाचार पत्र "रईस और रैयत" के स्वर्गीय सम्पादक प्रसिद्ध शम्भुचरण मुकर्जी ने जो कुछ लिखा था उस का सारांश यह है।

"इस साक्षी में रोचक बातें भरी हुई हैं। इस से सिद्ध होता है कि जिस विषय को इन्हों ने लिखा है उसे पूर्ण रूप से समझे हुए हैं और पश्चिमोत्तर देश में विद्योन्नति की चाल को बड़ी सावधानता से देखते गए हैं। इस विषय में जो इन की जानकारी देखी जाती है वह वर्षों के ध्यान, अनुसन्धान तथा

---

समझें तो यह चिन्ह ग्यारह प्रकार से पढ़ा जा सकता है। बबर, बपर, बतर बटर, बसर, बनर, बइर, बयर, बेरे, बेयर और बीर; और फिर हम यदि पहला अक्षर को क्रमशः 'प' (پ), 'स' (ث), 'त' (ت), 'न' (ن), 'इ' (ئ), या 'य' (ی) पढ़ें तो यह चिन्ह ७७ प्रकार से पढ़ा जा सकता है। यदि हम उपर्युक्त आठ अक्षरों के स्वरचिन्ह को बदल देवें तो हम लोगों को अधिक ६४ प्रकार के शब्द मिलेंगे, जैसे बुनर, इुनर; सिपर इत्यादि।

पुनः यदि हमलोग अन्तिम अक्षर को 'ज़' (ز) वा 'र' (ر) पढ़ें तो अधिक ३०४ प्रकार के शब्द पढ़े जायंगे। यदि हम उसी शब्द के अन्तिम अक्षर को 'द' (د) मानें तो अधिक १५२ शब्द पढ़े जायंगे। अब हम लोग देखते हैं कि केवल तीन अक्षरों के शब्द को, जिस का अन्तिम अक्षर यदि तीन रूप धारण करे तो उसे ६०६ प्रकार से पढ़ सकते हैं। यदि हम उसी शब्द (चिन्ह) के अंतिम अक्षर को 'ब' (ب) समझें तो एक हज़ार से अधिक प्रकार से पढ़ सकेंगे।

इन की बहुज्ञता का परिणाम है। सम्मति बहुत ही स्पष्ट है और जो बातें इन्त-जामा के विरुद्ध हैं उन को यह गंभीर प्रमाणों से पुष्ट करते गए हैं। जिस स्वतंत्रता से इन्हों ने इस विषय का समर्थन किया है वह इनहीं के योग्य है। इत्यादि।" *

जिस के सम्बन्ध में एक ऐसे पत्रसम्पादक ने जिस की लेखनी सर्व विषय में सर्वदा निरपेक्षभाव से चलती थी, ऐसा लिखा है तो निस्सन्देह उस की विवेचनाशक्ति अपूर्व और उस की जानकारी भारी थी, यह सब लोगों को अवश्य मानना ही पड़ेगा। शिक्षासम्बन्धी विषय पर इन को अपनी सम्मति दृढ़ करने को कैसे २ अवसर मिले थे यह बात शिक्षाकमीशन के प्रथम प्रश्न के उत्तर में इन्हों ने स्पष्ट लिखा है। प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है:—

"मैं सदा से शिक्षा की ओर जी लगाता हूं। मैं हिन्दी, संस्कृत, उर्दू आदि का कवि हूं, और मैंने बहुत से गद्य पद्य के ग्रंथ बनाए हैं। मैंने "कविवचनसुधा" हिन्दी का समाचारपत्र निकाला था जो अब तक प्रकाशित होता है। मेरा उद्देश्य सदैव यही रहा कि स्वदेशियों की शिक्षा सम्बन्धी उन्नति करूं, इन प्रान्तों की वर्नेक्यूलर की उन्नति करूं और मातृभाषा के साहित्यभंडार की वृद्धि करूं। अपने देशवासियों की बुद्धि का विकाश देख कर मुझे सदा बड़ा आनन्द होता है। बनारस नगर में एलिमेंटरी (प्राथमिक) शिक्षा के लिए

---

We owe an apology to Babu Haris Chandra of Benares of not having noticed his evidence before the Education Commission earlier. It is full of interest and evinces his thorough grasp of the subjects discussed therein. He must have paid great attention to the progress of education in the North-Western Provinces, and the experience acquired by him is evidently the result of years of study, thought, enquiry and practical acquaintance. The opinions are stated with great clearness and, when they happen to be at variance with prevailing heresies, are well supported by facts and arguments. The independence with which he propounds and maintains them is only characteristic. The most important part of Babu Haris Chandra's evidence relates to the question of what is the vernacular for Upper India. He has brought forward a mass of arguments in favor of the Hindi as the true vernacular, which we may refer to at greater length on some future occasion.

"Rayis and Ryot" 7 th July 1883.

मैं ने एक स्कूल संस्थापित किया है। मैं बनारस शिक्षाकमिटी का एक सभासद था। उस अवसर में शिक्षाविभाग से सम्बन्ध रखने वाले तथा अन्यान्य विद्वानों से मिलने का अनेक अवसर मिलता था। गवर्नमेंट स्कूलों और कालिजों के विद्यार्थियों तथा विद्याध्यापकों को मैं केवल विद्योन्नति के अभिप्राय से पारितोषिक दिया करता था।"

१८८३ ई० में मिरिच टापू के गवर्नर पोप हेन्सी साहिब ने इन्हें एक पत्र में लिखाथा कि "लार्ड रिपन की सुनीति समर्थन में क्या आप अपनी लेखनी नहीं उठाइएगा ?"

हम अनुमान करते हैं कि हेनसी साहिब का वह लेख "इल्‌बर्टबिल" के विषय में था। इस के सम्बन्ध में यहां पर एक घटना का उल्लेख करना अयोग्य नहीं होगा। विलायतांतर्गत "सेंट जेम्स हाल" में एक सभा हुई थी। उस में व्याख्यान के समय मलेसन साहिब नामी एक महाशय ने कहा था कि "बाबू हरिश्चन्द्र ने भी इस बिल से असम्मति प्रगट की है। इस विषय में उन का दो एक पत्र मेरे पास है।" इस पर बाबू साहिब ने यह सोच कर कि इन के देशहितैषी नाम में धब्बा नहीं लगे और यथार्थ बात जाने बिना लोग इन्हें देशकलंक न कहें उस कथन का प्रतिवाद करना उचित समझा और जो सच्ची बात थी वह अंगरेज़ी तथा हिन्दी समाचारपत्र द्वारा सर्वसाधारण पर प्रगट कर दी।

इन्हों ने लिखा था कि "एक हाल की सभा में कर्नल मलेसन साहिब ने मेरा नाम लिया है कि मैं "जुरिज़डिक्शनबिल" का विरोधी हूं। कर्नल साहिब के ऐसा कहने से सम्भव है कि मेरे देशीयजन मेरे विषय में कुछ और ही अनुमान करें। यदि मैं कर्नल साहिब की बातों का खंडन न करूं तो मैं देश का अशुभचिन्तक समझा जाऊंगा। यथार्थ बात यह है कि लण्डन में मेरे एक मित्र फ्रेडरिक पिन्काट साहिब हैं। मैं ने उन के पास दो तीन पत्र भेजा था जिस में इल्‌बर्टबिल के सम्बन्ध में भी कुछ लिखा था। मेरे लेखों का सारांश यह था कि "जुरिज़डिक्शनबिल" के सम्बन्ध में हिन्दू और अंगरेज़ में बड़ा हलचल और झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। यदि बिल पास हो तो हिन्दुओं को बहुत लाभ न होगा और जो न पास हो तो अंगरेज़ों को भी बहुत लाभ न होगा। प्रत्येक अंगरेज़ तथा हिन्दू को जो देश की भलाई की मनोकामना रखते हैं यही चेष्टा करनी उचित है कि यह विरोध और यह जातीय झगड़ा निवृत्त हो जाय। अवश्य मैं ने अपने पत्र में बंगालियों का नाम नहीं लिया था।

"मेरे लेख का सारांश यही है और आपलोग समझ सकते हैं कि कर्नल साहिब को हमारा नाम लेना उचित था वा नहीं।"

भारतवर्ष के समाचार पत्रों के देखने से प्रतीत होता है कि इन के पूर्वोक्त पत्र प्रकाशित होने के पूर्व ही किसी को यह विश्वास नहीं था कि इन्हों ने कोई बात बिल के विरोध में लिखी होगी।

पूर्वोक्त घटना से चार बातें प्रमाणित होती हैं जो इन की बुद्धिमत्ता तथा विज्ञता का पूर्ण परिचय देती हैं, और सिद्ध करती हैं कि देश विदेश में इन का कैसा मान था और इन की बातों पर कैसा वज़न दिया जाता था। प्रथम यह, कि भारतवर्ष के अधिकांश लोगों के बिल समर्थन करने पर भी मलेसन साहिब ने उस के विरोध में बड़े ज़ोरशोर से कहा था कि "बाबू हरिश्चन्द्र सुख्यात इतिहासवेत्ता तथा कवि इस के पक्ष में नहीं हैं।" तात्पर्य्य यह कि इनने लोगों की अपेक्षा भी इन के कथन का बड़ा प्रभाव माना जाता था। द्वितीय यह, कि मिरिच के गवर्नर भी यह समझते थे कि इन की लेखनी में बड़ी भारी शक्ति है। तृतीय यह, कि देशवासियों को इन के देशहितैषी होने का ऐसा विश्वास था कि कर्नल साहिब के वाक्य को सबों ने मिथ्या ही समझ लिया था। चौथे यह, कि बाबूसाहिब ऐसे सच्चे देशहितैषी थे कि देश की भलाई चाहते हुए भी ऐसी इच्छा नहीं रखते थे कि कभी किसी प्रकार से प्रजा तथा राजकर्मचारियों एवं अंग्रेज़ों में विरोध उत्पन्न हो।

इन्हीं कारणों से यह ऐसे सर्वजनप्रिय थे कि इन के रोगग्रस्त होने पर इन की आरोग्यकामना से कितने देवस्थानों में लोग प्रार्थना करते थे और इन के स्वस्थ होने पर लोग नाना रीति से आनन्द मनाते थे। एक बार जब यह बीमार होकर पुनः स्वस्थ हुए थे तो हिन्दीभाषा के परमस्नेही एवं प्रसिद्ध सुलेखक पं० प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा था कि :—

"श्रीमन्महामान्य भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी कई मास से बहुत अस्वस्थ थे परमानन्दप्रद भगवान ने बड़ी दया की कि उन को निरोग्य कर दिया। इस बात को सुन के कौन आर्य्य होगा जो प्रसन्न न हो। २३ जुलाई का "मित्रविलास" देखने से ज्ञात हुआ कि इस मंगल समाचार को सुन के आगरे के बहुत सज्जनों ने उत्सव किया है। हम भी इस सुअवसर में एक कृष्णोदा बाबू साहब को भेंट करते हैं—

## क़सीदा ।

अहा हा ! क्या मज़ा है क्या बहारें बारिश आई है ।
यह फ़स्ले फ़रहत अफ़ज़ा कैसी सब के जी को भाई है ॥
जिधर देखो तमाशा ए तरावत बखूश है तुर्फ़ा ।
जिसे देखो अजब एक ताज़गी चिहरे प छाई है ॥
ज़मीं मारे खुशी के सू बतन है , घटा क्या ?
चश्मे गरदू अश्के शादी से भर आई है ।
इधर जंगल में मोरों को चढ़ी है नाचने की धुन ।
उधर गुलशन में कोयल की सरे नग्मासराई है ॥
कहे गर इन दिनों वायज़ कि मय पीना नहीं अच्छा ।
तो बेशक मस्त कह बैठें कि तुम ने भांग खाई है ॥
किसी को कोई कुछ पर्वा नहीं करता ज़माने में ।
सब अपने रंग माते हैं कुछ ऐसी बू समाई है ॥
खिले जाते हैं, जामे में नहीं फूले समाते हैं ।
सबा ने गोशे गुल में हां यह खुशखबरी सुनाई है ॥
कि जिस के नाम पर हरज़िन्दा दिल सौ जी से कुर्बां है ।
खुदा का शुक्र वाजिब है शिफ़ा आज उसने पाई है ॥
भला वह कौन है यह मुज़दा सुन कर जो न कह उठता ।
मुबारक हो मुबारक हो बधाई है बधाई है ॥
खयाल आया मुझे दिल में य किस्का गुस्ले सेहत है ।
कि सारे हिन्द में जिस की खुशी सब ने मनाई है ॥
तो मुलहिम ने कहा बाबू हरिश्चन्द्र इस्मे पाक उस्का ।
नहीं मालूम ? जिस्की मदहखूवां सारी खुदाई है ॥
बनारस को ज़मीं नाज़ां हैं जिस्की पाय बोसी पर ।
अदब से जिस्के आगे चर्ख़ ने गरदन झुकाई है ॥
वही महताबे हिन्दुस्तां, वही गैरत दिहे नैयर ।
कि जिस ने दिल से हर हिन्दू के तारीकी मिटाई है ॥
वही ईसाए दौरां जिस ने हमक़ौमां की हिम्मत की ।
हज़ारों साल पीछे लाशे बोसीदा जिलाई है ॥

वही जिस ने कि उर्दू देवनी के पंजए जुलसे।
बसद तदबीरो हिम्मत जान हिन्दी की बचाई है॥
वही जो आज मालिक है सब इल्मों के खज़ाने का।
वही मुल्के हमा खूबी प जिस्की बादशाई है॥
ज़िहे वह अफ़ज़लुलफ़ुज़ला कि आज उस की शहादत में।
ब सिद्के दिल हरएक उस्ताद ने उँगली उठाई है॥
सब उसके काम ऐसे हैं कि जिनको देख हैरत से।
हर एक आक़िल ने अपनी दांत में उंगली दबाई है॥
उसे रहबर अगर इस मुल्क का कहिए तो लाबुद है।
उसी ने सब को पहिले राहे बहबूदी सुझाई है॥
बहुत लोगों को है दावा वतन की खैरख्वाही का।
कोई पूछे तो इन से चाल यह किस की उड़ाई है॥
तरक्की क्या है कैसे होय है होता है क्या उस से।
किसी को कुछ खबर भी थी उसी ने सब बताई है॥
सिवा उसके जो सच पूछो तो ऐसा कौन है जिस ने।
निकाली बात जो कुछ मुंह से है वह कर दिखाई है॥
उठे है किस से बारे इश्क़े हक़ हमदरदिए अख़वां।
सिवा उस के यह हिम्मत किसी कुदरत किस ने पाई है॥
"बरहमन" यह सुरूर आया मुझे वस्फ़ उसका सुनने से।
कि मेरी रूह इस तन में नहीं फूली समाई है॥
लिखूं तारीफ़ कुछ उस्की यह मेरी तबअ ने चाहा।
तो फिर मुलहिम ने फ़रमाया गुमां बेजा यह भाई है॥
उसे क्या कोई दिखलाएगा अपने खामः के जौहर।
'रसा' है वह खुद उस्के ज़िहन की वां तक रसाई है॥
कि जिस जा ख्वाब में पहुंचे खयाल इनसां का क्या मुमकिन।
फ़रिश्तों ने जहां जाने में अकसर ज़क उठाई है॥
जहां तक कीजिए तौसीफ़ उसकी सब बजा लेकिन।
नहीं हरफ़ी को दावा दूसरों की क्या चलाई है॥
यही बिहतर कि उसके हक़ में हम हर दम दुआ मांगें।
यही बस फ़र्ज़ अपना है इसी में सब भलाई है॥

खुदाया खुश रहे वह फ़ख़्रे आलम रोज़े महशर तक।
कि जिसकी ज़ाते बा बरकत को ज़ेबा सब बड़ाई है॥"

इन के सर्वसम्मानित होने की कथा कहां तक लिखी जाय। इतना ही कहना बहुत है कि देश के राजे, महाराजे, गरय मान्य पुरुष कोई विरलेही ऐसे थे जो इन का सम्मान न करते रहे हों। श्रीमान् मेवाड़पति श्री महाराणा सज्जन सिंह जी तो इन्हें इतना मानते थे कि एकवार अपने मंत्री को आज्ञा दी थी कि लिख दो कि "बाबू हरिश्चन्द्र जी इस राज्य को अपनी सीर समझें" श्रीमान् काशीनरेश का क्या पूछना है। उन के तो यह बड़े ही स्नेहपात्र थे। सोमवार का दिन घातवार होने के कारण श्री काशिराज उस दिन किसी से भेंट नहीं करते थे। एक समय बाबूसाहिब ने भी उन्हें लिख भेजा था कि सोमवार होने के कारण हम आज आप के दर्शन का आनन्दलाभ नहीं उठा सके। उस के उत्तर में श्रीमान् काशीनरेश ने यह दोहा लिखा था—

**"हरिश्चन्द्र को चन्द्र दिन, तहां कहां अटकाव।
आवन को नहि मन रह्यो, इहो बहाना भाव॥"**

इस दोहे से निस्सन्देह श्रीमान् का स्नेह बाबूसाहिब पर प्रगट हो रहा है। श्रीमान् बाबूसाहिब को प्रति मास १००) भी दिया करते थे।

इन के शुभगुणों से मोहित होकर रीवांधीश श्रीमान् रघुराज सिंह श्रीमान् राजा मांडा, ट्रावाङ्कोर के श्रीमान् युवराज इत्यादि इन पर विशेष प्रेम रखते थे।

श्रीमान् विजयानगरम, राजा वेंकटगिरि, राजा छत्रपुर तथा श्रीराधाप्रसाद सिंह महाराज डुमरांव ये लोग तो इन के घर जाजा कर इन से मिलते थे। महाराज विजयानगरम् ने एक बार पांच हज़ार देकर इन का मान बर्धन किया था। एवं महाराज डुमरांव प्रतिवर्ष सहस्र मुद्रा देकर इन का सम्मान करते थे। दर्भङ्गा-निवासी राय गंगाप्रसादजी भी इन्हें प्रायः मुद्रा भेंट करते थे। राजा भरतपुर इन के अनन्य मित्र (दो देह एक प्राण) थे। मझौलीनरेश लाला खड्गमल्ल-बहादुर इन्हें अपना मित्र मानते थे। बेगम भूपाल भी इन से सर्वदा पत्र-व्यवहार रखती थीं एवं स्वरचित कविता इन के पास प्रायः भेजा करती थीं। १८८२ ई० के जून मास में बेगमसाहिबा ने जो अपनी कविताएं इन के पास भेजी थीं उन को इन्हों ने निम्नलिखित पत्र के साथ "भारतमित्र" के सम्पादक के पास भेज कर प्रकाशित कराया था।

"प्रिय सम्पादक! भूपाल की रईस और स्वामिनी वर्तमान श्रीमती बेगम-साहिबा उर्दूभाषा में बहुत अच्छी कवि हैं। इन को गज़ल मैं "चमनिस्तानपुर बहार" और "गुलज़ारेपुरबहार" इत्यादि में प्रकाशित कर चुका हूं। संप्रति उन के बनाए भाषा में कई एक भजन मेरे पास आए हैं। मैं उन में से दो * आप के पास प्रकाश करने को भेजता हूं। इस को देख कर क्या साधारण आर्य्य धर्म्माभिमानी ललनागण लज्जित न होंगी कि एक मुसलमान और अत्यन्त राज भारव्यग्र स्त्री ने ऐसी सुन्दर कविता की है। क्या वह भी दिन देखने में आवैगा कि हमारी गृहलक्ष्मी गण भी कुछ बनावेंगी? इन का काव्य में "रूपरतन" नाम है। नाम भी बड़े ठाट बाट का रक्खा है।

पूर्वोक्त राजा महाराजाओं के अतिरिक्त प्रसिद्ध बङ्ग कवि हेमचन्द्र बनुर्जी रामकृष्ण राम, द्वारिकानाथ विद्याभूषण, बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र, हिन्दूपेट्रियट के सम्पादक कृष्णदास पाल, रईस रैयत के सम्पादक डाक्टर शम्भुनाथ मुकर्जी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, पंजाब युनिवर्सिटी के रजिष्ट्रार तथा हिन्दी के सुलेखक नवीनचन्द्र राय, पंजाब देशीय प्रसिद्ध रईस विद्यारसिक अतर सिंह भदौड़िया, श्री बाबा सुमेर सिंह साहिब साहिबज़ादे, बाबा संतोष सिंह, पूना के सार्वजनिक सभा के संस्थापक गणेश वासुदेव जोशी,

---

* मलार—कैसी बदरिया कारी छाई, पिय बिन बरखा ऋतु आई। झींगुर मोर चिघार पुकारे, कल न परे मोहि बिरह के मारे, पापी पपीहा ने आन जगाई॥ हमरे पिया परदेस बिलमि रहे, इत बदरा दिन रैन घुमरि रहे, ना लिखि पाती, ना खबरि पठाई। नित२ बरसे घुंघरे बदरवा सूझत नाही, अब मोहि अगरवा, देत झकोर पवन पुरवाई॥

होली—सजि आई है राजदुलारी राधाप्यारी, आज होरी खेले स्याम-बिहारी, घर२ से सब बनि बनि निकसी, पहिरि नवल तन सारी। केसर रंग संग ले गागरि, करन उन के पिचकारी॥ जुरि२ आईं नन्दद्वार पर टेरत दै दै तारी। काल लाल करि गए अवगरी आज हमारी पारी॥ फंद पड़ोगे जब सखियन के बंसीधर बनवारी। भूलि जाओगे स्यामसुंदर तब गौअन की रखवारी॥ लैहैं चनक दै मुकुट लकुटिया पीत पछोरि उतारी। मुरली छीन देहैं दृग अंजन तो हम गोपकुमारी॥ रूपरतन यों मान करत मिलि जोबन को मतवारी। गलियन२ ढूंढ़ति डोलैं प्रानप्रिया गिरधारी॥

बम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर भावदाजी प्रभृति से इन का घनिष्ठ सम्बन्ध और प्रेम था। बाबू साहिब इन लोगों के कार्य्यों में भी बराबर सहायक रहते थे, और सदा पत्र व्यवहार रखते थे।

काशी निवासी तो प्राय: सभी इन के मित्र थे तथापि बाबू बालेश्वरप्रसाद पंडित रामशंकर व्यास, गोस्वामी कन्हैया लाल प्रभृति का इन्हें अधिक साथ रहता था।

केवल इसी देश के माननीय पुरुषगण नहीं किन्तु विलायत अमेरिका के विद्यानुरागी लोग भी इन का आदर करते थे, सर्वदा इन्हें Poet Laureate ( राजकवि ) मानते और लिखते थे और इन से बराबर पत्र व्यवहार रखते थे। उन महाशयों में फ्रेडरिक पिनकाट मुख्य थे।

इन के पास जो इनके मित्रों के पत्र आया करते थे उन में से कई एक पत्र इस पुस्तक के अन्त में प्रकाशित किए गए हैं। और इन के मित्रों का संक्षिप्त वृत्तान्त भी यथा सम्भव एक पृथक परिच्छेद में लिखा गया है।

देश विदेश में इन का ऐसा सम्मान देख कर और इन की कीर्ति कला के प्रकाश से आनन्दित होकर सन् १८८० ई० के २७ सितम्बर के " सारसुधानिधि" पत्र में प्रियवर पंडित रामशंकर व्यासजी ने इन को " भारतेन्दु " की पदवी देने के लिए एक प्रस्ताव छपवाया था और सब पत्र के सम्पादक तथा गुणग्राही विद्वज्जन एक सम्मति हो कर इन को यह पद प्रदान किया। और इस को सब लोगों ने स्वीकार किया और तब से देशीय विदेशीय सब ही लोग इन्हें भारतेन्दु * कहने और लिखने लगे।

लोगों ने बहुत सोच कर इन को यह यथार्थ पद प्रदान किया था, क्योंकि चन्द्र से चन्द्रिका की उत्पत्ति है, यहां हरिश्चन्द्र से अभिनव किरणावली चन्द्रिका

---

* जी० ए० ग्रियर्सन साहिब महोदय ने लिखा है कि यह बाल्यावस्थाही से रचना करने लगे और १८८० ई० में इन की सुख्याति ऐसी बढ़ी कि हिन्दी के समाचारपत्र के सम्पादकों ने एकराय हो कर इन्हें "भारतेन्दु" की पदवी दी।

" The boy was educated at Queen's College Benares and commenced to write at an early age. In the year 1880, so great had his fame extended that he was given the title of " Bharatendu "—moon of India by the unanimous consent of all the editors of Vernacular papers of India. G. A. Grerson's "The modren Literary History of Hindustan." p. 124.

प्रगट हुई थी ; चन्द्र से सुधा है, यहां इन से भी "कविवचनसुधा" थी ; चन्द्र में कलाएं चाहिएं, यहां भी गुणसमूह देदीप्यमान कला थी ; वह किसी को सुखद किसी को दुखद कहा जाता है, किन्तु यथार्थ में वह एकरस है। अपनी अवस्था और प्रकृति के अनुसार कोई उसे सुखद और कोई दुखद मानते हैं और एक ही मनुष्य अवस्थाभेद से उस को कभी सुखद और कभी दुखद समझता है। अन्धे होने पर एवं सांसारिक दुःखों से संतापित होने पर "नाइट इन गले" पक्षी का शब्द भी मिल्टन को दुखद प्रतीत होता था और उस को उन्हों ने "मेलनकली बर्ड" दुखद पक्षी लिखा है जिस पर एक काव्य में "कालेरिज" ने उस की अच्छी समालोचना की है। इस व्याख्या के अनुसार स्वयं एक भाव होने पर भी हमारे चरित्रनायक किसी को सुखद वा दुखद प्रतीत होते हों तो इस में इन का क्या दोष ? हम तो कहेंगे कि वास्तव में चन्द्र भी निर्दोष और हमारे हरिश्चन्द्र भी निर्दोष। अब रही लांछना, सो वह भासने पर भी केवल आभास मात्र ही है। चन्द्र और हरिश्चन्द्र दोनों ही में यह लांछना केवल जगदुपकारार्थ ही है। पाठकगण बुद्धि से काम लेने पर स्वयं समझ जायंगे। जो इतना भी न समझ सकेंगे तो इतने बड़े भारी आदमी का जीवनचरित्र पढ़ने क्या बैठेंगे। यदि यह कलंक भी हो तो केवल एक ईश्वर ही निष्कलंक है और वह भी भूतल में आविर्भूत होने पर लोगों की दृष्टि में कुछ कलंकित हो ही जाता है। मनुष्य की क्या बात है। कोई २ जीभ दबाए ऐसा भी कह बैठते हैं कि जब यह सर्वगुणआगर ही थे तो सरकार ने पदवी आदि के द्वारा इन का सम्मान क्यों न किया ? इस के उत्तर में हम यही कहेंगे कि यह प्रश्नकर्त्ता की समझ की फेर है। निज अवस्था एवं वयस के अनुसार यह हमारी न्यायशाली सरकार से भी बहुत कुछ सम्मानित हुए थे। यह बात इस परिच्छेद तथा अन्य परिच्छेदों के विचारपूर्वक पाठ करने ही से प्रमाणित होती है। यह कदापि सम्भव नहीं कि हमारी प्रजा-वात्सल्य-गुणग्राहिणी सरकार अपनी एक सुयोग्य प्रजा का सम्मान नहीं करे। इन के रचे ग्रन्थों को स्कूलों में प्रचार कर के और शिक्षा-विभाग में ग्रन्थों को खरीद करा के आज भी सरकार इन का सम्मान कर रही है। सुकवियों का इस से बढ़ कर दूसरा यथार्थ सम्मान नहीं हो सकता, और यदि अल्पवयस ही में इन का स्वर्गवास न हुआ होता तो आशा थी कि इन के वास्तविक गुणों पर विचार कर के गवर्नमेंट अन्य रीति से भी इन्हें अवश्य सम्मानित करती इस में सन्देह नहीं।

# त्रयोविंश परिच्छेद ।

## व्यय और द्रव्याभाव ।

यह एक बड़ी ही विलक्षण बात है कि धन के विषय में सब देश तथा काल के सुकवियों की प्रायः एक सी दशा पाई जाती है । इन लोगों पर सरस्वती की पूर्ण कृपा होने ही से कदाचित् कमला कुपित हो जाती हैं। फ़ारस देशीय सादी, हाफ़िज़, ज़फ़र प्रभृति दरिद्र ही पाए गए। यूनान देशीय होमर गांव २ में भिक्षाटन ही कर के कालक्षेप करते रहे। गोल्डस्मिथ एक झोपड़ी ही में रह कर उपवासों का खिलौना बना रहा, माता की मृत्यु के समय कफ़न के लिए भी टका पास न था । काउपर को सर्वदा भगिनी ही का सहारा रहा। मिल्टन को भी अन्त में दुख ही भोगना पड़ा । बङ्गदेशीय सुप्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय, तथा माइकल मधुसूदन को भी यही दशा देखने में आई। ऐसे लोगों को तो प्रायः धन का सर्वथा अभाव होता ही है, और यदि किसी को कुछ धन हुआ भी तो अन्त में फिर वही गति होती है। स्काट से बढ़ कर इस का कोई दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल सकता कि निज कविता द्वारा इतना धन उपार्जन करने पर भी उस के देहान्त होने पर उस की सम्पत्ति बेंच कर उस का ऋण परिशोध किया गया।

ऐसी ही दशा हमारे चरित्रनायक की भी थी। यह तो पाठकों पर विदित है कि इन का जन्म एक ऐसे धनाढ्य वंश में हुआ था कि यदि हिसाब से रहते तो इन का धन कई पीढ़ी तक नहीं घटता, परन्तु एक तो यह स्वाभाविक उदार, दूसरे रसिकता के आगार एवं सर्वदा रसिकसमाज के साथ व्यवहार, तीसरे सदैव गुणियों का सत्कार, चौथे देश सुधार एवं परोपकार का विचार, पांचवें अर्थलोलुप विश्वासघातियों की भरमार । इन्हीं कारणों से जब समय पर अपने पास पैसा न रहता तो दूसरों से लेकर भी व्यय करने में इन का हाथ नहीं रुकता था । भला ऐसे व्यक्ति के पास चञ्चला कब अचल भाव से चिरकाल लों ठहर सकती है।

भूगर्त्त के भीतर सावधानतापूर्वक बन्द रख जाने पर भी वहां से धन निकल जाते तो विलम्ब ही नहीं होता यहां तो इस के बहिष्कृत होने के लिए

अनेक द्वार खुला हुआ था । यहां क्या पूछना था । बस इस के प्रौढ़ होते २ अनन्त धन इन के घर से बाहर निकल गया। इन के सच्चे शुभचिन्तकों ने इन्हें बहुत कुछ समझाया पर इन्हों ने किसी की बात पर कान नहीं दिया। इन के परम स्नेही तथा शुभकांक्षी श्री काशीनरेश ने भी इन्हें एक बार कहा "बबुआ घर को देख कर काम करो" । इन्हों ने चट उत्तर दिया "हजूर यह धन मेरे बहुत से पूर्वजों को खा गया है, अब मैं इस को खा डालूंगा" श्रीमान् इन की बात सुन कर अवाक हो गये।

१८७० ई० में भाई से बांट बखरा हुआ। पैतृक धन का तीन भाग किया गया, दो इन लोगों का और एक ठाकुरजी का जिन की पूजा इन के वंश में सैकड़ों वर्ष से चली आती है। परन्तु इन का व्यय तो अपरिमित था । दीवाली में अतर के दीवे जलाए जाते थे । अतर की शीशी उझल कर अभ्यङ्ग करना यह तो इन का स्वाभाविक कार्य्य था। जब यह कहीं नाटक देखने जाते थे तो पचीस तीस अथवा चालीस आदमी जो इन के साथ रहते थे सब को टिकट इनही की ओर से ली जाती थी। इस अपव्यय के साथ साथ कवि पंडितों को भी इन के हाथ से नित्य कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त होताही था। और गुणी लोग इन से सर्वदा सम्मानित होते ही थे; इस से इन को जो कुछ भाग मिला था देखतेर सब उड़ गया, परन्तु इन को अणुमात्र भी खेद नहीं हुआ। यदि कहिए कि अपव्यय से क्या हानि होती है। इस को यह नहीं समझते थे सो भी ठीक नहीं। अपव्यय के विषय में इन्हों ने एक ऐसा उत्तम लेख लिखा है जिस के पढ़ने से मनुष्य अनन्त लाभ उठा सकता है। सम्भव है कि अपना कुछ खोने के बाद इन्हों ने वह लेख लिखा हो और अपने ही को उस का लक्ष्य भी बनाया हो। यह अपव्ययी थे सही, परन्तु यदि इन का यथेष्ट धन सत्कार्य्यों में व्यय नहीं होता तो हम भी औरों के समान इन्हें धननाशक एवं कुलगौरक कहने में कुंठित नहीं होते; परन्तु हम देखते हैं कि इन्हों ने बहुत सा धन व्यय कर के नूतन एवं प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह कर के निज पिता के स्थापित सरस्वतीभंडार को पूर्ण किया था, यद्यपि इन की असावधानी से बहुत से अमूल्य ग्रन्थ नष्ट भी हो गए थे । कतिपय ग्रन्थ जो लोग ले गए अपने पास दबा रखा। "कविवचनसुधा" में हम ने कई स्थानों में ऐसा विज्ञापन देखा है कि अमुक पुस्तक जिस के पास रह गई हो दयापूर्वक लौटा दें। पर ऐसे लेजानेवालों के चित्त में दया कैसी? इस के सिवाय उत्तम २ कागज़ों

पर उत्तम २ छपाई में स्वरचित एवं परचित ग्रन्थों को मुद्रित करा २ कर सर्वदा वितरण करते रहे । बहुत से लोग कहेंगे कि इस से तो इन को क्षति के बदले धनलाभ ही होता होगा, किन्तु आज भी जो हिन्दी पत्रों के सम्पादक तथा हिन्दी भाषा के ग्रंथकर्त्ता हैं वे लोग भली भांति जानते हैं कि इस से कितना द्रव्य लाभ होता है । जिस से पूछिए वह भंखता ही है। इसी द्रव्याभाव से कितने ही उत्तम २ पत्र का प्रकाश होना बन्द हो गया जिन का नाम स्मरण आने ही से हृदय में एक प्रकार का शोक उत्पन्न होता है। "उचितवक्ता" का उचित कथन कहां गया ? "सारसुधानिधि" की सुजनता की बातें कहां गईं ? ब्राह्मण का अमूल्य उपदेश क्या हुआ? नागरीनीरद का सुखद गरज और सुधावृष्टि कहां गई ? हमारा देश विशेषत: बिहार तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त विलायत तो नहीं है जहां गाड़ीवान भी गद्दी के नीचे समाचारपत्र रक्खे रहता है। मालिक या किराएदार जब तक किसी के घर जाकर आलाप करता है वह समाचारपत्रों से दिल बहलाता है, जहां हलवाहे भी एक हाथ में हल और दूसरे हाथ में समाचार पत्र लिए रहते हैं जहां कोई नई पुस्तक मुद्रित हुई, चाहे सामाजिक, चाहे दार्शनिक, चाहे राजनैतिक, चाहे व्यवहारिक किसी विषय की हो, विक्रेता की दूकान पर भीड़ लगजाती है । यहां तो १०) मासिक की नौकरी मिली और मानो कहीं का राज्य हाथ आगया । पुस्तकावलोकन से क्या सम्बन्ध ? यदि सायंकाल में कुछ अवकाश मिला तो मदिरादेवी की सेवा कर के हरारत रफ़ा की गई । अधिक अवकाश मिला तो चौपड़ शतरंज ही का आनन्द लूटा गया । जो लोग बड़े बाबू हुए उन का क्या पूछना ? उन के समय काटने का तो ईश्वर ने संसार में अनेक उपाय रचा है। पुस्तक हाथ में लिए तो बचपन ही से आजतक बिताया अब भी फिर वही हाथ में रहे तो छोकड़ों में और उन में भेद क्या रहा ?

यदि दैवक्रपा से किसी की पुस्तक तथा समाचारपत्र पढ़ने की ओर तबीयत भी झुकी तो भला अंगरेज़ी भाषा की चीज़ों को छोड़ कर गन्दी हिन्दी की ओर कैसे दृष्टि करें। भला अंगरेजी पढ़ लिखकर भी अपना नाम कलंकित करें, अपनी मिट्टी खराब करें। वाह रे सपूत पूत ! मातृभाषा से ऐसी घृणा ! धन्य हैं हमारे बंगदेशीय बन्धुगण जिन लोगों ने निज मातृभाषा का गौरव बढ़ा कर उस को अल्पकाल ही में इस उन्नतावस्था पर पहुंचाया है और उस से इतना स्नेह रखते हैं।

जब हिन्दी भाषा की आज यह दशा है तो बाबू साहिब के समय में जब कि इस के जीवन ही का संशय था पुस्तक तथा समाचारपत्रों के प्रकाश से लाभ की क्या सम्भावना थी । हिन्दी भाषा के उद्धार ही के लिए तो बाबू साहिब कटिबद्ध हुए थे। वह द्रव्य की हानि लाभ का क्या विचार करते। हिन्दी भाषा में लोगों की रुचि प्रवृत्त करने के लिए बाबू साहिब पुस्तकों का नाम मात्र का मूल्य रख कर वरन बिना मूल्य ही लोगों को बांटा करते थे । जिस ने मांगा उसी को दिया, जिस स्थान से पुस्तक की मांग आई वहीं भेजा । २०० रु० की पुस्तकें तो बलिया इंस्टिट्यूट में भेजी गई थीं जैसा कि अन्यत्र कहा है ।

यही नहीं, बाबू साहिब रुपया दे दे कर लोगों से पुस्तकें निर्माण कराते थे। पारितोषिक द्वारा लोगों को प्रोत्साहित करते थे । फ्रांसीस देश में जो युद्ध होता था उस का वर्णन नाटकाकार * लिखे जाने के लिए ४००) मुद्रा एवं सर विलियम म्यूर की जीवनी लिखने के लिए २५०) रुपया तथा संस्कृत भाषा के २०० कवियों की जीवनी के लिखने के निमित्त प्रति कवि १०) पारितोषिक नियत किया था। ये पुस्तकें लिखी गईं वा नहीं यह बात हम को ज्ञात नहीं हो सकी। इन्हीं ने भारतवर्षीय प्रसिद्ध शूर वीर महात्माओं की कीर्त्ति वर्णन में "वीरकवितासंग्रह" का भी उद्योग किया था ।

---

* यह विज्ञापन "कविवचन सुधा" में छपा था ।

सब पर विदित हो कि फ्रांसीस में जो युद्ध हुआ है और हो रहा है उस का वर्णन जो कोई नाटक की रीति से करेगा तो उस को मेरी ओर से ४००) पारितोषिक मिलेगा परन्तु उस के ये नियम हैं :—

(१) पुस्तक वीररस अंगी होगा और करुणा और रौद्र उस के अंग होंगे।

(२) इस के पढ़ने से युद्ध का आद्योपान्त सब वृत्तान्त जाना जाय कि युद्ध कब और क्यों आरम्भ हुआ और कब तक रहा और इस में क्या२ हुआ ।

( ३ ) इस का फल यह हो कि पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य सन्धि और विग्रह इत्यादि नीति में और युद्धकर्म में चतुर हो जाय और २०० पृष्ठ से न्यून न हो।

नीचे लिखे हुए लोग इस की परीक्षा करेंगे कि पुस्तक यथोचित बनी है कि नहीं तब पारितोषिक मिलेगा । बाबू राजेन्द्रलाल मित्र , कुंअर लक्ष्मण सिंह , बाबू ऐश्वर्य्यनारायण सिंह , बाबू नवीनचन्द्र राय , ठाकुर गिरप्रसाद सिंह।

२४—२—७२ हरिश्चन्द्र ।

इस के अतिरिक्त पबलिक कामों में एवं राजभक्तिप्रकाश करने में समय२ पर सहस्रों मुद्रा प्रदान करते ही थे । १८७२ ई० में म्योमेमोरियल सिरौज में १५००) मुद्रा दिया था। होमियोपेथिक डिसपेंसरी में १८६८ ई० से १८७३ ई० तक १२०) रुपया प्रति वर्ष देते रहे, "सोलजर्सफ़ंड" में १००), गुजरात जबलपुर रिलीफ़ फ़ंड में ७०) "स्ट्रेंजर्स होम" में ५०) दिया था। इसी प्रकार प्रिंस औफ़ वेल्स हास्पिटल, कारमाइकललाइब्रेरी, नेशनलफ़ंड इत्यादि अनेक कार्यों में द्रव्यप्रदान किया करते थे जिस की तायदाद जाननी अब कठिन हो गई है।

"पंजाब विश्वविद्यालय" के रजिष्ट्रार जी० डबल्यू० लिटनर साहिब के एक उर्दू में मुद्रित पत्र से ज्ञात हुआ है कि बाबूसाहिब ने उस विद्यालय के संस्थापित होने के समय २५०) से उस की सहायता की थी और १८८२ ई० में जब उस विद्यालय को पूर्ण रूप से सब अधिकार प्राप्त हुआ तो उस समय भी रजिष्ट्रार साहिब ने इन से तथा अन्य महाशयों से विशेष द्रव्य सहायता के निमित्त प्रार्थना की थी। राजकुमारी के काशी में शुभागमन के अवसर पर सहस्रों मुद्रा व्यय कर के आनन्द उत्सव द्वारा आन्तरिक भक्ति प्रगट की थी।

भारतवर्ष के किसी प्रान्त में किसी स्कूल से जब बालिकाएं परीक्षोत्तीर्ण होती थीं तो उन्हें बहुमूल्य साड़ी इत्यादि पारितोषिक प्रदान कियाही करते थे। इन के स्कूल के पढ़े हुए दामोदर दास जब बी० ए० परीक्षा की प्रथम श्रेणी में परीक्षोत्तीर्ण हुए थे तो उन्हें १००) की सोने की घड़ी तथा ३००) की सोने की चेन पारितोषिक में दिया था। काशी के आचार्य्यपरीक्षोत्तीर्ण बालकों को भी घड़ी दिया करते थे। हमारे पंडित अम्बिकादत्त व्यास को भी साहित्याचार्य्य की परीक्षा पास होने पर इन्हीं ने एक घड़ी दी थी।

काशी के मणिकर्णिका कुंड में बहुत यात्रीगण गिर जाया करते थे और उन लोगों का जीवनाश भी होजाया करता था। उस दुर्घटना के रोकने के लिए इन्हीं ने निज व्यय से वहां पर लोहे का कठघरा और ऐसी ही दुर्घटना बन्द होने के अभिप्राय से माधवदास के धौरहरे पर लोहे का छड़ लगवा दिया था। कम्पनीबाग में निज व्यय से लोहे के बेंच मंगवा कर रखवा दिए थे जो अद्यावधि वर्त्तमान हैं। इन सब कार्य्यों के लिए म्युनिसपेलिटी से इन्हें बहुत बार धन्यवाद मिला करता था।

धर्म्मकार्य्य में द्रव्य व्यय होता ही था। बनारस के श्री गोपाललालजी के मन्दिर में छप्पन भोग के लिये ११००) मुद्रा दी थी। गुणियों का सम्मान,

दुखियों को दान, इस रीति से हुआ करता था जो आजकल बहुत कम देखने में आता है।

हां बहुत से दुष्ट कुटिल भी इन के घर को उजाड़ कर अपना अख्तार भरते आते थे, परन्तु यह इन की सुशीलता का फल था कि यह उन लोगों की दुष्टता आंखों से देखते हुए भी अनदेख कर देते थे। इन सब बातों का सविस्तर वर्णन ऊपर ही हो चुका है, यहां पर केवल दिग्दर्शन मात्र किया गया है।

पूर्वोक्त बातों से यह विदित होता है कि इन्हों ने अपना अधिकांश धन सुकार्य्यों ही में व्यय किया। जो हो, इन के इस अन्धाधुन्ध व्यय से घर की लक्ष्मी तो बिदा हो ही गई, लोकरीत्यनुसार खाली हाथ होने पर इन की निन्दा भी होने लगी यह बड़े नालायक समझे जाने लगे, अपने पराए लोग जो लक्ष्मीपात्र हो को गुणागार समझते हैं इन से मुंह फेरने लगे ( जगत की ऐसी ही चाल देख कर एथन नगर-निवासी "टाइमन" जगत् के लोगों से मुंह मोड़ कर अरण्य में पशुओं का सहवर्ती हुआ था, और कुटिल जनों से बन-चरों को औरों की अपेक्षा उत्तम समझा था ) परन्तु जो व्यक्ति ऐसा कह चुका था कि "अब हम इस धन को खायंगे" उस पर ऐसी निन्दा तथा घृणा का कितना प्रभाव होता होगा यह हम नहीं कहेंगे। "सतीप्रताप" नाटक में इन्हों ने द्युमत्सेन के मुख से इस विषय में एक ऋषि प्रति जो कहलवाया है उसी को यहां पर उद्धृत कर देते हैं।

"मोहि न धन को सोच भाग्यबस होत जात धन।
पुनि निर्धन सों दोस न होत यही गुन गुनि मन॥
मो कहँ इक दुख यहै जु प्रेमिन हूं मोहि त्याग्यो।
बिनाद्रव्य के स्वान हु नहिं मो सों अनुराग्यो॥
सब प्रियगन छोड़ी मित्रता, बन्धुन हूं नातो तज्यो।
जो दास रह्यो मम गेह को, मिलनहु में अब सो लज्यो॥"

और ऋषि के यह कहने पर "तो इस में आप की क्या हानि है, ऐसे लोगों से न मिलना ही अच्छा है" यह उत्तर दिलवाया है "नहीं उन के न मिलने का मुझे अणुमात्र भी शोच नहीं है। मुझे तो ऐसे तुच्छ मति लोगों के ऊपर उलटी दया आती है' मुझे अपनी निर्धनता केवल उस समय अति गढ़ाती है जब किसी सत्पुरुष कुलीन को द्रव्य के अभाव से दुखी देखता हूं

उस समय मुझ को निःसन्देह यह हाय होता है कि आज द्रव्य होता तो मैं उस की सहायता करता।"

इन की नानी के पास लाखों रुपए थे। उन्हों ने पहिले उन को दो भागों में विभक्त कर के दोनों भाइयों को बराबर२ देने की इच्छा से कागज़ लिख दिया था? परन्तु जब इन का हाथ ऐसा खुला देखा, तो उन का जी खट्टा हो गया। अपना सर्व्वस्व इन के भाई बाबू गोकुलचन्द्र ही को देना निश्चय किया। पर आईन के अनुसार उन को ऐसा करने का अधिकार नहीं था जब तक बाबू हरिश्चन्द्र की सम्मति न हो। २८ अकतूबर १८७८ ई० में नानी ने इन के भाई के नाम से एक बखशिशनामा लिखा। बाबू हरिश्चन्द्र से उस पर दसखत बनाने को कहा गया। जो बाबू हरिश्चन्द्र अपने बदन का दुशाला उतार२ कर भिक्षुकों को ओढ़ा देते और उन का शीत निवारण करते; दुष्टों के भी रोने कलपने पर अपने हज़ारों रुपये से बाज़ आते और कहते कि "जाने दो बिचारा इसी से कमा खाएगा" जिन की यह दशा थी कि "सम्पति सुमेरु की कुबेर की जो पावै कहूं तुरंत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना" भला उन को यह तुच्छ धन सुहृदय भ्राता के लिए, जिसे यह प्राण सम प्यारा जानते थे (और उस पर भी मातामही की सम्मति के अनुसार) छोड़ देना क्या बड़ी बात थी। सहर्ष चित्त और सानन्द लेखनी उठा कर उस कागज़ पर अपना हस्ताक्षर बना दिया। उस के अनुसार इन को केवल चार हज़ार रुपया मिला था। उस पर दसखत करने से "नगरसेठ हरिश्चन्द्र राजाहरिश्चन्द्र की भांति धनहीन हो गए।" यही नहीं एक दिन जैसे राजा हरिश्चन्द्र ने अपने पास धन न होने से अपना व्रतपालन करने के निमित्त काशी नगर में डोम की सेवा भी स्वीकार की थी, सेठ हरिश्चन्द्र ने भी अपने पास पूरा धन न होने से अपना परोपकार व्रत पालन करने के निमित्त खानदेश के अकाल के समय वहां के दुर्भिक्षपीड़ित जनों की सहायतार्थ द्रव्य इकट्ठा करने के लिए उसी काशी नगर में खप्पड़ लेकर लोगों से भीखमांगना स्वीकार किया। तभी तो इन के सत्यहरिश्चन्द्र नाटक लिखने के समय इन के एक मित्र पंडित शीतलाप्रसाद जी ने कहा था।

"जो गुण नृप हरिचन्द में, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

भाई से जुदाई होने से १४ वर्ष तथा इस बखशिश नामा के अनन्तर ७ वर्ष

तक बाबूसाहिब इस भूतल को सुशोभित करते रहे, किन्तु द्रव्याभाव होने पर भी इन के दातव्य की दशा वही रही। जो जिस इच्छा से आया उस की इच्छा पूर्ण ही करते गए। जहां कहीं से रुपया हाथ में आया बस उस से परोपकार का कार्य्य होने लगा एवं दुःखियों की सहायता होने लगी। किसी को कुछ देकर इन्हें खेद भी करते किसी ने कभी नहीं पाया। इन को खेद उसी समय होता था जब द्रव्याभाव से किसी का दुःख दूर करने में विलम्ब वा त्रुटि हो जाती थी वा रुपया न होने से कोई परोपकार करने में यह असमर्थ होजाते वा कोई धनाभिमानी इन के सामने धन की डींग लेता। न जाने इतना खर्च पर भी इन के पास द्रव्य कहां से आजाया करता था। हम तो यही कहेंगे कि यह भी इन के ईश्वर के परम भक्त होने का एक प्रमाण है क्योंकि गुरु नानक ने कहा है—"अपने जन का परदा ढाके। अपने जन की सर पर राखे॥ अपने दास को देय बडाई" इन के ऐसे अन्धाधुन्ध व्यय से लोगों को दृढ विश्वास था कि "स्काट" के समान यह भी बहुत अपरिशोधित ऋण छोड़ कर संसार से प्रयाण करेंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

इन्हों ने एक २ का दस २ * दिया और देहान्त के समय किसी के ऋणी नहीं रहे, वरन् सारे हिन्दू मात्र क्या, सब भारतवासियों को अपना ऋणी छोड़ गए जिस से उद्धार की एक यही राह है कि लोग इन का अभीष्ट पूर्ण करके अर्थात् इन के प्रदर्शित मार्ग पर चल कर देश की उन्नति, भाषा की

---

* इस का एक प्रमाण देख लीजिए। एक दिन यह बहुत सा पत्र और पैकट लिख कर अपने सामने रखे हुए थे। उसी अवसर में इन के एक मित्र के छोटे भाई इन से मिलने गए। उन सभों को देख कर और यह जान कर कि टिकट नहीं रहने से वे सब पत्र आदि नहीं भेजे गए थे उन्हों ने अपने पास से २) का टिकट मंगा कर उन सभों को भेजवा दिया। उस रुपये को बाबू साहिब ने उन्हें कम से कम दस बार दिया। उक्त महाशय का कथन है कि "जब २ मैं मिलने गया बाबू साहिब ने टिकट वाला २) मुझे दिया। मैंने लाख कहा कि मैं कई बार यह रुपया पा चुका, पर उन्हों ने एक भी नहीं सुना और कहा तुम भूल गए हो, और विशेष आग्रह पर बोले कि अच्छा क्या हुआ लड़के हो मिठाई खाना।"

उन्नति में तत्पर रह कर इन की आत्मा को प्रसन्न करें तथा इन का कोई चिरस्थायी चिन्ह निर्माण करें।

इन के द्रव्याभाव, दातव्य तथा ऋण का हाल जान कर और यह देख कर कि इन के स्वर्गगमन के समय किसी की एक फूटी चित्ती भी इन के ज़िम्मे नहीं निकली लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उस आनन्द में श्रीमान् काशी नरेश ने यह दोहा कहा था:—

" यद्यपि आप दरिद्र सम, जान परत त्रिपुरारि।
दीन दुखी के हेतु सोई, दानी परम उदार॥ "

# चतुर्विंश परिच्छेद ।

## गुलाब में कांटा ।

जिस विधाता ने " सागर के जल खार कियो अरु कंटक पेड़ गुलाब के कीनो " उसी ने नभ-चन्द्र को भी कलंकित किया और भारतेन्दु के उज्ज्वल चरित्र में भी कुछ धब्बा लगा दिया । नहीं तो जिस का मन मधुकर,सदैव श्रीकृष्ण-पादाम्बुज पराग का अनुरागी था वह भला माधवी और मल्लिका * की ओर कैसे झुकता । जो हो, परन्तु खारे होने पर भी पयोनिधि की मर्य्यादा नहीं घटती और सब नदी नाले उसी के अंक में स्थान पाने को दौड़े जाते हैं; कंटकित होने पर भी गुलाब निज सुठि सुगन्ध तथा सौंदर्य्य के कारण सर्वजन-प्रिय होता है । और कलंकित होने पर भी चन्द्र देवों के देव महादेव का ललाट-भूषण बना रहता है, उसी प्रकार मल्लिकानुरागी होने पर भी हरिश्चन्द्र रसिकसमाज एवं कवितानुरागी और देशानुरागी मनुष्यों के हृदय के भूषण ही बने रहेंगे, क्योंकि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर भूतल में कोई विरला ही निर्दोषी दीख पड़ेगा ।

हम सदर्प कहते हैं कि इस दोष के रहते हुए भी हमें कोई व्यक्ति कोई ऐसा सद्गुण सम्पन्न अन्यपुरुष दिखला तो देवे ? कवियों में तो कदाचित किसी देश का कोई विरला ही कवि होगा जो सौंदर्य्योपासक न हो । मनुष्य का सौंदर्य्य, प्रकृति का सौंदर्य्य, चित्र का सौंदर्य्य, एवं गान वाद्य यही सब वस्तु तो उन लोगों के हृदय को विकम्पित कर के उन लोगों की लेखनी से अपूर्व भावों को प्रगट कराती हैं ।

विलायती कवियों में मिल्टन बड़े ही सच्चरित्र माने जाते हैं, किन्तु एक

---

*इन्हीं दोनों से बाबू साहब की प्रीति थी ; और मल्लिका को इन्हों ने एक रीति से धर्म्म पूर्वक अपनाया था । यह बात इन्हों ने अपने कनिष्ठ भ्राता के पास एक पत्र में स्पष्ट लिखी थी जो अन्यत्र प्रकाशित है । मल्लिका भी बङ्गदेशीय एक कुलवती स्त्री थी । दुर्भाग्यवश इस कुदशा को प्राप्त हो गई थी । उस के सहवास से बाबू साहिब को स्वकार्य्यसाधन में भी बहुत कुछ सहायता मिलती थी । बङ्गभाषा के ग्रन्थ पठन पाठन में उस से इन का बहुत कुछ काम चलता था ।

समय वह भी एक इटालोदेशीय परम सुन्दरी युवती को देख कर मन को स्ववश न रख सके, व्यग्रचित्त हो कर इन्हों ने उस पर भी दो एक कविता बना ही डाली।

इस के अतिरिक्त हमारे मित्र बाबू राधाकृष्ण जी ने लिखा है कि एक दिन हमारे चरित्रनायक कुछ अपने अन्तरङ्ग मित्रों के साथ बैठे हुए थे और एक वारविलासिनी भी वहां पर विद्यमान थी। उस ने कुछ ऐसा हाव भाव कटाक्ष दिखलाया कि इन्हें कुछ नवीन भाव स्फुरित हुआ और इन्हों ने एक कविता तुरंत बनाई और उसे उन मित्रों को सुना कर कहा "हम इन सबों का सहवास विशेष कर इसी लिए करते हैं। कहिये ! यह सच्चा मज़मून कैसे लब्ध हो सकता था।" यह बात हम ऊपर ही कह चुके हैं। और यहां पर यह भी कहेंगे कि गानवाद्यप्रिय बाबू साहिब को जिन्हों ने भिन्न २ राग रागिनियों के भेदानुसार संकीर्तन की अनेक वस्तुओं एवं ग्रन्थों की रचना की है, "इस विषय के तत्त्वानुसन्धान के लिए इस से बढ़ कर और कौन उत्तम कालेज मिलता और हम लोगों को "संगीतसार" नामक ग्रंथ कैसे लब्ध होता जिस के अन्त में इन्हों ने स्पष्ट लिखा है कि "हमारे बन्धुगण वारवधू के चन्द्रमुख और सुन्दरता ही पर इस विषय की इतिश्री नहीं कर के कुछ आगे भी बढ़ेंगे।" यदि इस विषय में इन को सचमुच दुर्वासना ही होती तो ऐसा कैसे लिखते ?

इन्हों ने "नाटक" में नाटक—रचना—प्रणाली के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है कि "मानवप्रकृति के आलोचना करनी हो तो नाना देश में भ्रमण कर के नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करे वरन समय २ पर अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच-प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करे। यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती।" तो फिर उस का सहवास क्यों न करें जिन्हें प्राचीन बुद्धिमानों ने भी ज्ञानदायिनी माना है :—

"देशाटनं पण्डितमित्रता च, वाराङ्गना राजसभाप्रवेशः।
अनेकशास्त्राणि विलोकितानि चातुर्य्यमूलानि भवन्ति पञ्च॥

जब बालावस्था ही से देशाटन करते ही थे, कवि कोविद का प्रतिक्षण समागम रहता ही था, राजसभाओं में आदर पाते ही थे, एवं शास्त्रावलो-

श्व सर्वदा हुआ ही करता था, तो फिर केवल इसी बात की कमी क्यों रह जाती ?

जर्मन देशीय प्रसिद्ध कवि "गाइथी" ने भी बुद्धिविकाशार्थ तीन बातों का होना परमावश्यक बताया है। नित्य गान वाद्य श्रवण करना, मनोहर चित्र अवलोकन करना, रूपवती स्त्रियों से सम्भाषण करना। सब में उस ने सौंदर्य्य उपासना को मुख्य माना है। एक बंगदेशीय स्त्री कवि ने भी कहा है " सौंदर्य्य आत्मेर छाया (बंगला)। सौंदर्य्य की उपासना आत्मा की उपासना है। हां ! यह सौंदर्य्योपासना मात्रा से अधिक हो जाने से दूषणीय कही जायगी, परन्तु हमारी समझ में तो यह देशोपकारक कुसंस्कार-संहारक महाशय जगदुपकार ही के निमित्त इस खोर की ओर भी निकल पड़े थे कि स्वयं इस मार्ग में प्रवेश कर के, उपहासभाजन बनकर निज का कुछ गवां कर इस की अवस्था की पूरी खोज लें और बन्धुवर्ग को इस कुपंथ से निवारण करें। यदि यह बात अभिप्रेत नहीं होती तो ऐसा नहीं कहते:—

" जगतजाल में नित ८ स्यो, पस्यो नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी पतित, झूठो कवि हरिचन्द ॥ "

और न " वेश्यास्तवराज " में बारविलासिनियों के सहवास के दोषों को प्रत्यक्षरूप से उद्घाटन करते, जैसा कि लिखा है:—

मद्यप प्रमोद पुष्ट पीढ़िका। ऐन्लाइटेड पंथ सीढ़िका।
मातृ पितृ बन्धु शील भक्षिका। लोकलाज नाशहेतु तक्षिका॥
गुप्त द्रव्य पुंज गेह रक्षिका। यौवनादि सर्वार्थ पुष्प मक्षिका॥
धर्म्म कर्म्म शर्म्म चर्म्म हारिणी। गर्म्म घर्म्म नर्म्म मर्म्म कारिणी॥
प्रेजुडीस लेशमात्र भक्षिका। मद्यपान घोर रंग रंजिका॥
दायनी अनेक मात्र संग की। आतशक सुजाक औ फिरंगकी॥
पितृनामहीन मातृ नामिका। सर्व जात पांत मध्य गामिका॥
मिष्टजिह्वा कपाल मूँडिनी। मित्रवर्ग युक्त नर्क बूड़िनी॥
लोक बेद लाज-पत्र फाड़िनी। जीवितेव कृत्र मध्य गाड़िनी॥
द्रव्यलाभ धावमान साड़िनी। सद् गृहस्थगेहको उजाड़िनी॥"

और न "प्रेम योगिनी" में ऐसा निधड़क लिखते कि :—

"घर को जोरू लड़के भूखे, बने दास औ दासी।
दाल की मंडी रंडी पूजैं, मानो इन को मा सी॥"

इस के सिवाय हम नहीं समझते कि जो "सर्वदा मौत को याद रखता था, जो "प्रेम योगिनी" में नान्दीमुख से अपने विषय में कहलवाया है कि:—

"जिन तृन सम किए जानि जग, कठिन जगत जंजाल"

और जिस का यह कथन था "एहि उर हरिरस पूरि गयो। तन में मन में जिय में सब ठां कृष्णहि कृष्ण भयो" तथा "रहे किन एक म्यान असि दोय। जिन नैनन में हरिरस छायो, तिह को भावे कोय" और जिस का हृदय ईश्वरप्रेमरङ्ग में ऐसा रंगा हुआ था कि प्रेम का आवेश होने पर देहानुसन्धान नहीं रहता और उस अवस्था में कितने लोग कितने पदार्थ सामने से उठाकर ले जाते और तनिक भी सुधि नहीं रहती थी और जो चिल्ला २ कर प्रेमोन्मत्त होकर यह कहा करता था :—

"श्री राधा माधव युगल प्रेम का अपने मन को मस्त बना,
पी प्रेम पियाला भर भरकर कुछ इस में का भी देख मज़ा।
इतवार न हो तो देख न ले क्या हरीचन्द का हाल हुआ,
पै प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस में का भी देख मज़ा।"

वह निन्दनीय अभिप्राय से बाराङ्गनाओं का क्यों सहवास करेगा? बारविलासिनीगण भी प्रायः उच्चाशय हो इन का सहवास करती थीं। तभी तो इन के स्वर्गवास पर "हुसना ने लिखा था"।

कौन अब पुस्तक छपाय पढ़वैहै हाय राग रागिनी की रीत भाषत निते गयो। कोउ ना दिखात नेक हिन्दु में समझदार जेसी "हरिचन्द" केर किरती छिते गयो॥ प्रेम के प्रवाह में वहनहार आछो आज काल ग्राह तीखै दन्त, धोखै धरि ले गयो। कैसे नैन लखव सुश्याम घुँघुरारे बार, हाय "नागरी" के नाह छाड़ि कै किते गयो॥

यों तो इन के अत्यन्त उत्तम कार्य्यों का भी बहुत से लोग उलटा भाव निकाल कर इन की निन्दा किया करते थे और इसी से इन्हों ने प्रेमयोगिनी में सूत्रधार के मुख से कहलवाया भी कि:—

"क्या सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम बन्धु, पिता, मित्र, पुत्र सब भावनाओं से भावित प्रेम की एक मात्र मूर्ति सौजन्य का एक मात्र पात्र, भारत का एक मात्र हित, हिन्दी का एक मात्र जनक, भाषा नाटकों का एक मात्र जीवनदाता, हरिश्चन्द्रही दुखी हों? हा सज्जनशिरोमणे! कुछ चिन्ता नहीं, तेरा तो बाना है कि कितना भी दुःख हो उसे सुख ही मानना; लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तक का परित्याग कर दिया है और जगत से विपरीत गति चल कर प्रेम की टकसाल खड़ी की है। क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे आ कर अपने अङ्क में रख कर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू संसारी वैभव से सुचित नहीं, तुझे इस से क्या? प्रेमी लोग जो तेरे हैं और तू जिन्हें सर्वस्व है वे जब जहां उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरे रहन सहन को अपनी जीवन-पद्धति समझेंगे। ( नेत्रों से आंसू गिरते हैं ) मित्र! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो। तुम्हें इन की निन्दा से क्या? स्मरण रखो, ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोक वहिष्कृत होने पर भी इन के सिर पर पैर रख के विहार करोगे। क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—'कहैंगे सबै ही नैन नीर भर भर पाछे प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जायगी"। मैं जानता हूं कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है।"

इन की यह भविष्यवाणी बहुत ही ठीक हुई। इन के परलोकगमन के उपरान्त इन के वियोग से इन के प्रबल शत्रुओं ने भी नेत्रों से अश्रुधारा प्रवर्षण की थी। यद्यपि संसार के बहुत ही कम लोग विशेषतः लक्ष्मीपात्र मनुष्य ऐसे दोषों से बचे होंगे तथापि इन के इस आचरण की ओर लोगों की दृष्टि अधिकतर जाती है क्योंकि सुख्यात पुरुषों का कोई दुर्व्यसन क्यों न हो, अधिकतर प्रकाशमान हो जाता है। विलायती कवि "काउपर" का कथन है कि सुप्रसिद्ध लोगों में कोई अवगुण भी विशेष देदीप्यमान होने ही के लिये होता है" और तिस पर हरिश्चन्द्र तो भला बुरा जो कुछ करते थे प्रत्यक्ष रूप से करते थे। ऊपर सुचरित्र सदाचार, भीतर [illegible] नहीं था कि किसी गुणागुण का प्रकाश [illegible] उधर न जाय। इसी से इन के इस व्यसन को लोग [illegible] तथा कई स्थानों में इस

से भी कई आदमी पूछते थे कि इन की जीवनी में इन के इस दुर्व्यसन का हाल लिखा जायगा वा नहीं। और कदाचित् इसी के भय से इन की जीवनी लिखने को कितनों की लेखनी नहीं उठती है। लोगों का यह संकोच और यह हिचक इन की जीवनी लिखने में कितना उचित है हम इस की समालोचना यहां नहीं करेंगे किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि यह विषय संकोच का कारण नहीं होना चाहता था क्योंकि इन का अपना आचरण जो हो, परन्तु यह निज वाक्यद्वारा औरों को इस मार्ग से निवृत्त हो रहने के लिए सर्वदा उपदेश करते आए हैं। चाहे कोई कुछ कहे, परन्तु हम को यह कहने का साहस होता है कि यह लम्पट तथा व्यभिचारी कदापि नहीं कहे जा सकते हैं। निज वल्लभा के साथ भी सदा प्रीति रीति रखते थे जो विषयी लोगों की प्रथा के विरुद्ध है, और इन की स्त्री तो इन्हें देव ही स्वरूप मानती थीं। इस के सिवाय यदि यह घृणा योग्य दुराचारी होते तो श्री १०८ बावा सुमेर सिंह साहिब साहिबज़ादे श्री हरिमन्दिर पटना के महंथ जो एक योग्य पुरुष थे यह कैसे कहते कि "महा खेद का विषय तो यह है कि हरिश्चन्द्र अल्प वयस ही में स्वर्ग सिधारे, यदि वह कुछ काल और जीवित रहते तो जो लोग काशी जाते पहिले उन का दर्शन कर के और किसी का दर्शन करते।" और इन के स्वर्गारोहण होने पर लोग ऐसा कैसे कहते कि "काशी में जहां और बड़े २ तीर्थ हैं वहां तू भी एक तीर्थ स्वरूप ही था। काशी जी में जाने पर और तीर्थ पीछे स्मरण होते हैं तू पहिले मन में स्थान कर लेता था" और यह भी कैसे कहते कि "हा! वैष्णव धर्म्म की ध्वजा टूट गई"। क्या किसी विषयी वा दुराचारी के देहान्त से धर्म्म की ध्वजा टूटती है वा किसी परम धार्मिक पुरुष के? और इन के कलंक का धब्बा मिटाने को सब से अधिक बात तो यह है कि श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है "कोटि २ मुनि यतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं॥" और यहां हरिश्चन्द्र ने राम ही कृष्ण को पुकारते शरीर त्याग किया जैसा कि "चन्द्रास्त" परिच्छेद में विदित होगा। अब आप इन्हें क्या कहिएगा? एक भक्त मानिएगा वा लम्पट कहियेगा? जो इच्छा हो लोग कहें, परन्तु यदि इन के उपदेशों को सर्वदा स्मरण रखेंगे तो इस पन्थ में पग नहीं धरेंगे।

---

# पञ्चविंश परिच्छेद ।

चन्द्रास्त ।

जो लेखनी बाबू साहिब के उज्ज्वल गुण वर्णन करने में अब तक उज्ज्वल काग़ज़ के मैदान में सहर्ष धावमाना थी, विशद यश की पताका फहराने को दण्ड के समान सिर उठाये हुए थी, सुकीर्त्तिकीर्त्तन में किञ्चित् थकित नहीं होती थी, देशानुराग, भाषानुराग, ईश्वरानुराग एवं राज्यानुराग, सर्व साधारण को अवगत कराने के लिए यत्नवती थी, अब वही लेखनी मन्दगति धारण कर रही है। चन्द्रास्त शीर्ष देखते ही इसे यह नहीं सूझता कि कौन सी राह अवलम्बन करे। चन्द्रास्त नहीं, हरि-चन्द्रास्त। एकं के अस्त से तो जगत अन्धकारमय हो जाता है, जहां दोनों अस्त हों वहां का क्या ठिकाना! लेखनी अब अश्रुधारा, नहीं २, गाढ़े श्याम रंग की रुधिरधारा कलेजे से बहाना चाहती है। धीरे २ स्वर से अवकाश मांग रही है। इस का कलेजा फटा जाता है, पैर टूटा जाता है, सिर घूम रहा है, ओठ सूखे जाते हैं, बारम्बार मुंह भिंगो रही है। चल चल कर शिथिल हो जाती है। इस घटना के वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं दिखलाती। जब बरबस जड़ लेखनी की यह गति है तो इस परिच्छेद के लिखने तथा पढ़नेवालों की क्या दशा होगी? परन्तु पाठकवृन्द! संसार की यही रीति है "जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना" संसार में कोई वस्तु चिरस्थायी नहीं है। खेद तो उस के लिए होता है जो संसार में आ कर व्यर्थ जीवन व्यतीत करते वा निज स्वार्थसाधन ही में जन्म गंवाते हैं। यह तो यश कमाने आए थे और पूरा यश कमा कर निज प्रेमदेव के निकट जा उपस्थित हुए। जिस कार्य्यसाधन के लिए भेजे गए थे, उस कार्य्य को सम्पन्न कर बिदा हो गए। पाठको! धैर्य्यपूर्वक इसे भी अवलोकन कीजिए। इन की लोकयात्रा की कथा सुन चुके, अब सावधानतापूर्वक इन की परलोकयात्रा की भी कहानी सुनिए। जैसे यह मृत्यु को सदैव याद रखते एवं ईश्वरभक्ति में डूबे रहते हुए जगत का हित साधन करते रहे, आप लोग भी इन के सदाचारों का अनुकरण कर के अपना लोक परलोक दोनों सुधारिए।

देशयात्रा के परिच्छेद में यह बात कही जा चुकी है, कि १८८२ ई० में

यह भारतगौरव श्री मेवाड़नरेश महाराणा सज्जन सिंह से मिलने गए थे श्रीमान् के यह बड़े ही स्नेहपात्र थे और इन के देखने को बहुत दिनों से श्रीमान् इच्छुक थे। श्रीमान् के आग्रह से उन से मिलने के लिए तथा श्रीनाथद्वारा के दर्शन की लालसा से मेवाड़ सिधारे थे। वहां पर इन का जैसा कुछ सम्मान हुआ वह पूर्व ही वर्णित हो चुका है। श्रीमन्महाराणा साहिब से मिल कर जाड़े के दिनों में लौटे तो आते समय रास्ते में बीमार पड़े। बनारस पहुंचने के साथ ही श्वास रोग से पीड़ित हुए। श्वास काश और ज्वर तीनों ने आक्रमण किया, जीवनाशा जाती रही। इन तीनों का प्रबल कोप तो था ही इसी बीच में एक दिन बड़े जोर से विसूचिका हो गई। पिंडुरी चढ़ने लगी, हाथ पैर ऐंठने लगे। बड़ी चण की बात आ गई। यह दशा देख सबों का मुंह सूखने लगा, कलेजा कांपने लगा। कनिष्ठ भ्राता तथा बाबू राधाकृष्ण जी अहर्निश यथोचित सेवा में तत्पर रहे। श्रीभगवती ने कृपा की। विसूचिका ने जान छोड़ दी। इन के द्वारा ईश्वर को अभी कुछ जगत् का उपकार कराना शेष रह गया था, इन का मिशन अभी पूरा नहीं हुआ था अर्थात् जिस काम के लिए संसार में आए थे वह कदाचित् अभी सम्पन्न नहीं हुआ था। इन के रोग-विमुक्त होने पर कितने लोगों ने आनन्दोत्सव किया, कितने लोगों ने कई नगरों में देवपूजन किया। रोग पूरा निवृत्त भी नहीं हुआ था कि लिखने पढ़ने का काम फिर आरम्भ हुआ।

स्वस्थ होने पर इन्हों ने १८८३ ई० के अन्त में "नाटक" नामक ग्रन्थ की रचना की और उसे प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ को भी इन्हों ने ईश्वर ही को समर्पण किया है और इस में लिखा है :—

"नाथ! आज एक सप्ताह हुआ कि मेरे इस मनुष्यजीवन का अन्तिम अंक हो चुकता, किन्तु न जाने क्या सोच कर और किस पर अनुग्रह कर के उस की आज्ञा नहीं हुई। नहीं तो यह ग्रन्थ प्रकाश भी नहीं होने पाता। यह भी आप ही का खेल है कि आज इस के प्रकाश का दिन आया। जब प्रकाश होता है तो समर्पण भी होना अवश्य हुआ। अतएव

'त्वदीयं वस्तु गोविंद! तुभ्यमेव समर्पये'

यद्यपि संसार के कुरोग से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही, किन्तु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त, तुम्हारा

हरिश्चन्द्र"

यद्यपि इस रोग से इन की जान बची, परन्तु शारीरिक बल जाता रहा। कदाचित् इन का स्वास्थ्य फिर पूर्ववत् नहीं हुआ। कभी स्वस्थ कभी अस्वस्थ रहने लगे। परन्तु शरीर की कुछ भी चिन्ता न कर के अविरल लिखने पढ़ने के काम में पुन: प्रवृत्त हुए। इसी प्रकार कुछ काल व्यतीत हुआ। मरने के एक वर्ष पहिले श्वास और खांसी का पुन: वेग हुआ। लोग दमा के धोखे में रहे उसी की बराबर औषधि होती रही, परन्तु वास्तव में इन्हें चयी की बीमारी हो गई थी। पान अधिक खाते थे इस से कफ़ के साथ रुधिर का पता नहीं मिलता था। बीमारी कुछ और, दवा कुछ और होती गई। नित्य प्रति शरीर चीण होने लगा। चलने फिरने की शक्ति घटने लगी। कहीं जाते तो पालकी पर जाते। जिस ने बाल्यावस्था ही से लेखनी हाथ में ली, मस्तिष्क बराबर प्रचालन कर के नए २ ढंग की पुस्तकों की रचना की, अल्पही काल में ग्रंथों को लिखा और छपवा कर भाषाभंडार की शोभा बढ़ाई, भला उस का शारिरिक बल कैसे और कब तक बना रहे? मानसिक परिश्रम एवं नाना प्रकार की चिन्ता—देशचिन्ता, भेषचिन्ता, परचिन्ता, निजचिन्ता इत्यादि-ने अलच्यभाव से इन के बल को धीरे २ घटाते २ इन को इस अवस्था को पहुंचा दिया। धर्म का ध्यान तो सर्वदा ही रहता था, भगवद्‌ में अनन्य प्रेम सदैव बना ही था, इधर शांतरस की ओर मन और भी अधिक झुका। अन्तकाल के कुछ दिन पूर्व जितनी कविताएं बनीं उन में तो इन्हों ने मानो संसार से कूंच का सचमुच डंका बजादिया। इन की बनाई अन्तिम कविता यही है:—

"डंका कूच का बज रहा मुसाफ़िर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पन्थी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलनाही निहचै है तब ले किन माल लदाई।
हरीचंद हरिपद बिनु नहिं तो रहि जैहौ मुंह बाई॥"

इसी समय यह नित्यप्रति कवि पद्माकर रचित यह कविता विह्वल होकर अति प्रेमस्वर से पढ़ते और घंटों अश्रुधारा बहाते रहते थे।

"व्याधहू सों बिहद असाध हौं अजामिल सों, ग्राह ते गुनाही कहो तिन में गिनाओगे। स्यौरी हौं न गिद्ध हौं न

केवट काहू को ज्यों, न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे ॥ राम सों कहत पदुमाकर पुकार तुम, मेरे महापापन को पारहु न पाओगे । झूठो ही कलङ्क सुनि सीता ऐसी सती तजी, ( नाथ ! ) सांचोहूं कलंकी ताको कैसे अपनाओगे ॥

१८८४ ई० समाप्त हुआ । २ जनवरी १८८५ ई० में अकस्मात् भारी ज्वर चढ़ा । ८ पहर तक अपना बल दिखा कर विलग हुआ । फिर पसुली में वेदना आरम्भ हुई । डाक्टरों को इन के जीवन का संशय हो गया । परन्तु वह पीड़ा भी दूर हुई । तीसरे दिन बड़े जोर से खांसी आरम्भ हुई । कफ़ बहुत आने लगा और कफ़ में रुधिर देखा गया । कष्ट बहुत हुआ, परन्तु उस से भी जान बची । ६ ठीं जनवरी को सबेरे बहुत अच्छे थे । भीतर से दासी हाल पूछने आई, उस से हंस कर कहा कि " हमारे जीवननाटक का प्रोग्राम नित नया २ छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी है । देखें लास्टनाइट कब होती है । "

उसी दिन दो पहर को दस्त में काला मल गिरा । उसी समय से कुछ श्वास बढ़ा, और उसी समय से इन्हों ने संसार से चित्त फेर लिया । घर का कोई जब निकट जाता तो मुंह फेर लेते ।

दो बजे दिन को निज भ्रातृपुत्र श्री कृष्णचन्द्र को पास बुला कर कहा कि अच्छा वस्त्र पहिन आओ । वह कपड़ा पहिन कर गए । कहा कि इस से भी उत्तम वस्त्र पहिन आओ । वे दूसरा सुन्दर कपड़ा पहिन कर निकट गए । स्वयं आरामकुरसी पर लेटे कृष्णचन्द्र को गोद में बिठाए कुछ अंगूर खिलाया । फिर दोनों हाथ उन के माथे पर रख कर कुछ काल पर्य्यन्त ध्यानावस्थित रहे फिर उन को विदा कर, कहा "जाओ खेलो" । उस के पश्चात् संसार की माया से कुछ सम्बन्ध नहीं रक्खा । श्वास बढ़ता गया ; बेचैनी अधिक होने लगी । डाक्टर वैद्य अनेक उपस्थित थे और औषधि भी परामर्श से करते जाते थे, परन्तु " मरज़ बढ़ता गया ज्यों २ दवा की " । प्रतिक्षण में बाबू साहिब डाक्टरों से नींद आने एवं कफ़ घटाने की औषधि की इच्छा करने लगे । धीरे २ रात हो गई । नौ बजे के समय इन के स्वपरिवार को विपत्तिसागर में डुबोने वाला, स्नेहियों का हृदय बिदारनेवाला, नागरी को अभागिनी बनानेवाला, भारतमाता का एक सपूत पूत हरनेवाला, निर्दय कराल काल आ पहुंचा ।

एकाएक पुकार उठे "श्री कृष्ण ! राधा कृष्ण ! हे राम ! आते हैं मुंह दिखलाओ !" बस इस के साथ ही कंठ बन्द होने लगा। कुछ दोहा कहा, कंठावरोध के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं दिया। केवल इतना ही सुनने में आया "श्रीकृष्ण........सहित स्वामिनि"। बस गरदन झुक गई। इस समय हमारे मित्र पण्डित रामशंकर व्यास जी यह भयङ्कर घटना देखने को बाबू साहिब के पास ही उपस्थित थे। मानो अन्तकाल तक मित्रता का पन निबाहा।

पौने दस बजे के समय बाबू साहिब के जीवनलीला का अन्तिम पटाक्षेप हुआ। नित्य जीवन का नित्यनव अभिनय दिखला कर आज इस नाट्यशाला से यह बिदा हो गए। इस वियोगात्मक दृश्य के अनन्तर चतुर्दिक अन्धकार छा गया। जब हरिश्चन्द्र ही अस्त हो गए तब अन्धकार तथा हाहाकार के अतिरिक्त और क्या होना था? भारतवर्ष में चारो ओर दुख के बादल घिर गए। लोग कोइल से कुहुकने लगे। सब ओर अश्रुधारा की झरी लग गई। कितने लोग इस बिज्जुपात से व्याकुल तरफड़ाने लगे, कितने ही विपत्ति के कीचड़ में धसने लगे, कितने अथाह शोकधारा में बहने लगे। इन के आत्मीयों की व्यथा का तो पारवार ही न था।

पेशावर से कलकत्ते तक तथा बम्बई से नैपाल तक सैकड़ों शोकसमाज हुए। काशी के गली कूचों में भद्र लोगों को कौन कहे कुंजड़िन कहारिन भी पुक्का फाड़ २ कर रोती थीं। पण्डितगण यह कह कर रोते थे कि "अब क्या वैश्यकुल में फिर भी कोई ऐसा जन्म लेगा जिस से हम लोग धर्मव्यवस्थाओं पर सम्मति लेने जायंगे।" इन के सुहृद भ्राता के पास अन्यान्य स्थान निवासियों के भेजे हुए शोकसूचक तार तथा पत्रों का ढेर लग गया। अंगरेज़ी, उर्दू, गुजराती, बंगला, महाराष्ट्री सभी भाषा के पत्रों ने इन के लिए आन्तरिक शोक प्रकाश किया। हिन्दी पत्रों की कहानी क्या? इन के तो यह जीवनमूर ही थे। इन में तो एक न एक प्रकार से सभी के यह जन्मदाता वा पोषणकर्त्ता ही थे। महीनों तक कितने हिन्दीपत्र शोकचिन्ह धारण किए रहे। कितनी कविताओं की रचना हुई। कितने ही चित्र खींचे गए। कितने साधारण लोगों ने शोकपत्र छपवा कर वितरण किया। भारतवर्ष के बहुत से महान पुरुष स्वर्गधाम सिधारे परन्तु ऐसा हार्दिक शोकप्रकाश कम देखने में आया। अब लेखनी स्वयं अश्रुपूर्ण हो रही है, इस

व्यथा की कथा कहां तक लिखें। मझौलीनरेश श्रीमान् लाल खड्गबहादुर मल्ल ने बहुत ही ठीक कहा है:—

"जहां में हाय अभी धूम यों मचा के चले।
जो फ़ितना सोता था नाहक़ उसे जगा के चले॥
ये जान लीजो न भूलेंगे हम क़ेयामत तक।
तुम्हीं थे ऐसे कि दिल से हमें भुला के चले॥
बिचारी हिंदी का क्या हाल होवेगा अफ़सोस।
बताओ इस का ठिकाना भी कुछ लगा के चले॥
नसीब किस को हुआ था कभी बनारस में।
जो चार दिन का तमाशा हमें दिखा के चले॥
"रसा" की गरचे रसाई हुई है जन्नत में।
हज़ारों ही को मगर दर्द में रुला के चले॥"

सच है कि इन के स्वर्गवास के दुख से सबों ने अश्रुवर्षण किया। औरों की कौन कहै राजा शिवप्रसाद भी, जिन से बराबर चोट की चल जाया करती थी, इन के घर आ कर यही कह कर रोते थे "हा हमारा मोक़ाबिला करनेवाला उठ गया"। किसी ने बहुत यथार्थ कहा है "दुश्मन दाना बिह दोस्त नादां बेह" अर्थात्-मूर्ख मित्र ते होत है उत्तम, शत्रु गुनज्ञ।

३४ वर्ष ३ महीना २७ दिन १७ घण्टा ७ मिनिट ४८ सेकेंड की अवस्था में इन का स्वर्गवास हुआ और काशी चरणपादुका पर इन की दाहक्रिया हुई। पश्चात् इन के सुहृद बाबू गोकुलचन्द्र ने पण्डितों की सेवा में निम्नलिखित आमन्त्रणपत्र भेज कर माघ पूर्णिमा सं० १९४१ को पण्डितों की सभा कराई एवं श्री भारतभूषण भारतेन्दु की आत्मा के हितार्थ दान उपदान किए।

"श्री कृष्णः शरणम् मम।

श्री पण्डितवर!

कालाऽऽलयो विष्णुपदाश्रयश्च
सुधासगाप्लावितदिग्विभागः।

श्रीमान् 'हरिश्चन्द्र' इति प्रसिद्धो,
यो भारते ऽभूत्किल भारतेन्दुः ॥ १ ॥
तदीयसख्येन महानुभावाः,
यशःप्रकाशैः परिपूरिताशाः ।
दयादृशा सूरिवरा भवन्तः,
पुनन्तु दत्त्वा ननु दर्शनं नः ॥ २ ॥

आप का सेवक
गोकुलचन्द"

इन की स्वर्गयात्रा के अनन्तर इन के स्मारकचिन्ह स्थापन की चर्चा होने लगी। अलीगढ़ तथा कानपुर में "हरिश्चन्द्र पुस्तकालय" स्थापित किए गए। काशी में जो इन का संस्थापित स्कूल था और जिस का विशेष वर्णन ४ परिच्छेद में किया गया है उस में पारितोषिक वितरण के समय राजा शिवप्रसाद ने यह प्रस्ताव किया कि "अब से यह स्कूल अपने संस्थापक के नाम से विख्यात किया जाय।" सभापति मि० आडम्स साहिब कलक्टर ने उस का अनुमोदन किया और तब से वह "हरिश्चन्द्र एडेड स्कूल" के नाम से प्रसिद्ध है। बाबू साहिब के सामने वह केवल "प्राइमरी स्कूल" था और पीछे धीरे २ हाई स्कूल हो गया था परन्तु खेद का विषय है कि द्रव्याभाव के कारण वह फिर भी मिडिल तक कर दिया गया है। लखनऊ निवासी कौशलप्रसाद वर्मा ने १८८५—१९८५ तक एक शताब्दी की यन्त्री छापकर वितरित की। उस के आदि और अन्त में यह दोहे लिखे हुए थे।

"श्री भारतेन्दु शताब्दी।

हरि सभ दुख हरिचन्द इव, बरसत अमृत अनन्द।
भारतभुव हित अवतरित, नमो देव हरिचन्द ॥
किञ्चित निजगुण किरन सों, हृदय अकाश प्रकाशि।
प्रिय हरिशशि मम हितुन कर, देहु तापतम नाशि ॥

अन्त में लिखा है :—

इम नित चित सों चहहिं यह, शतजीव प्रिय मित्र।
लहहु बड़ाई जगत बसि, गहहु उदार चरित्र॥
जीवन कर विश्वास नहिं, बहुत इतो परमान।
वाहि जान नहि दीजिये , याते चाहहु सुजान॥
निजहित कुलहित देशहित, कर तन मन धन लाइ।
नरतन अलभ अमोघ धन, छन छन छीजत जाइ॥
विविध कला कौशल सिखहु, भजहु कोशलाधीश।
कौशलपरसादहि कबहुं, मति बिसरेहु बुध ईश॥"

उदयपुर में "हरिश्चन्द्रार्य्यविद्यालय" संस्थापित हुआ जो अद्यावधि वर्तमान है और जिस के चिरस्थायी होने की भी सम्भावना है क्योंकि उस में कुछ द्रव्य एकत्रित हो गया है। उदयपुर में कुछ दिन तक प्रति वर्ष इन की मृत्यु तिथि को "हरिश्चन्द्र-शोकसभा" हुआ करती थी जिस में इन के गुण वर्णन के हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में लेख वा कविता पढ़ी जाती थी।

"हरिश्चन्द्र शोकावली" प्रकाशित हुई जो किसी समय पाठकों के अवलोकनार्थ भेंट की जायगी और जिस के देखने से ज्ञात होगा कि लोग इन से कितना स्नेह रखते थे। कविवर श्रीधर पाठक ने "हरिश्चन्द्राष्टक" की रचना की।

बांकीपुर "खड्गविलास" यन्त्रालय से "हरिश्चन्द्रकला" नाम का मासिकपत्र अब तक प्रकाशित होता है जिस में भारतेन्दु विरचित वा संग्रहीत ग्रन्थ तथा लेखादि प्रकाशित हुआ करते हैं, और जो शेष रह गए हैं वे सब भी छापे जायंगे।

बाबू साहिब ने अपने जीवनकाल ही में स्वरचित ग्रन्थों का मुद्रण स्वत्व ( Copy right ) खड्गविलास यन्त्रालय के स्वामी हमारे सुयोग्य मित्र हिन्दी-रसिक एवं हिन्दीभाषा के उद्धारक बाबू रामदीन सिंह जी को दे गए थे। भारतेन्दु को विश्वास था कि उन के अन्यान्य मित्रों में यही उन की कीर्ति-ध्वजा के दंड होने योग्य थे और उन के अन्तर्हित होने पर यही उन की कीर्ति के प्रसारण में यत्नवान् होंगे। उन की आशा कितनी पूरी हुई यह दोनों महानुभावों की आत्मा जानती होगी और जगत् को विदित है। हमारे लिखने की आवश्यकता नहीं। एक बात और भी थी कि बाबू साहिब ने भारतेन्दु जी

के साथ कुछ उपकार भी किया था। अतएव भारतेन्दु जी जो किसी का किसी प्रकार का ऋण माथे लेकर इस संसार से विदा होना नहीं चाहते थे अपने ग्रन्थों का सर्वाधिकार बाबू रामदीन सिंह को दे कर इन के उपकार से उऋण हो गए।

इस मुद्रणस्वत्व के विषय में भारतजीवन के सुयोग्य सम्पादक बाबू रामकृष्ण जी से तथा बाबू रामदीन सिंह जी से कुछ झगड़ा भी उपस्थित हो गया था, यहां तक कि लोगों को अदालत देखने की बारी आगई थी। बांकीपुर जजी कचहरी में अभियोग उपस्थित हुआ था। अन्त में बाबू रामदीन सिंह की जीत हुई और तभी से "हरिश्चन्द्रकला" का उदय हुआ जो आज तक भारतेन्दु के प्रेमियों को आनन्द दे रही है। इस में हरिश्चन्द्र के लिखे तथा संग्रह किए ग्रन्थ एवं लेखादि प्रकाशित होने से भारतेन्दु जी के मानवर्द्धनार्थ आज भी प्रान्तिक शिक्षाविभाग में इस की १०० प्रतियां प्रति वर्ष क्रय की जाती हैं।

कुछ काल तक "जमोर" ज़िला गया से "हरिश्चन्द्रकौमुदी" नामक एक मासिकपत्र भी प्रकाशित हुआ करता था।

"मित्रविलास" पत्र के सुयोग्य सम्पादक पंडित गोपीनाथ लाहौरी के प्रस्तावानुसार भारतेन्दु के नाम का संवत् भी चलाया गया है जिस का प्रयोग हिन्दी-भाषा-रसिक जन प्रायः किया करते हैं। इस के विषय में "होमवर्ड्स मेल" (Homewards Mail) में एक अङ्गरेज़ ने लिखा था "कि कालांतर में यह विक्रमादित्य के समान एक संवत् के संस्थापन के कारण माने जायंगे"। परन्तु हम को यह सखेद कहना पड़ता है कि इस संवत् के प्रयोग में भी जिस में किसी के गांठ का एक पैसा खर्च नहीं होता शिथिलता देखी जाती है। हा कृतघ्न रसिकगण! जिस ने हिन्दी के पुनर्जीवित करने में अपना तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण कर दिया और अपने पर सर्व प्रकार का दुख उठाया, उस के स्मरणार्थ तुम लोगों से इतना भी नहीं हो सकता?

इस में सन्देह नहीं कि इन्हों ने निज स्मारक चिन्ह ऐसा छोड़ा है कि संसार में जब तक हरिश्चन्द्र देदीप्यमान है हरिश्चन्द्र की कीर्ति भी जगमगाती रहेगी। जैसा कि श्रीधरपाठकजी ने लिखा है:—

"जबलों भारत भूमि मध्य आरज-कुल-बासा।
जबलों आरज धर्म्म मांहि आरज-बिश्वासा॥

जबलों गुन-आगरी नागरी आरज-बानी।
जबलों आरज-बानी के आरज अभिमानी॥
तबलों यह तुम्हरो नाम थिर चिरजीवी रहिहै अटल।
नित चन्दसूर संग सुमिरिहैं हरिचन्दहुं सज्जन सकल॥"

तथापि इन के इष्ट मित्रों का भी अवश्य कर्त्तव्य है कि कुछ व्यय करके इन का कोई चिरस्थायी स्मारकचिन्ह निर्माण करें। क्या पश्चिमोत्तर प्रदेश वा भारतवर्ष में कोई भी ऐसा माई का लाल नहीं है जो ऐसे परम भाषाभक्त, देशभक्त, राजभक्त की कोई स्मारक निर्माण कर के इस ऋण से देश का उद्धार करे? ऐसे धनाढ्य अग्रवाल जाति में क्या कोई भी ऐसा वीर पुरुष नहीं है जो भारतभूषण, अग्रकुलरत्न भारतेन्दु का नाम सर्व साधारण पर चिरविदित रखने के निमित्त किसी नगर में कोई स्मारकचिन्ह संस्थापित करावे? यदि कोई सज्जन इस की ओर ध्यान दे तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

हरिश्चन्द्र स्वर्ग सिधारे, परन्तु चार बात की लालसा इन के मन में लगी ही रही। यह प्रायः कहाकरते थे कि "अभीतक मेरे पास पूर्ववत बहुत धन होता तो मैं चार काम करता -(१) श्रीठाकुरजी को बगीचे में पधरा कर धूम धाम से षट्ऋतु का मनोरथ करता (२) विलायत, फ्रांस और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की यूनिवर्सिटी स्थापन करता, और (४) एक शिल्पकला का पश्चिमोत्तर देश में कालेज बनाता"

---

# षड्विंश परिच्छेद ।

## वंशज ।

जैसे आदि में भारतेन्दु जी के पूर्वजों का संक्षिप्त वृत्तान्त वर्णित हुआ है वैसे ही यहां पर इन के वंशजों का भी कुछ हाल वर्णन किया जाता है। बाबू साहिब को सन्तति तो तीन हुई थीं—दो पुत्र और एक कन्या । दोनों पुत्र शैशवावस्थाही में परलोक सिधारे। परन्तु कन्या का विवाह जिन का नाम विद्यावती बाबू साहिब ने मई १८८० ई० में काशी, महल्ला बूलानाला, के बलदेवदास सोनावाले से अपने ही समय में किया था। उस कन्या के बाबू ब्रजरमणदास ब्रजजीवनदास, रेवतीरमणदास, मोहनदास, तथा ब्रजरत्नदास ये पांचपुत्र हैं। बड़े महाजनी का कारबार करते हैं और शेष अभी पढ़ते हैं। ईश्वर करें ये लोग निज मातामह के समान विद्यानुरागिता, देशहितैषितादि सद्‌गुणों से भूषित हो कर उन का नाम और भी उज्ज्वल करें।

बाबू गोकुलचन्द्र बाबू साहिब के परम प्रिय सहोदर थे। वह भी विद्यानुरागी थे। स्फुट कविता बहुत करते थे। प्रद्युम्नविजय लिखा था। कपालकुंडला का भी वङ्गभाषा से अनुवाद करते थे, परन्तु वह अधूरा ही रह गया। उन का हृदय भी अति कोमल था। १८९० ई० में जब हम परम पूज्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास के साथ लाहौर जा रहे थे तो काशी में व्यासजी के साथ उन से मिले थे। उस समय कोई प्रसंग आने पर श्री जानकीजी के विषय में फ़ारसी कवि फ़ैज़ी रचित यह शेर "तनश रा पैरहन उरियां न दीदः। चो जां अन्दर तनस्त तन जां न दीदः॥" जो उन्हों ने कहा था वह मुझे अब तक स्मरण है। उन का भी परलोक हो गया, परन्तु हर्ष की बात है कि उन के दो पुत्र बाबू कृष्णचन्द्र तथा बाबू ब्रजचन्द्र वर्त्तमान हैं। ये लोग यदि सोचें कि जिस प्रसिद्ध कुल के ये लोग वंशधर हैं उस में एक ऐसे विद्वान पुरुषरत्न प्रगट हुए थे कि जिन के जीवनचरित्र जानने और पढ़ने के लिए भारतवासी मात्र आज व्यग्र हो रहे हैं, जिन की लेखनी द्वारा प्रवाहित काव्यामृत के पान करने के हेतु आज लोग अत्यन्त उत्सुक रहते हैं और जिन के गुणों को स्मरण करके आज भी लोग आंसू बहाया करते हैं, तो ये लोग कुल-गौरव-रक्षार्थ बहुत कुछ कर सकते हैं।

बाबू कृष्णचन्द्र का जन्म बाबू साहिब के जीवितकाल ही में हुआ था और वह इन को अत्यन्त प्यार भी करते थे। आनन्द का विषय है कि इन के हृदय में हिन्दीभाषा का कुछ अनुराग है। इन्हों ने उत्तर रामचरित्र तथा वाल्मीकीय सुन्दरकांड का भाषानुवाद किया है। आशा है कि यह सब कामों के साथ साथ विद्या की ओर भी अवश्य ध्यान रख कर भारतेन्दु की आत्मा को सुखी करेंगे। छोटे ब्रजचन्द्र तो अभी स्कूल में पढ़ते हैं। इन का जन्म बाबू साहिब के स्वर्गवास होने के पीछे हुआ था।

इन दोनों भ्रातृपुत्रों में से ज्येष्ठ का विवाह गोरखपुर के प्रसिद्ध रईस बाबू मथुरादास की कन्या से और कनिष्ठ का बनारस सेंट्रल हिन्दूकालेज के कार्य्याध्यक्ष सुप्रसिद्ध बाबू भगवान दास एम० ए० की कन्या से हुआ है। बड़े भाई को दो पुत्र भी हुए हैं।

बाबू गोकुलचन्द्र को सरस्वती तथा कृष्णावती दो कन्या भी हैं। सरस्वती का विवाह काशी के रईस राजा पट्टनीमल के प्रपौत्र के पुत्र रायसुन्दरदास से औ कृष्णावती का साहु गोपालदास के वंशज बाबू बीसूजी के लड़के से हुआ है। परन्तु दोनों में से किसी को कोई सन्तान नहीं है।

—०—

# सप्तविंश परिच्छेद ।

## समीक्षा ।

हरिश्चन्द्र ने अपने विषय में यों कहा है :—

"सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं कविन के मीत चित हित गुनगानी के। सीधन सों सीधे महा बांके हम बांकन सों हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के॥ चाहिबे की चाह काहू को न परवाह नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के। सर्बस रसिक के सुदासदास प्रेमिन के सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के॥"

इन के चरित्र की आलोचना करने से ये सब बातें इन में निस्सन्देह पाई जाती हैं। ये बातें चाहै बुरी हों चाहै भली, परन्तु इन्हीं ने स्पष्ट रूप से अपने स्वभाव का सार इस कवित्त में झलका दिया है।

हम भी इन के गुण अवगुण को पूर्व परिच्छेदों में स्पष्ट वर्णन करते आते हैं जिस को देख कर बहुत से लोग हम पर आक्षेप भी करेंगे और कहेंगे कि केवल इन की सुख्याति के ध्यान से अनेक बातों को प्रकाशित करने के बदले हम को उन पर परदा ही देना चाहता था; परन्तु हमारी क्षुद्र बुद्धि में यह बात नहीं जंचती। ऐसा करने ही से इन के यथार्थ सद्गुणों की कथाएं भी अविश्वासयोग्य हो जातीं, क्योंकि कोई व्यक्ति सर्व-गुण-आगर ही हो, कहीं किसी दोष का लेश भी उस में न हो, सर्वथा जेठ बैसाख के सूर्य की चमक ही हो, सर्वत्र उज्ज्वल धूप ही हो, कहीं श्यामल छाया का नाम तक न हो, यह बात प्रकृति के विरुद्ध है। किसी प्राणी के विषय में ऐसा कहना कब सच माना जा सकता है और कोई अर्थलोलुप कवि ऐसा करे तो करे, परन्तु सत्कवि या किसी चरित्रलेखक को ऐसा करना कब उचित है! उस को तो जो कुछ घटना हो सब ही वर्णन कर देनी चाहिए, चाहे वह गुण हो या दोष। विज्ञजन इसी को उत्तम भी समझते हैं। Oliver Cromwell ने एक बार कहा था "Paint me as I am; if you leave out the scars and wrinkles, I will not pay you a shilling." अर्थात् मैं जैसा हूं वैसा ही मेरा चित्र

खींचो, यदि चत्तों और झुर्रियों (चमड़े के सिकुड़ाहटों) को छोड़ोगे तो मैं एक छदाम भी न दूंगा।

चरित्रलेखक का यह भी कर्तव्य नहीं कि किसी विशेष विषय को सन्दिग्ध कुहासे से आच्छादित ही छोड़ दे कि पाठक उस व्यक्ति के उस कार्य्य का यथार्थ अभिप्राय जानने के लिए उसी अन्धकार में डमाडोल घूमा करें। अतएव बाब साहिब का दो एक दोष का प्रकाश कर देना किसी प्रकार इन के वा पाठक वृन्द के लिए हानिकारक नहीं।

इन के गुणसमूह ऐसे हैं कि उन सबों के आगे ये दोष आप ही विलीन हो कर किसी गिनती में नहीं रह जाते। जो दोष इन में कहे जाते हैं और जिन की कोई २ कभी तीव्र आलोचना भी करते हैं उस से औरों को कुछ हानि नहीं क्योंकि अपने लेख द्वारा इन्हों ने उस प्रकार के दोषों से औरों को सर्वदा बचाने ही की चेष्टा की है। "मन न करदम शुमा हज़र व कुनेद" की बात है। अर्थात् हम ने तो नहीं किया, तुम लोग बचे रहो। और इस के सिवाय इन के वैसे व्यवहार का अभिप्राय भी कुछ और ही था जैसा कि अन्यत्र दिखलाया गया है।

विचारपूर्वक देखने से कतिपय अन्य लोगों में भी बड़े २ प्रबल दोष पाए जाते हैं जिस से औरों का अहित होता है परन्तु वे सब बातें इन में नहीं देखी जातीं। विलायती कवि "पोप" के समान इन का सर अभिमान से भारी नहीं रहता था और न यह किसी के आक्षेप पर क्रोधान्ध हो कर कर्तव्याकर्तव्य-विमूढ़ ही हो जाते थे। हां! इन से जो व्यर्थ टेढ़ी राह चलता था उसे यह भी अवश्य सीधी दिखलाते थे और सर्व साधारण की निन्दा स्तुति पर ध्यान न देकर जगत के हितसाधन में तत्पर रहते और इसी को अपना कर्तव्य जानते थे।

न यह कवि "एडिसन" के समान निज मित्रों की सुकीर्ति में धब्बा लगाने के निमित्त निःसंकोच यत्नवान् हो कर बुरी २ बातें कर बैठते थे। मित्रों के साथ कौन कहे निज अपकारक मनुष्य के साथ भी ऐसा करने का इन्हें कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता था। कौतुकप्रिय तथा रहस्यमय होने के कारण किसी पर कभी २ व्यंग्योक्ति हो जाया करती थी तौभी वह दूषण नहीं कही जा सकती थी किन्तु उस का अभिप्राय उस विशेष व्यक्ति को सुमार्ग पर लाने ही के लिए था। यद्यपि राजा शिवप्रसाद के साथ हिन्दीभाषा के कारण इन से कुछ विरोध हो गया था तथापि इन्हों ने अनेक लोगों के सामने एक बार

स्पष्ट कह दिया था कि " औरों ने जो कुछ समझा हो, परन्तु वास्तव में राजा शिवप्रसाद हिन्दी के स्तंभ स्वरूप हैं"। यह कहनाइन का कुछ अयोग्य न था। हिन्दी भाषा के प्रचार को दोनों ही चाहते थे किन्तु लेखप्रणाली में भिन्नता थी और यही विरोध का मुख्य कारण हुआ। ड्यूक आव अलबनी की मृत्यु पर शोकप्रकाशक सभा वाली घटना के अनन्तर जब लोगों का राजासाहिब से विशेष मन खट्टा हो गया था उस समय भी राजा साहिब से इन का पत्र-व्यवहार नहीं छूटा था और उस समय के एक पत्र से इन की सुहृदता का स्पष्ट परिचय मिलता है।

बाबू साहिब अन्धी लालटेन के सदृश नहीं थे जो रोशनी को सर्वथा अपनी ही राह में रखती है और चतुर्दिक भादों की रात की सी अन्धेरी छाए रहती है। इन का हृदय स्फटिक समान तथा व्यवहार स्वच्छ उज्ज्वल शीशे के सदृश था जिस से चारों ओर ज्योति प्रसारित होती थी कि लोग उस रोशनी के सहारे इधर उधर कुश कंटक बचाते सुपथगमन का सुख उठावें।

सबों से स्नेह भाव, सबों से सादर सम्मिलन। इष्ट मित्र, सर्वसाधारण एवं प्रदेशीय दर्शनाभिलाषियों के घर पर सर्वदा भीड़ रहा करती थी। कैसा ही मुहर्रमी सूरत का मनुष्य क्यों न हो एक बार मिलते ही, एवं इन का सस्नेह रहस्यमय मनोहर वाणी के सुनने ही से खिल उठता था। निज बहुज्ञता के कारण जो मनुष्य जैसा होता और जिस विशेष विषय में जानकारी रखता था उस से उसी सम्बन्ध की बातें करके उस को आनन्दित करते थे। इनकी योग्यता, बहुज्ञता तथा सुख्याति के ध्यान से अनेक दूर देश-निवासियों को प्रायः यह शंका होती थी कि निकट जाने पर दर्शन तथा वार्तालाप का सुख प्राप्त हो सकेगा कि नहीं, परन्तु यह सब से सादर मिलते थे और जिन लोगों को इन से मिलने की बारी आई थी वे सब इन की सौम्य मूर्ति तथा सिष्ट व्यवहार को आजन्म विस्मृत न कर सके। इन का स्नेह किसी विशेष वर्ग के साथ न था। प्रेम करने में यह पात्रापात्र का विचार नहीं रखते थे। भले को तो सब ही प्यार करते हैं। जब कोई अपने को भूल कर मन्द, मूर्ख, दुष्ट, तथा दुःखियों से प्रेम करे तो वह प्रेम अमूल्य है। दुःखियों पर ऐसा प्रेम रखते थे कि उन की दुरवस्था इन्हें व्यग्र कर देती थी। व्यग्रही नहीं होते वरन उस का दुःखमोचन के लिए यथासम्भव यत्न भी करते थे।

इन की मिलनसारी, दयार्द्रचित्तता गुणग्राहकता, आदि शुभ गुण इन की सुख्याति के कारण तो थे ही परन्तु सब से अधिक साहित्यसेवा ही ने देश

विदेश में इन के नाम का डंका बजाया। इन की साहित्यवाटिका के सुगन्ध ही ने अधिकतर इन के यश को सर्वत्र फैलाया। इस वाटिका के सुगन्धमय भांति २ के फूलों ही ने यह गुल खिलाया कि स्वदेशीय इन्हें " भारतभूषण भारतेन्दु " और विदेशीय "पोएट लारिएट" ( Poet Laureate ) कहने लगे। बाल्यावस्था ही में कविता की ओर इन के चित्त का झुकाव हो चला था और उसी समय से निज रचना से लोगों का चित्त मोहित करने लगे थे। १२ वर्ष की अवस्था में इन का लिखा हुआ प्रथम ग्रन्थ प्रकाशित हो कर सर्व साधारण को हस्तगत हुआ जो "विद्यासुन्दर" नाटक था।

फिर तो धीरे २ इन की लेखनी ने विलक्षण प्रसवनशक्ति प्रदर्शित की। १८—२० नाटकों की अवतारणा हुई। कविता इतिहास, परिहास, जीवन-चरित्र, पुरातत्व-सम्बन्धी नाना प्रकार के नूतन २ ढंग की पुस्तकों से इन्हों ने हिन्दी साहित्य को सुशोभित कर दिया।

यद्यपि विलायती कवि "ड्राइडन" के समान वा कतिपय आधुनिक हिन्दी उपन्यासलेखकों के सदृश इन की लेखनी पाठकों की रुचि ही के अनुसार नहीं चलती थी अर्थात् यह उसी ढंग की रचनाएं नहीं करते थे जो पाठकों की रुचि के अनुकूल हो, चाहे उस से कोई यथार्थ उपकार हो वा नहीं, तथापि इन की सुख्याति ऐसी बढ़ी कि इन की लेखनी से जो कुछ प्रसूत होता वह अलभ्य वस्तु प्रतीत होने लगी।

ऐसे अवसर में जब कि लोगों की हिन्दी की ओर विशेष रुचि भी नहीं थी और हिन्दी एक गन्दी ग्रामीण भाषा समझी जाती थी, ऐसे समय में जब कि अर्बी फ़ारसी शब्द मिश्रित खिचड़ी-हिन्दी-फ़रोश लोग हरिश्चन्द्री हिन्दी को सर्वथा दमन करने को उद्यत थे, इन की पुस्तकों की कई एक आवृत्ति होनी स्पष्ट दिखला रही है कि इन की लेखनी बड़ी शक्तिशालिनी थी और यह एक प्राकृत कवि थे।

इन के सब प्रकार की रचना को लोग आदर चाहते थे किन्तु हमारे जानते इन के नाटक तथा कविता का विशेष आदर होता था और आज भी ऐसा ही देखने में आता है।

इन की रचना में अपूर्व माधुर्य्य, विलक्षण प्रभाव, अनुपम भाव पाया जाता है। आज भी बहुत से सुलेखक हैं जिन के लेख में बल पाया जाता है परन्तु उस बूंद से भेंट कहां? आज किस की लेखनी से ऐसी पुस्तकें निकलती हैं जिन का सब मंडली में मान हो? आज किस के लेख का देश विदेश में वैसा

आदर होता है? इन के स्वर्गवास के अनन्तर कितने नाटक लिखे गए और कितने ने वैसा प्रभाव दिखलाया। सच तो यह है कि हिन्दी भाषा की यह पीयूषधारा प्रवाहित करते थे जिस का स्रोत अब बन्द हो गया? हिन्दी भाषा की लेखप्रणाली नित्य २ सुधरती क्यों न जाती हो, परन्तु विशेष रस उन्हीं की रचना में मिलता है जो इन की प्रणाली के अनुगामी हैं।

इन की काव्यरसिकता इन के अदने से अदने काम, इन की विषयों की रुचि, कलाओं के अनुराग तथा इन के रहन सहन में सर्वदा प्रलक्षित होती है। प्राचीन वस्तुओं का, प्राचीन पुस्तकों का, प्राचीन पत्रों का, चित्रों का तथा सिक्कों का सग्रह एवं गान वाद्य में अनुरक्ति इस बात की पूरी गवाही दे रही हैं।

लाभवादी लोग प्रश्न कर सकते हैं कि इन की ऐसी कविता होने ही से क्या? चाहे ऐसे लोगों के रीत्यनुसार इन की कविता जांच में लाभ-दायक ठहरे वा नहीं, परन्तु विचारपूर्वक देखने से इन की कविता वा लेख जगहितसाधन में कम उपयोगी नहीं पाई जाती। क्या यह थोड़ी बात है कि इन्हों ने उत्तमोत्तम विषयपूर्ण गद्य पद्य मय पुस्तकों को प्रकाश करके स्वदेशीय लोगों के हृदय में मातृभाषा का अनुराग जमाया है? क्या यह थोड़ी बात है कि इन्हों ने ऐसा कर दिया है कि लोग अवकाश के समय शान्तभाव से सानन्द बैठे हुए इन की रचना की सहायता से समय व्यतीत करें और जैसे उज्ज्वल कांच में मुंह का रंग और भाव देखा जाता है वैसे ही हृदय में उन वस्तुओं का अनुभव करें जो शुद्ध, सुखद, लाभप्रद तथा प्रिय हों? क्या यह थोड़ी बात है कि वृद्धावस्था में जब जवानी व्यर्थ व्यतीत होने का दुःख और आगामी काल का भय मनुष्य के हृदय को पीड़ित किए रखता है, लोग इन की कविता के सहारे उस कठिन यात्रा की तयारी करें? क्या यह थोड़ी बात है कि इन्हों ने निज रचना द्वारा स्वदेशियों को सत्मार्ग पर चलने, कलाकौशलादि के हेतु यत्नवान् रहने, कुसंस्कारों के संशोधन करने, देशदशा के सुधार में कटिबद्ध, एवं ईश्वरप्रेम में व्यस्त, रखने के लिए उत्तेजित किया है? क्या ये सब बातें इन की रचना में नहीं पाई जातीं? क्या ये सब बातें लाभदायक बातें नहीं हैं?

इन के ग्रन्थों में व्यावहारिक, सामाजिक, धार्मिक अवस्था का वर्णन पाठ करने से आज भी रोमांच होकर, चित्त विह्वल हो जाता है।

यह भी देखने में आता है कि अनेक बातें जिन्हें यह निज पुस्तकों में

लिख गए हैं, आज उनी के लोग अनुगामी हो चले हैं, क्योंकि प्राकृत कवि का लक्ष्य भविष्यत् की ओर भी रहता है और भविष्यत् लक्ष्यसाधन के निमित्त वह अपनी जीवनावस्था में अश्रान्त परिश्रम करता है। वह केवल वर्त्तमान के लिए जीवन नहीं ग्रहण करता।

इन की बहुरंगी रचना देखकर इन के मानसिक विकाश तथा इन की प्रतिभा की गति का हाल कोई ठीक निश्चय नहीं कर सकता कि किस समय इन की कैसी अवस्था थी, क्योंकि इधर लोग उन की कविता का आनन्द ले रहे थे कि थोड़ी ही देर में किसी नूतन नाटक का रंग देख पड़ा; बात की बात में हास्यरस की ज्योति छिटक गई, उधर प्रेमाश्रुवर्षण का समां बंध गया; कहां नीति उपदेश था कहां राजभक्ति की महिमा आलापने लगे। क्या इसी से यह बात सिद्ध नहीं होती है कि यह एक असाधारण पुरुष थे। प्रतिभावान् पुरुषों की चाल ही निराली होती है। चाहे वे धर्म्मोपदेशक हों, चाहे कवि हों, और चाहे अलौकिक वीर हों। श्री हारानचन्द्र रक्षित दास ने एक स्थान में बहुत ठीक कहा है कि "प्रतिभावान् कवि की तुलना पर्वत से हो सकती है।" निस्सन्देह जैसे पर्वत कहीं ऊंचा कहीं नीचा, कहीं सीधा, कहीं टेढ़ा, कहीं मोटा, कहीं पतला, कहीं नंग, कहीं कुंज और वृक्षों से आच्छादित, नियमरहित देखा जाता है वैसेही प्रतिभावान् कवियों का रंग ढंग भी निराला ही नज़र आता है।

इन की रचना भी पहाड़ के सदृश है। कहीं कविता के ऊंचे २ शिखर, कहीं नाटक की प्रशस्त प्रस्तरभूमि, कहीं इतिहास की गह्वर गुफा, कहीं परिहास का प्रफुल्ल विकशित वन-कुसुम-समूह, वैसे ही कविता शृंग, वैसी ही नाटकभूमि—कहीं छोटा कहीं बड़ा, कहीं वृहत् कहीं क्षुद्र। इसी रचना पर्वत में कहीं शान्तचित्त मुनि अपने तपोबल का तेज चतुर्दिक फैला रहे हैं, कहीं धर्म्मपरायण महात्मा नर नारी निज सत्कार्य्य द्वारा औरों को सद्-पदेश प्रदान कर रहे हैं; पुरातत्त्ववेत्ता पुरातन विषयों की गवेषणा कर रहे हैं, कहीं भक्ति प्रेम का सुखद झरना झर रहा है; कहीं वीर पुरुष बड़ी चाव से शत्रुदल का अहेर खेल रहे हैं; कहीं भिन्न २ पक्षियों के कलरव के समान नाना प्रकार का गान मन में आनन्द की तरंग उठारहा है; कहीं व्यंग के कुश कंटक रोड़ कंकड़ भी अंगों को वेध रहे हैं; कहीं कविता का सरस सुगन्ध हृदय को आमोदित करता है; कहीं विविध छन्दों की बहार; कहीं शुष्कनीति की उदासी, अलौकिक छटा दिखलाती है। नाना भाव तथा अनेक गूढ़ाशय के

रंग २ के बहुमूल्य आकरज—हीरे, लाल, जवाहिर आदि इस रचना-पर्वत के गर्भ में वर्त्तमान हैं जो परिश्रम ही से किसी को प्राप्त हो सकते हैं।

बहुत से लोग ऐसा भी कहते हैं कि इन की रचना में मूलत्व नहीं है। प्राचीन बातों ही को इन्होंने लेखबद्ध वा काव्यबद्ध कर दिया है। इस का कुछ उत्तर ऊपर भी पाया जायगा तथापि यहां पर हम इतना कहेंगे कि प्रथम तो इन के अनेक नाटकों की आख्यायिका, यथा "वैदिकी हिंसा" "भारत दुर्दशा" आदि इन के मस्तिष्क ही से उत्पन्न हुई हैं, दूसरे मूलकता न होने पर भी इन के प्राकृत कवि होने में कोई क्षति नहीं। जगद्विख्यात भारतीय कवि श्रीकालिदास विरचित "अभिज्ञानशाकुन्तल" की आख्यायिका, जिस रचना की प्रशंसा जर्मनदेशीय कवि गोइथी तथा महा विद्वान विलसन् आदि ने भी की है, क्या महाभारत तथा पद्मपुराण में, और "विक्रमोर्वसी" की आख्यायिका "शतपथ ब्राह्मण" में नहीं पाई जाती ? अंग्रेजी-नाटक-गुरु अद्वितीय नाटकलेखक शेक्सपियर ने क्या किसी पुस्तकलिखित आख्यायिका वा प्रचलित ग्राम्य कहानी के आधार पर अपने नाटकों की रचना नहीं की है ? भाई ! रचना को प्रकृत कविता से रंजित करना, शब्द मंत्रों से मंत्रित करना, पात्रों का आदर्श चित्र खींचना, सच्ची छवि का आंखों के सामने खड़ी कर देना यही सब गुण कवियों को उच्च आसन दिलवाते हैं; कोरी कहानी नहीं।

आरम्भ में जो इन्हों ने दो एक नाटकों का पूरा वा अधूरा अनुवाद किया है वह तो निज साहित्य बाग़ के नाटककियारी दुरुस्त करने के निमित्त रोड़ा कंकड़ भरने के समान बहुत आवश्यक था। परन्तु विचार कर देखिए तो वे रोड़े भी किस ढंग से रक्खे जाकर इस कियारी की कैसी शोभा बढ़ा रहे हैं। भाई ! सुदृढ़ दुर्ग की नेवें में भी, जो बड़े २ तोपों के गोलों से भी शीघ्र भूशायी नहीं होते, पत्थर, रोड़े, कंकड़ ही दिए जाते हैं। इस से शिल्पकार की निन्दा नहीं होती, वरन उस की प्रवीणता ही सिद्ध होती है।

देशी कवियों में किस से इन की समता की जाय यही एक बड़ी असमंजस की बात है। देशी प्राचीन कवि प्रायः एकंगी रह कर एक ही विषय में निपुण होते गए हैं और उसी में उन लोगों ने अपनी चमत्कारी दिखलाई है। इन की सी बहुज्ञता किसी में नहीं पाई जाती। उन की कविता गुणों में बढ़ी चढ़ी क्यों न हों, परन्तु इन की रचना में बहुत नवीनता देखी जाती है और इन की रचना औरों की अपेक्षा सरल, मर्मस्पर्शी और उत्तेजक है।

इन के पदों में श्रीसूरदास जी के पदों सा स्वाद मिलता है और इसी से कोई २ कहते हैं कि इन्हों ने सूरदास जी की चोरी की है। इस का उत्तर एक महाशय ने बहुत अच्छा दिया है जो अन्यत्र उद्धृत हुआ है।

इन्हों ने छप्पेछंद बहुत लिखा है। उत्तरार्द्ध भक्तमाल हो छप्पे छन्द में रचा गया है। यदि केवल इसी का विचार कियाजाय तो इस विषय में श्री-हलधर दास से इन की तुलना करनी अयोग्य नहीं होगी।

लोगों का कथन है कि लावनी रचना में इन की तुलना बनारसीदास से और इसी प्रकार अन्य विषयों में भिन्न २ कवि से की जा सकती है, परन्तु इस के लिए यह आवश्यक है कि जिस विषय में जिस प्राचीन कवि से इन की समता की जाय उस ढंग के दोनों महाशयों की रचना साथ २ प्रकाशित कर के समता का कारण दिखलाया जाय, परन्तु हम को इतना अवकाश नहीं है।

यदि भिन्न २ बातों में भिन्न २ प्राचीन कवियों से इन की समता स्वीकार की जाय तो उस दशा में यह नहीं कहा जायगा कि इन्हों ने उन लोगों का अनुकरण किया है यद्यपि ऐसा करना कुछ दूषणीय नहीं है, किन्तु हम यही कहेंगे कि ईश्वर ने अपनी असीम कृपा से कई एक प्राचीन कवियों का गुण इस प्राकृत कवि को एक साथ देकर संसार में भेजा था। और यदि लोग किसी से इन का सादृश्य न स्वीकार करें तौभी हमारी कुछ हानि नहीं।

बहुत से अङ्गरेज़ी भाषानुरागी हमारे बन्धुवर्ग यह अनुमान करके कि हिन्दीभाषा में कोई वस्तु द्रष्टव्य नहीं है इस की ओर दृष्टिपात नहीं करते वरन इस से कोई २ घृणा भी करते हैं। ऐसे लोगों को हम यह दिखलाने की चेष्टा करते हैं कि हरिश्चन्द्र की तुलना किसी विलायती कवि से हो सकती है वा नहीं। यदि एक बार उन लोगों को विश्वास हो जाय कि हरिश्चन्द्र वा किसी अन्य प्राचीन वा नवीन देशीय कवियों की रचना विलायती कवियों से गुण में कम नहीं है तो निश्चय है कि लोगों का निज मातृभाषा में भी अवश्य अनुराग उत्पन्न हो जाय। विचारपूर्वक देखने से हिन्दी भाषा के कई एक कवियों में वैसे गुण पाए जायंगे, परन्तु अवकाशाभाव से सबों की ओर ध्यान न देकर हम हरिश्चन्द्र के विषय में कुछ लिखने की इच्छा करते हैं।

विलायती कवियों से भी इन की तुलना करने में वही आपत्ति देखी

जाती है कि किसी एक से इन की पूर्ण तुलना नहीं होती तथापि "ग्रे सकाट" साहिब ने जो विलायती कवि वाल्टर स्काट की संक्षिप्त जीवनी लिखी है उस के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इन की तुलना अनेक गुणों में स्काट से पूरी २ हो सकती है। बाबू गोबिन्दचरण एम० ए० बी० एल० ने भी इन की तुलना स्काट से की है।

वाल्टरस्काट के समान पद्य और गद्य दोनों प्रकार की रचना करने तथा भिन्न २ ढंग के छंद लिखने में इन्हें कुछ परिश्रम नहीं होता था। कल्पनाशक्ति एवं कल्पित विषयों को लेखबद्ध करने की शक्ति इन्हें भी अतुल थी। बात बात में समस्यापूर्ति होती थी। और लेखों का कौन कहे, एक२ पुस्तक एक२ दिन में निर्माण कर डालते थे। स्काट के समान इन्हें भी लिखने के लिए समय, सामग्री का कुछ विचार नहीं रहता था। स्मरणशक्ति भी वैसी ही बलवती थी जो पूर्व परिच्छेदों में दिखलाई गई है। कविवर्णन की विलक्षण शक्ति थी। जिस विषय का वर्णन करते थे उस का चित्र आंखों के सामने खड़ा कर देते थे। यह बात पाठकों पर विदित हो गई होगी।

स्काट साहिब ने स्वरचित उपन्यास तथा कविता से लोगों को मोहित कर दिया था। इन्हों ने ललित कविता के साथ २ सब ढंग की पुस्तकों की रचना की है। यद्यपि इन्हों ने अनेक उपन्यास नहीं लिखे परन्तु नाटकों से भाषाभंडार पूर्ण किया। यह हम नहीं कह सकते कि स्काट के समान इन की रचना का आधिक्य है वा नहीं, परन्तु ३४ वर्ष के भीतर २०० से अधिक नानाभांति की पुस्तकों की रचना करनी और साथही साथ अनेक भाषा का अभ्यास, एवं कई एक निज प्रकाशित पत्रों का सम्पादन करना तथा अन्य प्रकाशित पत्रों में यत्नवान रहना, कुछ थोड़ा नहीं समझा जा सकता। यदि स्काट के समान दीर्घायु होते तो सम्भवतः और भी बहुत कुछ कर दिखलाते और उस के समान उपन्यास की भी बहार पाठकों को दिखला सकते क्योंकि उपन्यास की ओर इन का ध्यान अन्त में गया था। अनेक भाषाओं की जानकारी में तो यह अवश्य स्काट से भी बढ़े हुए थे।

इस के अतिरिक्त हिन्दी में गद्य लिखने की प्रचलित प्रणाली के जन्मदाता, हिन्दी भाषा के प्रथम नाटककार अथवा नाटकाचार्य्य यही हुए।

सारांश यह कि हरिभक्त, राजभक्त, देशभक्त, सरल, उदारचित्त होने के अतिरिक्त हरिश्चन्द्र निस्सन्देह एक प्राकृत कवि थे और ईश्वर की सृष्टि में

यह एक अपूर्व व्यक्ति भारतवर्ष में हुए जिस की अवश्य हम लोगों की ममता होनी चाहिए। आज भी जो लोग हे अवश्य निज कुतर्कों से इन की प्रतिभा हीन करने की चेष्टा करते हैं उन से हम यही कहेंगे कि तुम इन के आचरण में चाहे जो छिद्रान्वेषण करो तुम्हारी इच्छा, परन्तु इन की पुस्तकों को ध्यान पूर्वक पढ़े बिना इन की कविता के विषय में वृथा प्रलाप मत करो। यदि ईश्वर ने इन के समान तुम्हें भी कवितागुण प्रदान किया हो, तो तुम भी सहर्ष स्वरचना से लोगों को आह्लादित करो। यह सब भारतवासियों के लिए आनन्द का विषय होगा और परम न्यायकारी ईश्वर समय पर तुम को भी अवश्य उच्च आसन प्रदान करेगा।

## अष्टविंश परिच्छेद ।

### मित्रवर्ग ।

किसी व्यक्ति के मित्रों का भी परिचय पाने से उस के रहन सहन का बहुत कुछ अंदाज मिल सकता है । परन्तु हरिश्चन्द्र के इतने और ऐसे रंगबिरंगी मित्र थे कि इन के विषय में उस से कुछ ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता । इन के मित्रों की यदि केवल नामावली दी जाय तो एक खासी पुस्तक बन जाय क्योंकि इन के सब ही मित्र थे और जो इन से द्वेष करते उन को भी यह मित्र ही की दृष्टि से देखते थे । इसी से लोग इन्हें अजातशत्रु भी कहते थे। तो भी यहां पर इन के कई एक ऐसे मित्रों का संक्षिप्त हाल लिखा जाता है जिन का जीवनवृत्तान्त पाठ करना लोगों को अवश्य लाभदायक होगा । और कई एक का हाल अन्य परिच्छेदों में भी प्रसंगानुसार वर्णित हुआ है ।

## फ्रेडरिक पिन्‌काट ।

इन का जन्म १८३६ ई० में हुआ था । इन के माता पिता धनाढ्य नहीं थे । यह कुछ काल तक "क्वीन एलिज़बेथ चार्टर्ड स्कूल" में विद्योपार्जन कर के एक यन्त्रालय में ताईद हुए । फिर कम्पोज़ीटर नियत हुए । धीरे २ एक अच्छे यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता बने । बाल्यावस्था ही में संस्कृतभाषा की प्रशंसा सुन २ कर इन्हें उस भाषा के पढ़ने का अनुराग हुआ । द्रव्यहीन होने के कारण पुस्तकों की प्राप्ति में कठिनता थी अतएव जो कुछ ग्रन्थों का टुकड़ा इधर उधर से हस्तगत कर सकते थे उसी से पढ़ना आरम्भ किया। निदान एक स्वदेशीय मित्र की कृपा से पुस्तकों की सहायता मिलने लगी। थोड़े दिन में संस्कृत पढ़ कर इन्हों ने दो एक संस्कृत की पुस्तकों का भाष्य भी किया । इन्हों ने शाकुंतल को एक उत्तम भूमिका के साथ मुद्रित कराया है । फिर इन्हों ने उर्दू, बङ्गला, गुजराती, फ़ारसी एवं टेलिगू तथा तामीली भाषा सीखने में परिश्रम किया । अन्ततः इन्हें हिन्दीभाषा का अनुराग हुआ। बहुत सी हिन्दी की किताबें पढ़ीं और समाचारपत्र भी पढ़ने लगे । और चार भागों में बालदीपक नामक रीडर बनाया जो बिहारप्रान्त के स्कूलों में पढ़ाई जाती थी । भारतेश्वरी विक्टोरिया की जीवनी भी हिन्दी भाषा में

लिखी है; वह पुस्तक भी खड्गविलास यन्त्रालय द्वारा मुद्रित हुई है। इन्हों ने पण्डित प्रतापनारायण मिश्र कृत "ब्रेडला स्वागत" का अङ्गरेज़ी भाषा में अनुवाद कर के "इण्डिया" नामक समाचारपत्र में प्रकाशित कराया था। भारतवर्ष के बड़े शुभचिन्तक थे और यहां के बहुत लोगों से इन को मित्रता थी। बाबू हरिश्चन्द्र से बड़ा स्नेह था। उन के पास बराबर पत्र लिखा करते थे। वे पत्र सब प्रायः हिन्दी ही भाषा में देखे जाते हैं। भारतेन्दु के स्वर्गवास होने पर यह भारतवर्ष में आए थे। और यहीं लखनऊ में इन का देहान्त हुआ। इन्हों ने जो एक छंद बनाकर हरिश्चन्द्र के पास भेजा था वह यहां पर प्रकाशित कर दिया जाता है जिसे हमारे देशीय लोग देख कर लज्जा करें कि अंग्रेज़ हो कर लोग हिन्दीभाषा में इतना अनुराग रखते और इस देश के लोग प्रायः इस भाषा से विरक्त रहते हैं।

"बैसवंस अवतंस, श्री बाबू हरिचन्द जू।
छीर नीर कलहंस, टुक उत्तर लिख देव मोहि॥

पर उपकार में उदार अपनी में एक भाषत अनेक यह राजा हरिचन्द है। त्रिभव बड़ाई वपु वसन बिलास लखि कहत यहां के लोग बाबू हरिचन्द है॥ चन्द वैसो अमित अनन्द कर भारत को कहत कविन्द यह भारत को चन्द है। कैसे अब देखें को बतावै, कहां पावै, हाय कैसे वहां आवै हम कोई मतिमंद है॥

श्री युत सकल कविंद कुल, नुत बाबू हरिचन्द।
भारत हृदय सतार नभ, उदय रहो जनु चन्द॥

---

## ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

जिला मेदनीपुर के बीरसिंह गांव में २६ सितम्बर १८२० ई० में इन का जन्म हुआ। इन के पिता का नाम ठाकुरदास बन्द्योपाध्याय था। इन के दादा रामयश तर्कभूषण भाइयों के झगड़े से विरक्त होकर तीर्थाटन को चले गए और उन की स्त्री दो पुत्र और चार कन्या को लेकर सूत कात कर एक

झोपड़ी में कालक्षेप करने लगी। ठाकुरदास १४ वर्ष की अवस्था में कलकत्ता में आ कर बहुत दुःख के साथ कुछ अंगरेजी पढ़ कर २) मासिक पर नौकर हुए। वह रुपया माता को भेज कर किसी प्रकार अपना निर्वाह कर लेते। विद्यासागर के जन्म के समय वह ८) मासिक पाते थे।

कुछ काल गुरुजी से पढ़कर ईश्वरचन्द्र कलकत्ता हिन्दूकालेज में व्याकरणश्रेणी में भरती हुए और ५) मासिक पारितोषिक पाने लगे। १२ वर्ष की अवस्था में जब यह काव्यश्रेणी में थे इन्हें पढ़ने के सिवाय ४ आदमी का रसोई बनाना बर्तन मांजना और सौदा लाना भी होता था। इसी रीति से विद्याध्ययन करते छव मास में स्मृति पढ़ कर और ला कमेटी में परीक्षोत्तीर्ण हो कर, १८३७ ई० में यह त्रिपुराज़िला के जज—पँण्डित हुए। किन्तु पिता की अनुमति नहीं होने से यह वहां नहीं गए। फिर आगे पढ़ते और १००) २००) पारितोषिक पाते २० वर्ष की अवस्था में इन्हों ने विद्यासागर का पद प्राप्त किया।

१८४१ ई० में "फोर्टविलियम" में ५०) मासिक पर अध्यापक नियुक्त हुए। यह काम पाने पर इन्हों ने हिन्दी अंगरेज़ी का अभ्यास किया और काम करने के अनन्तर १८५१ में १५०) मासिक पर प्रिंसपुल हुए। १८५५ में यह ५००) पर इन्सपेक्टर हुए और डाइरेक्टर के साथ कुछ मनमोटाव होने से १८५७ ई० में इन्हों ने वह काम परित्याग कर दिया।

बंगभाषा के उद्धार एवं बंगदेश में विद्याप्रचार के यह मुख्य कारण हुए। बालकों के उपयोगी इन्हों ने बंगभाषा तथा संस्कृत में बहुत सी पुस्तकें बनाई और मुद्रित की हैं। इन की भाषा सुन्दर एवं सरल होने के कारण बंगभाषा के प्रसिद्ध कवि हेमचन्द्र ने इन्हें एक कविता में "बगंला के साहित्य-गुरु" कहा है।

यह विद्यासागरही नहीं दयासागर भी थे। इन्हीं ने लोकहित कार्य बहुत कुछ किया है। सन् १८६६ ईस्वी के अकाल में इन्हों ने दुखियों की बड़ी सहायता की थी और इन की माता अपने हाथ से नित्य खिचड़ी बना २ कर सैकड़ो भूखों को खिलाया करती थीं।

यह बड़े मातृभक्त थे। छोटे भाई के विवाह में जब इन की माता ने इन्हें बुला भेजा और छुट्टी नहीं मिलती थी तो इन्हों ने अपने अफ़सर से स्पष्ट

कहदिया कि हम सब की आज्ञा भङ्ग कर सकते, माता की नहीं, हम नौकरी छोड़ते हैं, आप इस्तीफा लीजिए। इन के चरित्रपाठ से मनुष्य बहुत लाभ उठा सकता है। बाबू राधाकृष्णदास ने हिन्दी में इन की जीवनी लिखी है।

१२ श्रावण १८९१ ई० में इन का स्वर्गवास हुआ।

## डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र।

यह जनमेजय मित्र के पुत्र तथा वृन्दावन मित्र के पौत्र थे। १८२४ ई० में सुन्दरबन के इलाके में सूर स्थान में इन का जन्म हुआ था। इन के पिता की अवस्था अच्छी नहीं थी और इन्हों ने इन को अपनी निःसन्तान विधवा भगिनी को दे दिया था कि कलकत्ता रह विद्योपार्जन करें। फूआ के स्वर्गवास होने पर यह घर लौट आएँ। अपने छः भाइयों में यह दूसरे थे और एक होनहार बालक थे। अतएव इन के घरवालों ने मेडिकलकालेज में जहां छात्र बिना फ़ीस के पढ़ते और ८) मासिक भी पाते थे। इन का नाम लिखा दिया। पढ़ने में अच्छी चमत्कारी दिखलाने लगे, परन्तु एकबार छात्रों की लड़ाई में अपने सहपाठियों का भेद न खोलने से प्रिंसपुल के स्नेहपात्र होने पर भी कुछ दिन के लिए कालेज से निकाल दिए गए।

तब इन्हों ने वकालत की परीक्षा दी, परन्तु सवाल चोरी होजाने की खबर उड़ने से उस साल की परीक्षा रद्दी कर दी गई।

तब १८४६ ई० में यह बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी के सहायक कार्य्याध्यक्ष एवं पुस्तकाध्यक्ष नियत हुए। वहां इन को विद्यावृद्धि का अच्छा सुअवसर मिला। १८५० ई० में "विविधार्थ संग्रह" बंगभाषा का एक मेगज़ीन छापने लगे। १८५६ ई० में "वार्ड्स इन्स्टीच्यूट" के डाइरेक्टर हुए, परन्तु इन की असावधानी के कारण वह तोड़ दिया गया और इन्हें पेन्शन मिली।

यह आजन्म संस्कृत पढ़ने तथा पुरा-तत्वानुसन्धान में लगे रहे। अनेक समसामयिक पत्रों में इन के सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए। "एंटीक्वीटीज़ आव उड़ीसा" "बोधगया" "इन्डोएरियन" आदि इन के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं जिन में हमारा कई एक पढ़ा हुआ है।

बाबू हरिश्चन्द्रदास के परलोक होने पर "हिन्दू पेट्रियट" से भी इन्हें आजन्म सम्बन्ध रहा।

यह एक जगद्विख्यात पुरुष हुए। इन के पांडित्य की बड़ी प्रसिद्धि थी, उस समय बड़े२ प्रसिद्ध विद्यानुरागी इन से मिलते और पत्रव्यवहार रखते थे यह अनेक प्रतिष्ठित सभाओं के सभासद थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इन्हें डी० ए० की पदवी मिली थी और १८७८ ई० में सरकार ने इन्हें सी० आई० ई० के पद से भूषित किया था।

६७ वर्ष की अवस्था में १८८२ ई० में इन का परलोक हुआ।

## कृष्टोदास पाल।

यह जाति के तेली थे। इन के पिता का नाम ईश्वरचन्द्र पाल था। १८३८ ई० में इन का जन्म हुआ था। पाठशाला तथा अङ्गरेज़ी स्कूल में यह सर्वदा चमत्कारी का परिचय देते रहे। १८५३ ई० में स्कूल परित्याग करने पर यह कलकत्ता "लिटरेरी डिबेटिंग क्लब" के मेम्बर हुए। अच्छी अवस्था नहीं होने के कारण यह उस सभा में १॥) वार्षिक चन्दा भी देने को समर्थ नहीं थे।

१८५७ ई० में कालेज छोड़कर यह गृहकार्य्य में प्रवृत्त हुए। उस के पूर्व ही इन को पत्रों में लिखने का उत्साह था। "मार्निंग क्रानिकल" तथा "सीटीजेन" में लेख लिखा करते थे। वहां से इन्हें कुछ मिलता भी था। बाबू हरिश्चन्द्र मुकुर्जी के देहान्त होने पर यह "हिन्दूपेट्रियट" सम्पादक हुए एवं "ब्रिटिश इन्डियन एसोसिएशन" के सहायक कार्य्याध्यक्ष नियत हुए और फिर १८७९ ई० में उस के कार्य्याध्यक्ष हुए। १८६३ ई० में मियुनिसिपल कमिश्नर और "जस्टिस आव पीस" बनाए गए। १८७२ ई० में बंगाल के लाटसभा के सभासद हुए। १८७७ ई० में दिल्लीदरबार के समय इन्हें रायबहादुर का पद प्राप्त हुआ। उस समय इन्हों ने अपने पत्र में लिखा था कि "किस अपराध के लिए हम को यह दंड प्रदान किया गया है।*" आज कल तो अधिकांश ऐसे मिलेंगे कि करनी करतूत साढ़े बाईस पर खिताब के लिये मुंह बाए बैठे हैं, जो कुछ देशहितैषी कार्य्य भी करते हैं केवल इसी अभिप्राय से, सच्चे दिल

* We are not a little surprised to find our own name among the Rai Bahadurs. If we may be allowed to be light-hearted on such a solemn subject, may we ask what dice offence did we commit for which this punishment was reserved for us ? we have no ambition for titular distinctions.

से नहीं। भाई सच्चे देशहितैषी बनो, सच्चा राजभक्त बनो, हमारी उदार सरकार निज विचारानुसार तुम्हें स्वयं योग्य पद प्रदान करेगी। तुम्हारे नहीं चाहे भी तुम्हें देगी। देखो क्रष्टोदास पाल रायबहादुर ही नहीं हुए, वरन १८८३ ई० में सी० आई० ई० के पद से भी आभूषित किए गए।

४५ वर्ष की अवस्था में २४ जुलाई १८८४ ई० को यह स्वर्गगामी हुए।

## शम्भुचरण मुकर्जी।

यह मथुरामोहन मुकुर्जी के पुत्र थे। १८३९ ई० में इन का जन्म हुआ। ये राजा आदिसूर के कन्नौज से बुलाए हुए पांच ब्राह्मणों में श्रीहर्ष के ३४ वीं पीढ़ी में थे। बाल्यावस्था में पढ़ने में मन नहीं लगाते थे। वरन पठशाला में इसी कारण दंड पाने से इन्हो ने दंडदाता की चिलम में मिर्चा आदि रख दिया था। एक दिन स्थानीय पादरी के स्कूल में लड़कों को क्रिकेट खेलते देखकर वहां गए और पादरी के कहने से वहीं नाम लिखाया। किन्तु दोही चार दिन बाद उस स्कूल के ब्राह्मण के चार लड़कों के क्रिस्तान हो जाने से इन के पिता ने इन्हें दूसरे स्कूल में नाम लिखवा दिया और नित्य इन के साथ जाया आया करते थे। १८५३ ई० में कलकत्ता के मट्रापालिटन स्कूल खुलने पर यह उसी में भरती हुए। वहीं इन को क्रष्टोदास पाल से मित्रता हुई और दोनों ने उसी समय "कलकत्ता मंथली मेगज़ीन" प्रकाश करना आरम्भ किया जो बहुत अल्प काल तक चला। फिर यह मार्निंग क्रानिकल के सम्पादक हुए। उस के स्वामी से सम्मतिविरोध होने के कारण इन्हों ने वह काम छोड़ दिया। कुछ दिन "हिन्दूपेट्रियट" के सहायक सम्पादक रहे। फिर लखनऊ में तालुकेदारों की सभा के कार्य्याध्यक्ष हुए। वहीं इन्हों ने गाना भी सीखा।

कुछ दिन मुर्शिदाबाद में दीवान रहे। इन के सुप्रबन्ध से वहां के दुराचारी कर्म्मचारीगण रुष्ट होकर इन को अप्रतिष्ठित करने पर उद्यत हुए पर कुछ वश न चला। १८७७ ई० में यह ५००) मासिक पर टिपरा में अमात्यपद पर नियुक्त हुए।

१८८२ ई० में इन्हों ने "रईस और रैयत" नामक एक निज का अंगरेज़ी पत्र निकालना आरम्भ किया जो अबतक प्रकाशित हुआ करता है। अंगरेज़ी

सम्पादकों में इन्हें एक उच्चासन प्राप्त था। इन के लेखों को प्रजा तथा राजकर्म्मचारीगण आदरपूर्व्वक देखते थे।

बंगाल में "होमियोपैथी" चिकित्सा सीखने के लिए इन्हों ने पहिले और अन्य दो महाशयों ने परिश्रम किया था और इन्हें अमेरिका से डाक्टर का पद प्राप्त हुआ था।

यह हिन्दूधर्म्म में बड़े पक्के थे। विलायत से लौटे हुए बंगाली लोग जब इन से मिलने जाते थे तो जो वस्तु उन से छू जाती थी उसे फेंकवा देते थे। एक मित्र के एक बार यह प्रश्न करने पर कि शीघ्र सुख्याति किस रीति से प्राप्त हो सकती है, इन्हों ने उत्तर दिया कि "विलायत जाओ और जोड़ू को भी लिए जाओ"।

७ फ़रवरी १८६० को इन का देहान्त हुआ।

भूतपूर्व आरा के कलक्टर स्क्राइन साहिब ने अंगरेज़ी में इन की जीवनी लिखी है।

सन् १८३८ ईस्वी में इन का जन्म हुआ। यह यादवचन्द्र चटुर्जी डिपुटीकलक्टर के पुत्र थे। यह कुछ दिन हुगलीकालेज और फिर प्रेसिडेन्सीकालेज कलकत्ता में पढ़े। हिन्दुस्तान में सब से पहिले इन्हीं ने बी० ए० पास किया। बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के थोड़े ही दिन बाद यह डिपुटीकलक्टर नियत हुए। सरकार ने इन्हें "रायबहादुर" एवं "सी० आइ० ई०" के पद से सुशोभित किया था। १८६४ ई० में इन का देहान्त हुआ।

## बंकिमचन्द्र चटुर्जी।

यह बंगभाषा के प्रसिद्ध उपन्यासलेखक हुए। दुर्गेशनन्दिनी, कपालकुण्डला, विष वृक्ष, देवीचौधुरानी आदि से इन की प्रबल लेखनशक्ति का परिचय मिलता है। इन्हों ने बाबू हरिश्चन्द्र को अपने ग्रन्थों के अनुवाद का अधिकार दिया था। इन के सब उपन्यासों का अनुवाद पाठकों को खड्गविलास यन्त्रालय से लब्ध हो सकता है। अपने समय के यह बंगसाहित्यदेश के राजा थे। जैसे माइकल मधुसूदन ने बंगभाषा की पद्यरचना का ढङ्ग बदल दिया, इन्हों ने भी अपनी प्रबल लेखनी की शक्ति से बङ्गभाषा के गद्यप्रणाली का स्रोत फेर दिया है।

## केशवचन्द्र सेन।

१८३८ ई० में कलकत्ता में इन का जन्म हुआ। इन के दादा का नाम रामकमल सेन और पिता का नाम प्यारीमोहन सेन था। यह जाति के बैद थे।

पहिले यह बंगभाषा घर पर पढ़े। १८४५ ई० में हिन्दूकालेज में भरती हुए। कुछ दिन मिट्रापालिटन कालिज में भी पढ़े थे। पढ़ने में बहुत तेज थे और प्रति वर्ष इनाम पाते थे। एक बार परीक्षा के समय गणित का उत्तर किसी से मिलाने के कारण धिक्कारित होने से इन्हों ने गणित पढ़ना ही छोड़ दिया।

खेल तमाशा में इन का अधिक मन लगता था। १८ वर्ष की अवस्था में जादूगिरी का खेल भली भांति सीख गए थे। एक नाटकमंडली भी स्थापित की, जिस में शेक्सपियर के नाटक खेले जाते थे। रात २ भर "यात्रा", देखा करते थे।

बाल्यावस्थाही से यह पूजा पाठ को कौतूहल समझते थे; किन्तु उसी समय से इन का आचरण बड़ा ही शुद्ध था।

१८ वर्ष की अवस्था में विवाह होने पर यह चुप चाप बैठे सन्ध्या-प्रभाती की रचना किया करते थे और दूसरों के लिए चितावनी लिख २ कर अहल्ले के मकानों की दीवारों में साट दिया करते थे। आदि ही से इन को विश्वास था कि ईश्वर का भजन ही मुख्य साधन है। उस समय के प्रसिद्ध पादरियों से भी मिला करते थे।

१८५७ ई० में यह आदि ब्राह्मोसमाज के सभासद हुए और समाज के प्रधान बाबू देवेन्द्रोनाथ तगोर से इन्हें बड़ा ही मेल हुआ। किन्तु पीछे उन से कुछ खटक जाने से इन्हों ने "नवब्राह्मोसमाज" स्थापित किया और आजन्म देश २ भ्रमण करके उस का प्रचार करते रहे। बड़े प्रसिद्ध वक्ता थे। इन की वक्तृता मधुर एवं मनोहर होती थी। हम को भी एक बार सुनने की बारी आई थी, यह विलायत भी गए थे।

## श्री बाबा सुमेर सिंह साहिबज़ादे।

इन का निवास स्थान निज़ामाबाद ज़िला आज़मगढ़ में था। यह सिक्ख-सम्प्रदाय के तीसरे गुरु के वंशज थे। सिक्खों में इन का बड़ा मान था। श्री-

मान् महाराजा पटियाला के अनुरोध से १८८५ ई० में पटना के जज कर्कउड साहिब ने इन्हें पटना हरिमन्दिर का महंत नियत किया था। अपने धर्म के तत्वों के बड़े भारी ज्ञाता, एवं काव्यशास्त्रवेत्ता और बड़े मर्मज्ञ थे। इन्हों ने अनेक पुस्तकों की रचना भी की है। कई एक पञ्जाबी भाषा में प्रकाशित हुई हैं। भारतेन्दु जब इन से मिलते थे धर्म वा काव्यही की चर्चा करते थे। इन्हों ने अपनी महंती के समय हरिमन्दिरस्थान के मकान का, जिस का अधिकांश भग्नावस्था में था, जीर्णोद्धार कराया है। फरवरी १८०२ ई० में श्री अमृतसर में इन्हों ने शरीर त्याग किया। इन की जीवनी पृथक लिखे जाने का प्रबन्ध हो रहा है।

## पंडित प्रतापनारायण मिश्र।

इन के पिता का नाम पण्डित संकटादीन था। यह कात्यायन कुलोद्भूत कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। अवध के अन्तर्गत बेजा गांव जिला उन्नाव में मकान था। आश्विन कृष्ण पक्ष नवमी तिथि १८१३ में इन का जन्म हुआ था। पिता के साथ बाल्यावस्था ही में कानपुर आए और उन्हीं से कुछ पढ़ने लगे। पढ़ने से चित्त उदास देख कर इन के पिता ने इन्हें स्कूल में बैठा दिया। किन्तु यह यत्न भी व्यर्थ गया। बाबू हरिश्चन्द्रप्रकाशित कविवचनसुधा पढ़ा करते और उसी में मग्न रहते। कुछ दिन में हिन्दी गद्य पद्य लिखने का अभ्यास होगया। पीछे यह देख कर कि दयानन्द—मतानुयायियों से और अन्य लोगों से प्राय: चोट की चर्चा करती है, उस का तत्व जानने के लिये इन्हें संस्कृत पढ़ने का उत्साह हुआ। फिर इन्हों ने अर्बी, फारसी बङ्गला का अभ्यास किया। इन की लेखप्रणाली बाबू हरिश्चन्द्र की सी थी। इस से कोई २ इन्हें द्वितीय भारतेन्दु भी कहते थे। परन्तु यह बात इन्हें बहुत नागवार प्रतीत होती थी। यह कहा करते थे कि भारतवर्ष में कौन है जो बाबू हरिश्चन्द्र की समता कर सके। भारतेन्दु को यह देवता के समान जानते थे। यह ब्राह्मण नामक एक पत्र निकालते थे जो कुछ काल कानपुर से और पीछे बांकीपुर खड्गविलास यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ करता था। कुछ दिन तक दैनिक पत्र हिन्दुस्तान के यह सहायक सम्पादक थे। इन्हों ने "विक्टरप्रिन्स" और "ब्रैडला स्वागत" हिन्दी में काव्यबद्ध लिखा था। ब्रैडला स्वागत का अङ्गरेजी अनुवाद कर के फ़्लिन्काट साहिब ने "इण्डिया" नामक विलायत के समाचारपत्र में प्रकाशित किया। गद्यात्मक ग्रन्थों में इन का बनाया "शैव-

सर्वस्व " अति उत्तम पुस्तक है । इन्हों ने " रसखान शतक " एक सुन्दर भूमिका के सहित छपवाया था। शाकुन्तल का भी सङ्गीतमय अनुवाद किया है इन के सब ग्रन्थ खड्ग विलास द्वारा पाठक प्राप्त कर सकते हैं।

यह स्वदेशीय वस्तुओं का प्रायः व्यवहार करते थे और स्वदेशीय सब पदार्थों के आदर ही में देश का कल्याण समझते थे जो बात निम्न—लिखित छप्पे से स्पष्ट विदित है। —

" जबलगि तज सब संक सकुच अरु आस पराई ।
नहि करिहौ अपने हाथन तुम आप भलाई ॥
आपन भाषा भेष भाव, भाइन भोजन काहँ ।
जब लगि जग में नहीं जानिहौ उत्तम सब महँ ॥
तब लगि उपाव कोटिन करत अगनित जन्म बिताइहौ।
पै साँचो सुख सम्पति कबहुं सपनेहु नहि पाइहौ ॥

इन का स्वभाव बड़ा सरल था। १८९२ ई॰ के कार्तिक महीने में हम जब अमृतसर से लौटते समय कानपुर में इन का दर्शन किया था तो हमारे पूर्वपरिचित न होने पर भी, यह हम से बहुत स्नेहपूर्वक मिले थे। यह लावनी अच्छी बनाते और गाते थे। नाटक भी खेलते थे, वरन इसी लिए लम्बे २ केश रखे हुए और हम से उस का कारण भी यही बतलाए थे। एकतारा भी सदैव साथ रखते थे। अर्शरोग से बहुत दिन तक दुखित रहे फिर ३८ वर्ष की अवस्था में १९५१ सं॰ के आषाढ़ चतुर्थी सित पक्ष गुरुवार को इस संसार से कैलाशवासी हुए। हिन्दी में इन की जीवनी लिखी जा रही है।

## राजा लक्ष्मण सिंह ।

यह यदुवंशी क्षत्रिय थे। ९ अक्टूबर १८२६ ई॰ में इनका जन्म हुआ था। घर ही पर हिन्दी फ़ारसी पढ़ कर १८३९ ई॰ मे आगराकालेज में भरती हुए। कालेज परित्याग करने पर पश्चिमोत्तर देश के छोटे लाट के दफ़तर में १००) मासिक पर अनुवादक नियत हुए, फिर १५०) पर सदर बोर्ड में अनुवादक हुए। फिर इटावे में तहसीलदार हुए। वहां के "ह्यूम हाइ स्कूल" के स्थापन के मुख्य कारण यही थे। इन्हों ने बुलंदशहर में कुछ दिन कलक्टर का काम किया था। यह पद इन से पहले किसी हिन्दुस्तानी को

नहीं मिला था। १८५७ ई० के विद्रोह में अंगरेजों की भारी सहायता करने से सरकार से इन्हें हजार का खिलअत और माफ़ी भूमि मिली थी। १८७७ ई० के दिल्लीदरबार के समय इन्हें राजा की उपाधि मिली।

यह हिन्दी के बड़े प्रेमी और पुराने ढंग के प्रसिद्ध सुलेखक थे। इन्हों ने कालिदासकृत शाकुन्तल, रघुवंश, एवं मेघदूत का छन्दबद्ध हिन्दी में अनुवाद किया है। इन्हों ने अंगरेजी उर्दू में बुलन्दशहर का इतिहास भी लिखा है इन्हों ने १४ जुलाई १८८६ ई० को काशी में गङ्गातट पर शरीर त्याग किया।

## पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी।

बाबू हरिश्चन्द्र के पिता के सभासद पं० ईश्वरीप्रसाद के यह ज्येष्ठ पुत्र थे। यह बनारसकालेज के साहित्य के प्रधान अध्यापक एवं काशी के नामी पण्डितों में थे। संस्कृत और हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। "जानकी-मंगल" नाटक इन्हीं का बनाया हुआ है। हिन्दी में यही नाटक सब से पहिले पहिल खेलागया था। इन्हीं ने पद्यबद्ध सावित्रीचरित्र लिखा है। भाषाव्याकरण में यह पारङ्गत थे। बाबू रामदीन सिंह जी ने सानुरोध इन्हें एक भाषाव्याकरण लिखने के लिए उद्यत किया था, परन्तु स्वर्गवास होजाने के कारण यह कार्य्य सम्पन्न नहीं हो सका। बाबू रामदीन सिंह कहते थे कि इन के समान हिन्दी-व्याकरण के ज्ञाता दूसरे कोई नहीं हुए, न हैं।

इन को अनेक प्राचीन अक्षरों के पढ़ने का बड़ा अभ्यास था। हिन्दुस्तान में जो प्राचीन प्रशस्तियां मिलती थीं इन के पास पढ़ने के लिए भेजी जाती थीं। बाबू हरिश्चन्द्र ने इन्हीं से प्राचीन अक्षरों के पढ़ने का ढंग सीखा था और इन्हीं को साथ लेकर पांच छः महीने में काशी के सब मन्दिरों और घाट आदि की सब लिपियां पढ़ी थीं।

## पंडित बदरीनारायण चौधरी।

यह मिर्जापुर के प्रसिद्ध रईस हैं। सिपाहीविद्रोह के समय इन के दादा ने सरकार की बड़ी सहायता की थी। जिस के पारितोषिक में गवर्नमेंट से इन्हें गांव ( grant ) मिले हैं। यह हिन्दी उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं। " आनन्द-कादम्बिनी " मासिकपत्रिका तथा "नागरी-नीरद" साप्ताहिक पत्र निकालते थे।

हिन्दी-साहित्य-संसार में इन का बड़ा मान है। उन्हों ने गद्य पद्य के कई ग्रंथ नाटकादि बनाये हैं। यह बाबू हरिश्चन्द्र के अनन्य मित्र थे। इन की बहुत बातें और स्वभाव तथा रंग रूप बाबू हरिश्चन्द्र के समान हैं। इन से बाबू साहिब को प्रायः साथ रहता था। खेल, तमाशा, फोटो, गान, पाद्य, कारीगरी इत्यादि सब बातों में साथ था।

## पं० दामोदर शास्त्री।

सन् १८०५ ई० में पूना में इन का जन्म हुआ। कातिक सं० १८२२ में यह निज परिवार के साथ घर से प्रस्थान कर के मार्ग में प्रसिद्ध स्थानों तथा तीर्थों में भ्रमण करते काशी पहुंचे और वहां रह कर कई विद्वज्जनों से विद्याध्ययन करने लगे। कुछ दिन बाद किसी कार्य्य के निमित्त घर गए। इधर पिता का परलोक होगया। घर से लौट आने पर माता का भी वियोग हुआ। इन कारणों से कुछ ऋणी होगए और दो लड़कों को पढ़ाने लगे और आप भी पढ़ने लगे। इसी अवसर में इन को एक पुत्र हुआ और प्रसूतिगृह में ही स्त्री का देहान्त हुआ और कुछ दिन बीते वह बालक भी चल बसा। तब यह पठन पाठन परित्याग कर के केवल ईश्वर के भरोसे बैठ रहे।

ढुंढिराज शास्त्री के द्वारा बाबू हरिश्चन्द्र से परिचय होने पर उन्हों ने इन को निज सरस्वतीभवन का प्रबन्ध सौंप दिया। इसी समय इन्हों ने अपना दूसरा विवाह किया और हरिश्चन्द्र की सम्मति से एक नाटकमंडली संस्थापित की।

फिर बिहार हाईस्कूल में पंडित हुए। अनन्तर "विहारबन्धु" के सम्पादक नियत हुए। फिर नाथद्वारा में जाकर वहां से संस्कृतभाषा में "विद्यार्थी" नामक पत्र प्रकाश करने लगे। इन्हों ने बदरिकाश्रम इत्यादि अनेक स्थानों में भ्रमण कर के हिन्दी में पहले पहल यात्रा की कई पुस्तकें प्रकाशित कीं जो बड़ी लाभदायक हैं। इस ढंग की पुस्तकें और किसी हिन्दी लेखकों की कम पाई जाती हैं। इन्हों ने संस्कृत का भी अनेक ग्रन्थ बनाया है इन की सब रचना उपयोगी हैं। हिन्दी में नाटकाकार रामायण भी लिखा है। इन के सब ग्रन्थ "खड्गविलास" द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। इन्हों ने लिखा है कि "संसार में काम की जितनी बातें हैं हम ने सब बाबू हरिश्चन्द्र ही से सीखी और उन्हीं के साथ बहुत कुछ लाभ उठाया। इन का पूरा वृत्तान्त "मैं वही हूं" आदि पुस्तकों से पाठकों को प्राप्त होगा।

## दीवान जयप्रकाश लाल ।

ज़िला सारन के अपहर ग्राम के एक प्रसिद्ध श्रीवास्तव कायस्थकुल के यह वंशधर थे। २७ जुलाई १८४० ई० में आरा नगर में इन का जन्म हुआ था। इन को शिक्षा अच्छी नहीं हुई थी, परन्तु इन की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। १८५८ ई० में यह डुमरांवाधीश श्रीमान महाराजा राधाप्रसाद सिंह जी के शिक्षक नियत हुए। फिर राज्य का हिसाब किताब देखने का काम इन को दिया गया। १८६८ ई० में यह महाराज के निज के कारबार के प्रवन्धकर्त्ता और राज्यकोष तथा आईन सम्बन्धी कामों के अफ़सर बनाए गए। तदनन्तर सब ज़मींदारी कामों के मैनेजर हुए और १८८१ ई० में इन्हीं ने दीवान का पद प्राप्त किया। अपनी दीवानगीरी के समय इन्हों ने निजस्वामी की भलाई करते हुए अपनी बड़ी उन्नति की।

सरकार से इन्हें पहिले रायबहादुर और पीछे सी० आई० ई० का खिताब मिला था। बङ्गाल की लाटसभा के यह सभासद भी बनाए गए थे। १८८७ ई० में लखनऊ में प्रथम कायस्थ कान्फ्रेन्स के सभापति बनाए गए थे। डुमरांव-राज्य से इन्हें बहुत सी जागीर मिली है और इन्हों ने ब्रह्माप्रदेश में भी बहुत सी भूमि लेकर उस की आबादी का प्रबन्ध किया था जो अब अच्छी अवस्था में है। ७ फ़रवरी १८९७ ई० में इन का देहान्त हुआ और काशी विष्णुपद में इन की अन्तिम क्रिया की गई।

## ठाकुर जगमोहन सिंह ।

मध्यप्रदेशान्तर्गत विजयराघवगढ़ के राजवंशजों में से थे। पहिले इन का इलाक़ा कोर्ट आव वार्ड्स के आधीन होने से यह काशी में पढ़ते थे। बड़े अच्छे कवि थे। कई ग्रन्थ बनाए हैं। बड़े दिल के आदमी थे। पीछे ( Extra Assistant Commissioner ) नियत हुए थे।

## पंडित बालसरस्वती ( बाल शास्त्री )

बड़े नामी पण्डित, सी० आई० ई० के पद से आभूषित एवं जगन्मान्य थे। महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री आदि इन के शिष्य हैं। इन्हीं ने एक बार यज्ञ किया था।

## साहित्याचार्य्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास ।

यह पण्डित दुर्गादत्त ( दत्तकवि ) गौड़ के पुत्र थे। चैत्र शुक्ल संवत १९१५

में जयपुर में इन का जन्म हुआ। संवत १९१६ में यह अपने माता पिता के साथ काशी आए। निज पिता ही के निकट विद्याध्ययन करने से इन्हें कविता बनाने की शक्ति हो गई। १२ वर्ष की अवस्था में बाबू हरिश्चन्द्र ने इन्हें सुकवि की पदवी दी। १८७७ ई० में संस्कृत कालेज में "व्यास" का पद प्राप्त किया फिर परीक्षा देकर इन्हों ने "साहित्याचार्य्य" का पद लाभ किया।

पहिले यह मधुबनी पाठशाला में पण्डित हुए। फिर मुजफ़्फ़रपुर, भागलपुर, छपरा ज़िलास्कूलों में काम कर के बांकीपुर ट्रेनिंगस्कूल के पंडित हुए। थोड़े ही दिन बाद पटनाकालेज में संस्कृतप्रोफ़ेसर नियत हुए।

इन्हों ने संस्कृत एवं हिन्दीभाषा में बहुत से ग्रन्थों की रचना की है। इन के संस्कृत ग्रन्थों में 'सामवत नाटक' औ 'शिवविजय' गद्यकाव्य एवं हिन्दी ग्रन्थों में "बिहारी बिहार" तथा "सुकविसतसई" बहुत उत्तम और बड़े हैं।

यह सनातनधर्म्म के प्रसिद्ध उपदेशक थे। सर्वापेक्षा इसी से इन्हों ने बड़ी सुख्याति लाभ की थी। हम को पचासों धर्म्मोपदेशक तथा समाजसंशोधकों का व्याख्यान श्रवण करने का सुअवसर मिला किन्तु इन के समान व्याख्याशक्ति कम लोगों में देखने में आई।

एक बार हम को इन के साथ लाहौर तक जाने का सुअवसर मिला था। यह हम पर विशेष स्नेह रखते थे। निजरचित "गोसकट" नाटक का हम से अङ्गरेजी में अनुवाद कराये थे। जिन को इन का जीवनवृत्तान्त विशेष जानना हो वह "निजवृत्तान्त" नामक पुस्तक पाठ करें।

## श्रीमान् लाल खड्गबहादुर मल्ल।

ये श्रीमान् विश्वनवंशावतंस मझौलीनरेश उदयनारायण मल्ल जी के पुत्र थे। इन का जन्म संवत् १९१० भादो कृष्ण १२ मंगलवार को हुआ था। इन्हों ने पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था में संस्कृत, हिन्दी और फ़ारसी में अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी। अनन्तर घर ही पर अङ्गरेजी का भी पूरा अभ्यास कर लिया था। इन के दो विवाह हुए जिन में दूसरे से संवत १९३७ आषाढ़ कृष्ण १४ मगलवार को सुयोग्य वर्तमान महाराज कौशलकिशोरमल्ल का जन्म हुआ।

ये हिन्दी भाषा के सुकवि और सुलेखक थे। इन के बनाए गद्य, पद्य, गीत और इतिहास आदि के १७। १८ ग्रंथ छप चुके हैं जिन में "विश्वेनवंशवाटिका" नाम के ऐतिहासिक ग्रन्थ में इन के ११६ पीढ़ी का वर्णन है।

महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह ।

ये राजकाज, शिकार, गान, वाद्य, मल्लविद्या आदि में निपुण, सदाचारी, गुणग्राही और देशहितैषी थे।

इन्हीं के उत्साह से बाबू रामदीन सिंह ने इन के नाम से "खड्गविलास" यंत्रालय स्थापित किया था और इन्हीं के उत्साह से "क्षत्रियपत्रिका" का प्रकाश किया था। और इन्हीं के द्वारा बाबू हरिश्चन्द्र को अपने सच्चे और कीर्ति-स्थापक मित्र बाबू रामदीन सिंह से स्नेह हुआ था।

२१वीं जनवरी १८८० ई० को इन्हों ने स्वर्ग की यात्रा की। इन की जीवनी और दिनचर्या "विद्याविनोद" में छप चुकी है।

## म० कु० बाबू रामदीन सिंह जी।

इन का जन्म संवत् १९१२ पौष शुक्ल चतुर्दशी रविवार को संयुक्तप्रदेश के बलिया जिलान्तर्गत रेपुरा ग्राम में हुआ था। ये भारतवर्ष के प्रसिद्ध हैहयवंशीय क्षत्रिय थे। सहस्रबाहु कीर्तिवीर्य्यार्जुन आदि सुप्रसिद्धकीर्तिशाली पुरुषों के वंशधर होने से इन्हें अपने कुल का बहुत ही अभिमान था। इन के पिता का नाम महाराजकुमार बाबू अमर सिंह था। हत्वी महाराज से इनलोगों की बहुत निकटसंबंध है। बारह तेरह वर्ष की अवस्था में ये पटना पढ़ने आए। कई वर्षों तक आप ने हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन किया। १८८७ ई० में ये अच्छी हिन्दी लिखने लगे थे। उन्हीं दिनों इन्हों ने बिहारदर्पण (बिहार के २३ मनुष्यों का जीवन चरित्र) क्षेत्र-तत्त्व और सनिनजलोसी आदि कई पुस्तकें लिखीं। १८८७ ई० में इन्हों ने निजमित्र और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्रीमान लाल खड्गबहादुर मल्ल जी के नामपर "खड्गविलास" यंत्रालय स्थापन किया और उसी साल स्वजातीयहितसाधन के लिए "क्षत्रियपत्रिका" नाम का मासिक पत्र निकाला। फिर "द्विजपत्रिका" निकाली। "हरिश्चन्द्रकला" निकाल कर हिन्दी रसिकों को भारतेन्दु के ग्रंथों का स्वाद चखाया। पुन: "ब्राह्मण" नामक पत्र को कई वर्षों तक मरने से बचाया। पंडित प्रताप नारायण मिश्र, लाल खड्गबहादुर मल्ल, पं० दामोदर शास्त्री, पं० अम्बिकादत्त व्यास आदि सुलेखकों के ग्रन्थ प्रकाशित कर भाषाभंडार को पूर्ण करने में सब से प्रधान और अग्रगण्य

हुए। अनेक लेखकों से इन्हों ने द्रव्य वा सम्मान द्वारा उत्साहित कर के पुस्तकें और लेख लिखवाए। आप ऐसे विद्यानुरागी और उत्साही थे कि दिन रात इसी की चर्चा रखते थे। यथासम्भव एक मिनिट भी व्यर्थ न खोते थे। रास्ते में भी मनोयोग पूर्वक पुस्तक पढ़ते थे। ईश्वर ने स्मरणशक्ति ऐसी दी थी कि राह की पढ़ी पुस्तकों के विषय भी हृदयंगम हो जाते थे। धर्म्म के बड़े पक्के, ब्रह्मण्य, आस्तिक और विचार के पक्के थे। ये बड़े ही नम्र, दयालु, सज्जनशील, शीलवान थे पर आत्यभिमान से परिपूर्ण थे। देश-हितैषिता इन के रोम रोम में कूट कूट के भरी थी।

बाबू हरिश्चन्द्र पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि की जीवनी, टाड राजस्थान का अनुवाद, राजतरंगिणी का अनुवाद आदि कई मनोरथ इन के पूर्ण नहीं हो सके किन्तु इन के सुयोग्य पुत्र बाबू रामरणविजय सिंह उन की पूर्ति के लिए यत्नवान देख पड़ते हैं। ईश्वर इन के यत्न को सफल करें।

इनके तीन पुत्र बा० रामरणविजय सिंह, बा० शारंगधर सिंह और श्री रामजी सिंह हैं। ईश्वर इन लोगों को भी पिता के समान हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान का सच्चा हितैषी बनावें। और ये लोग अपने पिता के पदानुकरण करके सुयश के पात्र हों।

१३ मई बुधवार १९०३ ई० को ४८ वर्ष की अवस्था में श्री गंगातट पर इन का देहान्त हुआ। इन की जीवनी सुप्रसिद्ध लेखक पण्डितवर अयोध्या-सिंह उपाध्याय लिख रहे हैं।

## पंडित रामशंकर व्यास।

सं० १९१७ चैत्रशुक्ला रामनवमी तारीख ३१ मार्च १८६० ई० में इन का जन्म हुआ। इन के पिता का नाम श्रीयुत पं० गौरीप्रसाद जी है जो स्वर्गवासी आनरेबुल राय दुर्गाप्रसाद साहिब बहादुर गोरखपुर की रियासतके बहुतदिन से मनेजर हैं। निज सुयोग्यता, विद्वत्ता तथा कार्य्यदक्षता के कारण हाकिम हुक्काम एवं सर्वसाधारण में उन का बड़ा आदरमान है। राय साहिब के स्वर्गवास होने पर उन्हों ने गोरखपुर में एक अनाथालय उन का स्मारक चिन्ह स्थापित कराया है।

म० कु० बाबू रामदीन सिंहात्मज श्री बाबू रामरणविजय सिंह ।

पं० रामशंकर जो जाति के गुर्ज्जर ब्राह्मण हैं। १५२ वर्ष हुआ कि इन के पूर्वपुरुष अहमदाबाद प्रान्त से काशी आये और तब से ये लोग वहीं मानमन्दिर मुहल्ला में स्थित हैं। इन के पूर्वज निज विद्वत्ता के कारण सर्वदा सम्मानित होते आए है।

यह संस्कृत, हिन्दी, फ़ारसी, बंगला और गुजराती भाषा के ज्ञाता हैं। हिन्दी के एक अच्छे सुलेखक हैं। खगोलदर्प्पण, वाक्यपंचाशिका बात की करामात, नेपोलियन का जीवनचरित्र इन ग्रन्थों के कर्ता, एवं नूतनपाठ और मधुमती आदि ( बंगभाषा से ) के अनुवादक हैं।

कुछ दिन प्रसिद्ध " कविवचनसुधा " के अवैतनिक सम्पादक थे और सुधानिधि, उचितवक्ता, आर्य्यमित्र, क्षत्रियपत्रिका के लेखसहायक थे।

देशाटन तथा तीर्थयात्रा में इन की रुचि रहा करती है। अलूर, आगरा अमृतसर, हरिद्वार आदि में धर्म्म तथा देशसम्बन्ध में इन का व्याख्यान भी होता गया है।

७ वर्ष तक यह पूर्वोक्त स्वर्गवासी राय दुर्गाप्रसाद के प्राइवेट सेक्रेटरी, १० वर्ष तक श्रीमान काशीनरेश बहादुर के यहां तहसीलदार और सब रजिस्ट्रार रहे। गत वर्ष से गोरखपर के तालुकेदार श्रीकृष्णकिशोर चन्द्र जी के सरहरी स्टेट के मनेजर हैं। निज कार्य्यकौशल तथा सद्व्यवहार के कारण यह सब स्थानों में सम्मानित होते आते हैं।

देशहित, मातृभाषोन्नति, स्वजातिगौरव इत्यादि इन्हें सर्वदा अभीष्ट रहा करता है। काशी तथा अन्य प्रान्त के कई एक सभाओं के यह मान्य सभासद थे और हैं।

इन का धर्म्म वैष्णव है और कट्टर धर्मावलम्बी हैं। धर्म्म कर्म्म में पूरी आस्था है। और त्रिकाल सन्ध्यादि ब्राह्मण को जो कर्म्म करना चाहिए करते हैं। अष्टादशपुराण के पारायण का संकल्प रखते हैं और पूजन पर एक अध्याय नित्य पाठ कर लिया करते हैं। १३ पुराण का पारायण हो चुका है।

स्वभाव बड़ा नम्र, सरल और दयालु है। अन्य का कष्ट असह्य होता है "यतोधर्म्मस्ततोजयः" इन का भी यही सिद्धान्तवाक्य है। यह सब श्रेणी के लोगों के प्रेमपात्र हैं।

इन्हीं के " सारसुधानिधि " में प्रस्ताव प्रकाश करने पर लोगों ने बाबू हरिश्चन्द्र को "भारतेन्दु" के पद से आभूषित किया था। भारतेन्दु के परलोक-

यात्रा के समय यह उन की शय्या के पास ही बैठे हुए थे, मानो अन्त तक मित्रता का निर्वाह किया। भारतेन्दु के स्वर्गवास पर इन्हीं ने सब से पहिले "चन्द्रास्त" पुस्तक में उन की संक्षिप्त जीवनी प्रकाश कर के सर्वसाधारण में वितरण किया "हरिश्चन्द्रकला" के प्रकाशित होने और श्री हरिश्चन्द्र-निर्मित ग्रन्थों के सुदत्व-स्वत्व के प्राप्त करने में " खड्गविलास " यन्त्रालय को इन से अधिक सहायता मिलीथी।

## बाबू साहिबप्रसाद सिंह

इन का जन्म मुज़फ़्फ़रपुर ज़िलान्तर्गत रूपस ग्राम में हुआ था। यह जात के पम्मार क्षत्रिय थे। आप से और बाबू रामदीन सिंह से खड्गविलास यन्त्रालय स्थापित होने के पूर्वही से सङ्ग था प्रेस स्थापित होने पर आप मैनेजर नियत हुए। आप ने बहुत सी पुस्तकों की रचना की, जिन में भाषासार और स्त्रीशिक्षा से लोगों का विशेष उपकार हुआ है। प्रथम भाग भाषासार मिडलवर्नेक्युलरकी परीक्षा में और दूसरा संस्कृत संजीवन की परीक्षा का कोर्स था। डा० जी०ए ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से इन की प्रशंसा की थी आप अपने कर्म में बड़े निपुण, बड़े ईमानदार, दूरदर्शी और विचार के पक्के थे। बाबू रामदीन सिंह जी को ऐसे सहायक मिलने का गौरव था। इन के कारण कभी बाबू रामदीन सिंह को कारबार आदि की चिन्ता नहीं व्यापतीथी। इन का देहान्त २८ अगस्त १८०१ ई० वृहस्पतिवार को हुआ था। बाबू रामदीन सिंह को ऐसे सहायक खोने का जो शोक हुआ वह आमरण नहीं भूला। इन के मरने पर पद्यवद्ध जिन लोगों ने शोक प्रकाश किया था सो पुस्तकाकार छपा हुआ है।

## ग्रंथकार का परिचय।

### रोला।

अखूतिआरपुर गांव नगर आरा ते पच्छिम।
एक कोस पर अहै, ललित छबि कहत बनै किम?
पूरबदिस बहु भांति भांति के मन्दिर सोहत।
पुष्पवाटिका रुचिर सुखद सहजहि मन मोहत॥
पश्चिमदिस इक गांव जहां छत्रिन कर बासा।
जिन के उर सर्बदा बीरता करत निवासा॥
उत्तर सघन अराम सुहावन सरबकाल महँ।
चरत हुँकरत पशू, हँसत कूदत बारक जहँ॥
एक पुरातन राजपंथ तिह मध्य सुहावै।
सब दिन, सब रितु, पथिक एक आवै इक जावै॥
ऊंच २ सब वृच्छडारि डोलें यहि भांती।
श्रमहि निवारन हेत पथिक को मनहु बोलाती॥
अरु आगे उद्यान हेत नैनन को भावै।
समय समय छबि रंगरंग की बहु दरसावै॥
कहुं कपास, कहुं कुसुम, कहूं सरसों छबि छाजै।
कहुं फुद्कत लघुपच्छि कहूं परजापति राजै॥
कहूं सुनहरे बाल नाज के बात घात सों।
झूमत, मन उत्साह बढ़वत अति किसान को॥
कहुं किसान कर लकुट लिए घूमत ढिग आरी।
कहुं काटत कोउ खेत, लावती भोजन नारी॥
ऐसहि दच्छिन दिसहुं दृश्य हिय हर्ष बढ़ावै।

निसुदिन आवत जात रेल पुनि शब्द सुनावै ॥
बहत नदी दुहुंओर गांव के एक सदाई ।
मनु कोउ जन निज कांध श्वेत चादर फहराई ॥
बर्षा ऋतु सुठि छबी गांव को अधिक बढ़ावै ।
उत्तरदिस बहु दूर जलहि जल नैन जुड़ावै ॥
मानो उज्वल श्वेत कोउ बस्तर फैलायो ।
किधौं श्वेतघन सकल उतरि नभ सों छिति छायो ॥
कोउ लघुटापू [illegible] [illegible] [illegible] काल सुहावै ।
लखि [illegible] [illegible] हुलास अधिक आनँद उर आवै ॥
है यह परम प्रसिद्ध पुरातन गांव जिला महं ।
श्रीवास्तव कायस्थ केर अधिवास अधिक तहं ॥
ताहि नगर में भए सिंह भगवान उजागर ।
रहि वकालत काम करत तिन नगर जवनपुर ॥
तिन के सुत श्री गुरसहाय हरि अति सुविज्ञवर ।
ग़ाजीपुर महं तसिलदार पुनि कुर्क कमिशनर ॥
तिन के भे सुत चार प्रथम हरिवंश नामधर ।
पुनि जगदम्बसहाय अरु रामुग्रह तीसर ॥
चौथे कालिसहाय पूज्यपद पिता हमारे ।
प्रथम सुवन हम जासु द्वितिय सुरलोक सिधारे ॥
ऋषी शशी ग्रह ब्रह्म*सु सम्बत क्वार दूज सित ।
चन्द्रवार दिन पहर शेष मम जन्म तबहिं छित ॥
पंचम बरसहि पढ़न लग्यों मकतब नित जाई ।
पितहू सों कछु काल पढ़ो पारसि लरिकाई ॥

---

* सं० १८१७ ।

पुनि स्कूल मों जाय सिखौं अंगरेजी भाषा ।
पासकियो इन्ट्रेंस बढ़ी चाकरि अभिलाषा ॥
भयौं जजो मह दोएम किरानी बयस इकोसा ।
फेर अकौंटेंट हेडकिरानी कीन्ह गिरीसा ॥
करत अहौं अब काम ट्रैंसलेटर को ताता ।
भजत सदा जगदीस सकल मुद-मंगल-दाता ॥
व्यास अम्बिकादत्त कै वक्तृता मनोहर ।
सुनि, उपज्यो चित चाव सिखन हित हिन्दी हितकर ॥
पढ़ि पढ़ि श्रीहरिचंदग्रंथ बाढ़्यो अनुरागा ।
नितनित हिन्दी सरस मधुर भाषा मन पागा ॥
श्री सुमेरहरि काव्यशास्त्र के परम-सु-वेता ।
कविता की कछु रीति सिखाए उनहिं सहेता ॥
तीन बरस भयो भयी बंगभाषा भलि भाई ।
तासु अध्ययन हेत कियो श्रम मनचित लाई ॥
मित्रन के अनुरोध लिखी यह पुस्तक जसमति ।
पढ़ि कै पाठकवृन्द करब मम श्रमहु सुफल अति ॥
उन्निस सौ अरु चार ईसवो सुठि मधुमासा ।
पूरन भो यह ग्रंथ होत जो आज प्रकासा ॥

सोरठा ।

प्रियनन्दन मम नाम, अनुचर हिन्दी-रसिक को ।
पाठक बुद्धि-ललाम, छमब भूल जो कछु भयो ॥
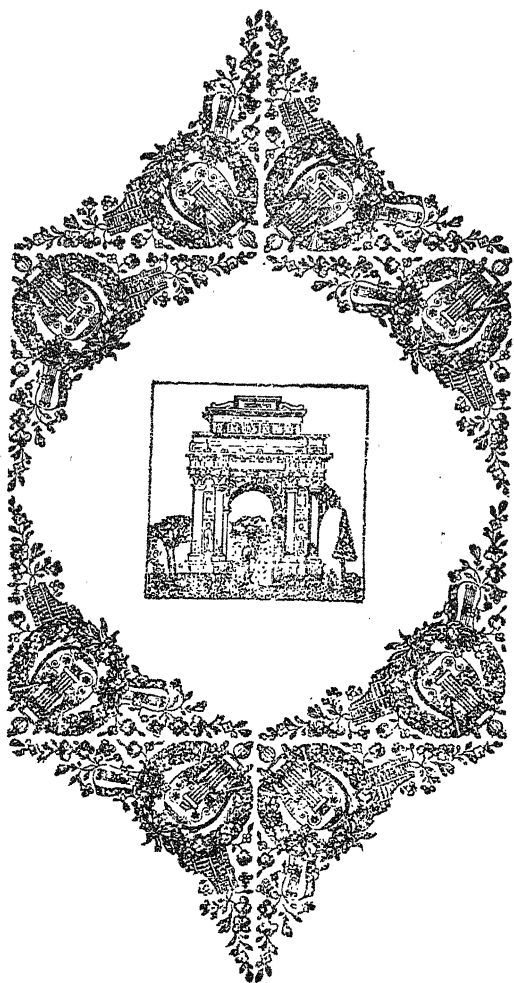
श्रीमान् भारतभूषण-भारतेन्दु-श्रीबाबू-हरिश्चन्द्रजी की

# जन्मपत्री ।

---

यूरोपियन् रीत्यनुसार

सुधाकरद्विवेदि-विरचित

१८८४ ।

श्रीः ।

# भूमिका ।

—※—

इष्ट समय में क्रान्तिवृत्त और नाडीवृत्त का जहां सम्पात हो उस विन्दु से गणना कर आकाशस्थ पदार्थों का जो मान सिद्ध होता है उसे सायनमान कहते हैं और इसी मान से सब आकाशस्थ पदार्थ यथार्थ आकाश में देख पड़ते हैं। हमारे यहां के अति प्राचीन महर्षिगण भी इसी सायनमान को मुख्य मानते थे यथा वराहमिहराचार्य अपनी संहिता में लिखते हैं कि "आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं धनिष्ठाद्यम्। नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु" अर्थात् किसी समय में आश्लेषा नक्षत्र के उत्तरार्ध के आरम्भ ही से दक्षिण अयन और धनिष्ठा नक्षत्र के आरम्भ ही से उत्तर अयन होता था इस में किसी प्रकार का संशय नहीं क्योंकि प्राचीन शास्त्रों में महर्षियों ने ऐसा ही लिखा है। इसी प्रकार ज्यौतिषवेदाङ्ग जिस से प्राचीन ज्यौतिषशास्त्र में कोई पुस्तक नहीं है उस में लिखा है कि "स्वराक्रमते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ। स्यात्तदादियुगं माघस्तपः शुक्लायनं ह्युदक्" अर्थात् जब सूर्य चन्द्रमा दोनों धनिष्ठा के आद्य में हो साथ ही आकाश में चलें वही आदि युग है और उसी दिन से उत्तर अयन आरम्भ होता है। जिस समय में यह स्थिति रही होगी उस समय में ज्यौतिषसिद्धान्त विद्या के बल से

सिद्ध होता है कि तेईस अंश बीस कला अथवा अयनांश था और आजकल बाईस अंश के लगभग अयनांश है इसलिये दोनों का अन्तर पैंतालिस अंश बीस कला वा सोरह हजार तीन सौ बीस विकला हुआ। अब यदि एक वर्ष में अयनांश की गति पचास विकला मानो तो उस समय से आज तक तीन हजार दोसै चौंसठ वर्ष हुये। सृष्टि के आरम्भ ही में लोग सब विद्या में नहीं निपुण हो सके इसलिये पूर्व संख्या में दो हजार वर्ष जोड़ के, यूरप देश के विद्वान लोग सृष्टि के आरम्भ का समय पांच हजार वर्ष के लगभग बताते हैं। वे लोग इस पांच हजार वर्ष को स्थिर करने के लिये हमारे ही शास्त्रों से अनेक प्रमाण देते हैं, इस छोटीसी पुस्तक में जिन का लिखना मैं व्यर्थ समझता हूं।

निदान यह सायनगणना चिरकाल से इस भारतवर्ष में प्रसिद्ध थी पीछे से साधारण लोगों ने आलस्य से इस सायन गणना को छोड़ निरयण गणना आरम्भ किया। सायन गणना में प्रतिवर्ष यन्त्रादि द्वारा आकाशस्थ पदार्थों का वेध करना पड़ता है तभी सब वस्तु यथार्थ सिद्ध होते हैं अन्यथा अन्तर पड़ने लगता है, ऐसा ही सूर्य्यसिद्धान्त में भी लिखा है कि "गोलंबद्ध्वा परीक्ष्येत नक्षत्रध्रुवकान् स्फुटान्" अर्थात् गोलयन्त्र को बनाकर नक्षत्रादिकों का ध्रुवा शोधना चाहिये। मैं अनुमान करताहूं कि पीछे से लोग यन्त्रद्वारा वेध करने में आलस्य करने लगे इसीलिये निरयण गणना आरम्भ हुई। अब आज काल भारतवर्ष के

ज्योतिषी लोग सृष्टि के आरम्भ में जिस बिन्दु पर क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त का सम्पात था उस बिन्दु से गणना करते हैं और इन लोगों के मत से सृष्टि के आरम्भ से आज तक १९७२९४८९८४ इतने वर्ष हुये, इसलिये हम लोग वेधद्वारा अब कभी नहीं निश्चय कर सकते कि यथार्थ में आज कल वह बिन्दु कहां है और जब तक उस बिन्दु का निर्णय न होगा तब तक निरयण गणना ठीक है वा नहीं इसका भी ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये निरयण गणना केवल प्राचीनों के वचन ही के विश्वास से मान्य है आकाश में कोई उसे दिखा नहीं सकता। निदान इन सब बातों का यथार्थ विचार कर और यूरप देश के गणित के अनुसार अनेक नये मत हुये हैं उन के कारण से यूरपदेश के फलितवेत्ता जाडकील इत्यादि अनेक प्रकार के फल कहते हैं इत्यादि जान, श्रीमान् भारतभूषण भारतेन्दु गुणिजनगुणगणैकमूर्त्ति श्रीबाबू हरिश्चन्द्र महाशय ने मुझ से कहा कि जिस सायन गणना से महाराज * रामचन्द्रादि की कुण्डली पूर्व समय में बनी हुई है उसी गणना से आप एक हमारी कुण्डली ऐसी बना- इये कि जिस के देखने से अनेक चमत्कार जान पड़ें। इस- लिये केवल पूर्वोक्त महाशय की इच्छा पूरी करने के लिये और गुणिजनों के विनोदार्थ सायन और निरयण गणना दोनों पर से मैंने इस कुण्डली की रचना की। जिस प्रकार

---

* सायन गणना न मानने से श्रीरामचन्द्र जी का जन्म नवमी तिथी को नहीं आता।

से गर्गाचार्यादिकों ने श्रीकृष्णचन्द्रादिकों की कुण्डली यथार्थ आकाशस्थ दृश्य ग्रहों पर से बनाकर भाग्योदयादि का विचार किया है ठीक उसी प्रकार से इस कुण्डली में भी सब यन्त्रद्वारा ठीक ठीक यथार्थ दृश्यग्रह लिखे हुये हैं। इस कुण्डली के अन्त्य में हमारे यहां के प्राचीन ऋषियों के मत से जो गुलिक और धूमादि उपग्रह उत्पन्न होते हैं उनको भी चमत्कारार्थ लिख दिया है। यद्यपि केतुओं की गति अनियत है तथापि हमारे यहां के प्राचीन महर्षियों ने कितने केतुओं की वेधद्वारा नियत गति जान कदाचित् गुलिकादि और धूमादि नाम से उन का प्रकाश किया हो तो आश्चर्य नहीं। विशेष वस्तु इस कुण्डली के देखने ही से विदित हो जायगा मेरा विशेष लिखना कुछ आवश्यक नहीं।

१८८३ ईसवी } सुधाकरद्विवेदी।
बनारस, खजुरी।

श्रीगणेशाय नमः।

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशिं नाशयति विघ्नानाम्॥ १॥

सन् १८५० सेप्टेम्बर मास की नवीं तारीख सोमवार के आधीरात के अनन्तर ४ घण्टा ३७ मिनट १२ सेकण्ड पर काशी में (जहां का अक्षांश = २५°, १९′) श्रीमान् बाबू हरिश्चन्द्र जी का जन्म हुआ। उस समय में ग्रीनविच स्थला- लय में दोपहर के अनन्तर ११ घण्टा ५ मिनट ३० सेकण्ड बजे थे। दोपहर दिन में ग्रहों का ज्ञान कर जन्म समय का ग्रह जानने के लिये चालन का समीकरण

$$\frac{गति}{२} - \frac{गति}{२०} + \frac{गति}{८०} - \frac{गति}{२८८०}$$ इसे लाघव से

$$\frac{गति}{२}\left(१ - \frac{१}{१०} + \frac{१}{४०} - \frac{१}{१४४०}\right)$$ ऐसा भी लिख सक्ते हैं।

पूर्वोक्त समीकरण से जन्म समय का रवि अयनांश संस्कृत = १६६°। ५१′। ४६′.७ इसे ५ राशि १६ अंश ५१ कला ४७ विकला ऐसा भी बोलते हैं उस समय में रवि अपनी कक्षा क्रान्तिवृत्त को छोड़ उस के उत्तर ०″.५५ इतने अन्तर पर था, पृथ्वी * के मध्य से सूर्य की दूरी का लघुरिक्थ

* मध्यममान से भू से रवि की दूरी = ९१५११००० मील इसका अपवर्त्तन देकर सब सब दूरियों का लघुरिक्थ निकाला गया है और जिसका लघुरिक्थ ऋण आता है उस में दश जोड़ के धनमान लिया है।

( अर्थात् Logarithms ) = ०.००२७८५१ रवि की उत्तरा क्रान्ति अर्थात् लङ्का से जितना उत्तर ओर हटा हुआ है उसका मान = ५°। ११′। २६″.७। स्पष्ट सायन चन्द्र = २१६°। ३८′। ९″.६ = ७ राशि ६ अंश ३८ कला और १० विकला, चन्द्रमा और रवि के कक्षावृत्तों का अन्तर अर्थात् उत्तर शर = ५°। १०′। १२″ लङ्का से चन्द्रमा का दक्षिण अन्तर अर्थात् दक्षिणा क्रान्ति = ८°। ५१′। ३५″.१

बुध की दक्षिणा क्रान्ति = ७°। १४′। ३५″.७

पृथ्वी के मध्य से दूरी का लघुरिक्थ = ०.००५८६९६

शुक्र की दक्षिणा क्रान्ति = १३°। ३०′। २०″.५

दूरी का लघुरिक्थ = ९.९४३५७६४

मङ्गल की दक्षिणा क्रान्ति = ४°। ५′। ५२″.४

दूरी का लघुरिक्थ = ०.२९०८९८२

वेस्टा की उत्तरा क्रान्ति = ८°। ४०′

दूरी का लघुरिक्थ = ०.५१८१

जूनो की दक्षिणा क्रान्ति = ३°। १६′।

दूरी का लघुरिक्थ = ०.६००४

पलाश की उत्तरा क्रान्ति = ५°। १२′

पलाश के दूरी का लघुरिक्थ = ०.३८१२

सीरीज़ की दक्षिणा क्रान्ति = १२°। १०′

सीरीज़ की दूरी का लघुरिक्थ = ०.३००८

बृहस्पति की उत्तरा क्रान्ति = १°। ५′। २४″

बृहस्पति की दूरी का लघुरिक्थ = ०.८०७८८८४

शनि की उत्तरा क्रान्ति = ५° । १३′ । २०″.५

दूरी का लघुरिक्थ = ०.९८२९७९२१

जै आरजेन या यूरेनस अथवा हर्षल की उत्तरा क्रान्ति = १०° । ५४′ । ३″.७ दूरी का लघुरिक्थ = १.२८१५००७

## जन्म के समय में सूर्यलोक में बसनेवालों के अभिप्राय से ग्रहों का मान ।

बुध = २६९° । १५′ । २४″. १ = ८ राशि २९ अंश १५ कला २४ वि. क्रान्तिवृत्त से दक्षिण अन्तर अर्थात् दक्षिण शर = ४° । ४५′ । २४″.६ सूर्य से बुध की दूरी का लघुरिक्थ = ९.६६५५२५८ इसी प्रकार

शुक्र = १८८° । ४०′ । ४८″ ८ = ६ राशि १८ अंश ४० कला ४९ वि.

सूर्यसंबन्धि दक्षिण शर = १° । ५१′ । ५८″.७

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = ९.८६२०९६७

मङ्गल = २०६° । ३२′ । ४२″.७ = ६ राशि २६ अंश ३२ कला ४३ वि.

सूर्य संबन्धि उत्तर शर = ०° । ४१′ । १६″.९

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = ०. २०४०६९७

वेस्टा = १७२° । ३०′ = ५ राशि २२ अंश ३० कला

सूर्य संबंधि उत्तर शर = ६° । ४०′

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = ०. ३६१८

जूनो = २२०° । ५४′ = ७ राशि १० अंश ५४ कला

सूर्य संबंधि उत्तर शर = १०° । ५′

सूर्य से दूर का लघुरिक्थ = ०.५२१६

पलाश = ३३१° । ५४′ = ११ राशि १ अंश ५४ कला

सूर्य संबंधि उत्तर शर = १३° । ४८′

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = ०·५२२०

सौरीज् = ३५८° । ५३′ = ११ राशि २८ अंश ५३ कला

सूर्य संबंधि दक्षिण शर = १०° । ३१′

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = ०· ४६९१

शुक्र = १८२° । ११′ । १५″·९ = ६ राशि २अंश११कला१६ वि·

सूर्यसंबंधि उत्तर शर = १° । १८′ । ९″·४

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = ०·७३६३४५४

शनि = १६° । २६′ । ४९″·५ = ०राशि १६ अंश २६ कला ५०वि·

सूर्य संबंधि दक्षिणशर = २° । २८′ । ४.″११

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = ०·९७१६०६८

जी आरजेन वा यूरेनस अथवा हर्षल = २७° । ५३ । ४३″·७

= ०राशि २७ अंश ५३ कला ४४ विकला

सूर्य संबंधि दक्षिण शर = ०° । ३३′ । ५ ९

सूर्य से दूरी का लघुरिक्थ = १· २९८१६१६ ।

सूर्यलोक का ग्रह जानके उस पर से सूर्य और ग्रह का अन्तर जान भूलोक का ग्रह जानने के लिये नीचे लिखे हुये समीकरण सब गणकों के लिये बहुत उपयोगी हैं ।

$$\frac{\text{ज्यामग़·रक}}{\text{भि}} = \text{द्ध}, \ (१) \quad \frac{\text{भि·द्ध}}{\text{भूक}} = \text{ज्यास्पग} \ (२)$$

$$\frac{\text{भूक·कोज्यास्पग}}{\text{भि}} = \text{भूक}, \ (३) \quad \frac{\text{रस्र.·ज्यासं}}{\text{भूक}} = \text{ज्याशीफ} \ (४)$$

इन चारो समीकरणों में

मस्र = सूर्यसम्बन्धि ग्रहों का शर ।

रक = सूर्य से दूरी का मान

भूक = पृथ्वी से दूरी का मान

स्पश = पृथ्वी सम्बन्धि शर

भू'क = योजनात्मक स्पश की कोटिज्या

अं = रवि और ग्रह का अन्तर

रभु = पृथ्वी से सूर्य की दूरी

शीफ = रविलोक का ग्रह और भूलोक का ग्रह इन का अन्तर।

पूर्वोक्त चारो समकरणों से जन्म समय में भूलोक के अभिप्राय से ग्रहों के मान

बुध = १९३°।१२'।४५".१ = ६ राशि १३ अंश १२ कला ४५ विकला, स्पष्टशर = २°।१०'।१९" दक्षिण

शुक्र = २११°।४५'।१४".८ = ७ राशि १ अंश ४५ कला १५ विकला, स्पष्टशर = १°।१३'।४४" दक्षिण

मङ्गल = १९१°।२४'।०".७ = ६ राशि ११ अंश २४ कला १ विकला, स्पष्टशर = ०°।२६'।५.१" उत्तर

वेस्टा = १७०°।४७' = ५ राशि २० अंश ४७ कला स्पष्टशर = ४°।४३'।५४" उत्तर

जूनो = २०८°।५८' = ६ राशि २८ अंश ५८ कला स्पष्टशर = ८°।२३'।४९" उत्तर

पलाश = ३२५°।२१' = १० राशि २५ अंश २१ कला स्पष्टशर = १९°।१५'।४०" उत्तर

सीरीज़ = ५°। ८' = ० राशि ५ अंश ८ कला

स्पष्टशर = १५°। ३५'। ५९" दक्षिण

गुरु = १७९°। ४८'। ५२".९ = ५ राशि २९ अंश ४८ कला

५३ विकला, स्पष्टशर = १°। ६'। १७" उत्तर

शनि = १९°। ४७'। ५७".५ = ० राशि १९ अंश ४७ कला

५७ विकला स्पष्टशर = २°। ४३'। ४३" दक्षिण

यूरेनस = २९°। ५२'। ३२".७ = ० राशि २९ अंश ५२ कला

३३ विकला स्पष्टशर = ०°। ३४'। २३" दक्षिण

## स्पष्ट ग्रहों का चक्र संस्कृत के अनुसार।

| र | चं | बु | शु | मं | वे | नू | प | सौ | गु | श | यू | ग्र |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५ | ७ | ६ | ७ | ६ | ५ | ६ | १० | ० | ५ | ० | ० | रा |
| १६ | ६ | १३ | १ | ११ | २० | २८ | २५ | ५ | २९ | १९ | २९ | अं. |
| ५१ | १८ | १२ | ४५ | २४ | २७ | ५८ | २१ | ८ | ४८ | ४७ | ५२ | क. |
| ४७ | १० | ४५ | १५ | १ | ० | ० | ० | ० | ५३ | ५७ | ३३ | वि. |
| उ | द | द | द | द | उ | द | उ | द | उ | उ | उ | दिशाक्रान्ति |
| ५ | ८ | ७ | १३ | ४ | ८ | २ | ५ | १२ | १ | ५ | १० | अं. |
| ११ | ५१ | १४ | ३० | ५ | ४० | १६ | १२ | १० | ५ | १३ | ५४ | क. |
| २७ | ३५ | ३६ | २० | ५२ | ०० | ०० | ०० | ०० | २४ | २० | ४ | वि. |
| उ | उ | द | द | उ | उ | उ | उ | द | उ | द | द | दिशा शर |
| ० | ५ | २ | १ | ० | ४ | ८ | १९ | १५ | १ | २ | ० | अं. |
| ० | १० | १० | १३ | २६ | ४३ | २३ | १५ | ३५ | ६ | ४३ | ३४ | क. |
| १ | १३ | १९ | ४४ | ५१ | ५४ | ४९ | ४० | ५९ | १७ | ४३ | २३ | वि. |

## स्पष्टग्रहों का चक्र अङ्गरेज़ी के अनुसार

Geo-centric = भूकेन्द्राभिप्राय से ।

| | Longitude. | Declination. | Latitude. |
|---|---|---|---|
| ☉ | १६° ♍ ५२′ | N. ५° ११′ | N. ०° ०′ १″ |
| ☾ | ६° ♏ ३८′ | S. ८° ५२′ | N. ५° १०′ |
| ☿ | १३° ♎ १३′ | S. ७° १५′ | S. २° १०′ |
| ♀ | १° ♏ ४५′ | S. १३° ३०′ | S. १° १४′ |
| ♂ | ११° ♎ २४′ | S. ४° ६′ | N. ०° २७′ |
| ⚶ | २०° ♍ २७′ | N. ८° ४०′ | N. ४° ४४′ |
| ⚵ | २८° ♎ ५८′ | S. ३° १६′ | N. ८° २४′ |
| ⚴ | २५° ♒ २१′ | N. ५° १२′ | N. १९° १६′ |
| ⚳ | ५° ♈ ८′ | S. १२° १०′ | S. १५° ३६′ |
| ♃ | २९° ♍ ४९′ | N. १° ५′ | N. १° ६′ |
| ♄ | १९° ♈ ४८′ | N. ५° १३′ | S. २° ४४′ |
| ♅ | २९° ♈ ५३′ | N. १०° ५४′ | S. ०° ३४′ |

शीघ्र ज्ञान होने के लिये ग्रहों का और राशियों का स्वरूप ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ☉ = रवि | ⚴ = पलाश | ♈ = मेष | ♎ = तुला |
| ☾ = चन्द्र | ⚳ = सीरीज़ | ♉ = वृष | ♏ = वृश्चिक |
| ☿ = बुध | ♃ = गुरु | ♊ = मिथुन | ♐ = धन |
| ♀ = शुक्र | ♄ = शनि | ♋ = कर्क | ♑ = मकर |
| ♂ = मंगल | ♅ = यूरेनस | ♌ = सिंह | ♒ = कुम्भ |
| ⚶ = वेस्टा | ☊ = राहु | ♍ = कन्या | ♓ = मीन |
| ⚵ = जूनो | ☋ = केतु | N = उत्तर | S = दक्षिण |

Longitude = ग्रह का राश्यादि. Declination = क्रान्ति. Latitude = शर.

गणितशास्त्र के अनुसार राहु और केतु की ग्रहों में गणना नहीं है परन्तु भारतवर्ष के फलितवेत्ताओं ने ग्रह माना है इसलिये जन्मसमय में सायन राहु=१३२°। ५०′। ४२″ =४ राशि १२ अंश ५० कला ४२ विकला, सायन केतु=३१२°। ५०′। ४२″=१० राशि १२ अंश ५० कला ४२ विकला।

यदि जन्मसमय में साढ़े एक्कीस अंश अयनांश मानो तो निरयण ग्रह
र = ४ रा २५ अंश २१ क ४० वि। चं = ६ रा १५ अंश ८ क १० वि।
बु = ५ रा २१ अंश ४२ क ४५ वि। शु = ६ रा १० अंश १५ क १५ वि।
मं = ५ रा १६ अंश ५४ क १ वि। वे = ४ रा २८ अंश ५० कला।
जू = ६ रा ० अंश २८ कला। प =१० रा ३ अंश ५१ कला।
सो =११ रा १३ अंश ३८ कला। गु = ५ रा ८ अंश १८ क ५३ वि।
श =११ रा २८ अंश १० क ५० वि। यू = ० रा ८ अंश २२ क ३३ वि।

ये ठीक ग्रह वैसे ही हैं जैसे आज कल श्रीबापूदेवशास्त्री के पञ्चाङ्ग में सब ग्रह लिखे रहते हैं अर्थात् यदि जन्म के समय में बापूदेवशास्त्री का पञ्चाङ्ग होता तो उस्के अनुसार वेस्टा, जूनो, पलाश, सीरीज़ और यूरेनस को छोड़ बाक़ी सब ग्रह पूर्व लिखे हुये ग्रहों के तुल्य होते। जन्मसमय में निरयण राहु=३ रा २१ अं २० क ४२ वि, निरयण केतु=६रा २१ अं २०कला ४२ विकला। जन्म समय में स्पष्ट दिनार्ध=६ घण्टा ६ मिनट ५० सेकण्ड।

आकाश के बीच से पूर्व के ओर झुका हुआ रवि का नतकाल = ७ घण्टा १७ मिनट ५० सेकण्ड । रवि का विषुवांश=१६७° । ५४' । ५३" ६ इसमें नत-काल का अंश घटा देने से आकाश के मध्य का विषुवांश=५८° । २७' । २१" ६ आकाश के मध्य का भुजांश=६०° । ३७' । ४" अर्थात् उस समय में आकाश का मध्य मिथुन राशि के ३७ कला ४ विकले पर था । आकाश का मध्य और लग्न का अन्तर=६१° । २' । १५" इसे आकाश के मध्य में जोड़ देने से सायन लग्न=१४६° । २६' । ४७" =४ राशि २६ अंश २६ कला ४७ विकला । निरयण लग्न=४ रा ७ अं ५७ कला ४७ विकला

और सायन पृथ्वी

=१० राशि १६ अंश ५१ कला ४७ विकला, सूर्यलोक के वश से और निरयण पृथ्वी

=१० राशि २५ अंश २१ कला ४८ विकला, सूर्यलोक के वश से ।

सायन जन्मकुण्डली ।
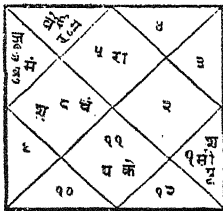
निरयण जन्मकुण्डली ।
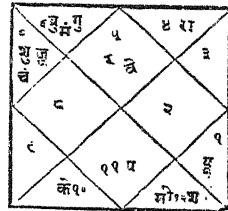
विलायत में यदि जन्मकुण्डली भेजना हो तो ठीक नीचे की नकल भेजना चाहिये ।

Bábú Hariśchandra is born at 4h 37m 12" A. M. of Septemper 9, 1850 at Benares, in lat. 25° 16' N. and long. 83° E. of Greenwitch.

## SPECULAM.

| ☉ | ☾ | ☿ | ♀ | ♂ | ⚶ | ⚵ | ⚴ | ⚳ | ♃ | ♄ | ♅ | Planets. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 19° ♍ 52′ | 6° ♏ 38′ | 13° ♎ 13′ | 1° ♏ 45′ | 11° ♎ 24′ | 20° ♍ 27′ | 28° ♎ 58′ | 25° ♒ 21′ | 5° ♈ 8′ | 29° ♍ 49′ | 19° ♈ 48′ | 29° ♑ 53′ | Geocentric. Longitude. |
| N. 5° 11′ | S. 8° 52′ | S. 7° 15′ | S. 13° 30′ | S. 4° 6′ | N. 8° 40′ | S. 3° 16′ | N. 5° 12′ | S. 12° 10′ | N. 1° 5′ | N. 5° 13′ | N. 10° 54′ | Apparent. Declination. |
| N. 0° 0′ 1″ | N. 5° 15′ | S. 2° 10′ | S. 1° 14′ | N. 0° 27′ | N. 4° 44′ | N. 8° 24′ | N. 19° 16′ | S. 15° 36′ | N. 1° 6′ | S. 2° 44′ | S. 0° 34′ | Latitude. |

The right ascension of the meridian was 60° 37′ 4″ in arc. 29° 29′ 47″ of Leo was ascending.

Medical Hall Press, Benares.

श्रीभारतेन्दुकविवर्यवरिष्ठवरस्य
विद्वज्जनैकगणगण्यस्य महोदयस्य ।
जन्मोत्सवालयगतो हरिचन्द्रनाम्नः
पत्री मया विरचितेह सुधाकरेण ।

इसी वर्ष में अर्थात् सन् १८५० में मई की आरम्भही में रवि मङ्गल के क्षेत्र में और मङ्गल रवि के क्षेत्र में है इस कारण से मई मास के आरम्भही में काशी में चौखा टूटा था क्योंकि दोनों अग्निप्रकृति हो परस्पर दूसरे के स्थान से अग्नि का उपद्रव आरम्भ किये । इस प्रकार आडकील साहब के मतानुसार बहुत से फलों का ज्ञान हो सकता है निरयण और सायन दोनों के सम्बन्ध से ।

॥ शुभम् ॥

ऋषियों की कारिका है कि दिनमान का आठ विभाग कर दिनपति से गणना करने से जो विभाग शनि का आवे वह गुलिक और बुध के विभाग का नाम अर्द्धप्रहरक इत्यादि पांच उपग्रह बनाये हैं बाकी विभागों को त्याग कर दिया है । रात्रि के लग्न में रात्रि का आठ विभाग कर दिनपति से पांचवां ग्रह जो हो वहां से पूर्वोक्त गणना कर गुलिकादि जानना ।

पूर्वोक्त से यदि जन्म समय में गुलिकादि ले आवो तो नीचे लिखे हुये के तुल्य होते हैं ।

| साधन गुलिकादि | | निरयण गुलिकादि |
|---|---|---|
| १ राशि १४ अं२७क४६वि | = गु = | ० रा २२ अं ५७ क ४६ वि |
| २ रा ८ अं३५ क१५वि | = काल = | १ रा १७ अं ५ क १५ वि |
| ३ रा १८ अं१२क५०वि | = मृत्यु = | २ रा २७ अं ४२ क ५० वि |
| ४ रा ८ अं१६क३३वि | = अर्धप्रहरक = | ३ रा १६ अं ४६ क ३३ वि |
| रा ४ २७ अं१४ क१२वि | = यमघण्ट = | ४ रा ५ अं ४४ क १२ वि |

[illegible] के मतानुसार पांच और उपग्रह रवि के कारण से उत्पन्न होते हैं।

उन्हें कमलासन नाम के ऋषि इस प्रकार से लिखते हैं। रवि में ४ राशि १७ अंश के जोड़ने से धूम होता है, धूम को बारह राशि में घटा देने से पात होता है, पात में छ राशि जोड़ने से परिवेष, परिवेष को बारह राशि में घटा देने से इन्द्रधनु और इन्द्रधनु में १७ अंश जोड़ देने से केतु होता है।

ऊर्ध्व लिखित प्रकार से यदि जन्मसमय में इन का मान निकालो तो नीचे लिखे हुये के तुल्य होते हैं।

| सायन धूमादि | | निरयण धूमादि |
|---|---|---|
| ९ रा २९ अं ५१ क ४७ वि | = धूम = | ९ रा ८ अं २१ क ४७ वि |
| २ रा ० अं ८ क १३ वि | = पात = | २ रा २१ अं ३८ क १३ वि |
| ८ रा ० अं ८ क १३ वि | = परिवेष = | ८ रा २१ अं ३८ क १३ वि |
| ३ रा २९ अं ५१ क ४७ वि | = इन्द्रधनु = | ३ रा ८ अं २१ क ४७ वि |
| ४ रा १६ अं ५१ क ४७ वि | = केतु = | ३ रा २५ अं २१ क ४७ वि |

सन् १८५१ ई० से यूरप देश के ज्योतिषी लोग नेप-च्यून नामक ग्रह को भी अपने पञ्चांग में लिखने लगे परन्तु फलित के माननेवाले फलादेश में इस नये ग्रह को नहीं मानते क्योंकि बारहो राशि में एक फेरा इस का लगभग १६४ एक सौ चौंसठ बरस में होता है तो कहीं एक सौ चौंसठ बरस के अनन्तर तब इस का कुछ कुछ स्वभाव जान पड़ेगा।

जन्म समय में सायनमान से नेपच्यून मीन राशि में था और निरयण मान से कुम्भ राशि में।

इस नये ग्रह का चिन्ह यूरप के ज्योतिषियों ने ⏀ ऐसा कल्पना किया है।

वेस्टा और जूनों का स्वभाव प्राय: गुरु के सदृश है और सीरीज़ और पलाश का प्राय: शनि के सदृश।

सायनमिश्रित कुण्डली। निरयणमिश्रित कुण्डली।

मुद्रापद्धकोपितमिमं ग्रन्थमथ

मयाकारि विद्वज्जनानन्ददात ।

चमत्कारयुक्तं बुधैर्निरीक्ष्य

करोतु श्रमं मे सफलीकृत पूर्णम् ॥

पं. सुधाकरेण

# प्राचीन गद्य वा गद्य पद्य मिश्रित ग्रंथ।

| ग्रन्थों के नाम | कर्ता | किस सम्वत का बना | किस सम्वत का लिखा |
|---|---|---|---|
| * शालिहोत्र (गद्य पद्य) | ० | १६६९ | ० |
| * भुवनदीपक (गद्य) | ० | ० | १६७१ |
| * छन्दावली (गद्य) | वृन्दावन | ० | १८९१ |
| * गोराबादल की कथा (गद्य पद्य) | जटमल | १६८० | ० |
| * यंत्रराज विवरण (गद्य) | ० | ० | १८०० – २५ |
| * भाषामृत भगवद् गीता की टीका (गद्य) | भगवानदास | १७५६ | १८६६ |
| * प्रह्लादोपाख्यान (गद्य) | ० | ० | ० |
| * उपनिषद् भाष्य (गद्य) | ० | १७१६ | १८६९ |
| * नासिकेत उपाख्यान (गद्य) | सदल मिश्र | ० | १८६० |
| * कान्यकुब्ज – वंशावली (गद्य पद्य) | ० | ० | १८९४ |
| * बिहारीसतसई (गद्य पद्य) | कृष्णदास | १७०७ | १८३७ |
| * भक्तमालप्रसंग (गद्य पद्य) | वैष्णव दास | ० | १८२९ |
| * षट् प्रश्नी निर्णय (गद्य पद्य) | मनोहरदास निरंजनी | ० | १८२२ |
| * हम्मीर रासो (गद्य पद्य) | अज्ञात | ० | १८६१ |
| * हितोपदेश भाषा टीका (गद्य पद्य) | ० | ० | १८५४ |

| ग्रन्थों के नाम | कर्ता | किस सम्वत का बना | किस सम्वत का लिखा |
|---|---|---|---|
| * भगवद् गीता ( गद्य ) | | | १७६८ |
| * आत्मानुशासन ( गद्य पद्य ) | गुन भद्र स्वामी | १८१८ | १८२७ |
| * खुद्दष्ट (सुदिष्ट तरंगिणी (गद्य पद्य) | | १८३८ | |
| अनन्तराय साखील की वार्ता (पद्य गद्य) | केवाट सरवरिया | १८५४ | |
| पिंगल काव्यभूषण ( गद्य पद्य ) | बख्शी समन सिंह | १८७६ | १८८६ |
| श्री सूरदासजी का दृष्टकूट टीका (गद्यगद्य) | बालकृष्णदास | १८८५ | |
| गीत रघुनन्दन प्रमाणिका टीका सहित ( गद्य पद्य ) | महाराज विश्वनाथ सिंह | १६०१ | १६०१ |
| धनुर्विद्या मूल टीका (गद्य पद्य) | महाराज विश्वनाथ सिंह | | १८८७ |
| अयोध्यामाहात्म्य ( गद्य ) | उमापति | १६२४ | |
| परम धर्मनिर्णय तीनखंड (पद्य गद्य) | महाराजाविश्वनाथ सिंह | | १६०५ |

* यह सूची बनारस "नागरीप्रचारिणी सभा" के कार्याध्यक्ष बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा हम को हस्तगत हुई है। जिस पर ऐसा * चिन्ह किया हुआ है वे सब लल्लूलाल जी के पूर्व के बने वा लिखे ग्रन्थ हैं।

To all Chowdharees Zamindars and Cultivators.

Know all ye by these presents that we send Baboo Fattehchund to your Purgana to carry on enquiries, it having been ascertained that ye have neglected to pay the full amount of your revenues to the *Amil* of that district either in specie or in corn and that in paying a part only of your revenues, ye have shewn disaffection. Under these circumstances, ye shall either submit and pay the revenue or suffer condign punishment on an unfavourable report on your case being made by the said Baboo Fattehchund.

(Sd.) JONN. DUNCAN.

*The 28th April 1789.*

---

بابو صاحب مهربان دوستان سلمه

چون بروز جمعه تاریخ چهارم ماه مئي سنه حال که در سرکار کمپني انگریز بهادر دام دولته روز مسعود محمود است محفل عیش و نشاط و ضیافت روشني و انبساط بخانه دوستدار مقرر گشته لهذا مرقوم میگردد که بروز مذکور وقت ده ساعت شب تشریف آورده مسرت افزای خاطر دوستان شوند زیاده چه نگاشته آید فقط

(Sd) F. HAWKINS.

Dinner, fire works and other entertainments will be given at my house on the 4th May which is an auspicious day for the Honorable East India Company. Your friendly presence on that occasion is respectfully solicited. The time fixed being 10 P. M.

(Sd) F. HAWKINS

---

بابو صاحب مهربان دوستان سلمه الله تعالي

بعد شوق ملاقات واضح باد که بتاریخ هیجدهم این ماه مئي سنه ۱۲۳۹ ع روز شنبه اینجانب در بنارس رفته بمکان مستر جیمس گاردن صاحب خواهند ماند چون امری ازان مهربان گفتني است لهذا بقلم مي آید که صباح آن واقعه تاریخ نوزدهم ماه مذکور روز یکشنبه وقت ده دوازده گهنته از ملاقات مسرور سازند

ومناسب که از جواب رقیمه هذاهم بزودے مطمئن فرمایند زیاده بجز اشتیاق
چه بقلم آید المرقوم چهاردهم ماه مئي سنه ۱۸۳۹ ع *

(Sd). A. J. TAYLER.

I shall go to Benares by the 18th instant, i. e. May 1839 and shall put up with Mr. J. Gordon. I have to consult with you about something. Please call on me on Sunday, i. e. the 19th between the hours 10 and 11.

(Sd.) A. J. TAYLER.

*The 14th May 1839.*

---

بابو صاحب مشفق و مهربان بابو هرکهه چند صاحب سلامت

پس از تسطیر مراسم اشتیاق ملاقات مسرت طراز مشهود خاطر گرامي
آنکه خط مسرت نمط که معرفت مسٹر ولیم کاري صاحب فرستاده بوده
درواد الوقت مسرت و شادماني نمود و آنچه که بنسبت خلعت نگارش فرموده
اند هر گاهیکه صاحب ممدح در آنجا تشریف خواهند آورد باد مشافه از اوشان
دریافت نمود بخدمت سامي ازال اطلاع کرده خواهد شد خاطر شریف جمع
فرمایند و آنچه که بطریق تهنیت و مبارکبادی فرزند ارجمند نونهال گلستان
سعادت و اقبال طالعمرها نگارش فرموده اند آنرا محمول برمزید روابط خلوص
محبت و اتحاد نموده مسرت شادمانها نموده لازمه منشاء محبت ضمیمي اینکه همواره
ورد رقایم محبت شمایم مورد محبت و اتحاد مي افروده باشند المرقوم سي و یکم مارچ
سنه ۱۸۳۴ ع

(Sd.) R. H. HAMILTON.

*Meerut, 31st March, 1834.*

---

بابو صاحب مشفق مهربان سلمه الله تعالے

بعد سلام کے واضح هو که اپ کله کے روز تین ساڑهی تین بجے میرے پاس آئی
اپکو مین جناب نواب لفٹنٹ گورنر صاحب بهادرکي حضور مین لیچلونگا المرقوم
انتیسوین ستمبر سنه ۱۸۵۷ ع

(Sd.) TREMBLIN.

Kindly come to me at three half to-morrow when I will introduce you to H. H. the Lt. Governor.

(S.l.) TREMBLIN.

*29th September 1857.*

بابو صاحب مهربان دوستان مخلص صميم زاد محبته

پس از شورش اشتياق كثير مكشوف خاطر خلوص ايما گردانيده مي آيد
رقيمه كريمه مشحون مراسم اخلاص در زماني كمال تعلق عزيزه بابو بهاري لعل نزول
مسرت آورده و خاطر را انشراح فرح داده آنچه از حالات دران مندرج بوده
قلبه و لذا همه باوراك رسيد و از بابو بهاري لعل موصوف ملاقات بخوبي
گرديده لوازم اختصاص اقتضائي آن دارد كه تا رفع مهجوري و انقضاي زمان
دوري از ارسال صحايف اخلاص مسرور الوقت دارند كه باعث اطمينان
بر واقع بوده است زياده خيريت *

(Sd.) THURSBY.

---

KIND SIR,

The Bearer of this letter, Lálá Kálikaprasád, of my Sirkar Munshi, goes to you and will inform you his purpose. Please receive him well and hear his case personally.

MIRZA RAJA NARAYANA GAJAPATI RAJ
MANEYA SULTAN BAHADUR
*Grand Father of the Present Maharaja of Vizianagram.*

---

*Reply of the Viceroy to a letter forwarded with Pamphlet called "Su[illegible]li" written in honour of H. R. H. the Duke of Edinburgh's visit to this city.*

GOVERNMENT HOUSE,
*Simla, 14th May, 1870*

SIR,

I am directed to acknowledge with thanks your letter of the 10th ultimo and the pamphlet which accompained it.

I remain, Sir,
Yours faithfully,
O. T. BURNE, Major.

*Baboo Harish Chandra.*

*Ditto of the Lieutenant-Governor, N. W. P.*
*23rd April 1870.*

SIR,

The Lieutenant-Governor desires me to thank you for sending him a copy of your work entitled "An offering of flowers."

Yours obediently,
T. S. LILLINGTON.

*Baboo Harish Chundra*

---

*Ditto of H. H. The Maharajah of Rewah, G. C. S. I.*

I have much pleasure in conveying to you my thanks for the trouble which you have taken in presenting me with an address which contains an expression of joy by the members of the Committee on my rewarding the Pandits of Benares. Further I am right glad to see that you had the promptness to come forward to show your loyalty to H. R. H. the Duke of Edinburgh during his late visit to your city by presenting to him an Offering of Flowers. Being descended of a respectable and rich family, and having had the advantage of receiving a liberal education you always seek the welfare of your countrymen. Addresses that were presented to me, and the high eulogiums and blessings that were poured forth from almost every quarter of the city are due to your sole exertion, an exertion that deserves my warmest gratitude which I convey herewith through this letter with a sanguine hope that it may meet with your acknowledgment.

BENARES :
*Dated 11th June 1870.*

M. R. R. S. OF REWAH,
G. C. S. I.

*To Baboo Harish Chundra, Benares.*

*Ditto of H. H. The Maharajah of Boondee.*

Your statements with respect to Baboo Harish Chundra show that he is a gentleman of position and high breeding. That he wrote a book called "Sumananjali" and dedicated it to H. R. H. the Duke of Edinburgh for whose honour it was written, shows his loyalty and good sense. Men who are true representatives of the Hindu race, are, in these days, very rare. Only such men, therefore, as Baboo Harish Chundra, are to be considered as promoters of the Aryan race.

To MUNNA LALL

---

## ADDRESS PRESENTED TO BABOO HARISH CHUNDRA BY THE PUNDITS OF BENARES.

---

## ENGLISH TRANSLATION OF THE ABOVE.
### ( *PRAYER* )

*My God, whose feet angels worship, bless him and his family.*

1, 2, and 3. Babu Haris Chundra, pleasing by his manners, chief of the Vaisyas or merchants, the best among the bees which suck the honey in the lotus-like feet of Krishna who is attended by glowing milk-maids and who receives at his feet the crested heads of angels ; the said B. Harish Chundra endowed with immense qualities obtained through the favour of Krishna convened a meeting of the noble citizens of Benares at the time when the Queen's Royal Son, the Duke of Edinburgh, was travelling through Hindustan.

4.—People say that the moon shines when the sun sets ; but this proverb is strangely contradicted in the name Harischandra which means that the sun and moon have risen together.

5.—He attracted the minds of the audience first with pleasing songs and subjects full of wit and then with the praises of the Queen's Royal son who is saluted by all kings and whose qualities, contending for precedence, recur of their own accord, to the mind of the poet.

6.—The said Baboo Harishchundra, then, taking a "chaplet of flowers" in his hands prepared by learned Pundits offered it to the Queeen's Royal Son and distributed its blessing, the men and Pundits assembled.

7.—The Maharajah of Rewah, on this occasion, patronizing the efforts of Poetry, happily bestowed on the Pandits assembled by B. Harishchandra, many silver boxes each containing one hundred Rupees like so many mines of riches.

8.—So, Harishchundra is the cause of the honour of the learned as the sun and moon ( as his name implies ) are, causes of day and night.

9.—We ( the Pundits assembled) pray God, both day and night, and Fortune to bestow on Harishchandra happiness. Yonder moon's beams, compared with him, are Doshkar which means both " the causer of night " and " full of defects. " May he be long happy with his cattle, sons, wife and friends, riches and clothes and mansions, and may he rob, with the sweetness of his fame, the sweetness of every other thing.

Sd. Bapudev Sastri
do. Dharmadhikari Dhundhirajpant
do. Dwiveda Bastiram
do. Pt. Sitalprasad Tiwari
do. Pt. Bechanram Tivari
do. Rajaramsastri
do. Govinddeva Sastri
do. Bala Sastri
do. Gangadhur Sastri
do. Kedarnath Sarma

Sd. Dwiveda Ramapati
do. Kaliprasad Sarma
do. Vamanacharya
do. Narsinh Sastri
do. Ramkrishna Sastri
do. Yageswer Pandit
do. Sripal Sarma

The learned men of Benares offer this address to Baboo Harishchundra which they request him to accept.

## EXTRACT

*From an Address of H. H. the Maharajah of Rewah*

" Baboo Harishchandra printed these poems at his own expense and presented them to me who received them and placed them in my library. Although in former times great rewards were offered for such poems, I at present, can send only ~~Rs~~. 2,000, which sum, the Princess Consort to Ramraj Singh and daughter to H. H. The Maharaja of Vizianagram, will bestow upon the Pundits that they may pray for Her Majesty's children who may frequently bless this land with their visit. "

Maharajah RAGHURAJ-SINH,
Knight Grand Commander of the Star of India.

---

## ADDRESS BY THE PRINCESS VIZIANAGRAM.

*Princes and Gentlemen,*

His Highness The Maharaja Bandhaveswar of Rewah is pleased with your city and the poems composed by your Pundits and sends you 2,000 Rupees to reward the Pundits who wrote poems in nonour of H. R. H The Duke of Edinburgh. I add on my part Rs. 250. and the whole sum, i. e. ~~Rs~~. 2,250, I bestow on them, which, I hope, they will severally accept.

Princess Consort to Ramraj Sinh.

*Extract from an address delivered by H. H. the late Maharajah of Vizianagram, K. C. S. I.*

" At the time of H. R. H. the Duke of Edinburgh's advent to Benares the principal Pandits and Poets came to a meeting at Babu Harischandra's and read there poetic productions. These were afterward published by Babu Harishchandra and caught attention of H. H. the Maharajah of Rewah, G. C. S. I. who being pleased sent Rs. 2,000 to Pandit Ragunath Prasad, City Inspector. This gentleman caused several silver boxes to be prepared with the names of different Pandits and Poets and a *Sloka*. engraved on them and requested the Lady of the said Maharaja's brother, the Maharaj Kumarika of Vizianagram for distribution. She acceded to his request and at a convocation in the Maharajah of Vizianagram's mansion on the 2nd June 1870 which was attended by H. H. and many other Rajas and Babus sent the Rs. 2,000 given by H. H. the Maharajah of Rewah together with Rs. 280 of her own and two addresses. The one from H. H. the Maharajah of Rewah and the other from the Maharaj Kumarika of Vizianagram. They were read before the meeting. Babu Harischandra read an address from the side of the people of Benares in complement to the above. The money referred to was then distributed by H. H. the Maharajah of Vizianagram to 28 Pandits and Poets at the rate of Rs. 100 each. They then read out their respective verses as expression of thanks. "

## AN ADDRESS PRESENTED TO HIS HIGHNESS THE MAHARAJA DHIRAJ KRISHNA CHANDRA KRIPAPATTRADHIKARI BANDHAVAESH SREE RAGHURAJ SINHA JU DEVA BAHADOOR G. C. S. I. OF REWAH.

MAY IT PLEASE YOUR HIGHNESS,

We the undersigned members of the Committee convened

at the house of Babu Harish Chandra, for presenting an Offering of Flowers to His Royal Highness the Duke of Edinburgh, and the residents of the city, beg to approach to your Highness with sentiments of profound respect and gratitude for the interest so kindly shown to us in our proceedings.

It is highly gratifying to us to see that your Highness has so kindly rewarded the Pandits who took so much interest in expressing their sense of loyalty to the son of Her Gracious Majesty Queen Victoria during His Royal Highness's visit to this Holy City, Benares. Words cannot express our sense of heart-felt thanks for the encouragement given by your Highness to the learned Pandits of Benares.

With our fervent prayers to the Almighty, that He may vouchsafe to your Highness every happiness and long life,

BENARES :<br>*Dated the 2nd June*, 1870.

We subscribe ourselves to be<br>Your Highness's Obdt.<br>Servants.

(Sd.) HARUK CHAND,<br>
" SIVA PRASAD,<br>
" NURSINH DAS,<br>
" AISHWARYA NARAYAN SINHA,<br>
" RADHAKRISHNA DASS,<br>
" MADHO DASS,<br>
" MADHUSUDAN DASS,<br>
" BALKRISHNA DASS,<br>
" MADHO DASS,<br>
" BISSESUR DASS,<br>
" MADHUVAN DAS DUWARKA DAS,<br>
" BAPUDEV SHASTRI,<br>
" BAL SHASTRI,<br>
AND OTHERS.

# LA LANGUEAGEA ET LA LITTERATURE HINDOUSTANIES 1870. PAR M. GARCIN DE TASSY PARIS.

Le Babu Hari Chandra, toujours zeli pour la litterature hindie, continue a publier soit dans son Kavi-bachan-sudha, soit sèparèment des ouvrages hindis. Je remarque aussi, parmi les livres hindis nouveaux, un traitè accompagnè de textes Sanscrits tirès des Schastars sur la ligalité du mariage des veuves hindoues, imprime à Lahore, avec la reputation de l'opinion contraire ; et la publication en plusieurs volumes, d'un commentaire hindi de l'oyajur veda rédigé par le Raja de Besma (Pargana d'Iglus), qui, bien qu'ardent sanscritiste, ne de daigne pas d'ecrire dans sa langue maternelle (3)

## 1872.

Le Kabi bachan-sudhà or Kabi-bachan-sudhà continue, conformement á son titre, de publier des extraits d'ouvrages hindis, et c'est toujours surtout par la que ce journal se distingue des autres journaux hindis et urdus. Son editeur, le Bobu Hari Chandra, traite, dans le numero du 9 mars 1872, la question de l'opinion publique dans l'Inde, qui a eté I objet d'un interessant discours du Saiyid Muhammad Mahmud, mentionne dans ma "Revue" de 1871 (2), et de meme que le digne fils de Syed Ahmad Khan it pense, par les mimes raisons que lui, qu'il est a peu pris impossible de la connaitre vu surtout les croyances si diverses des Indiens.

## 1873.

A ce propos on ne saurait trop repeter quil ne s'agit pas, en réalite, d'unè nouvelle langue qui doive remplacer l'urdu

en certains lieux, mais plutot simplement d'une autre écriture comme l'expliquent le Munschi Kaci-nath (4) et le savant Haris Chandra lui-méme, qui s'xprime ain si a ce sujet (5).

---

1877.

Sons le titre de Mano Mukula mala "Bouquet de fleursé d'esprit" le Babu Harischandra, don't j'ai souvent mentionn es publications Hindies, a public à I occasion du nouveau titre de la Reine d' Angleterre un recueil de poesies fantaisistes, entre autres ungazal urdu dans lequel il a prislc surnom poetique de Raca (1) et dont voici la traduction :

"Que toujours le nom de Schahans-chàh soit beni : Que le darbar de la Casarine de l' Inde soit beni ! et.

—o—

*Thursday Evening.*

MY DEAR SIR,

I am in receipt of your letter and of the Book of your School. It is always a pleasure to me to be associated in any good work and that which you have undertaken and which has prospered so far so well in your hand is one eminently to be commended. I shall be too glad to be in the honourable place that you assign to me in your Committee. It is also a great pleasure to me to be associated with a native gentleman like yourself, of whom I hear nothing but what is good on every side.

I am, Dear Sir,
Yours very truly,
( Sd. ) C. P. CARMICHAEL.

P. S.

I shall add that I shall take an early opportunity of visiting your school. So soon as the weather becomes a little cooler which I hope it will so soon as we have a good fall of rain.

*Thursday Evening.*

MY DEAR SIR,

I read your letter at the meeting this morning and so made those present there acquainted with the very handsome donation which you had given towards the object they had in hand. We regretted much that you were not able to attend the meeting. I have heard much of you from my friend Mr. Sherring and hope soon to have the pleasure of making your acquaintance personally.

I am, Yours very truly,
( Sd. ) C. P. CARMICHAEL.

---

VIZEARAM BAGH: *2nd July 1870.*

MY DEAR BABOO HARISCHANDRA SAHIB,

I shall feel much obliged by your getting all the *Raises, Mahajans* and people in general of your caste and others to Vejearam Bagh on Sunday evening, the 3rd Instant at 5 o'clock P. M., for making arrangement about the most unreasonable and ruinous marriage expenses that are in existence in N. W. Provinces and I am sure that all the people invited will most gladly give all the assistance we want in so laudable a cause.

Your sincere friend and well wisher,
( Sd. ) R. VIJEANAGAR.

VIJEARAM BAGH,
*25th October 1871.*

MY DEAA BABOO SAHIB,

Will you give us the pleasure of your company at our Bhart Melap, on Thursday the 26th instant at 8 P. M., at Dasasomade and afterwards Fire-works at Vijearam Bagh.

Your sincere friend,
(Sd. ) R. VIJEANAGAR.

---

TREVANDRAM,
*30th November*, 1873.

MY DEAR FRIEND,

I am really exceedingly glad to learn that I shall have an opportunity of seeing you my good and worthy friend here shortly. I am all impatience to know when I shall have that very great pleasure. Certainly this part of India is worth seeing. Here are a great many favours pagodas well worth being visited. You will want nothing here. Pray be sure therefore to visit Trevandrum. Here is the sacred place called अनन्तनरायन and there is the renowned जनार्दनं &c. At any rate I most earnestly request you will come down and visit your friend here.

I don't quite comprehend what you mean by 'Ilaicha' एलाफल means Cardamoms, which is a valuable produce of the hills of this country. But why should you trouble yourself about it now? If you are to come here you can personally hear, see and have anything you want.

How welcome is the news of your visiting this is to all of my friends here! Pray don't disappoint us.

With kindest regards and best wishes,
I am,
Yours very sincerelly,
KERALA VARMA,
(H. H. THE PRINCE OF TRAVENCORE.)

---

BENARES, *19th July, 1871.*

MY DEAR BABOO,

I am glad to learn that you have enjoyed your trip to the hills. We have had a great deal of rain here and the air is in consequence quite cool. Everything is going on such as usual

Yours faithfully,
J. QUINN.

---

SIMLA, FINANCIAL DEPT.
*The 15th July, 1876.*

DEAR SIR,

Sir William Muir, &c, desires me to acknowledge the receipt of your letter of 11th instant and to convey to you his thanks for the Kavitta which you have kindly sent him.

Yours faithfully,
( Sd.) D. BARBORN

HARIS CHANDRA,
*Benares.*

---

COOLOOTOLA, CALCUTTA,
*18th October, 1871.*

MY DEAR SIR,

I feel it to be my duty to thank you on behalf of the Brahmosomaj of India for the active interest you have taken in procuring the opinions of the learned Pandits at Benares on the subject of the legality of Brahmo marriages. Your exertions in the cause of truth entitle you to our wa mest thanks. I enlcose herewith for your perusal copy of a letter which has appeared this morning in the *Englishman.*

Yours very truly,
KESHUB CHUNDER SEN.

MY DEAR FRIEND,

I hear you have resigned. Is it a fact ? If so you have acted very injudiciously. The authorities like your decisions very much, and as far as I know no body had any thing to say against you. If possible recall your resignation, and don't let us lose a good colleague in the Court of Honorary Magistrates.

(Sd.) AISWARYA NARAYAN SINH.

---

At the request of Babu Harischandra, I have much pleasure in stating what I know of him. Since I made his acquaintance

some years ago, I have always held him in high esteem and regard on account of his many social and public virtues: for about 4 years he was associated with me as an Honorary Magistrate of this city.

As a leading Citizen he has ever taken a prominent part in public affairs, for which by education, &c, he is well fitted. A Boys' School, founded by him long ago still exerts an influence for good. As a public writer as well as in social and public life I have always believed him to be thoroughly loyal to the Government.

* * *

* * *

(Sd.) E. J. LAZARUS, M. D.

*Benares, July 15th 1880.*

---

*Dated 5th June 1871.*

No. 54.

Two Garden Seats for the Maidagin Garden.

Informs him that the Municipal Committee has acknowledged the present of the above with thanks and requests his sending Rs. 58-15-6 (fifty eight, annas fifteen and pies six) the cost of the above, including Railway freight, received from Calcutta.

(Sd.) J. QUINN,

*Secretary, Municipal Committee.*

---

*Panjab University College.*

FROM

E. W. PARKER, ESQ.,

*Offg. Registrar,*

*Panjab University College, Lahore,*

TO

BABOO HARISCHADRA,

*Honorary Magistrate, Benares.*

*Dated 2nd May, 1874.* } *No. 175.*

DEAR SIR,

I am directed by the Executive Committee of the Panjab University College to enquire if you would kindly undertake the examination in Sanskrit of the Oriental series of examinations to be held in November next. As much importance is attached to the *viva voce* examination it would be very desirable if you could come to Lahore to conduct this part of the examination personlly.

The University College would be prepared to present you with an honorarium of Rs. 100 besides meeting travelling expenses.

Yours very truly,

(Sd.) E. W. PARKER,

*Offg. Registrar.*

—o—

FROM *Baboo Harischandra, Dated 22nd Decr. 1876 forwarding some copies of Mano Makula Mala.*

GOVERNMENT HOUSE,

*Calcutta, 22nd January, 1879.*

The undersigned is directed to acknowledge with thanks the receipt of the communication noted on the margin.

Sd O. T. BURNE, LIEUT. COL.,

*Private Secretary to the Viceroy.*

No. 721.

FROM

THE DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION,

To

BABU HURIS CHUNDRA,

*Chowkhamba Benares.*

FORT WILLAM, THE 2ND FEBRUARY, 1881.

SIR,

I have the honour to acknowledge with thanks the receipt of the two Benares *Saris* sent with your letter dated the 21st January last, for presentation to the two girls named Mrinalini and Pryamvada, who have passed the lower vernacular scholarship examination lately held at Krishnanaghur, and to state that the *Saris* have been forwarded to the Deputy Inspector of Schools, Nuddea, with instructions to present them to the above-named girls.

I have the honour to be,
Sir,
Your most Obedient. Servant,
(Sd.) A. CROFT,
*Director of Public Instruction.*

---

No. 62.
1881-82.

EDUCATIONAL DEPARTMENT.

FROM

THE PRINCIPAL, GOVT. COLLEGE,

*Benares.*

To

BABU HARISCHANDRA,

*Benares.*

BENARES COLLEGE, 19TH MAY 1881.

ENCLOSURE.

(4) Four watches, 3 to be awarded to the students who passed in the last Achàrya examination, and one to Damodar Dàs, B. A.

Has the honour to acknowledge the above with thanks, and to state that the watches will be awarded according to the wishes of Babu Harischandra.

(Sd.) G. THIBAUT,
*Principal, Benares College.*

—o—

LOUDON'S BUILDING, CALCUTTA, 6TH DECEMBER 1881.

SIR,

I am directed to acknowledge, with thanks, the receipt of your letter of the 30th ultimo, forwarding some sheets of a table showing the minute difference of time between the motion of the sun and of clocks, and also two sheet Almanacs for 112 years together with some Hindi verses of welcome to Benares.

I have,
Sir,
Yours obediently,
(Sd.) E. T. BRETT,
*For Private Secretary to the Viceroy.*

*Baboo Harischandra.*

---

OFFICE OF THE DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION,
*Calcutta, the 12th March, 1882.*

DEAR SIR,

I find that through an accidental cause, which I regret, I have omitted to inform you of the distribution by Her Excellency Lady Ripon of the *Saris* which you so kindly sent as prizes to the young ladies who passed the late Entrance Examination. Through the kindness of the Committee of the Bethune School, the presentation of Sarees was included in the general programme of the ceremony of prize-giving to the pupils of the school, on which Her Excellency presided. The announcement of your benefaction was received with cheers; and I am assured that the young ladies are delighted to receive so pleasant a recognition of their efforts.

Allow me to thank you sincerely on behalf of the young ladies, and remain

Yours very faithfully.
A. CROFT.

HARISCHANDRA,

---

ALLAHABAD,
19th *March*, 1862.

DEAR SIR,

In reply to your letter of the 18th instant, I beg to say that I have received the *Sári* from the Director, P. I., of the Panjab and have sent it as a present from you, to the pupil of the Dehra Misson School who passed the last Entrance examination.

The three other *Sáris* have been presented to Miss Johnstone, Miss Purves, and Miss M. Mitter. The two former have left school, and the latter has joined the Calcutta Free School.

Miss Purves begs me to convey her thanks to you for your present. From the other two ladies I have not yet received an acknowledgment.

Arakid's School is not in these Provinces.

Yours faithfully,
R. GRIFFITH.

---

GOVERNMENT HOUSE, SIMLA,
*8th April, 1882.*

SIR,

I have laid before the Viceroy your letter to me of the 29th ultimo, giving an account of a meeting of the Rayises and learned gentry of Benares held, on your invitation, to mark your gratitude for the escape of Her Majesty the Queen Empress from the recent attempt upon her life. His Excel-

lency was much interested in this account, and desires me to inform you that he will have much pleasure in communicating it to Her Majesty.

I am, Sir,
Your Obedient Servant,
H. W. PRIMROSE.

BABOO HARISCHANDRA.

---

GOVERNMENT HOUSE SIMLA,
*19th October, 1882.*

SIR,

I beg to acknowledge the receipt of your letter of the 13th Instant, forwarding 12 copies of a congratulatory poem on the success of the British Arms in Egypt, and to state that I have retained 3 copies for His Excellency the Viceroy and return the rest, in order that if you wish them forwarded to the Queen Empress, you may submit them in the first instance to His Honor the Lieutenant Gevernor, N. W. P., in accordance with the recognised rules.

I am,
Sir,
Yours obediently,
H. W. PRIMROSE,
*Private Secretary to the Viceroy.*

BABOO HARISCHANDRA.

---

*26th October*, 1882.

To

BABU HARISCHANDRA,

*Benares.*

SIR,

In acknowledgment of your letter of 24th October 1882, I beg to inform you that the books should be sent by you to the Collector of this District, who will forword them in the usual way.

I beg now to return the books.

I remain, Sir,
Your obedient servant.
C. A. DANIEL,
*Commissioner and Agent to Governor General.*

---

No. 893 OF 1882.
POLITICAL DEPARTMENT N.-W. P. AND OUDH.
*Dated Camp Lucknow, 27th November* 1882.

OFFICE MEMO :

Undersigned is directed to inform Babu Harischandra, of Benares, that the twelve copies of his poem, on the success of the British Arms in Egppt, have been forwarded to His Excellency the Viceroy and Governor General of India.

R. SMEATON,
*Junior Secretary to Government N.-W. P. and Oudh.*

To

BABU HARISCHANDRA,
*Benares*

---

No. 960 of 1882.

FROM

THE JUNIOR SECRETARY TO GOVERNMENT,
NORTH-WESTERN PROVINCES AND OUDH,

To

BABOO HARISHCHNDRA,
BENARES.

*Dated Allahabad 23rd December*, 1882.

SIR,

In continuation of this Office memoradum No. 893 dated 27 November last, I am directed to convey to you the thanks

of the Government for the copies of your poem in commemoration of the success of the British Arms in Egypt.

I have the honour to be,

Sir,

Your most obedient servant

R. SMEATON,

*Junior Secretary to Government N.-W. P. and Outh.*

---

*20th March*, 1883.

*Frederic Pincott sends his greetings and good wishes to Babu Harischandra, Esq.*

DEAR SIR,

Although I have never lived in India, for a long time past the study of the languages of that country has seemed to me a very fascinating pursuit; because, in my opinion, it is a meritorious act for every one, to the utmost of his power, to cause the English and Hindu people to live harmoniously together. It is impossible for any one to respect another, so long as both are unable to comprehend each other's knowledge and intellectual power; hence, before the harmonious living together of two races, it is essential that their languages should be acquired and their books explained. With this object in view I have learnt four Indian languages, namely Sanskrit, Hindi, Persian, and Urdu, and have read many books in those languages, and disseminated the contents in England. Furthermore, I have produced some books for teaching the Hindí language; among them one is "The Sakuntalà in Hindí," another "The Hindí Manual," both these books have been Commended by the Civil Service Commissioners, who have ordered that all those studying Hindí in England should read these two books. Quite recently they have ordered that every Englishman who wishes to enter the Civil Service of India must learn the Hindí language.

After reading the above-written intelligence, you will easily understand how much pleasure I felt when I received through the post, by your favour, a great parcel of Hindi books. Among these books there are several of your poems which I shall read with delight; and there are also several dramas which will be very useful for teaching the Hindi language.

In the opinion of English scholars it is to be regretted that Hindú authors, in writing their works, do not employ common Hindí expressions, such as they are constantly using in their own homes. Instead of that, many authors mix so much Sanskrit with their Hindí that Hindí, becomes almost pure Sanskrit. I am exceedingly pleased to perceive that it is impossible to ascribe such a fault to your works.

The receipt of these books has caused me the greatest pleasure; and there are two reasons for this pleasure; one is, that by reading these books my knowledge of Hindí will be increased; and the other is, that the receipt of these books made it clearly apparent that there are some patriots in India. By some means or other you have become aware that I am a student of Hindí then, from mere love of your country, you have extended to me this admirable assistance. Without doubt, I shall ever remember your kindness.

Both the "Dukhiní Bàlà" and the "Andhera Nagari" will be especially useful, because in them there are many common expressions, by which the knowledge of Hindí will be increased in England. The "Satya-Harischandra" is also very good; and the "Mudràràkshas" is the work of a real scholar. Only an intelligent scholar has power to make such a good translation as that is. Both text and notes are good.

I am sending you, by the post, a copy of my "Hindí Manual," which I respectfully ask you to be good enough to accept. Should you detect any errors in the book, and will point them out to me, I shall be still further obliged to you.

Hoping again to have the pleasure of hearing from you I most earnestly hope that God will long preserve your useful life.

(Sd.) FREDERIC PINCOTT,
77 SUMMER ROAD, PEKHAM,
LONDON, ENGLAND.

---

*Shriyut Bhàratendu Bàbú Harischandra, Benares.*

NATIONAL ANTHEM FOR INDIA FUND,
14, COCKSPUR STREET, LONDON, S. W.,
FRIDAY, MARCH 16TH 1883.

To

BABOO HARISCHANDRA,
*of Benares.*

MOST ESTEEMED. SIR,

The fame which your last poem on the Egyptian campaign, which was partly read to me yesterday, will I trust prove an excuse for my addressing you in the name of a very influential Committee of English noblemen and gentlemen who are seeking to establish the well known British National Hymn, 'God Save The Queen' as the National Anthem of India. This will be done it is hoped by translations into 20 Indian Vernaculars. Of these serveral are already made e. i. Mirza Muhammad Khan has made versions in Arabic, Persian and Hindostani. Rujah Jotendra Mohun Tagore of Calcutta in Bengali, Sanskrit and Hindi. Professor Max Muller in Sanskrit, Mr. K. N. Katrayi of Bombay in Gujerati and some half a dozen more. We should esteem it a very high honour if you would make a Hindi version which would suit the rythom of the melody. Perhaps the system of reduplicating some of the notes which we followed in the Hindostani ( sent with this ) will best suit the Hindi, as it seems difficult to compress the Indian languages with the smaller compass of the English words ; for instance.

— — — — ⌣ —
God Save our Gracious Queen
Long live our Gracious Queen
— — — —
God Save The Queen

Suits the measure equally well when reduplicated thus

⏑ ⏑ — — — — ⏑ —

Khudda bachavi Kaiserko

⏑ ⏑ — — — — ⏑ —

— ⏑ ⏑ — — —

— — ⏑ — ⏑ — ⏑ —

— — ⏑ — ⏑ — ⏑ —

— — — — — — ⏑ —

— ⏑ ⏑ — — —

It is evident that with this Anthem movement the name of Her Majesty's nor of any member of the Royal Family ought to be connected, but......................................on two occasions Her Majesty has expressed her pleasure at the sight of the translations which were submitted to her. Yours, dear sir, would I feel sure excel all the rest and should you graciously accede to our request we will take care that it shall be privately submitted to Her Majesty and that due notice of the honour you have conferred upon this very important movement shall be givin in the principal London Journals. Possibly you are acquainted with Professor Monier Williams who is one of our body. We are very anxious to obtain the approval of the chief Brahmins and Spiritual Guides of the Indian people in this matter. Several of the most venerated in Southern India will I expect send us very shortly their approving consent and we should value above all things the good will and favour of those who are as the chief among the chiefs in the Holy City of Benares. With regard to money that is a mere question of time. We are sure to have plenty of that soon. Meanwhile I will ask to forgive the liberty which I have taken in thus addressing you. In mitigation of my offence I would say that poets are to me *most sacred* and that we want only the versions of high poets for this important work which will prove of benefit and interest to India, I hope, for many generations.

I have the honor to be with the highest regard and admiration,

Most esteemed sir,
Your obedient humble Servant,
FREDERICK K. HARFORD,
*(Minor Canon of Westminster Abbey.)*

---

NATIONAL ANTHEM FOR INDIA FUND,
14, COCKSPUR STREET LONDON. S. W.
Monday, June 1st 1882.

To

Sir Bharatendra Baboo Harischandra, of Benares
Illustrious and most Esteemed Sir,

Pray allow me to acknowledge with sincere thanks two beautifully illuminated parchments received yesterday addressed to Our Committee of the National Anthem for India fund. On Tuesday next when our Committee meet, I will lay these interesting documents before them and will transmit to you and to the Chief Pundits of the Holy City of Benares a formal Expression of thanks. Meanwhile I beg to say that Mr. Pincott of the Asiatic society has kindly translated to me the admirable paraphrase of "God save the Queen" written by Pundita Gangadhara Shastri which showed me the measure with which I have been hitherto unacquainted. The music to which the Anthem must be sung will allow (as I think I pointed out in my former letter) of certain parts being reduplicated

Khúda bà chàwé Káisér kò

instead of

God save our gracions Queen

and I am *hoping above all* things that we shall, erelong, have the delight of submitting to Her Majesty a version made by your world-renowned genius which can be sung to the wellknown music. To day I am

sending to you and to Pundit Gangadhara copies of a pamphlet which Sir William Andrew has had printed giving the details of a meeting held six weeks ago at the National Club and a paper which I wrote at Sir Wiliam's request on the subject of the Anthem project. Of course I greatly desire to know whether all that I have written in that paper accords with Indian feeling. The verdict of Benares upon that point is what I should *most desire* to know: as, if anything has been said which seems too much of narrow Westernisim, I should feel greatly obliged for remarks which would enable me to avoid repeating my error in any future paper I may have to write. Through Mr. Pincott I hope to enjoy the privilege of learning many of your beautiful thoughts and hope that before many years we may have English translations of all your works. About three weeks ago I had the pleasure of an hour's converse with Mr. Tennyson our peot Laureate who is intrested in the Anthem project and who was *greatly* pleased to hear that I had written to you respecting it. May Health and continual prosperity be with your heart, most illustrious and dear sir, and may the Blessings of Heaven always fall upon the *Holy City of Benares*:—I remain ever, with true respect and admiration.

yours very loyally and joyfully

FREDERIK K. HARFORD.

The letter of which extracts are given below seems to have been addressed by Baboo Harish Chandra to Mr. Frederick K. Harford.

Your kind letter dated............1883 came to hand but the delay occasioned in sending a reply to it was because for these five months I have been suffering from fever and again since these few weeks I am still disabled by cholera. I hope you will not regard the delay as due to neglect on my part.

By the last mail I have sent you a copy of the Resolution of the Pandits about the celebration of the National Anthem in India through the medium of the Sanskrit Language. The

Resolution bears the signatures of all the selected first class Sanskrii scholars of Benares.

Along with the resolution is a copy of the voluntary Translation of the National Anthem by Pandit Gangadhar Sastri of Benares in the Sanskrit Language.

Along with the letter is a translation of the National Anthem in Hindee by me, as desired by you. Although owing to my illness this translation is not to my entire satisfaction yet on comparision with other translations this has been found to excel them in as much as it is a literal translation of the original, and care has been taken to have corresponding lines of the translation bear the same sense as those of the original.

In a work like this the great difficulty which presents itself consists in this that there are hardly metres in Hindee corresponding in quantity to English metres. In order to avoid this defect I have adopted a metre which being short in quantity will almost equal that of the original.

* * * * * *

It is a custom in Hindustan that different Ragas ( tunes ) are sung at different times and this custom is so far observed that to sing an evening tune in the morning and *vice versa* is besides being improper, a religious sin. Hence to sing a verse in the same tune at all times like English verses is out of place here, and for this very reason I have selected a metre for this translation which can be adopted to different tunes.

Many years before the consideration of this subject in England I had a desire that the National Anthem or the prayer song for Her Majesty's welfare ought to be duly celeberated in our native assemblies, but I have not been fortunate enough to see my wish carried out fully even up to this time. To secure this end only I have generally inserted a song like this at the end of my works; and in 1877 when Her Majesty

assumed the title of Emperess of India, I had composed a Gazal in Urdu and had it celeberated in a public assembly. This was reviewed in detail ...... in Parisian Report.

* * * * * * *

If you find this translation any way defective or you think better to have certain portions amended or altered I hope you would kindly inform me about it.

I herewith send several printed copies of it in order to facilitate its reference to English scholars such as are qualified to give an opinion on it. I was very much rejoiced to read in your letter that my translation would, if an opportunity presents itself, be presented to Her most Gracious Majesty.

I hope you are aware that the people of India have a kind of superstitious reverence for their Sovereign so much so that they regard their Sovereign but next in reverence to God only.

This being the case why should an humble subject of Her Gracious Majesty, like myself, not feel happy and proud to get an opportunity of proving that reverence for the person whom every one regards as the most Honorable and the most Worshipful under heaven ?

---

NATIONAL ANTHEM FOR INDIA FUND,
14, Cockspur Street London, s. w.
*Friday June 5th 1882.*

To

Sri Bharatendu

Baboo Harischandra of Benares &c. &c. &c.

Illustrious and most esteemed Sir,

Pray receive my very sincere thanks for your most interesting letter of the 10th of May, and for the valuable rendering of the Anthem in Hindi of which copies arrived the day before yesterday. I grieved much to find from your letter that

fiend cholera had been atrocious enough to attack your sacred person and can only devoutly pray that he will never be permitted to do so again. Mr. Pincott has kindly enabled me to see through a careful translation, the poetical beauty as well as the remarkable exactness of your rendering. Alas! alas! that its fragrance—as far as *music* is concerned—must remain in India for the measure of 10 syllables prevents it from being sung to the air of "God save the Queen" which is the great object to be desired. Lady Ely, who is generally with the Queen is at present in Savoy, but I shall send her one of the copies which I have received and tell her of your gracious intention of remodelling or I suppose re-writing this version, so as to suit the measure of the music. I will also send to her a copy of portions of your letter so that she may transmit them to Her Majesty without delay. Should Lady Ely remain for any time at Aixles Bains where she has gone for her health, I will find means of sending to Miss Stopford the precious parchment with the autographs of the Pandits whose approval you have kindly obtained for our loyal project. I had fully hoped to find to day finished copies of the Pamphlet and List containing all the new names, but our dilatory printers have not got them ready, so that it will be another week before they reach you. Your monogrammatic initial has excited much admiration from general persons here, none of whom except Mr. Pincott can decipher the inscription. Being rather renowned for certain monograms which I have done for the Princess of Wales and others, I intend to devote the first leisure time I can get to an emblematic 'cypher' of your 'initials.' There is unfortunately a great distance between India and England but nevertheless I trust that some day inclination or business may induce you to visit our shores and hear your Hindi rendering of the Anthem sung by a full choir of voices at the crystal Palace where ( as Mr. Manns the director is a friend of long standing I will send the transliterated words whenever your genius had overcome the difficulties connected with the measure. Pray be assured that I shall constantly ask in my prayers the divine blessings both for your good health and the conti-

nuance of your triumphs in Poetry. I remain with highest regard illustrous and dear Sir

yours very respectfully and very joyfully.
FRED. K. HARFORD.

To

BHBOO HARISCHANDRA,
*of Benares.*

---

PRIVATE.

GOVERNMENT HOUSE, MAURITIUS.

DEAR MR. HARISCHANDRA,

I have read with interest the Rayes and Raiyet which you kindly had sent to me. Pray ask the manager to send me a memorandum of the amount of my subscription now due. In future it can be sent, via Aden, to the above address.

I have the most lively recollection of my visit to you at Benares, and hope you will occasionally write to me in my new Government. Mauritius has a sort of connection with India. I intend availing myself of the return to India of a direct Steamer to send a parcel to you with a trifling memento of our meeting.

I trust you are able to support Lord Ripon's enlightened policy with your pen.

Remember me to Mr. Baladewy Choube, and convey my best respects to His Highness the Maharaja of Benares. H. H. is well remembered by the English Princes and others who have had the honor of being entertained by him.

Believe me, always, my esteemed and valued friend,

Yours faithfully,
J. POPE HENNESEY,
(*Governor of Mauritius and British Islands.*)

St. Petersbourg, 28th March 1875,
*Moscow.*

Dear Sir

We beg leave to introduce to your polite attention our learned friend Mr. D. A. Rovinsky, Member of Russian T. Senate of St. Petersbourg who is about travelling for scientifical and artistical purposes to E. India, China & Japan and we will be most obliged for your affording him the benefit of your experience during his stay at your country.

We are Dear Sir
with kind regards
Your obedient servant
ALEX. BARANOFFSKY.

Mr. Harris Chandra Esq.
Benares.

---

[ The following letter seems to have been addressed to some one in Russia but the name is not given in the copy we have got. ]

Benares the 10th August 1884.

Honoured Sir,

Allow me to take the liberty of sending to your address by book post a few books from y productions and request you to kindly present them to His Imperial Majesty the Emperor of Russia. Being assured that all the civilised countries have in their Universities a chair for our beloved Sanskrita, I send the books with a hope that these will receive an approval there also. If I can any how come to know the names of all the Oriental Institutions in Russia, I will think myself much honored by presenting them with my humble productions. I hope you will be kind enough to excuse my this boldness of intrusion on your valuable time.

I have the honour to be
Sir
Your most obedient & humble servant
HARISCHANDRA

---

DANSVILLE LIVINGSTON CO. NEW YORK,
*August 21st1882.*

Hon. Haris Chandra,
Benares, India.

My dear Sir,

I have just returned to America after an absence of two years and take the first opportunity to acquaint you with my safe arrival and to renew the acquaintance which was so pleasantly formed in India last winter. Leaving Benares I visited in turn all the places of interest in Upper India including Lucknow and Cawnpore, Agra and Delhi and thence to Bombay. After a month in the latter place I started for Europe. It was my hope to have spent some weeks in Egppt and Palestine and to have visited the localities made memorable to Western nations as scenes in the origin of Christianity. This, however, was a pleasure denied me, as owing to the prevalence of cholera in the Bombay Presidency, no passengers were allowed to disembark in Egypt and I was therefore forced to proceed onward to Spain, landing at Gibralter.......I visited the northern part of Africa and thence re-entering Spain at Cadiz passed three months of springtime in southern Europe. It was my good fortune to spend more or less time at Seville, at Granada and Cordova, places once celebrated as the capitals of a Mohammedan ruler who in his turn conquered northern India many hundred years ago to the Mohammedon faith. Passing northward through Spain I came to Paris where I learned news which decided me to return home earlier than I had expected, and to leave undone much literary work in which I expected to engage. Sailing from Glasgow Scotland I landed in new York only to learn that an institution with which I expected to connect myself had been utterly destroyed by fire the night before. You can imagine therefore that I have been very busy the last two months and I seize now the earliest opportunity of writing to my friends.

It was my desire when I left you to have written out for publication before this some account of my experiences in

India and some impressions which I then and there obtained of the result of English rule......

You see I speak to you with great freedom because, I know somewhat how you feel yourself..............................

You spoke once of the possibility of visiting America. I trust that the plan may not be wholly relinquished and that some day you may find yourself able to come here. My future residence will be in this town and I shall certainly be glad to meet you and any of your friends from India whenever you may be able to come. And meantime it will give me additional pleasure to hear from you ; for I count as among the pleasantest of my Eastern experiences the courtesies which I received at your hands.

Should you write to Dr. Martin kindly remember me to him and give my regards also to the Secretary of the Maharajah who accompanied you and me on our Elephant ride to the temple and tank. I should be pleased also to be remembered to His Excellency the Prince if I thought he remembered me or my visit. With best wishes, my dear sir, and the hope of hearing from you sometime in the future I ramain very truly.

Your friend,
ALBERT LEFFINGWELL.

---

Dansville, N. Y., March 29th, 1883.

Hon. Haris Chandra,
Benares, India.

My dear Sir :

Your favour of the 19th of February has but just reached me. I am exceedingly obliged to you for the photograph and return one of myself herewith. I received also from you a number of pamphlets, for which I am greatly obliged, and only wish I could read them with the facility with which they are written. I cannot at this time answer all your questions and only write to assure you of my continued regard and to say that I wish as soon as possible to answer at length. I have placed

your name on the subscription list of a Health Journal published by us and of which I am a contributor, and hope it may reach you regularly every month. If it fails to do so, please let me know.

This will be written by the means of a new invention which, within the past two or three years, has come into very common use in this coutry. It is called the type-writer, and by a simple pressure upon keys, as in playing upon a piano, one is enabled successively to print words as they appear in this note, three times as fast as can be done by ordinary penmanship. It it therefore of very great use in conducting correspondence, especially when it is dictated phonographically. I see no reason why such a machine might not some day be introduced in your country should the demand for them ever be sufficiently great as to warrant the casting of type in the characters necessary.

With kindest regards to all my Benares friends and assurances of my own esteem, I remain,

Yours faithrfully,

ALBERT LEFFINGWELL.

---

COYP.

INDIA OFFICE.

*London 23rd April 1885.*

To

His Excellency the Right Honorable
The Governor General of India in Council.

My Lord,

I forward copy of a letter with its enclosure, dated 31st March 1885, from the Foreign Office, and request that your

Excellency in Council, will cause to be conveyed to Baboo Haris Chandra of Benares the thanks of his Imperial Majesty the German Emperor for a gift of Books presented by that individual.

I have the honor to be &c.
( Sd ) KIMBERLY.

---

FOREIGN OFFICE.
*March 31st, 1885.*

The Under Secretary of State ,
India Office.

Sir,

I am directed by Earl Gr  ville to transmit to you, to be laid before the Earl of Kimberly, translation of a note from the German Ambassador at this court, requesting that the thanks of H. I. M. the Emperor of Germany may be conveyed to an Indian Savant of Benares of the name of Baboo Haris Chandra for a gift of Books presented by that individual to His Majesty, and I am to request that you will move His Lordship to take such steps in the matter as he may deem expedient with a view to give effect to the wishes of Count Minister.

I am &c.
( Sd ) PHILIP W. CURRIE.

---

GERMAN EMBASSY
*26th March 1885.*

My Lord,

In a petition dated the 10th of August last, and written in the Sanskrit language, the Indian Savant Baboo Haris Chandra of Benares begged H. M. the Emperor to accept the gift of several works composed by him ( the Petitioner ), mostly translations, on general literary subjects; and asked that they might be presented to a Scientific Institute in Berlin. H. M. was graciously pleased to accept the offerred writings and to hand them over to the Royal Library in Berlin; and also has decided that his thanks should be announced to the donor for his gift.

As there is at present no Imperial Consul at Benares, I venturé to have recourse to your Excellency, and ask that the thanks of his Majesty the Emperor may be brought to the knowledge of the above mentioned Savant.

With &c.
( Sd ) MINISTER.

---

No. 653.

Copy forwarded to the Government of the North-Western Provinces and Oudh for disposal.

By order
( Sd ) C. BIRD
*Assstt. Secy. to the Govt. of India*
*Incharge Home Department.*

---

No. $\frac{794}{\text{XII·363·2}}$ of 1885.

MISCELLANEOUS ( GENERAL ) DEPARTMENT.

*Dated Naini Tal 15th June 1885.*

Copy forwarded to the Distrector of Public Instruction North-western Provinces and Oudh, for communication to Baboo Haris Chandra of Benares.

By order &c.
( Sd ) L. M. THOMTON
*For Secy. to Government*
*N. W. P. & Oudh.*

True Copy
( Sd ) E. WHITE
Offg. Director of Public Instruction.
*N. W. P. & Oudh.*

BENARES
25th Novr 74

MY DEAR SIR,

Just received your note of the 22nd. I have been very bad in health ever since the day I called at your house, and as the doctor thinks it is necessary for me to return home, I shall start to night. I regret I cannot therefore have the pleasure of seeing you in course of this sojourn of Benures. I am particularly anxious however, to have a sight of the last page of the old *Bhagavata*, and if you could send it between this hour and 11 P.M. I shall feel extremely obliged. I must otherwise ask you to send the Ms: to me at Calcutta for a sight. It will solve a most important question regarding the date when the Bhagavata was written. You know that those who are against us Baishnavas call the Bhagavata a work of Vopadeva. Now the date of your Ms: will prove them to be wrong, and that is why I, a Vashnava of seven generations, am so anxious about it. I shall exhibit the Ms. at a meeting of the Asiatic Society in your name, write a paper about it for the Socity's Journal, and publish a facsimile like the accompanying.

Yours sincerely
RAJINDRALALA MITRA

Babu Harishchandra

---

*From H. H. the Maharajah of Benares, G. C. S. I.*

श्रीमिथिलेशसदनविहारी ।

विद्यान्वित शुचि विद्याचन्द्र बाबू हरिश्चन्द्र जी को आसीस—कुशल रखें। मिथिला में भी और तीर्थों की रीति कलिकाल ने अपनी अमलदारी

अमाई है पर 'उन संतन की बलिहारी जो श्रीसियजू के नगर बसत' अब श्रद्धा की बाग मोडो श्री उस उत्तम भूमि को छोड़ो 'यह छोड़ के बनारस किस हज्ज को चला है, किसने तुझे भुलाया तूं भी भुला भला है १ क्यागौरतन अजूबा क्या बाट का डला है, जो छोड़कर गये भी तिन हाथ ही मला है ॥२॥ किसमत लगी उहां भी जिस राह पर ढला है, तूं सोच देखता क्यों जाना नहीं सला है ॥३॥ अपसोस आंच से तूं अबतक नहीं जला है, कोटान देव तीरथं इस चंद्र की कला है ॥४॥' कोई लोग धनुष के टुकरे लाते हैं यदि कोई टुकड़ा आप को भी गिरा पड़ा मिले तो लेते आना पर तोड़ना मत। बालप्रबोध छपकर आया कई जगह भूल से अशुद्ध पाया आरव्यकाण्ड भी देखा उस का भी वही लेखा जलदो आवो चित्त चाहता बनावो। मि॰ मार्गशीर्ष शुक्ल १४ सम्बत्।

रामनगर।

*From H. H. the Maharajah Bahadur of Domraon.*

स्वस्ति श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी लो: स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री महाराज राधाप्रसाद सिंह बहादुर जो देवदेवानां सदासमरविजयिनां के अंगोपाल आराम खुसी चाही आगे खत अैन इन्तज़ारी में आइल हाल खुसी मिजाज के दरिआफ़्त कर खुसी हासिल भइल से लाला हरषचन्द जात बाड़े मोफस्सिल हाल जबानी उन का जाहीर होइ यही तरह पर हमेसह अपना खुसी मिजाज के हाल लिषत रहल जाइ जाहीते खुसी जिआदे सुभ ता: २९ माह कुआर सन् १२८७ साल।

*Extract from a letter of H.H. the Maharanah of Mewar, G.C.S.I.*

From K. Sanwaldan Ji, Private Secy. to H. H. Maharana Sahab

To Pandia Manna Lal Ji

जिस तरह श्री जी ने आज्ञा दी है कि तुम लिख दो जो बाबू हरिश्चन्द्र जी इस राज्य में अपनाहीर समझें,

" On which I am ordered that you are directed to address Babu Harischandra that he shall be assured that this Raj is to be treated by him as his own property. "

From ditto.

॥ श्रीरामजी ॥

॥ बरवा ॥

शिवश्रीपुरकाशी आनंदकंद । तहं बिराजित बाबू श्रीहरिचंद ॥ १ ॥
हरिचन्द्र सुखचन्द चन्द्रिका देत । कविचकोर बुधकुमुद सु दृकटक लेत ॥२॥
हरिचन्द्रसुख शशितें ललित मयूष । सुदलव्याज कविगनकों देत पियूष ॥३॥
तासहि है दल दीन्हेउ लीन्हेउ मोल । भेषज भेषजहृत्त हुवस्तु अमोल ॥४॥
मित्र चित्रद्वय रंगहि दीन पठाय । भूपसजन के भेट किये कवि पाय ॥५॥
द्वितिय पत्र के संग सुप्रस्तुत ग्रंथ । ता प्रकाश भे गोचर चहुंधा पंथ ॥६॥
चित्रदोय हितकविके यहिं दलसंग । लीन्ह चाढ़ सिर कविनैं धार उमंग ॥७॥
पुस्तकद्वय किय ता छिन भूपति भेट । लिय प्रसन्न ह्वै महिपति भ्रम तम मेट ॥८॥
फिर प्रनाम तुव लिखित सुनायेउ बाच धन्यवाद नृपकहेउ प्रेमगन राच ॥९॥
हरिचन्द्र को लिखहु पत्र कवि भेज । बाबू प्रेम बिलच्छन दृढ़ गुनतेज ॥१०॥
[illegible] रघुदत्त लिखतें रहित प्रपंच । जंचितलिय तुम हमको कहत न रंच ॥११॥

॥ इत्याज्ञा ॥

॥ चौपाई ॥

लिखु प्रनाम तुव प्रेम सुपासा । विनय करत कवि श्यामल दासा ॥ १ ॥
शतत्रय मुद्रा अधिक पचीशा । यूरुपीय भेजत मम ईशा ॥ २ ॥
प्रतिनिधि हुंडी भेषज काजा । लेहु देहु दल कविहित ताजा ॥ ३ ॥
चाहत चित्त प्रेमवश मोरा । मैं नर तुच्छ बड़प्पन तोरा ॥ ४ ॥
अब मैं फ़ोटूग्राफ़ खिचैहूं । थोरे दिनहि भेज सो देहूं ॥ ५ ॥
और योग्य कार्य्य जो होई । लिखते रहहु गुसमनि सोई ॥ ६ ॥
राम राम यह चंद सुहाये । विक्रमार्क वत्सर छबि छाये ॥ ७ ॥
धवल पक्ष आषाढ़ सुमासा । वासरकाव्य हैजतिथि खासा ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

काव्यरीति आगम न कछु, मैं अबोध मतिमंद ।
कविपद चंचलता करी, छमा करहु हरिचंद ॥ १ ॥

आप का दर्शनानुरागी छात्र श्यामल दास ।

पुनः

स्वस्ति श्री आनन्दवन, शुभस्थान सुखकंद ।
तहां भक्त नँदनन्द के, बसत गुणहरिचंद ॥ १ ॥
ता ढिग उदयानगर तें, श्यामल विहित प्रनाम ।
पहुंचे कोटिन प्रेमयुत, विनयपत्र तें माम ॥ २ ॥
मीत जु पाती प्रीत की, रीति निबाहनहार ।
पहिलें इक है दूसरें, भेजी छाप निहार ॥ ३ ॥
प्रतकाज इक में लिख्यो, उपालंभ को मित्र ।
दूजे द्वै दल में लिख्यो, वृत्त वस्तु अरु चित्र ॥ ४ ॥
उपालंभ जो रावरो, सो लीनो सिरवंद ।
पराधीन कवि जानि कैं, छमा करहु हरिचंद ॥ ५ ॥
पुनर्व्याह मम ईश को, प्रतिपद मृगशिर सेत ।
कन्यादान सुकृष्णगढ़, धीश पथ्य नृप देत ॥ ६ ॥
श्रीमलज्जन रान कों, इङ्गलिश जंटिलमेन ।
सब स्वतंत्र अधिकारकों, शीघ्र कहत हैं देन ॥ ७ ॥
यहो मित्र तुमने लिखो, तातें अचरज आत ।
कोऊ करे न मित्रता, बीच भेद की बात ॥ ८ ॥
जो कदाचि हम कोटिहू, करिहैं दोस अजान ।
तऊ छमा हरिचंद की, जानत सबै सुजान ॥ ९ ॥
गजरद-छद पै चित्र इक, भेज्यो तुम हरिचंद ।
कियो भेट श्री रान को, नृप दिल भयो अनंद ॥ १० ॥
फिर दूजे प्रेषन किये, चित्र विचित्रन पत्र ।
अंगरेजी असबाब हू, तिन के संगहि तत्र ॥ ११ ॥
किम्मत को दल तासु के, बाबू दियो न संग ।
अब वांचत यहि पत्र के, लिखहु सबै को ढंग ॥ १२ ॥
घटी यंत्र इक लम्प को, ताको कहा विधान ।

चिमनी सूची आदि कछु, जा संग नहीं निधान ॥ १३ ॥
अधिक पठाई पुस्तकैं, प्रात भजन की लेहु ।
ताको कारन है कहा, सो उत्तर लिख देहु ॥ १४ ॥
जो सौदा की वस्तु है, ताको लिखि द्यो दाम ।
श्री नृप बारहिंबार कौं, तब ढिग लिखिहैं काम ॥ १५ ॥
नातर द्वहि सङ्कोच तैं, काज न लिखिहैं फेर ।
करहु विवेचन बुद्धि तैं, या मतलब कौं हेर ॥ १६ ॥
नातर बाबू गेह तुव, बीच सबै धन जौन ।
श्री नृप जानत आपनो, या मैं संशय कौन ॥ १७ ॥
तदपि विधि व्यवहार की, सोच लेहु कछु मित ।
उत्तर जल्दी भेजियो, मेरे दृग कौं चित ॥ १८ ॥
मूल्यपत्र जब आयहै, वस्तु वृत्त युत खास ।"
सब लेहैं रु मँगायहैं, कछुक और तव पास ॥ १९ ॥
राम ताप ग्रह इंदु मै, विक्रम हाय न गौन ।
उर्ज असित तिथि ईश कौं, लिख्यो प्रीति दृढ़ हौन ॥ २० ॥

पुनः

मित्र मौलिमनि गुनमनि, बाबू श्रीहरिचंद ।
कवि श्यामल को बांचियो, विनय युग्म पदवंद ॥ १ ॥
लिख्योपत्र तव प्रीति तैं, पूरित मित्र सुजान ।
भयो दरस सक्षातवत्, मोदखियो मनमान ॥ २ ॥
अगहन कृष्णा द्वैज कौं, ह्यां तैं करिहैं गौन ।
ईश युक्त सब जाहिंगे, व्याह कृष्णगढ़ हौन ॥ ३ ॥
दिल्ली के दरबार मैं, कियो जान स्वीकार ।
यामे कथन अनेक मै, लिखत न बनै अपार ॥ ४ ॥
प्रीति रीति के धर्म तैं, लिख्यो वृत्त निजगेह ।
जान्यो हम तुम कौं भयो, धनहित संकट एह ॥ ५ ॥
कछुक भई मम ईश को, श्रुत प्रवेश यह बात ।
ताही छिन आज्ञा दई, द्रव्य पठावन तात ॥ ६ ॥
मुद्रा एकसहस्र को, नोट पठावत भूप ।
तुमरे लायक ना तदपि, देश समय अनुरूप ॥ ७ ॥
कार्त्तिक शुक्ल त्रयोदशी, भो स्वतंत्र अधिकार ।

यातें हम सब को कियो, यथायोग्य सतकार ॥ ८ ॥
या उच्छव को देत हैं, तुम को नृप सनमान ।
जो सेवक सम ईश के, तो लेहो मुद मान ॥ ९ ॥
जो कदाचि यामें भबै, कर हैहो इनकार ।
प्रीति रीति तो टूटि है, भेद दृष्टि तव धार ॥ १० ॥
मोरे पति हूं जानि हैं, कछुक भेद की बात ।
यातें स्वीकृत कीजियो, ये मुद्रा अवदात ॥ ११ ॥
नोट पहुंचेतेहो लिखो, पीछो पहुंच प्रतच्छ ।
पै भासे यह कृष्णगढ़, पत्र तुमारो स्वच्छ ॥ १२ ॥
जो गुदड़ मम ईश को, तोरे सिर प्रिय तात ।
नृप कब यह भेटि हो, जादिन ह्वै है प्रात ॥ १३ ॥
राका मुख सु उर्ज सित, गुन गुन यह शशि साल ।
मित्र पत्र जा दिन लिख्यो, छकि तव प्रीति बिसाल ॥ १४ ॥

पुनः

कासी कासो मैं कहूं, तासी और न ठौर ।
प्रजा को रासी अखिल, भासी विपुला छोर ॥ १ ॥
ताके बासी सकल नर, पुन्यप्रकासी जान ।
परम हुलासो है तहां, श्रीहरिचन्द सुजान ॥ २ ॥
है प्रनाम कविश्याम को, तासूं बार हजार ।
पाती कातो विरह तव, सो लीनी सिर धार ॥ ३ ॥
ता पाती के हुक्म को, पहिले लिख्यो जबाब ।
ता को उत्तर देन मैं, पेख्यो मित्र सवाब ॥ ४ ॥
और लिख्यो एजंट को, मान मोर प्रति छोन ।
यहां न ताको लेस है, कहे मृषा कथ कौन ॥ ५ ॥
मोहि मित्र हरिचंद से, जाहि मनोहत दान ।
तासों ख्वाबहि में कबहु, करे न कोऊ मान ॥ ६ ॥
अगहन कृष्णा दूज कों, सज्जन करहि प्रयान ।
बादो शुक्ला आदि तिथि, होहि कृष्णगढ़ थान ॥ ७ ॥
विक्रम विक्रम खंड शशि, विक्रम अब्द पिछान ।
मेघकादिम् तिथि उर्ज को, लिख्यो मित्र तव ध्यान ॥ ८ ॥

पुनः

## कुंडलिका।

खस्तिश्री सर्वोपमा, संशोभित श्रीमान।
सुदप्रद मित्रत्व गुणर्मान, हरिश्चन्द्र गुन खान॥
हरिश्चन्द्र गुनखान विपन आनन्द निवासी।
श्रीवर्तन परिवेष सदा पण्डित कबिरासी।
पहुंचै तहां प्रनाम कोटि कवि श्यामल केरा।
मै जु अबुध मतिमन्द तोम गुन विस्तृत तेरा॥ १॥
छन्दबन्ध दल तोर मैं चहत सदा हरिचन्द।
वाक्य पयूष मयूष मिस मैं चकोर मतिमन्द।
मैं चकोर मतिमन्द तनिक हित करत न तेरो॥
पै तुम अपनो ओर निरष हित करत घनेरो।
बार बार बलिहार तोर सज्जनता ऊपर।
सदा चन्द्रिका सहित रहो थिर भारतभू पर॥ २॥
नजरहिं उन नरनाह के करन काज तुम ग्रंथ।
हा त्रिंशत भेजे सुते पूरन रोचक पंथ॥
पूरन रोचक पंथ भेंट भूपति के कीन्हे।
कृपादृष्टि अवलोक ललित लखि सज्जन लीन्हे॥
इन ग्रन्थन की अबै लिखहु नौछावर बाबू।
कृपारीति कर मित्र देहु सत्वर दलख्वाबू॥ ३॥
उत्तम फ़ोटोग्राफ़ को चित्र बनै नहि अब।
पै जैसो ह्यां पै खिच्यो तैसो भेजत तब॥
तैसो भेजत तब युगल तुमरे हित यामें।
मनालाल* की एक एक हनुमान* हिं तामें॥
मिच लेहु ममचित्र मैं न कछु लायक मानव।
पै तव शासन पाय लियो सिरलाय सुजानव॥ ४॥
अब आज्ञा मम ईस की, मित्र सुनावत तोहि।
"सुधा-बचन-कवि†" मैं लिखो मिलो लेख सो मोहि॥
मिल्यो लेख सो मोहि नजर भूपति को कीन्हो।
तब श्री सज्जन रांन हुकुम मोको यहि दीन्हो॥

---

* ये लोग काशी के कवियों में से थे। देखो इस ग्रन्थ का पृष्ठ ७८।
† "कवि-बचन-सुधा" समाचार पत्र।

हरिश्चन्द्र को लिखहु चित्र सब भूपन केरे ।
ओरहु जिन के होय सबैं भेजें हित मेरे ॥

दोहा। हिन्द और इङ्गलैंड के, चित्र नृपन के पाय ।
बाजी नामी नरन के, ले सब देहु पठाय ॥ ६ ॥
और यहां के योग्य जो, कार्य होय हरिचन्द ।
लिखहु निरन्तर जानि दृढ़, मैं सेवक मतिमन्द ॥ ७ ॥
विक्रमाग्निग्रह भूविशद, विक्रमाब्द तिथि तीज ।
सौम्यवार मेचक दिवस, लिख्यो पत्र मुद भीज ॥ ८ ॥

## बाबू हरिश्चन्द्र की लिखी चिट्ठियां ।

म० कुं० श्री बाबू रामदीन सिंह जी

प्रियवरेषु

अब की बक़रीद में भारतवर्ष के प्रायः अनेक नगरों में मुसल्मानों ने प्रकाश रूप से जो गोवध किया है उस से हिंदुओं की सब प्रकार से जो मानहानि हुई है वह अकथनीय है। पालिसी-पर-तन्त्र गवर्नमेण्ट पर हिन्दुओं की अकिं-चित्करता और मुसल्मानों की उग्रता भली भांति विदित है यही कारण है कि जान बूझ कर भी वह कुछ नहीं बोलती, किन्तु हमलोगों की जो भारत वर्ष में हिन्दुओं के ही वीर्य से उत्पन्न हैं ऐसे अवसर पर गवर्मेंट के कान खोलने का उपाय अवश्य करणीय है। इस हेतु आप से इस पत्र द्वारा निवेदन है कि जहांतक हो सके इस विषय में प्रयत्न कीजिए। भागलपुर, मिरज़ापुर, काशी इत्यादि कई स्थानों में प्रकाश्यरूप से केवल हमारा जी दुःखाने को डांकाठोकी यह अत्याचार हुआ है जो किसी किसी समाचारपत्र में प्रकाश भी हुआ है। आप भी अपने पत्र में इस विषय का भली भांति आन्दोलन कीजिए। सब पत्र एक साथ कोलाहल करेंगे तब काम चलेगा। हिन्दी, उर्दू, बंगाली, मराठी, अङ्गरेजी सब भाषा के पत्रों में जिन के संपादक हिन्दू हों एक बेर बड़े धूम से इस का आन्दोलन होना अवश्य है, आशा है कि अपने शक्य भर आप इस विषय में कोई बात उठा न रखेंगे।

भवदीय

हरिश्चन्द्र ।

[ २ ]

प्रियवरेषु

कल पुस्तकें ठीक समय ही पर मिल गईं। उस में कई ऐसी हैं जो मेरे यहां हैं। सिद्धग्रावली बहुत बिकने की वस्तु है अर्थात् हज़ारों नहीं लाख

पाकर लाखों की विकेगी। एक तो इस को छाप दीजिए और एक मुहम्मद, अली बीबीफ़ातिमा और हसन हुसैन का जीवनचरित्र की मुसलमान मोल लेंगे। मुझ को बड़ी लज्जा है कि ऐसी कोई वस्तु आप ने नहीं छापी जो बहुत बिके। पत्रों का संग्रह भी न छापने को थे? और जो इच्छा हो। मैं आप के अनुग्रहों का ऋणी हूं।

हरिश्चन्द्र।

[ २ ]

प्रियवर:

आपका पत्र आया, पुस्तकें भी पहुंचीं, दीपनारायण सिंह ने अपने नाम के केस में मेरा नाम नहीं दिया है यह अनुचित किया है, जब कि उन्हीं ने स्वयं एक वस्तु को उलट पुलट कर छापा है तो फिर रजिस्टरी कराके दूसरों को क्यों निषेध करते हैं? आप जानते हैं कि मेरी पुस्तकें लाभ के लिये नहीं छपतीं, मुझे इस में कुछ ख़याल नहीं है परन्तु कृतज्ञता मनुष्य के शरीर का रत्न है। भला और कुछ नहीं तो कृतज्ञता तो स्वीकार करना था।

उदेपुर की वंशावली मेरे पास बिल्कुल नहीं लिखी है। टाड का राजस्थान अंगरेज़ी में और उर्दू में छप गया है और थोड़ासा बंगले में भी छपा है। वह बहुत अच्छा है उसमें और भी कई जगह से उसने मिलान कर के लिखा है। कुछ काग़ज़ात उदेपुर के मेरे पास हैं और एक उदेपुर की तवारीख़ ख़ास दर्बार में की लिखी हुई है कुछ मेरी लिखी हुई है। यदि आप उन सबों को इकट्ठा कर के आप लिखना चाहें तो मैं भेज दूं। आप को राजस्थान लेना होगा क्योंकि वह मेरे पास नहीं है। इस विषय में आपकी क्या सम्मति है?

पुरानी पुस्तकों के विषय में जो आपने लिखा है पहिले यह लिखिये कि किस शास्त्र की पुस्तकें आपके पास पहिले भेजी जायं?

आप को जो कुछ पूछना हो लिखिये उत्तर बराबर जायगा।

"अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा" जाता है इसे शीघ्र ही छाप दीजिये, इस की आवश्यकता है।

"भक्तमाल" आप अवश्य छाप दीजिये परन्तु आप के पास जो भक्तमाल है वह भी मुझे देखने को भेज दीजिये।

हिन्दीप्रदीप का लेक्चर आप अवश्य छाप सकते हैं।

"अन्धेर नगरी" यदि आप मेरे तरफ़ से छापना चाहिये तो ५०० कापी मैं लूंगा परन्तु ८ छपाई इत्यादि अवश्य दूंगा। यदि आप स्वयं छापना चाहैं तो मैं १० कापी लूंगा बाक़ी आप बेच लें।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह वही विक्रम हों। यह बंगला के

जयदेव जी के जीवनचरित्र में लिखा है कि " हरिदास हीराचन्द बंबई वाले ने लिखा है कि ' ये विक्रम के दर्बार में थे " मेरी भी यही सम्मति है कि यह वही विक्रम हैं क्योंकि यह वह विक्रम नहीं हो सकते जिनका संवत् चलता है। जयदेव जी उन के कई सौ बाद हुए हैं।

महाराज कुमार लाल खड्ग बहादुर मल्ल की विद्योत्साहिता, शीघ्र देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हूं। उन का एक पत्र और एक नाटक मेरे पास भी आया है हमारी उन से मिलने की बड़ी इच्छा है ईश्वर कर वे शीघ्र ही आवैं।

बूंदी की वंशावली जाती है।

इस समय निम्न लिखित पुस्तकों के छपने की बहुत आवश्यकता है। लोग बहुत ढूंढ़ते हैं।

१ सत्य हरिश्चन्द्र—( एकबेर मुद्रित ) इस की बहुत मांग आती है।
२ विद्यासुन्दर—( एकबेर मुद्रित ) इस की ५० कापी गवर्मेन्ट लेगी।
३ कर्पूरमंजरी—( एकबेर मुद्रित )
४ प्रेम फुलवारी—( एकबेर मुद्रित ) इस की बहुत ही मांग आती है।
५ भारत दुर्दशा—( क० व० सु० में मुद्रित )

भवदीय हरिश्चन्द्र।

[ ४ ]

श्री बाबू साहिबप्रसाद सिंह।

प्रियवर

आप का छपा पत्र आया था परन्तु मेरी माता का देहान्त होगया इस से पत्रोत्तर में विलंब हुआ. क्षमा कीजियेगा।

बूंदी की राज वंशावली का 'नोट' और दोहे भेजे जाते हैं। यह इतनी ही है। इस में एक ग़लती है उसे बना लीजियेगा। वह यह है कि "( टाड साहब के मत से हर्षि राय)" इस के आगे जो सन लिखा है उस को ७५५ बना दीजिये

'अंधेर नगरी' का एक दृश्य यहीं रह गया था वह जाता है। इसे शीघ्रता से मुद्रित कीजिये क्योंकि ७ फ़र्वरी को यह नाटक महाराज डुमरांव के यहां खेला जायगा उस अवसर पर बांटने के लिये इस की अत्यावश्यकता है, अतएव इस का प्रूफ़ बहुत ही शीघ्र भेजिये।

हरिश्चन्द्र

परिश्रम देना क्षमा कीजियेगा। और भक्तमाल भी भेजियेगा॥

भारतमित्र के सम्पादक भी टाड साहिब का राजिस्तान छापना चाहते हैं दोनों जगह छपना अच्छा न होगा आप उन को पत्र लिख कर ते कर लें।

हरिश्चन्द्र

भारतमित्र के "हिन्दीभाषा" नामक लेख से उद्धृत (खण्ड १६ सं० २८ ता० १३ जुलाई १८९३ ई० )

* * * * * *

हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये जो लोग कटिबद्ध होकर लगते हैं, वे लोग लाखों का घाटा उठाते और हानिएं सहते हैं, परन्तु जिन देश वाली हिन्दीभाषी लोगों के लिये वे लोग कष्ट स्वीकार पूर्वक धन व्यय करते हैं, वे देशवासी इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। देखिये, भारतेन्दु स्वर्गीय हरिश्चन्द्र महोदय ने लाखों पर पानी फेरा अपना लाख का घर खाख किया। परन्तु जिन के लिये किया, उन लोगों ने क्या किया ? कुछ नहीं। यदि इंग्लैंण्ड अमेरिका में हरिश्चन्द्र जैसे कवि जन्म लेते तो वहां के लोग इस बात का अभिमान और गौरव करते तथा धन धान्य से कवि का घर पूर्ण मात्रा से भरते। परन्तु यहां ठीक उस से विपरीत दशा हुई। उक्त भारतेन्दु ने अपने कई लाख व्यय किये और अन्त को अर्थाभाव से उन्हों ने अन्तिम दशा में बड़े तंगी से दिन बिताये। उन को कोई ऐसा सहायक भी न मिला कि जो उन को हिन्दी के विषय में कुछ सहायता करते। जीवन के शेषांश में उन की आर्थिक दशा ऐसी हीन हो गई थी कि, वे निज प्रणीत ग्रन्थों को छपवाने में भी असमर्थ हो गये थे। पुस्तकें बना कर प्रायः अन्य लोगों को छापने को दे दिया करते थे। ऐसा एक जन भी इन को न मिला कि इन को प्रणीत सब पुस्तकों हो को छापने में सम्मत होता। इस से भी ये बड़े ही दुखी हो गये थे। जिन देश वासियों के लिये ये इतना कष्ट उठाते थे, उन लोगों ने कुछ भी ध्यान न दिया। इन के नाम मात्र के स्वार्थी मित्र तो बहुत से थे, परन्तु किसी ने भी कुछ सहायता देना स्वीकार न किया जिन लोगों ने इन को पुस्तकें छाप और बेच कर लाभ उठाये थे, वे भी मौनावलम्बन कर रहे। अन्त को बाबू साहब ने पटना खड्गविलास यन्त्राध्यक्ष को अपना मनोगत भाव जतलाया। उक्त महाशय ने इन को सब प्रकार से सहायता स्वीकार की। अर्थ सहायता देना भी स्वीकार किया और पुस्तकों को यथा नियम प्रकाशित करना भी स्वीकार किया। वास्तव में बाबू साहब को एक ऐसा मित्र मिला था, जिस से कि,उन का चित्त सन्तुष्ट हो गया था। उक्त खड्गविलास यन्त्राध्यक्ष के विषय में भारतेन्दु जी ने एक पत्र यहां ( कलकत्ते से ) अपने एक मित्र को लिख

था, उस में लिखा था कि,-- " प्रियवर, इतने दिनों के अनन्तर मुझे एक हिन्दी के सच्चे प्रेमी मिले हैं, जो अपने वचन के सच्चे और कार्य्य में पक्के हैं इन्हों ने मेरी पुस्तकों के छापने का प्रण किया है, और मेरी अर्थ सहायता भी यथेष्ट कर रहे हैं जिस से मैं अब निश्चिन्त हो कर कुछ लिखने में प्रवृत्त हूं । परन्तु खेद है कि, उक्त मित्र कुछ काल पूर्व न मिले, नहीं तो मैं बहुत कुछ कर सकता, क्योंकि, मेरा शरीर स्वस्थ रहता था अब मेरा स्वास्थ्य भंग हो गया है इस से मैं यथायोग्य श्रम नहीं कर सकता। यों तो मेरे मित्र बहुत हैं परन्तु प्रायः सब सम्पत के साथी ही निकले; अधिकांश स्वार्थी निकले। किसी से कुछ आशा नहीं; हां, इन में अधिकांश मित्र वे हैं, जो मेरे ग्रन्थों को छाप कर निज उदर पूर्ण करने ही को मित्रता का निदर्शन समझते हैं । परन्तु ईश्वर का धन्यवाद है कि, उस ने इतने दिनों बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया जो कि, हिन्दी के लिये बड़े व्यग्र हैं और हिन्दी की उन्नति के लिये ठीक मेरी तरह तन, मन, धन, प्राणापर्पण करने को कटिबद्ध हैं। आप इस समाचार से प्रसन्न होंगे कि ये बीच बीच में मेरी अर्थ सहायता तो करतेही आते हैं। परन्तु सम्प्रति इन्हों ने एक साथ ४०००) देकर मुझे ऋण से उऋण किया है। क्या आप ऐसे महात्मा का नाम भी सुनना चाहते हैं? लीजिये सुनिये,—इन का नाम महाराज कुमार श्री रामदीन सिंह " क्षत्रियपत्रिका " सम्पादक हैं । मैं अब किसी को पुस्तकें छापने न दूंगा, प्रकाशित अप्रकाशित समस्त पुस्तकों का स्वत्व भी इनहीं को दिये देता हूं। * * * * * * * *
आप अपनी सम्मति लिखियेगा । *' विशेष दूसरे पत्र में। * * * *।"

पाठक, उक्त पत्र से बाबू साहब के हृदय का भाव स्पष्ट झलकता है। जीवन के शेषांश में उन को हिन्दी की उन्नति की कैसी उत्कण्ठा थी और वे अर्थाभाव के मारे कैसे कुछ कष्ट पाते थे और अन्त को महाराजकुमार श्री रामदीन सिंह के मिल जाने से वे कैसे प्रसन्न हो गये थे। * * * * * *

---0---